

-: अनुक्रमणिका :-

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
प्रथम अधिकार	१-८६	श्रुतज्ञान कथंचित् प्रत्यक्ष	२०
टीकाकार का मंगलाचरण	१	उपयोगका लक्षण नय विभागसे	२१
ग्रन्थ की भूमिका	१	'सामान्य' का लक्षण	२२
विषय-विभाजन	२	उपयोग का लक्षण	२२, ५८
ग्रन्थकार का मंगलाचरण	४	जीव अमूर्त और मूर्त	२४, ८८
'वन्दे' शब्द का निश्चय		जीव का कर्तापना	२५, ८९
और व्यवहार से अर्थ	४	अशुद्ध निश्चयनय का लक्षण	२६, २७
सो इन्द्रो का नाम	५	जीव का भोक्तापना	२८
असयत सम्यग्दृष्टि एकदेशजिन	५	जीव का शरीर प्रमाणपना	३०
अर्हंत का प्रसाद से मोक्षमार्ग की सिद्धि	६	सात समुद्घातो का लक्षण	३१
इष्ट, अधिकृत अने अभिमत देवता	६	स्थावर और त्रस जीव	३४
नय विवक्षासे ग्रन्थ का प्रयोजन	८	जीव समास	३६
जीवका उपयोग वगैरे नव अधिकार	९	प्राण	३७, ३८
जीव का कर्मोद्भवश छ दिशामे गमन	१०	चौद मार्गणा और चौद गुणस्थान	३९
प्राणो का कथन द्वारा जीव का		प्रत्येक गुणस्थान का लक्षण	४०
लक्षण	१२, ३७, ८८	वैतनिक और सशय मिथ्यादृष्टियों का	
नव दृष्टात द्वारा जीव की सिद्धि	१३	सम्यग्-मिथ्यादृष्टि से अंतर	४०
नयो का लक्षण	१४	अविरत सम्यग्दृष्टि, निश्चय-व्यवहारको	
मुख्यता से वर्णन मे अन्य विषय गौण	१५	साध्य-साधक माननेवाला और	
दर्शनोपयोग और उसका भेद जीवका		आत्मनिदा सहित इन्द्रियसुखका	
स्वभाव केवलदर्शन, पर कर्माधीनता		अनुभव करने वाला	४१, ९५
से चक्षुदर्शनी	१५	देशविरति स्वभाविक सुख का अनुभव	
चक्षुदर्शन सव्यवहार प्रत्यक्ष,		करने वाला	४१
निश्चय से परोक्ष	१६	केवलज्ञान पीछे तुर्त मोक्ष क्यु नहि ?	४४
ज्ञानोपयोग और उसका भेदोका लक्षण	१७	शुद्ध-अशुद्ध पारिणामिक भाव	४६, ४७
मिथ्यात्व का उदयसे ज्ञान भी अज्ञान	१७	सिद्धो का स्वरूप ऊर्ध्वगमन	
सव्यवहार का लक्षण	१९	स्वभाव	४९, २४४

विषय	पृष्ठ
रज्जु गमन में समय भेद क्यों नहीं ?	७६
अपध्यान का लक्षण	७६
वीतराग सम्पत्त्व-निश्चय सम्पत्त्व	
वीतराग चारित्र्य का अविनाशूत	७६-७७
परमाणु का अविरोधपूर्वक विचार	७७
सर्वज्ञ वचन में विवाद नहीं करना	७७
पचास्तिकाय का कथन	७८, ८९, ९०
अस्ति और काय का लक्षण और	
रूपन	७८, ७९
पंचान्तिकाओं में सज्ञा आदि भेद	७९
पचास्तिकाओं में अस्तित्व से भेद	७९
'सिद्धत्व' शुद्धद्रव्य व्यजन पर्याय	७९
निश्चयमें सत्ता-काय में द्रव्य का	
अभेदपना	८०
छ द्रव्यों की प्रदेश सख्या	८१
कालद्रव्य एक प्रदेशी क्यों ?	८१, ८२
'द्रव्य' पर्याय प्रमाण है	८२
परमाणु-गमन में कालद्रव्य महकारी	८२
परमाणु उपचार से काय	८३
जीव शुद्धनिश्चयनय से शुद्ध है	८३
मनुष्यादि पर्याय व्यवहारनय से है	८३
कालाणु उपचार से भी काय नहीं	८४
'अणु' पुद्गल की सज्ञा, काल अणु	
किस तरह ?	८४
परमाणु शब्द का अर्थ	८४
प्रदेश का लक्षण और अवगाहन शक्ति	८५
एक निगोद शरीर में सिद्धों से	
अनतगुणा जीव	८६
लोक सूक्ष्म-वाटर पुद्गलो से भरपूर	८६
अमूर्तिक आकाश की विभाग कल्पना	८६
चूलिका	८७

विषय	पृष्ठ
जीव पुद्गल परिणामी और सब	
अपरिणामी	८७, ८८
पुद्गल मूर्तिक और सब अमूर्तिक	८८
आकाश क्षेत्रवान	८८
जीव, पुद्गल सक्रिय और सब अक्रिय	८८
जीव कर्ता और सब अकर्ता पण कारण	८९
जीवों का परस्पर उपकार	८९
अशुक्लपु का परिणाम, स्वभाव पर्याय	८९
जीव का शरीर मन आदि का कर्ता	
पुद्गल	८९
'गति' आदि का कर्ता धर्मादि चार द्रव्य	८९
जीव शुद्धनिश्चयनय से द्रव्य और भाव	
पुण्य-पाप का कर्ता नहीं, अशुद्ध	
निश्चयनय से कर्ता	८९
पुद्गलादि पापों का परिणाम का कर्ता	८९
छ द्रव्यों का सर्वगतपना	९०
व्यवहारनय से द्रव्यों का परस्पर प्रवेश	९०
क्या जीव उपादेय है ?	९०
शुद्ध-बुद्ध-एक स्वभाव का अर्थ	९१
'चूलिका' का अर्थ	९१
दूसरा अधिकार	९२-१८२
जीव-अजीव का परिणामन से आसन्नवादि	९२
जीव को परद्रव्य-जनित उपाधि का	
ग्रहण	९३
जीव का परद्रव्यरूप परिणामन	९३
निश्चय से जीव निज स्वभाव छोड़ता नहीं	९३
'परस्पर सापेक्षता' कथंचित परिणामपना	९३
हेय और उपादेय तत्त्वों का कथन	९४
निश्चय रत्नत्रय का साधक व्यवहार	९४
क्यों जीव क्या तत्त्व का कर्ता	९५

विषय	पृष्ठ
रज्जु गमन मे समय भेद क्यों नहीं ?	७६
अपध्यान का लक्षण	७६
वीतराग सम्पत्त्व-निश्चय सम्पत्त्व	
वीतराग चारित्र्य का अविनाश	७६-७७
परमाणु का अविरोधपूर्वक विचार	७७
नवज्ञ वचन मे विवाद नहीं करना	७७
पचास्तिकाय का कथन	७८, ८९, ९०
अस्ति और काय का लक्षण और	
कथन	७८, ७९
पचास्तिकायो मे सजा आदि भेद	७९
पचास्तिकायो मे अस्तित्व मे भेद	७९
'सिद्धत्व' शुद्धद्रव्य व्यजन पर्याय	७९
निश्चयमे सत्ता-काय मे द्रव्य का	
अभेदपना	८०
छ द्रव्यों की प्रदेश सख्या	८१
कालद्रव्य एक प्रदेशी क्यों ?	८१, ८२
'द्रव्य' पर्याय प्रमाण है	८२
परमाणु-गमन मे कालद्रव्य महकारी	८२
परमाणु उपचार से काय	८३
जीव शुद्धनिश्चयनय से शुद्ध है	८३
मनुष्यादि पर्याय व्यवहारनय से है	८३
कालाणु उपचार से भी काय नहीं	८४
'अणु' पुद्गल की सजा, काल अणु	
किस तरह ?	८४
परमाणु शब्द का अर्थ	८४
प्रदेश का लक्षण और अवगाहन शक्ति	८५
एक निगोद शरीर मे सिद्धो से	
अनतगुणा जीव	८६
लोक सूक्ष्म-बादर पुद्गलो से भरपूर	८६
अमूर्तिक आकाश की विभाग कल्पना	८६
चूलिका	८७

विषय	पृष्ठ
जीव पुद्गल परिणामी और सब	
अपरिणामी	८७, ८८
पुद्गल मूर्तिक और सब अमूर्तिक	८८
आकाश क्षेत्रवान	८८
जीव, पुद्गल सक्रिय और सब अक्रिय	८८
जीव कर्ता और सब अकर्ता पण कारण	८९
जीवों का परस्पर उपकार	८९
अणुलघु का परिणाम, स्वभाव पर्याय	८९
जीव का शरीर मन आदि का कर्ता	
पुद्गल	८९
'गति' आदि का कर्ता धर्मादि चार द्रव्य	८९
जीव शुद्धनिश्चयनय से द्रव्य और भाव	
पुण्य-पाप का कर्ता नहीं, अशुद्ध	
निश्चयनय मे कर्ता	८९
पुद्गलादि पापों का परिणाम का कर्ता	८९
छ द्रव्यों का मर्गतपना	९०
व्यवहारनय से द्रव्यों का परस्पर प्रवेश	९०
क्या जीव उपादेय है ?	९०
शुद्ध-बुद्ध-एक स्वभाव का अर्थ	९१
'चूलिका' का अर्थ	९१
दूसरा अधिकार	९२-१८२
जीव-अजीव का परिणामन से आस्रवादि	९२
जीव को परद्रव्य-जनित उपाधि का	
ग्रहण	९३
जीव का परद्रव्यरूप परिणामन	९३
निश्चय से जीव निज स्वभाव छोड़ता नहीं	९३
'परस्पर सापेक्षता' कथचित्त परिणामपना	९३
हेय और उपादेय तत्त्वों का कथन	९४
निश्चय रत्नत्रय का साधक व्यवहार	९४
क्यों जीव क्या तत्त्व का कर्ता	९५

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
मम्य-दृष्टि' दुर्ध्यान छोड़नेके लाये		शुभोपयोग ४ से ६ठा गुणस्थान तक	११०
और ससारका स्थिति का नाश करने		शुभोपयोग शुद्धोपयोगका साधक	११०
के लिये पुण्यबध करता है।	९५	शुद्धोपयोग (एकदेश-शुद्ध निश्चय)	
कौन नयसे जीव कौन तत्वका कर्ता	९६	सात से बार गुणस्थान तक	११०
परम शुद्ध निश्चय से बन्ध-मोक्ष नहीं	९६	'श्रावक' पाचवा गुणस्थानवर्ती	११०
भव्य का लक्षण	९६	गुणस्थानो मे प्रकृतियों का सवर	१११
एकदेश शुद्ध निश्चयका लक्षण	९६	'शुद्धोपयोग' मिथ्यात्व-रागादिकी तरह	
शुद्ध पारिणामिक भाव ध्येय है,		अशुद्ध भी नहीं है और केवल ज्ञानादि	
ध्यान नहीं	९६	की तरह शुद्ध भी नहीं	१११
जीव पुद्गलका सयोग से आस्रवादि	९७	केवलज्ञान का कारण सावरणज्ञान	११२
जीव पुद्गलका सयोगका नाश से		निगोदियाका ज्ञान क्षायोपशमिक	११२
सवर आदि	९७	क्षायोपशमिक ज्ञान केवलज्ञानका	
आस्रवादि सात पदार्थों का लक्षण	९८	अश नहीं	११३
भाव और द्रव्य आस्रव	९८	क्षयोपशमका लक्षण	११३
भाव आस्रवका भेद	९९	सर्वघाती और देशघाती स्पर्द्धक	
मिथ्यात्वादि भाव आश्रवका लक्षण	१००	और उपशम	११४
'योग' वीर्यान्तरायका क्षयोपशमसे		सवरका कारण अथवा भावसवरका	
द्रव्य आस्रव	१०१	भेद	११५
ज्ञानका आवरण करनेवाला ज्ञानावरण	१०३	निश्चय और व्यवहारव्रत-समिति	
वध, द्रव्यवध, भाववध	१०४	आदि	११५
प्रकृति, प्रदेश, स्थिति, अनुभाग बन्ध	१०५	दश धर्मोंका विशेष कथन	११६
आठ कर्मोंका स्वभाव	१०६	भावशुद्धि आदि आठ शुद्धि	११७, ११८
बन्धका कारण	१०७, १०८	अध्रुव अनुप्रेक्षा	११९
आस्रव और बन्धका अन्तर	१०८	अशरण अनुप्रेक्षा	१२०
भावसवर, द्रव्यसवर	१०९	निश्चय रत्नत्रयका कारण परमेष्ठी	
परमात्माका स्वरूप	११०, ११४	आराधन	१२०
अशुद्ध-निश्चय एक से बार गुण		ससारानुप्रेक्षा पंच परावर्तन	१२१
स्थानक तक	११०	स्वर्गमेसे चयकर मोक्षमे जानेवाला जीव	१२२
अशुभोपयोग १ से ३ गुणस्थान तक	११०	नित्य निगोदिया कभी त्रस नहीं	
		होता	१२४
		एकत्व अनुप्रेक्षा	१२५

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
'शरीर' शब्दका अर्थ और स्वरूप	१२५	सात भी नरक वाला फिर नरकको	
निज-शुद्धात्मभावनासे चरम शरीरको		जाता है	१३६
मोक्ष और अचरमको स्वर्ग और		नरकका दुःख	१३७
परम्परासे मोक्ष	१२६	तिर्यक् लोकका कथन	१३८, १३९
अन्यत्व अनुप्रेक्षा	१२६	द्वीप समुद्रोका आकार, विस्तार,	
अशुचि अनुप्रेक्षा	१२७	सख्या	१३९
ब्रह्मचारी सदा पवित्र	१२८	आवास, भवन और पुरका लक्षण	१४०
जन्मसे शूद्र, क्रियासे द्विज ब्राह्मण	१२८	व्यतर-भवनवासीकी भवन सख्या	१४०
सयमरूपी जलसे भरी हुई आत्म-		मनुष्य लोकका कथन	१४०
नदीमे स्नान	१२८	जबूद्वीपका क्षेत्र, पर्वत हृद और	
आस्रवानुप्रेक्षा, इन्द्रिय, कषाय, अन्नत,		नदी	१४१
क्रिया	१२९	क्षेत्र, पर्वत और हृदका अर्थ	१४२
सवर अनुप्रेक्षा	१३०	भरतक्षेत्रका प्रमाण	१४३
निर्जरा अनुप्रेक्षा	१३०	पर्वत, क्षेत्र और हृदोका प्रमाण	१४३
निर्जरामे जिन-वचन कारण	१३१	उत्तरदिशाका क्षेत्र, पर्वत, नदी	१४३
दु खी धर्म मे तत्पर होते है	१३१	विजयार्ध और म्लेच्छ खडोमे चौथा	
सवेग और वैराग्यका लक्षण	१३१	काल	१४३
लोक अनुप्रेक्षा	१३१	विदेह शब्दका अर्थ	१४४
लोकका आकार और विस्तार,		सुमेरु पर्वतका कथन	१४४
वातबलय	१३१	गजदन्त, यमकगिरि, सुवर्ण पर्वत	१४४
त्रसनाडी, ऊर्ध्व-अधोलोककी ऊँचाई	१३२	भोगभूमिका भोग, सुख, कल्पवृक्ष	१४५
अधोलोक, नरक, बिल सख्या	१३२	निश्चय-व्यवहार रत्नत्रयका धारक	
सात पृथिव्योकी चौडाई और विस्तार	१३३	उत्तम पात्र	१४५
चित्रा पृथ्वी, पक, खर और अब्बहुल		आहारदानका फल	१४५
भाग	१३३	विदेहक्षेत्रका विशेष कथन	१४६, १४८
खर और पक भागोमे देवोका निवास	१३४	'पूर्व' का प्रमाण	१४९
नरकोमे पटल और बिल	१३५	लवण समुद्रमे १६००० योजन जल	
नरकोमे शरीरकी ऊँचाई और आयुष्य	१३५	ऊँचाई	१५०
नरक सवधी गति आगति	१३६	धातकी खड	१५१
प्रत्येक नरकमे उत्पन्न होनेका क्रम	१३६	पर्वत और क्षेत्रोका आकार	१५१
		कालोद समुद्र और पुष्करवर द्वीप	१५१

विषय	पृष्ठ
मानुषोत्तर पर्वत	१५२
मनुष्य और तिर्यंच आयु का प्रमाण	१५२
स्वयभूरमणद्वीप मे नागेन्द्र पर्वत	१५२
असख्यद्वीपो मे जघन्यभोगभूमि	१५२
अतिम द्वीप और समुद्र मे कर्मभूमि	१५२
मध्यलोक मे अकृत्रिम चैत्यालय	१५३
ज्योतिष्क लोक	१५३
निमित्त' चन्द्र, सूर्य और कु भार	१५४
चन्द्र और सूर्य का 'चार' क्षेत्र	१५४
'चक्रवर्ती' सूर्य मे जिनविब का दर्शन	१५५
नक्षत्रो का कथन	१५५
दिवस मे हानि-वृद्धि	१५७
ऊर्ध्वलोक कथन और स्वर्गों का नाम	१५८
वार्तिक का लक्षण	१५८
स्वर्गों का उत्सेध और इन्द्र	१५९
मोक्ष-शिला और सिद्धस्थान	१५९
स्वर्गपटल और विमानसख्या	१५९
सौधर्म सबधी विमान	१६०
देवो का आयुष्य	१६१
निश्चय लोक	१६२
पाप का लक्षण	१६२
बोधि-दुर्लभ अनुरेक्षा	१६३
मनुष्य आदि की उत्तरोत्तर दुर्लभता	१६३
विषय कषायादि की बहुलता	१६४
बोधि और समाधि का लक्षण	१६४
धर्म अनुरेक्षा और धर्म का लक्षण	१६४
८४ लाख योनि	१६५
धर्म से अभ्युदय सुख	१६५
परिषह जय	१६६

विषय	पृष्ठ
चारित्र, उसका भेद और लक्षण	१६७
कौन चारित्र, क्या गुणस्थान मे शुभोपयोगरूप व्यवहार रत्नत्रय से पाप का सवर	१६९
शुद्धोपयोगरूप निश्चय रत्नत्रय से पुण्य-पाप का सवर	१७०
सवर मे असमर्थों के लिये व्रत आदि मतों का नाम	१७०
योग-कषाय से बध, अकषाय से अबध द्रव्यभाव और सविपाक-अविपाक निजरा	१७२
अतरग बहिरग तप-स्वरूप और साध्य-साधन	१७२
निर्जरा सवर पूर्वक सराग सम्यग्दृष्टि की निर्जरा से अशुभ कर्म का नाश, ससारस्थिति का छेद, परपरा मोक्ष	१७३
वीतराग सम्यग्दृष्टि की निर्जरा सम्यग्दृष्टि को वीतराग-विशेषण क्यों ?	१७३
जितना अश राग इतना बध सरागी का भेदविज्ञान निरर्थक	१७४
द्रव्य और भाव मोक्ष परमात्मा का सुख	१७५
ससारो जीवो को भी अतीन्द्रिय सुख निरतर कर्मबध और उदय, मोक्ष किस तरह ?	१७६
आत्मा सबधी नव दृष्टात निरतर मोक्ष परन्तु ससार जीव बिना के नहीं	१७७
पुण्य-पाप, शुभ-अशुभोपयोग	१७९

विषय	पृष्ठ
पुण्य प्रकृतिश्रोकानाम्	१८०
सोलभावना और सम्यक्त्वकी मुख्यता	१८०
त्रण मूढता आदि २५ दोष	१८०
सम्यग्दृष्टि पुण्य क्यों करे ?	१८१
निजशुद्धात्मा उपादेय है और ऐसी	
रुचिरूप सम्यग्दृष्टिकी भावना	१८०
भक्ति और पुण्यसे परमात्मपदकी प्राप्ति	१८१
सम्यग्दृष्टिका स्वर्गमें जीवन	१८१
मिथ्यादृष्टिका पुण्यवध	१८२
भेदाभेद रत्नत्रयका धारक गणधर	१८१
तीसरा अधिकार	१८३-२७१
व्यवहार और निश्चय मोक्षमार्ग	१८३, १८४
निश्चय और व्यवहार मोक्षमार्ग	
साध्य-साधक	१८५
निश्चय मोक्षमार्ग	१८५
रत्नत्रयमय आत्मा ही मोक्षका कारण	१८६
निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र्य	१८६
व्यवहार सम्यग्दर्शन	१८८
'सम्यग्दर्शन' सम्यग्ज्ञानका कारण	१८८
गौतम गणधर, अग्निभूत वायुभूतकी	
कथा	१८९
अभव्यसेन मुनि	१९०
सम्यक्त्व विना तप आदि वृथा	१९०
देवमूढता, लोकमूढता, समयमूढता	१९०
निश्चयसे तीन मूढतासे रहितपना	१९२
आठ मद	१९३
ममकार और अहकारका लक्षण	१९३
छह अनायतन, अनायतनका अर्थ	१९३, १९४
नि शक्ति और व्यवहार नि शक्ति	१९५
जिनेन्द्रमें असत्यका कारणोंका अभाव	१९५

विषय	पृष्ठ
विभीषण, देवकी और वसुदेवकी कथा	१९५
सात भय	१९५
निश्चय नि शक्ति, व्यवहार कारण	१९५
निष्काक्षित और व्यवहार निष्काक्षित	१९५
सीताकी कथा	१९६
निश्चय निष्काक्षितको व्यवहार कारण	१९६
निर्विचिकित्सा और व्यवहार	
निर्विचिकित्सा	१९६
द्रव्य और भाव निर्विचिकित्सा	१९७
निश्चय निर्विचिकित्सा, व्यवहार कारण	१९८
अमूढदृष्टि और व्यवहार कारण	१९८
निश्चय अमूढदृष्टि, व्यवहार कारण	१९८
सकल्प-विकल्पका लक्षण	१९८, १९९
उपगूहन तथा व्यवहार और निश्चय	१९९
स्थितिकरण गुण, व्यवहार और निश्चय	२००
वात्सल्य गुण, व्यवहार और निश्चय	२००
अकपनाचार्य और विष्णुकुमारकी कथा	२०१
वज्रकरण और सिंहोदरकी कथा	२०१
मुनि भेदाभेद रत्नत्रयका आराधक	२०१
श्रावक भेदाभेद रत्नत्रयका प्रेमी	२०१
प्रभावना गुण, व्यवहार प्रभावना	२०२
निश्चय प्रभावना, व्यवहार कारण	२०२
सरागव्यवहार सम्यक्त्वसे साध्य,	
वीतराग चारित्र्य का अविनाभावी,	
वीतराग निश्चय सम्यक्त्व	२०३
सम्यग्दृष्टि कहा कहा उत्पन्न होता है ?	२०३
कौनसी गतिमें क्या सम्यक्त्व ?	२०४, २०५
सम्यग्ज्ञान, व्यवहार और निश्चय	२०६
सशय, विभ्रम, विमोह	२०६

विषय	पृष्ठ
'साकार' शब्द का अर्थ	२०७
द्वादशांग और अगवाह्य	२०७
चार अनुयोग और अनुयोग शब्द का अर्थ	२०८
निश्चय सम्यग्ज्ञान और व्यवहार साधन	२०९
माया मिथ्या, निदान शल्यो का स्वरूप	२०९
ज्ञान सविकल्प-निर्विकल्प और स्वपर-प्रकाशक	२१०, २११
'दर्शन' सामान्य ग्रहण और सत्तावलोकन	२११
सम्यग्दर्शन सविकल्प, दर्शन निर्विकल्प	२१२
सम्यग्दर्शन और दर्शन में अन्तर	२१२
छद्मस्थो को दर्शन पूर्वक ज्ञान	२१३
केवली को दर्शन और ज्ञान युगपत्	२१३
दर्शन का लक्षण सन्निकर्ष	२१३
लिंगज और शब्दज श्रुतज्ञान	२१४
मतिज्ञानपूर्वक श्रुत और मन पर्यय	२१४
मतिज्ञान उपचार से दर्शन	२१४
'छद्मस्थ' का अर्थ	२१४
तर्क और सिद्धांत से दर्शन का लक्षण	२१५
ज्ञान पर-प्रकाशक, दर्शन स्व-प्रकाशक	२१५
सामान्य विशेषात्मक वस्तु	२१६
सामान्य ग्राहक दर्शन तो ज्ञान अप्रमाण	२१६
ज्ञानस्वरूप आत्मा' प्रमाण है	२१६
'आत्मा' स्व-पर सामान्य विशेष का ज्ञाता	२१६
ज्ञान को जानने से दर्शन पर का भी ज्ञाता	२१७
'सामान्य' का अर्थ आत्मा किस तरह ?	२१७
तर्क और सिद्धान्त से सामान्य का अर्थ	२१७
सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान में अन्तर	२१८
अभेदसे ज्ञानको अवस्था विशेष	

विषय	पृष्ठ
वोही सम्यक्त्व	२१९
सम्यक्त्व और ज्ञान का घातक कर्म दो के एक	२१९
शुद्धोपयोग ही वीतराग चारित्र	२१९
वीतराग चारित्र का साधक सराग चारित्र	२१९, २२०
व्यवहार चारित्र	२२०
अत्रत दार्शनिक (सम्यग्दृष्टि)	२२०
'श्रावक' पंचम गुणस्थानवर्ती	२२०
प्रतिमाओ का स्वरूप	२२०
सकल चारित्र	२२१
अशुभोपयोग और शुभोपयोग का लक्षण	२२२
निश्चय चारित्र, उत्कृष्ट चारित्र	२२३
द्विविध मोक्षमार्ग का साधक ध्यान	२२५
ध्यान का कथन	२२५
ध्याता का लक्षण	२२६
ध्यान की सिद्धि का उपाय	२२६
आर्तध्यान का भेद और स्वामी	२२७, २२८
रौद्रध्यान का भेद और स्वामी	२२७, २२८
धर्मध्यान का भेद और स्वामी	२२८
धर्मध्यान से पुण्य, परम्परा से मोक्ष	२२९
चार धर्मध्यान का लक्षण	२२९
शुद्धनिश्चयनय से जीव कर्मफल रहित	२२९
शुक्लध्यान का चार भेद	२२९
पृथकत्व-वितर्क का लक्षण और स्वामी	२३०
सूक्ष्म क्रिया प्रतिपाति का लक्षण और स्वामी व्युपरतक्रिया निवृत्ति का लक्षण और स्वामी अध्यात्मभाषा से अतरग-बहिरग धर्म और शुक्ल ध्यान	२३१

विषय	पृष्ठ
एकत्व-वितर्क का लक्षण और स्वामी	२३१
पिंडस्थ आदि चार ध्यान	२३२
राग-द्वेष-मोह का लक्षण	२३२
राग-द्वेष कर्मजनित के जीवजनित नय विवक्षा से राग-द्वेष कौन से होता है ?	२३३
शुद्ध निश्चयनयकी अपेक्षा से 'अशुद्ध निश्चयनय' व्यवहार	२३३
पदस्थ ध्यान, परमेष्ठि वाचक मन्त्र ३५, १६, ६, ५, ४, २, १ अक्षरों का मन्त्र	२३४
'ओ' पद की सिद्धि	२३५
सर्वपद, नामपद, आदिपद	२३५
ध्याता, ध्येय, ध्यान, ध्यानफल	२३६
निश्चय ध्यान का कारण शुभोपयोग अरिहत का स्वरूप	२३६
अरिहत निश्चय से शरीर रहित	२३७
परमौदारिक शरीर सात धातुरहित १८ दोषों का नाम	२३८
'अरिहत' शब्द का अर्थ	२३८
सर्वज्ञ की सिद्धि	२३९
द्रव्य-क्षेत्र-काल-भव-अन्तरित पदार्थ	२४१
अनुमान, पक्ष, हेतु, दृष्टांत आदि हेतु दोष	२४१
बुद्धिहीन को शास्त्र अनुपकारी	२४२
गणो सिद्धाण का ध्यान निश्चय का कारण	२४३
सिद्धों का स्वरूप तथा सिद्ध निश्चय से निराकार, व्यवहार से साकार	२४४
सिद्ध चरम शरीर से किंचित् ऊन	२४५

विषय	पृष्ठ
निश्चय पचाचार, व्यवहार कारण	२४५, २४६
आचार्य का स्वरूप और निश्चय पचाचार	२४६
अतरंग तप का बहिरंग तप कारण	२४७
निश्चय स्वाध्याय	२४८
उपाध्याय का स्वरूप	२४८
साधु का स्वरूप और बाह्य अभ्यतर मोक्षमार्ग का साधक	२५०
व्यवहार और निश्चय आराधना	२५०
निज आत्मा ही पंचपरमेष्ठि रूप है	२५१
ध्येय, ध्याता और ध्यान का लक्षण	२५२
पंचपरमेष्ठि ध्येय हे	२५३
निष्पन्न अवस्था में निज आत्मा ध्येय	२५३
चौबीस परिग्रह	२५३
जुदा जुदा पदार्थ ध्यान करने योग्य	२५३
व्यवहार रत्नत्रय को अनुकूल निश्चय रत्नत्रय	२५३
शुद्धोपयोग एकदेश शुद्ध निश्चय परमध्यान का स्वरूप और नामांतर	२५४, २५७
तप-श्रुत-व्रत धारी ही ध्याता	२५७
तप-श्रुत-व्रत का लक्षण और भेद	२५८
ध्यान की सामग्री	२५८
व्रत से पुण्य, तो ध्यान का कारण किस तरह ?	२५९
महान्नत परण एकदेशव्रत क्यों ?	२६०
त्याग का लक्षण	२६०
'महान्नत का त्याग' का अर्थ	२६०
निश्चय व्रत	२६१

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
भरत चक्रवर्ती ने भी व्रत धारण किया	२६१	वधपूर्वक मोक्ष	२६५
पचमकाल में ध्यान	२६१	शुद्धनिश्चयनय से न वध, न मोक्ष	२६५
उत्सर्ग अपवाद से ध्यान का कथन	२६२	द्रव्य-भावमोक्ष जीव स्वभाव नहीं	२६६
उत्तम सहनन १४ पूर्व का अभाव में ध्यान	२६२	द्रव्य और भावमोक्ष का फलभूत अनत ज्ञान आदि जीव का स्वभाव	२६६
द्रव्य श्रुतज्ञानभाव में भी अष्ट प्रवचन मात्र भाव-श्रुत से केवलज्ञान की उत्पत्ति	२६३	पर्यायमोक्ष एकदेश शुद्धनिश्चयनय से निश्चयमोक्ष ध्येय है ध्यान नहीं	२६६
शिवभूति मुनि को द्रव्यश्रुतज्ञान का अभाव	२६३	शुद्धद्रव्य की शक्तिरूप शुद्ध पारिणामिक भाव निश्चयमोक्ष जीवमें पहले से विद्यमान है	२६६
१२ वा गुणस्थान में जघन्य श्रुतज्ञान पचमकाल में परंपराये मोक्ष	२६३	जीव का लक्षण शुद्धपारिणामिकभाव अविनाशी	२६७
भेदाभेद रत्नत्रय की भावना से ससार की स्थिति कम	२६३	'आत्मा' शब्द का अर्थ	२६७
वो ही भव में मोक्ष होने का नियम नहीं	२६४	'अद्वैत-जीव-वाद' का खडन	२६७
अल्प श्रुतज्ञान से ध्यान	२६४	अनतज्ञान जीव का लक्षण	२६८
दुर्ध्यान का लक्षण	२६४	'अध्यात्म' शब्द का अर्थ	२६८
मोक्ष का विषय में नय विचार	२६५	ग्रन्थकार की अंतिम भावना	२६९
		टीकाकार की भावना	२६९, २७०





श्री नेमिचन्द्र सिद्धांतिदेव-विरचित

श्री

वृहद्-द्रव्य संग्रह

- १ -

षड्द्रव्य-पंचास्तिकाय अधिकार

श्रीमद्ब्रह्मदेवकृता संस्कृतव्याख्या ।

प्रणम्य परमात्मानं सिद्धं त्रैलोक्यवन्दितम् ।

स्वाभाविकचिदानन्दस्वरूपं निर्मलाव्ययम् ॥ १ ॥

शुद्धजीवादिद्रव्याणां देशकं च जिनेश्वरम् ।

द्रव्यसंग्रहसूत्राणां वृत्तिं वक्ष्ये समासतः ॥ २ ॥ युगम् ॥

अथ मालवदेशे धारानामनगराधिपतिराजभोजदेवाभिधानकलिकालचक्रवर्ति-
सम्बन्धिनः श्रीपालमहामण्डलेश्वरस्य सम्बन्धिन्याश्रमनामनगरे श्रीमुनिसुव्रततीर्थकर-

श्री ब्रह्मदेवकृत संस्कृत टीकाका

हिन्दी अनुवाद

[टीकाकारका मंगलाचरणः—] तीनो लोको द्वारा वदनीय, स्वाभाविक चिदानन्दस्वरूप, निर्मल तथा अविनाशी ऐसे सिद्ध परमात्माको और शुद्धजीवादि द्रव्योके उपदेशक श्रीजिनेश्वर भगवानको प्रणाम करके, मै (-ब्रह्मदेव), द्रव्यसंग्रह (नामक ग्रन्थ)के सूत्रोकी टीका सक्षेपमे कहूँगा । (१-२)

[अब श्री टीकाकार ग्रन्थकी टीकाका प्रारम्भ करते हैंः—]

मालवा देशमे, धारानगरीके अधिपति कलिकालचक्रवर्ती भोजदेव-
राजाके सबधी महामण्डलेश्वर श्री पालके 'आश्रम' नामक नगरमे, श्री मुनिसुव्रतनाथ

चैत्यालये शुद्धात्मद्रव्यसंवित्तिसमुत्पन्नसुखामृतरसास्वादविपरीतनारकादिदुःखभयभीतस्य परमात्मभावानोत्पन्नसुखसुधारसपिपासितस्य भेदाभेदरत्नत्रयभावनाप्रियस्य भव्यवरपुण्डरीकस्य भाण्डागाराद्यनेकनियोगाधिकारिसोमाभिधानराजश्रेष्ठिनो निमित्तं श्रीनेमिचन्द्रसिद्धान्तदेवैः पूर्वं षड्विंशतिगाथाभिर्लघुद्रव्यसंग्रहं कृत्वा पश्चाद्विशेषतत्त्वपरिज्ञानार्थं विरचितस्य बृहद्द्रव्यसंग्रहस्याधिकारशुद्धिपूर्वकत्वेन व्याख्या वृत्तिः प्रारभ्यते । तत्रादौ “जीवमजीवं द्रव्यं” इत्यादि सप्तविंशतिगाथापर्यन्तं षड्द्रव्यपञ्चास्तिकायप्रतिपादकनामा प्रथमोऽधिकारः । तदनन्तरं “आसवबंधन” इत्याद्येकादशगाथापर्यन्तं सप्ततत्त्व-नवपदार्थप्रतिपादनमुख्यतया द्वितीयो महाधिकारः । ततः परं “सम्महंसणणाणं” इत्यादिविंशतिगाथापर्यन्तं मोक्षमार्गकथनमुख्यत्वेन तृतीयोऽधिकारश्च । इत्यष्टाधिक-पञ्चाशद्गाथाभिरधिकारत्रयं ज्ञातव्यम् । तत्राप्यादौ प्रथमाधिकारे चतुर्दशगाथापर्यन्तं जीवद्रव्यव्याख्यानम् । ततः परं “अजीवो पुण शेओ” इत्यादि गाथाष्टकपर्यन्तम-जीवद्रव्यकथनम् । ततः परं “एवं छब्भेयमिदं” एवं सत्रपञ्चकपर्यन्तं पञ्चास्ति-

तीर्थकरके चैत्यालयमे, शुद्धात्मद्रव्यके सवेदनसे उत्पन्न हुए सुखामृतके रसास्वादसे विपरीत नारकादि दु खोसे भयभीत, परमात्मभावनासे उत्पन्न हुए सुखरूपी सुधारसके पिपासु, भेदाभेद रत्नत्रयकी भावनाके प्रेमी, भव्यवरपुंडरीक, राजकोषके कोषाध्यक्ष आदि अनेक राज्यकार्यके अधिकारी ‘सोम’ नामक राजसेठके निमित्त श्री नेमिचन्द्र सिद्धातिदेवने प्रथम छब्बीस गाथाओमे ^१लघुद्रव्यसंग्रह बनाकर, तदु-परांत विशेष तत्त्वके परिज्ञानके लिये बृहद्-द्रव्य संग्रहकी रचनाकी । उसकी (बृहद्-द्रव्य संग्रहकी) अधिकारशुद्धिपूर्वक व्याख्याका (-टीकाका) प्रारम्भ किया जाता है ।

वहाँ प्रथम “जीवमजीवं द्रव्यं” इत्यादि सत्ताईस गाथा पर्यन्त छह द्रव्य, पचास्तिकायका प्रतिपादन करनेवाला प्रथम अधिकार है । उसके पश्चात् “आसव-बंधन” इत्यादि ग्यारह गाथा पर्यन्त सात तत्त्व और नव पदार्थके प्रतिपादनकी मुख्यतासे द्वितीय महाअधिकार है । तत्पश्चात् “सम्महंसणणाणं” इत्यादि बीस गाथाओमे मोक्षमार्गके कथनकी मुख्यतासे तृतीय अधिकार है । इस प्रकार अट्ठावन गाथाओमे तीन अधिकार जानना ।

उनमे भी आदिके प्रथम अधिकारमें चौदह गाथाओमे जीवद्रव्यका व्याख्यान है । तत्पश्चात् “अजीवो पुण शेओ” इत्यादि आठ गाथाओमें अजीव द्रव्यका कथन

१-यह लघु द्रव्य संग्रह इस पुस्तकके अन्तमे दी है ।

कायविवरणम् । इति प्रथमाधिकारमध्येऽन्तराधिकारत्रयमवबोद्धव्यम् । तत्रापि चतुर्दशगाथासु मध्ये नमस्कारमुख्यत्वेन प्रथमगाथा । जीवादिनवाधिकारसूचनरूपेण “जीवो उवओगमओ” इत्यादि द्वितीयसूत्रगाथा । तदनन्तरं नवाधिकारविवरणरूपेण द्वादशसूत्राणि भवन्ति । तत्राप्यादौ जीवसिद्धचर्थ “तिक्काले चटुपाणा” इतिप्रभृति-सूत्रमेकम्, तदनन्तरं ज्ञानदर्शनोपयोगद्वयकथनार्थ “उवओगो दुवियप्पो” इत्यादि-गाथात्रयम्, ततः परममूर्त्तत्वकथनेन “वण्णरसपंच” इत्यादिसूत्रमेकम्, ततोऽपि कर्मकर्तृत्वप्रतिपादनरूपेण “पुग्गलकम्मादीणं” इतिप्रभृतिसूत्रमेकम्, तदनन्तरं भोक्तृत्वनिरूपणार्थ “ववहारा सुहदुक्खं” इत्यादिसूत्रमेकम्, ततः परं स्वदेहप्रमिति-सिद्धचर्थ “अणुगुरुदेहपमाणो” इतिप्रभृतिसूत्रमेकम्, ततोऽपि संसारिजीवस्वरूप-कथनेन “पुढविजलतेउवाळ” इत्यादिगाथात्रयम्, तदनन्तरं “णिककम्मा अट्टगुणा” इति प्रभृतिगाथापूर्वार्धेन सिद्धस्वरूपकथनम्, उत्तरार्धेन पुनरूर्ध्वगतिस्वभावः । इति नमस्कारादिचतुर्दशगाथामेलापकेन प्रथमाधिकारे समुदायपातनिका ।

अथेदानीं गाथापूर्वार्धेन सम्बन्धाऽमिधेयप्रयोजनानि कथयाम्युत्तरार्धेन च

है । तत्पश्चात् “एवं छब्भेयमिदं” आदि पाच गाथाओमे पचास्तिकायका विवरण है । इस प्रकार प्रथम अधिकारमे तीन अतराधिकार जानना । उनमे भी चौदह गाथाओमें पहली गाथा नमस्कारकी मुख्यतासे है, द्वितीय गाथा “जीवो उवओगमओ” इत्यादि जीवादि नव अधिकारोके सूचनरूप है । तत्पश्चात् नव अधिकारोके विवरणरूप बारह गाथासूत्र है । उन (बारह गाथासूत्रों)मे भी प्रारभमे जीवकी सिद्धिके लिये “तिक्काले चटुपाणा” आदि एक सूत्र है । तत्पश्चात् ज्ञान और दर्शन दोनो उपयोगोका कथन करनेके लिये “उवओगो दुवियप्पो” आदि तीन गाथाये है । तत्पश्चात् (जीवके) अमूर्त्तपनेके कथन हेतु “वण्णरसपंच” आदि एक सूत्र है । तत्पश्चात् कर्मके कर्तापनेका प्रतिपादनरूपसे “पुग्गलकम्मादीणं” आदि एक सूत्र है । तत्पश्चात् भोक्तापनेका निरूपण करनेके लिये “ववहारा सुहदुक्खं” आदि एक सूत्र है । तत्पश्चात् (जीवको) स्वदेहप्रमाण सिद्ध करनेके लिये “अणुगुरुदेहपमाणो” आदि एक सूत्र है । तत्पश्चात् ससारी जीवका स्वरूपकथन करनेके लिये “पुढविजलतेउवाळ” आदि तीन गाथाये है । तत्पश्चात् “णिककम्मा अट्टगुणा” आदि गाथाके पूर्वार्धमे सिद्धस्वरूपका और उत्तरार्धमें (जीवके) ऊर्ध्वगमनस्वभावका कथन किया है । इस प्रकार नमस्कारादि चौदह गाथाओ द्वारा प्रथम अधिकारमे समुदायपातनिका है ।

मङ्गलार्थमिष्टदेवतानमस्कारं करोमीत्यभिप्रायं मनसि धृत्वा भगवान् सत्रमिदं प्रतिपादयति—

जीवमजीवं द्रव्यं जिणवरवसहेण जेण णिदिट्ठं ।
देविंदविंदवंदं वंदे तं सव्वदा सिरसा ॥ १ ॥

जीवमजीवं द्रव्यं जिनवरवृषभेण येन निर्दिष्टम् ।
देवेन्द्रवृन्दवंद्यं वन्दे तं सर्वदा शिरसा ॥ १ ॥

व्याख्या—‘वंदे’ इत्यादिक्रियाकारकसम्बन्धेन पदखण्डनारूपेण व्याख्यानं क्रियते । ‘वंदे’ एकदेशशुद्धनिश्चयनयेन स्वशुद्धात्माराधनालक्षणभावस्तवनेन तथा च असद्भूतव्यवहारनयेन तत्प्रतिपादकवचनरूपद्रव्यस्तवनेन च वन्दे नमस्करोमि । परमशुद्धनिश्चयनयेन पुनर्वन्द्यवन्दकभावो नास्ति । स कः कर्ता ? अहं नेमिचन्द्र-

अब गाथाके पूर्वार्ध द्वारा मैं संबंध, अभिधेय और प्रयोजन कहता हूँ और उत्तरार्ध द्वारा मंगलके लिये इष्टदेवको नमस्कार करता हूँ ऐसा अभिप्राय मनमें रखकर भगवान (श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव) इस गाथासूत्रको कहते हैं —

गाथा-१

गाथार्थः—मैं (नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव), जिस जिनवरवृषभने जीव और अजीव द्रव्यका वर्णन किया है, उस देवेन्द्रोके समूहसे वन्द्य तीर्थकर-परमदेवको सदा मस्तक द्वारा नमस्कार करता हूँ ।

टीकाः—“वंदे” इत्यादि पदोका क्रियाकारकसंबंधसे पदखण्डनारूपसे व्याख्यान किया जाता है । “वंदे” एकदेश शुद्धनिश्चयनयसे स्वशुद्धात्माराधनालक्षण (निज-शुद्धात्माकी आराधना जिसका लक्षण अर्थात् स्वरूप है ऐसे) भावस्तवन द्वारा तथा असद्भूतव्यवहारनयसे उसके प्रतिपादक वचनरूप द्रव्यस्तवन द्वारा नमस्कार करता हूँ । परमशुद्धनिश्चयनयसे तो वन्द्यवन्दक भाव नहीं है । वह नमस्कार करनेवाला कौन है ? मैं नेमिचन्द्रसिद्धान्तिदेव हूँ । किस प्रकार नमस्कार करता हूँ ? “सव्वदा” सदा ।

(चौपाई छंद)

जीव अजीव द्रव्य षट्भेद, जिनवर वृषभ कहे निरखेद ।
शत इन्द्रनिकरि वंदित मुदा, मैं वंदौ मस्तकतैं सदा ॥ १ ॥

सिद्धान्तिदेवः । कथं वन्दे ? “सव्वदा” सर्वकालम् । केन ? “सिरसा” उत्तमाङ्गेन । “तं” कर्मतापन्नं । तं कं ? वीतरागसर्वज्ञम् । किंविशिष्टम् ? “देविद्विद्वंदं” मोक्षपदाभिलाषिदेवेन्द्रादिवन्द्यम्, “भवणालयचालीसा वितरदेवाण होंति वत्तीसा । कप्पामरचउवीसा चंदो सरो णरो तिरिओ ॥” इति गाथाकथितलक्षणेन्द्राणां शतेन वन्दितं देवेन्द्रवृन्दवन्द्यम् । “जेण” येन भगवता किं कृतं ? “णिदिट्ठं” निर्दिष्टं कथितं प्रतिपादितम् । किं ? “जीवमजीवं दव्वं” जीवाजीवद्रव्यद्वयम् । तद्यथा—सहजशुद्धचैतन्यादिलक्षणं जीवद्रव्यं, तद्विलक्षणं पुद्गलादिपञ्चभेदमजीवद्रव्यं च, तथैव चित्तमत्कारलक्षणशुद्धजीवास्तिकायादिपञ्चास्तिकायानां परमचिज्ज्योतिःस्वरूपशुद्धजीवादिसप्ततत्त्वानां निर्दोषपरमात्मादिनवपदार्थानां च स्वरूपमुपदिष्टम् । पुनरपि कथम्भूतेन भगवता ? “जिणवरवसहेण” जितमिथ्यात्वरागादित्वेन एकदेशजिनाः असंयतसम्यग्दृष्ट्यादयस्तेषां वराः गणधरदेवास्तेषां जिनवराणां

किसके द्वारा ? “सिरसा” उत्तम अंग द्वारा । “तं” (वदनक्रियाके) कर्मपनेको प्राप्त है उसको । वह (वदनक्रियाके कर्मपनेको प्राप्त) कौन है ? वीतराग सर्वज्ञ । वह कैसा है ? “देविद्विद्वंदं” मोक्षपदके अभिलाषी देवेन्द्र आदिसे वंद्य है । “भवणालयचालीसा वितरदेवाण होंति वत्तीसा । कप्पामरचउवीसा चंदो सरो णरो तिरिओ ॥” (अर्थः—भवनवासी देवोंके ४० इन्द्र, व्यतर देवोंके ३२ इन्द्र, कल्पवासी देवोंके २४ इन्द्र, ज्योतिषी देवोंके चन्द्र और सूर्य ये २ इन्द्र, मनुष्योंका १ इन्द्र चक्रवर्ती और तिर्यंचका १ इन्द्र सिंह—इस प्रकार सब मिलकर १०० इन्द्र है ।)—इस गाथामे कहे हुए सौ इन्द्रोंसे वंद्य है । “जेण” जिन भगवानने क्या किया है ? “णिदिट्ठं” निर्दिष्ट किया है—कहा है—प्रतिपादन किया है । क्या ? “जीवमजीवं दव्वं” जीव और अजीव दो द्रव्य, वे इस प्रकारः—सहजशुद्धचैतन्यादिलक्षण जीवद्रव्य और उससे विलक्षण, पुद्गलादि पांच भेदवाला अजीवद्रव्य । तदुपरात चित्तमत्कारलक्षण शुद्धजीवास्तिकायादि पांच अस्तिकायोंका, परमचित्तज्योतिस्वरूप शुद्धजीवादि सात तत्त्वोंका और निर्दोष परमात्मादि नव पदार्थोंके स्वरूपका उपदेश किया है । तथा वे भगवान कैसे है ? “जिणवरवसहेण” मिथ्यात्व और रागादि जीते होनेके कारण असंयत—सम्यग्दृष्टि आदि एकदेश जिन है, उनमे जो वर अर्थात् श्रेष्ठ है वे गणधर-

१ यह गाथा श्री आराधनासार गाथा १ की टीकामे है ।

वृषभः प्रधानो जिनवरवृषभस्तीर्थकरपरमदेवस्तेन जिनवरवृषभेणेति । अत्राध्यात्म-
शास्त्रे यद्यपि सिद्धपरमेष्ठिनमस्कार उचितस्तथापि व्यवहारनयमाश्रित्य प्रत्युपकार-
स्मरणार्थमर्हत्परमेष्ठिनमस्कार एव कृतः । तथा चोक्तं—“श्रेयोमार्गस्य संसिद्धिः
प्रसादात्परमेष्ठिनः । इत्याहुस्तद्गुणस्तोत्रं शास्त्रादौ मुनिपुङ्गवाः ॥” अत्र
गाथापरार्थेन—“नास्तिकत्वपरिहारः शिष्टाचारप्रपालनम् । पुण्यावाप्तिश्च निर्विघ्नं
शास्त्रादौ तेन संस्तुतिः ॥” इति श्लोककथितफलचतुष्टयं समीक्षमाणा ग्रन्थकाराः
शास्त्रादौ त्रिधा देवतायै त्रिधा नमस्कारं कुर्वन्ति । त्रिधा देवता कथ्यते । केन
प्रकारेण ? इष्टाधिकृताभिमतभेदेन । इष्टः—स्वकीयपूज्यः (१) । अधिकृतः—ग्रन्थ-
स्यादौ प्रकरणस्य वा नमस्करणीयत्वेन विवक्षितः (२) । अभिमतः—सर्वेषां लोकानां

देव है, उन जिनवरोके (गणधरोके) भी जो वृषभ अर्थात् प्रधान है वे जिनवरवृषभ
अर्थात् तीर्थकर-परमदेव है । (उन जिनवरवृषभ द्वारा कहा गया है ।)

यहा अध्यात्मशास्त्रमे यद्यपि सिद्ध परमेष्ठीको नमस्कार करना योग्य है तो भी
व्यवहारनयका आश्रय लेकर उपकारस्मरण करनेके लिये अर्हत्-परमेष्ठीको ही नम-
स्कार किया है । तथा कहा भी है—^१“अर्हत् परमेष्ठीके प्रसादसे मोक्षमार्गकी सिद्धि
होती है अतः मुनिवरोने शास्त्रके आदिमे अर्हत्-परमेष्ठीके गुणोकी स्तुति की है ।”

यहा गाथाके उत्तरार्धसे ^२“नास्तिकत्वपरिहारः शिष्टाचारप्रपालनम् । पुण्यावाप्तिश्च
निर्विघ्नं शास्त्रादौ तेन संस्तुतिः ॥” [अर्थ —नास्तिकताका त्याग, शिष्टाचारका
पालन, पुण्यकी प्राप्ति और विघ्नविनाश—इन चार लाभोके लिये शास्त्रके आरंभमें
इष्टदेवकी स्तुति की जाती है ।] इस श्लोकमे कहे गये चार फलोको जानते हुए
शास्त्रकार शास्त्रके आरंभमे तीन प्रकारके देवोको तीन प्रकारसे नमस्कार करते है ।

तीन प्रकारसे देवका कथन किया जाता है । किस प्रकारसे ? इष्ट, अधिकृत
और अभिमत—इन तीन भेदोसे । (१) इष्ट—अपने द्वारा पूज्य वह इष्ट । (२)
अधिकृत—ग्रन्थ अथवा प्रकरणके प्रारंभमे नमस्कारके लिये जो विवक्षित हो वह ।

१ आप्त परीक्षा श्लोक २ ।

२. श्री पचास्तिकाय गाथा १ की तात्पर्यवृत्ति टीकामे आधाररूपसे श्री जयसेनाचार्यने लिया है ।

विवादं विना सम्मतः (३) । इत्यादिमङ्गलव्याख्यानं सूचितम् । मङ्गलमित्युपलक्षणम् । उक्तं च—“मंगलणिमित्तहेतुं परिमाणं णाम तह य कत्तारं । वागरिय छप्पि पच्छा वक्खाणउ सत्थमायरिओ ॥” “वक्खाणउ” व्याख्यातु । स कः ? “आयरिओ” आचार्यः । कं ? “सत्थं” शास्त्रं । “पच्छा” पश्चात् । किं कृत्वा पूर्व ? “वागरिय” व्याकृत्य व्याख्याय । कान् ? “छप्पि” षडप्यधिकारान् । कथंभूतान् ? “मंगल-णिमित्तहेतुं परिमाणं णाम तह य कत्तारं” मङ्गलं निमित्तं हेतुं परिमाणं नाम कर्तृसंज्ञा-मिति । इति गाथाकथितक्रमेण मङ्गलाद्यधिकारषट्कमपि ज्ञातव्यम् । गाथापूर्वार्धेन तु सम्यन्धाभिधेयप्रयोजनानि सूचितानि । कथमिति चेत् —विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभाव-परमात्मस्वरूपादिविवरणरूपो वृत्तिग्रन्थो व्याख्यानम् । व्याख्येयं तु तत्प्रतिपादक-सूत्रम् । इति व्याख्यानव्याख्येयसम्बन्धी विज्ञेयः । यदेव व्याख्येयसूत्रमुक्तं तदेवा-

(३) अभिमत—सब लोगोको जो विवाद बिना मान्य हो वह ।

इसप्रकार मंगलका व्याख्यान किया ।

यहाँ मंगल उपलक्षण पद है । कहा है—

“मंगलणिमित्तहेतुं परिमाणं णाम तह य कत्तारं ।
वागरिय छप्पि पच्छा वक्खाणउ सत्थमायरिओ ॥”

[अर्थः—मंगलाचरण, (शास्त्र बनानेका) निमित्तकारण, प्रयोजन, परिमाण, नाम और कर्त्ता—इन छह अधिकारोकी व्याख्या करनेके पश्चात् आचार्य शास्त्रका व्याख्यान करे ।]

“वक्खाणउ” व्याख्यान करना । किसके द्वारा ? “आयरिओ” आचार्यदेव द्वारा । किसका ? “सत्थं” शास्त्रका । “पच्छा” पश्चात् । प्रथम क्या करके ? “वागरिय” व्याख्या करके । किसकी ? “छप्पि” छ अधिकारोंकी । कौनसे ? “मङ्गलणिमित्तहेतुं परिमाणं णाम तह य कत्तारं” मंगल, निमित्त, हेतु, परिमाण, नाम और कर्त्ता—इस प्रकार गाथामे कहे गये मंगल आदि छः अधिकार भी जानना चाहिए ।

गाथाके पूर्वार्धसे सबध, अभिधेय और प्रयोजन सूचित किया है । किस प्रकार ? विशुद्ध ज्ञानदर्शन जिसका स्वभाव है ऐसे परमात्माके स्वरूपादिके विवरण-

१-षट्खडागम १/७, पंचास्तिकाय गाथा-१, तात्पर्यवृत्ति टीका श्री जयसेनाचार्यकृत, तिलोय-पण्णत्ति श्लोक १/७ ।

भिधानं वाचकं प्रतिपादकं भण्यते, अनन्तज्ञानायनन्तगुणाधारपरमात्मादिस्वभावोऽभिधेयो वाच्यः प्रतिपाद्यः । इत्यभिधानाभिधेयस्वरूपं बोधव्यम् । प्रयोजनं तु व्यवहारेण षड्द्रव्यादिपरिज्ञानम्, निश्चयेन निजनिरञ्जनशुद्धात्मसंवित्तिसमुत्पन्ननिर्विकारपरमानन्दै-कलक्षणसुखामृतरसास्वादरूपं स्वसंवेदनज्ञानम् । परमनिश्चयेन पुनस्तत्फलरूपा केवलज्ञानायनन्तगुणाविनाभूता निजात्मोपादानसिद्धान्तसुखावाप्तिरिति । एवं नम-स्कारगाथा व्याख्याता ।

अथ नमस्कारगाथायां प्रथमं यदुक्तं जीवद्रव्यं तत्सम्बन्धे नवाधिकारान् संक्षेपेण सूचयामीति अभिप्रायं मनसि सम्प्रधार्य कथनसूत्रमिति निरूपयति—

जीवो उवञ्चोगमञ्चो अमुत्ति कत्ता सदेहपरिमाणो ।

भोक्ता संसारत्थो सिद्धो सो विस्ससोड्ढुगई ॥ २ ॥

जीवः उपयोगमयः अमूर्तिः कर्ता स्वदेहपरिमाणः ।

भोक्ता संसारस्थः सिद्धः सः विस्ससा ऊर्ध्वगतिः ॥ २ ॥

रूप जो वृत्तिग्रन्थ वह व्याख्यान है और उसका प्रतिपादन करनेवाला जो गाथासूत्र वह व्याख्येय है । इस प्रकार व्याख्यान-व्याख्येयरूप संबंध जानना । जो व्याख्या करने योग्य सूत्र है वे ही अभिधान-वाचक-प्रतिपादक कहलाते हैं; अनन्तज्ञानादि अनन्तगुणोंके आधारेपर परमात्मा आदिका स्वभाव वह अभिधेय-वाच्य-प्रतिपाद्य है । इस प्रकार अभिधान-अभिधेयका स्वरूप जानना । व्यवहारसे छः द्रव्यादिका परिज्ञान वह इस ग्रन्थका प्रयोजन है; निश्चयसे निज निरंजन-शुद्धात्मसंवित्तिसे उत्पन्न निर्विकार परमानन्द जिसका एक लक्षण है ऐसे सुखामृतके रसास्वादरूप स्वसंवेदनज्ञान वह इस ग्रन्थका प्रयोजन है । परमनिश्चयसे उस स्वसंवेदनज्ञानके फलरूप, केवलज्ञानादि अनन्तगुणके साथ अविनाभावी, निजात्मउपादानसिद्ध अनन्त सुखकी प्राप्ति वह इस ग्रन्थका प्रयोजन है ।

इस प्रकार नमस्कार गाथाका व्याख्यान किया ॥१॥

अब नमस्कार-गाथामे जो जीवद्रव्य कहा गया, उस जीव द्रव्यके सबधमें मैं नव अधिकार संक्षेपमे सूचित करूंगा ऐसा अभिप्राय मनमे रखकर (नव अधि-कारोका) कथन करनेवाले सूत्रका (श्री नेमिचन्द्र सिद्धातिदेव) निरूपण करते हैं:—

जीव मयी उपयोग अमूर्त, कर्ता देहमान है पूर्ण ।

भोक्ता संसारी अर सिद्ध, ऊर्ध्वगमन नव कथन प्रसिद्ध ॥ २ ॥

व्याख्या—“जीवो” शुद्धनिश्चयनयेनादिमध्यान्तवर्जितस्वपरप्रकाशकाविनश्वर-
निरुपाधिशुद्धचैतन्यलक्षणनिश्चयप्राणेन यद्यपि जीवति, तथाप्यशुद्धनयेनानादिकर्मबन्ध-
वशादशुद्धद्रव्यभावप्राणैर्जीवतीति जीवः । “उवओगमओ” शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन यद्यपि
सकलविमलकेवलज्ञानदर्शनोपयोगमयस्तथाप्यशुद्धनयेन क्षायोपशमिकज्ञानदर्शननिर्वृत्तत्वात्
ज्ञानदर्शनोपयोगमयो भवति । “अमृत्ति” यद्यपि व्यवहारेण मूर्त्तकर्मार्थीनत्वेन
स्पर्शरसगन्धवर्णवत्या मृत्त्या सहितत्वान्मूर्त्तस्तथापि परमार्थेनामूर्त्तीन्द्रियशुद्धबुद्धैक-
स्वभावत्वादमूर्त्तः । “कर्त्ता” यद्यपि भूतार्थनयेन निष्क्रियटकोत्कीर्णज्ञायकैकस्वभावोऽयं
जीवः तथाप्यभूतार्थनयेन मनोवचनकायव्यापारोत्पादककर्मसहितत्वेन शुभाशुभकर्म-
कर्त्तृत्वात् कर्त्ता । “सदेहपरिमाणो” यद्यपि निश्चयेन सहजशुद्धलोकाकाशप्रमितासंख्येय-

गाथा-२

गाथार्थः—जो जीता है, उपयोगमय है, अमूर्त्तिक है, कर्त्ता है, स्वदेहप्रमाण
है, भोक्ता है, संसारस्थ है, सिद्ध है और स्वभावसे ऊर्ध्वगमन करनेवाला है वह
जीव है ।

टीकाः—“जीवो” यह जीव यद्यपि शुद्धनिश्चयनयसे आदि-मध्य-अतरहित,
स्व-परप्रकाशक, अविनाशी, निरुपाधि शुद्ध चैतन्य जिसका लक्षण (स्वरूप) है ऐसे
निश्चयप्राणसे जीता है तो भी अशुद्धनयसे अनादिकर्मबन्धके वश अशुद्ध द्रव्यप्राणो
और भावप्राणोसे जीता है, अतः वह जीव है ।

“उवओगमओ” यद्यपि शुद्धद्रव्यार्थिकनयसे सकल विमल (सर्वथा निर्मल)
केवलज्ञानदर्शनरूप ‘उपयोगमय’ है तो भी अशुद्धनयसे क्षायोपशमिक ज्ञान और
दर्शनसे रचित होनेसे ज्ञानदर्शनरूप ‘उपयोगमय’ है ।

“अमृत्ति” यद्यपि व्यवहारसे मूर्त्तकर्मके आधीनपनेसे स्पर्श-रस-गन्ध-वर्णरूप
मूर्त्तपना सहित है इसलिए मूर्त्त है तो भी परमार्थसे अमूर्त्त-अतीन्द्रिय-शुद्ध-बुद्ध-एक
स्वभाववाला होनेसे ‘अमूर्त्त’ है ।

“कर्त्ता” यद्यपि यह जीव भूतार्थनयसे निष्क्रिय-टकोत्कीर्ण-ज्ञायक-एक स्व-
भाववाला है तो भी अभूतार्थनयसे मन-वचन-कायाके व्यापारको उत्पन्न करनेवाले
कर्म सहित होनेसे, शुभाशुभ कर्मका कर्त्ता होनेसे ‘कर्त्ता’ है ।

“सदेहपरिमाणो” यद्यपि निश्चयसे सहजशुद्ध लोकाकाशप्रमाण असंख्यप्रदेशी

प्रदेशस्तथापि व्यवहारेणानादिकर्मबन्धाधीनत्वेन शरीरनामकर्मोदयजनितोपसंहारविस्ताराधीनत्वात् घटादिभाजनस्थप्रदीपवत् स्वदेहपरिमाणः । “भोक्ता” यद्यपि शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन रागादिविकल्पोपाधिरहितस्वात्मोत्थसुखामृतभोक्ता, तथाप्यशुद्धनयेन तथाविधसुखामृतभोजनाभावाच्छुभाशुभकर्मजनितसुखदुःखभोक्तृत्वाद्भोक्ता । “संसारत्थो” यद्यपि शुद्धनिश्चयनयेन निःसंसारनित्यानन्दैकस्वभावस्तथाप्यशुद्धनयेन द्रव्यक्षेत्रकालभवभावपञ्चप्रकारसंसारे तिष्ठतीति संसारस्थः । “सिद्धो” व्यवहारेण स्वात्मोपलब्धिलक्षणसिद्धत्वप्रतिपक्षभूतकर्मोदयेन यद्यप्यसिद्धस्तथापि निश्चयनयेनानन्तज्ञानानन्तगुणस्वभावत्वात् सिद्धः । “सो” स एवंगुणविशिष्टो जीवः । “विस्ससोड्ढगई” यद्यपि व्यवहारेण चतुर्गतिजनककर्मोदयवशेनोर्ध्वगतिस्वभावस्तथापि निश्चयेन केवलज्ञानानन्तगुणावाप्तिलक्षणमोक्षगमनकाले विस्ससा स्वभावेनोर्ध्वगतिश्चेति । अत्र पदखण्डनारूपेण

है तो भी व्यवहारसे, अनादि कर्मबन्धके आधीनपनेसे शरीरनामकर्मके उदयसे उत्पन्न सकोच-विस्तारके आधीनपनेके कारण, घटादि पात्रमे स्थित दीपककी भाँति ‘स्वदेहप्रमाण’ है ।

“भोक्ता” यद्यपि (यह जीव) शुद्धद्रव्यार्थिकनयसे रागादिविकल्पउपाधिरहित, अपने आत्मासे उत्पन्न सुखामृतका भोक्ता है तो भी अशुद्धनयसे उस प्रकारके सुखामृत भोजनका अभाव होनेसे शुभाशुभकर्मसे उत्पन्न सुखदुःखको भोगनेवाला होनेके कारण ‘भोक्ता’ है ।

“संसारत्थो” यद्यपि (यह जीव) शुद्धनिश्चयनयसे निःसंसार-नित्यानन्द-एकस्वभाववाला है तथापि अशुद्धनयसे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भावरूप पाँच प्रकारके संसारमे रहता है अतः ‘संसारस्थ’ है ।

“सिद्धो” यद्यपि (यह जीव) व्यवहारसे, निजात्माकी उपलब्धि जिसका लक्षण (स्वरूप) है ऐसे सिद्धत्वके प्रतिपक्षभूत कर्मोदयसे असिद्ध है तो भी निश्चयनयसे अनन्तज्ञानादि अनन्तगुणरूप स्वभाववाला होनेसे ‘सिद्ध’ है ।

“सो” वह—इस प्रकारके गुणोवाला जीव है । “विस्ससोड्ढगई” यद्यपि (यह जीव) व्यवहारसे चार गति उत्पन्न करनेवाले कर्मोदयके वश ऊर्ध्व, अधो और तिर्यक् गतिरूप स्वभाववाला है तो भी निश्चयसे केवलज्ञानादि अनन्तगुणोकी प्राप्ति जिसका लक्षण है ऐसे मोक्षगमनके समय ‘विस्ससा-स्वभावसे उर्ध्वगमन करनेवाला’ है ।

शब्दार्थः कथितः, शुद्धाशुद्धनयद्वयविभागेन नयार्थोऽप्युक्तः । इदानीं मतार्थः कथ्यते । जीवसिद्धिश्चार्वाकं प्रति, ज्ञानदर्शनोपयोगलक्षणं नैयायिकं प्रति, अमूर्तजीवस्थापनं भट्टचार्वकद्वयं प्रति, कर्मकर्तृत्वस्थापनं सांख्यं प्रति, स्वदेहप्रमितिस्थापनं नैयायिक-मीमांसकसांख्यत्रयं प्रति, कर्मभोक्तृत्वव्याख्यानं बौद्धं प्रति, संसारस्थव्याख्यानं सदाशिवं प्रति, सिद्धत्वव्याख्यानं भट्टचार्वकद्वयं प्रति, ऊर्ध्वगतिस्वभावकथनं माण्डलिक-ग्रन्थकारं प्रति, इति मतार्थो ज्ञातव्यः । आगमार्थः पुनः “अस्त्यात्मानादिवद्धः” इत्यादि प्रसिद्ध एव । शुद्धनयाश्रितं जीवस्वरूपमुपादेयम्, शेषं च हेयम् । इति हेयोपादेयरूपेण भावार्थोऽप्यवबोद्धव्यः । एवं शब्दनयमतागमभावार्थो यथासम्भवं व्याख्यानकाले सर्वत्र ज्ञातव्यः । इति जीवादिनवाधिकारसूचनसूत्रगाथा ॥ २ ॥

यहा पदखंडनारूप शब्दार्थ कहा है तथा शुद्ध और अशुद्ध—दो नयोके विभागसे नयार्थ भी कहा है । अब मतार्थ कहा जाता है :—

जीवकी सिद्धि चार्वाकके प्रति है (जीवका) ज्ञानदर्शन-उपयोगरूप लक्षण नैयायिकके प्रति है, जीवके अमूर्तपनेका स्थापन भट्ट और चार्वाक इन दोनोके प्रति है, ‘जीव कर्मका कर्ता है’ यह स्थापन सांख्यके प्रति है; ‘जीव स्वदेहप्रमाण है’ यह स्थापन नैयायिक, मीमांसक और सांख्य—इन तीनोके प्रति है; ‘जीव कर्मका भोक्ता है’ यह व्याख्यान बौद्धके प्रति है, जीवके संसारस्थपनेका व्याख्यान सदाशिवके प्रति है; जीवके सिद्धत्वका व्याख्यान भट्ट और चार्वाक—इन दोनोके प्रति है; जीवके ऊर्ध्वगमन-स्वभावका व्याख्यान माण्डलिक ग्रन्थकारके प्रति है । इस प्रकार मतार्थ जानना चाहिए ।

‘आत्मा अनादिसे बधा हुआ है’ इत्यादि आगमार्थ तो प्रसिद्ध ही है ।

‘शुद्धनयाश्रित जीवस्वरूप उपादेय है और अन्य सभी हेय है’—इस प्रकार हेय-उपादेयरूपसे भावार्थ भी जानना चाहिए ।

इस प्रकार शब्दार्थ, नयार्थ, मतार्थ, आगमार्थ और भावार्थ यथासंभव व्याख्यानकालमें सर्वत्र जानना चाहिए ।

इस प्रकार जीवादि नव अधिकारोंका सूचन करनेवाली यह . . . २॥

अतः परं द्वादशगाथाभिर्नवाधिकारान् विवृणोति । तत्रादौ जीवस्वरूपं कथयति—

तिकाले चतुर्षाणां इन्द्रियबलमाउआणपाणो य ।
व्यवहारा सो जीवो शिच्छयणायदो दु चेदणा जस्स ॥ ३ ॥

त्रिकाले चतुःप्राणा इन्द्रियबलं आयुः आनप्राणश्च ।

व्यवहारात् स जीवः निश्चयनयतस्तु चेतना यस्य ॥ ३ ॥

व्याख्या—“तिकाले चतुर्षाणां” कालत्रये चत्वारः प्राणा भवन्ति । ते के “इन्द्रियबलमाउआणपाणो य” अतीन्द्रियशुद्धचैतन्यप्राणात्प्रतिशत्रुपक्षभूतः क्षायोपशमिक इन्द्रियप्राणः, अनन्तवीर्यलक्षणबलप्राणादनन्तैकभागप्रमाणा मनोवचनकायबलप्राणाः, अनाद्यनन्तशुद्धचैतन्यप्राणविपरीततद्विलक्षणाः सादिः सान्तश्चायुःप्राणः, उच्छ्वासपरावर्त्तोत्पन्नखेदरहितविशुद्धचित्प्राणाद्विपरीतसदृश आनपानप्राणः । “व्यवहारा सो जीवो”

अब, बारह गाथाओं द्वारा नव अधिकारों का विवरण करते हैं । उसमें प्रथम जीवका स्वरूप कहते हैं—

गाथा-३

गाथार्थः—तीनों कालोंमें इन्द्रिय, बल, आयु और श्वासोच्छ्वास—इन चार प्राणोंको जो धारण करता है वह व्यवहारनयसे जीव है । निश्चयनयसे जिसको चेतना है वह जीव है ।

टीकाः—“तिकाले चतुर्षाणां” तीनों कालोंमें (जीवको) चार प्राण होते हैं । वे कौनसे ? “इन्द्रियबलमाउआणपाणो य” अतीन्द्रिय शुद्ध चैतन्यप्राणसे प्रतिपक्षभूत क्षायोपशमिक इन्द्रियप्राण है, अनन्तवीर्यलक्षण बलप्राणसे अनन्तवे भाग प्रमाण मनो-बल, वचनबल और कायबलरूप प्राण है । अनादि—अनन्त शुद्ध चैतन्यप्राणसे विपरीत—उससे विलक्षण सादि—सान्त (आदि और अन्त सहित) आयुप्राण है । श्वास और उच्छ्वासके परावर्त्तसे उत्पन्न खेदरहित विशुद्ध चैतन्यप्राणसे विपरीत श्वासोच्छ्-

तीन कालमें जीवन जास, इन्द्रिय बल आयुष उच्छ्वास ।

च्यारि प्राण व्यवहारै जीव, निश्चयनय चेतना सदीव ॥ ३ ॥

इत्थं भूतैश्चतुर्भिर्द्रव्यभावप्राणैर्यथासंभवं जीवति जीविष्यति जीवितपूर्वो वा यो व्यवहारनयात्स जीवः; द्रव्येन्द्रियादिर्द्रव्यप्राणा अनुपचरितासद्भूतव्यवहारेण, भावेन्द्रियादिः क्षायोपशमिकभावप्राणाः पुनरशुद्धनिश्चयेन, सत्ताचैतन्यबोधादिः शुद्धभावप्राणाः निश्चयेनेति । “णिच्छयणयदो दु चेदणा जस्स” शुद्धनिश्चयनयतः सकाशादुपादेय-भूता शुद्धचेतना यस्य स जीवः । एवं “वच्छरक्खभवसारिच्छ, सग्गणिरयपियराय । चुल्लयहंडिय पुण मडउ णव दिडुंता जाय ॥ १ ॥” इति दोहककथितनवदृष्टान्तै-श्चार्वाकमतानुसारिशिष्यसंबोधनार्थं जीवसिद्धिव्याख्यानानेन गाथा गता । अथ अध्यात्म-वासरूप प्राण है । “ववहारा सो जीवो” व्यवहारनयकी अपेक्षासे, इस प्रकारके चार द्रव्य और भावप्राणोसे यथासंभव जो जीवित रहता है, जीवित रहेगा और पहले जीता था वह जीव है । (जीवको) द्रव्येन्द्रियादि द्रव्यप्राण अनुपचरित असद्भूत व्यवहार-नयसे भावेन्द्रियादि क्षायोपशमिक भावप्राण अशुद्ध निश्चयनयसे और सत्ता, चैतन्य, बोध आदि शुद्धभावप्राण निश्चयनयसे है । “णिच्छयणयदो दु चेदणा जस्स” शुद्ध निश्चयनयसे, उपादेयभूत शुद्ध चेतना जिसके है वह जीव है ।

इस प्रकार “वच्छरक्खभवसारिच्छ सग्गणिरयपियराय । चुल्लयहंडिय पुण मडउ णव दिडुंता जाय ॥” [१. वत्स—जन्म लेते ही बछड़ा, पूर्वजन्मके सस्कारसे, बिना सिखाये अपने आप ही माताका स्तनपान करने लगता है । २. अक्षर—अक्षरोका उच्चारण जीव जानकारीके साथ आवश्यकतानुसार करता है, जड़ पदार्थोंमें यह विशेषता नहीं होती है । ३. भव—यदि आत्मा एक स्थायी पदार्थ न हो तो जन्म-मरण किसका होता है ? ४. सादृश्य—आहार, परिग्रह, भय, मैथुन, हर्ष, विषाद आदि सब जीवोंमें एकसमान दिखाई देते हैं । ५-६. स्वर्ग-नरक—जीव यदि स्वतंत्र पदार्थ न हो तो स्वर्ग-नरकमें जाना किसके सिद्ध होगा ? ७. पितर—अनेक मनुष्य मरकर भूत आदि हो जाते हैं और अपने स्त्री, पुत्रादिको अपने पूर्वभवका हाल बतलाते हैं । ८. चूल्हा-हंडी—जीव यदि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश—इन पांच महाभूतोंसे उत्पन्न होता हो तो दाल बनाते समय चूल्हे पर रखी हुई हड्डियोंमें भी पांचो महाभूतोंका समागम होनेके कारण वहां भी जीव उत्पन्न होना चाहिये; परन्तु ऐसा नहीं होता है । ९. मृतक—मुर्देमें पांचो पदार्थ होते हैं परन्तु उसमें जीवके ज्ञानादि नहीं होते । इस प्रकार जीव एक पृथक् स्वतंत्र पदार्थ सिद्ध होता है ।] —इस दोहेमें कहे हुए नौ दृष्टान्तों द्वारा, चार्वाकमतानुयायी शिष्यको समझानेके लिये जीवकी सिद्धिके व्याख्यानसे यह गाथा समाप्त हुई ।

भाषया नयलक्षणं कथ्यते । सर्वे जीवाः शुद्धबुद्धैकस्वभावाः इति शुद्धनिश्चयनय-
लक्षणम् । रागादय एव जीवाः इत्यशुद्धनिश्चयनयलक्षणम् । गुणगुणिनोरभेदोऽपि
भेदोपचार इति सद्भूतव्यवहारलक्षणम् । भेदोऽपि सत्यभेदोपचार इत्यसद्भूतव्यवहार-
लक्षणं चेति । तथाहि—जीवस्य केवलज्ञानादयो गुणा इत्यनुपचरितसंज्ञशुद्धसद्भूत-
व्यवहारलक्षणम् । जीवस्य मतिज्ञानादयो विभावगुणा इत्युपचरितसंज्ञाशुद्धसद्भूतव्यव-
हारलक्षणम् । 'मदीयो देहमित्यादि' संश्लेषसंबन्धसहितपदार्थः पुनरनुपचरितसंज्ञासद्-
भूतव्यवहारलक्षणम् । यत्र तु संश्लेषसंबन्धो नास्ति तत्र 'मदीयः पुत्र इत्यादि' उपचरि-
ताभिधानासद्भूतव्यवहारलक्षणमिति नयचक्रमूलभूतं संक्षेपेण नयपट्टकं ज्ञातव्य-
मिति ॥ ३ ॥

अथ गाथात्रयपर्यन्तं ज्ञानदर्शनोपयोगद्वयं कथ्यते । तत्र प्रथमगाथायां
मुख्यवृत्त्या दर्शनोपयोगव्याख्यानं करोति । यत्र मुख्यत्वमिति वदति तत्र यथा-
सम्भवमन्यदपि विवक्षितं लभ्यत इति ज्ञातव्यम्—

अब, अध्यात्मभाषासे नयोके लक्षण कहते हैं:—'सर्व जीव शुद्ध-बुद्ध-एक
स्वभाववाले हैं' यह शुद्धनिश्चयनयका लक्षण है । 'रागादि ही जीव हैं' यह अशुद्ध-
निश्चयनयका लक्षण है । गुण और गुणी अभेद होने पर भी भेदका उपचार करना
यह सद्भूतव्यवहारका लक्षण है; और भेद होने पर भी अभेदका उपचार करना
यह असद्भूत व्यवहारका लक्षण है । वह इस प्रकार—'जीवके केवलज्ञानादि गुण
हैं' यह अनुपचरित शुद्ध सद्भूतव्यवहारका लक्षण है । 'जीवके मतिज्ञानादि विभाव-
गुण हैं' यह उपचरित अशुद्ध सद्भूतव्यवहारका लक्षण है । संश्लेषसंबन्धवाले पदार्थ
'शरीरादि मेरे हैं' यह अनुपचरित असद्भूतव्यवहारका लक्षण है । जहा संश्लेषसंबन्ध
नहीं है वहा 'पुत्रादि मेरे हैं' वह उपचरित असद्भूतव्यवहारका लक्षण है । इस प्रकार
नयचक्रके मूलभूत छह नय संक्षेपमें जानना चाहिए ॥ ३ ॥

अब, तीन गाथा तक ज्ञान और दर्शन इन दो उपयोगोंका कथन किया जाता
है । वहा पहली गाथामे मुख्यरूपसे दर्शन उपयोगकी व्याख्या करते हैं । जहा अमुक
विषयका 'मुख्यतासे' वर्णन करनेके लिये कहा हो वहां गौणरूपसे अन्य विषयका
भी यथासंभव कथन आ जाता है, इस प्रकार जानना ।

उवओगो दुवियप्पो दंसणणाणं च दंसणं चदुधा ।
चक्खु अचक्खू ओही दंसणमध केवलं गेयं ॥ ४ ॥

उपयोगः द्विविकल्पः दर्शनं ज्ञानं च दर्शनं चतुर्धा ।
चक्षुः अचक्षुः अवधिः दर्शनं अथ केवलं ज्ञेयम् ॥ ४ ॥

व्याख्या—“उवओगो दुवियप्पो” उपयोगो द्विविकल्पः । “दंसणणाणं च” निर्विकल्पकं दर्शनं सविकल्पकं ज्ञानं च । पुनः “दंसणं चदुधा” दर्शनं चतुर्धा भवति; “चक्खु अचक्खू ओही दंसणमध केवलं गेयं” चक्षुर्दर्शनमचक्षुर्दर्शनमवधिदर्शनमथ अहो केवलदर्शनमिति विज्ञेयम् । तथाहि—आत्मा हि जगत्त्रयकालत्रयवर्तिसमस्तवस्तुसामान्य-ग्राहकमकलविमलकेवलदर्शनस्वभावस्तावत्, पश्चादनादिकर्मग्रन्थाधीनः सन् चक्षुर्दर्शनावरण-

गाथा-४

गाथार्थः—उपयोग दो प्रकारका है : दर्शन और ज्ञान । उसमे दर्शनोपयोग चक्षु-दर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन—इस प्रकार चार प्रकारका जानना ।

टीकाः—“उवओगो दुवियप्पो” उपयोग दो प्रकारका है : “दंसणणाणं च” दर्शन और ज्ञान । दर्शन निर्विकल्प है और ज्ञान सविकल्प है । “दंसणं चदुधा” दर्शनोपयोग चार प्रकारका है : “चक्खु अचक्खू ओही दंसणमध केवलं गेयं” चक्षु-दर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन—ये चार प्रकार जानना । वह इस प्रकार—प्रथम तो आत्मा यथार्थतया तीन लोक, तीन कालवर्ती समस्त वस्तुओंके सामान्यको ग्रहण करनेवाला सकलविमल केवलदर्शनस्वभाववाला है; पश्चात्

१—यहा ‘तावत्’ (प्रथम) और ‘पश्चात्’ (बादमे) इस प्रकार जो कहा है वह काल-अपेक्षासे नहीं है परन्तु भाव-अपेक्षासे है । उसका तात्पर्य इस प्रकार समझना—दोनों नयोंके स्वरूपका निर्णय करनेवालेको हेय-उपादेयका ज्ञान साथ-साथ होता है । अतः निश्चयनयका विषय सदा आश्रय करने योग्य होनेसे वह भाव-अपेक्षासे ‘तावत्’ (प्रथम) है, मुख्य है, उपादेय है और

दोय भेद उपयोग उदार, दर्शन ज्ञान धरै सुविचार ।
दर्शन भेद च्यारि है भला, चक्षु अचक्षु अवधि केवला ॥ ४ ॥

क्षयोपशमाद्बहिरङ्गद्रव्येन्द्रियालम्बनाच्च मूर्तं सत्तासामान्यं निर्विकल्पं संव्यवहारेण प्रत्यक्षमपि निश्चयेन परोक्षरूपेणैकदेशेन यत्पश्यति तच्चक्षुर्दर्शनम् । तथैव स्पर्शनरसनघ्राण-श्रोत्रेन्द्रियावरणक्षयोपशमत्वात्स्वकीयस्वकीयबहिरङ्गद्रव्येन्द्रियालम्बनाच्च मूर्त्तं सत्तासामान्यं विकल्परहितं परोक्षरूपेणैकदेशेन यत्पश्यति तदचक्षुर्दर्शनम् । तथैव च मनइन्द्रियावरण-क्षयोपशमात्सहकारिकारणभूताष्टदलपद्माकारद्रव्यमनोऽवलम्बनाच्च मूर्त्तामूर्त्तसमस्तवस्तु-गतसत्तासामान्यं विकल्परहितं परोक्षरूपेण यत्पश्यति तन्मानसमचक्षुर्दर्शनम् । स एवात्मा

अनादि कर्मबंधके आधीन होकर, चक्षुदर्शनावरणके क्षयोपशमसे और बहिरंग द्रव्येन्द्रियके आलबनसे मूर्त पदार्थके सत्तासामान्यको विकल्प रहित (—निराकाररूपसे) संव्यवहारसे प्रत्यक्षपने किन्तु निश्चयसे परोक्षरूपसे, जो एकदेश देखता है वह चक्षुदर्शन है । उसी प्रकार स्पर्शन—रसना—घ्राण—श्रोत्रेन्द्रियावरणका क्षयोपशम होनेसे अपनी-अपनी बहिरंग द्रव्येन्द्रियके आलबनसे, मूर्त पदार्थके सत्तासामान्यको विकल्प रहित (निराकाररूपसे) जो परोक्षरूपसे एकदेश देखता है वह अचक्षुदर्शन है । उसीप्रकार मनइन्द्रियावरणके क्षयोपशमसे और सहकारीकारणरूप आठ पांखडी-वाले कमलके आकाररूप द्रव्यमनके आलबनसे, मूर्त और अमूर्त समस्त वस्तुओके सत्तासामान्यको विकल्प रहित परोक्षरूपसे जो देखता है वह मानस-अचक्षुदर्शन है । वही आत्मा अवधिदर्शनावरणके क्षयोपशमसे मूर्त वस्तुके सत्तासामान्यको विकल्प

व्यवहारनयका विषय जानने योग्य होने पर भी उसके विषयका आश्रय छोड़ने योग्य होनेसे वह भाव-अपेक्षासे 'पश्चात्' (बादमे) है, गौण है, हेय है । (इस प्रकार निश्चयनयके विषय-भूत त्रिकाल ध्रुव चैतन्यस्वभावी आत्माका आश्रय लेने पर कल्याणमूर्ति सम्यग्दर्शन प्रगट होता है और तत्पश्चात् जीव अप्रतिहत शुद्धभावसे परिणामित होने पर समय-समय सवर-निर्जरा वृद्धिगत होते जाते है और अन्तमे जीव सिद्धदशा प्राप्त करता है ।)

गाथा ५ की टीकामे तथा गाथा १३ की भूमिकामे भी इसी प्रकार तात्पर्य समझना । श्री समयसार गाथा ७ की टीकामे, श्री प्रवचनसार गाथा १६, ३४, ५५, १६२ और १६७ की टीकामे और श्री पचास्तिकायसग्रह गाथा २६, ५१, ५२, ११३ और १५४ की टीकामें श्री जयसेनाचार्यने जो 'तावत्' और 'पश्चात्' शब्द कहे है उनका अर्थ और तात्पर्य भी उपरोक्त प्रकार समझना ।

इस सबधमे सोनगढ़से प्रसिद्ध द्रव्यसग्रहकी गाथा १३ की टीकामे जो स्पष्टीकरण किया है उसे पढना चाहिये ।

यदवधिदर्शनावरणक्षयोपशमान्मूर्त्तवस्तुगतसत्तासामान्यं निर्विकल्परूपेणैकदेशप्रत्यक्षेण यत्पश्यति तदवधिदर्शनम् । यत्पुनः सहजशुद्धसदानन्दैकरूपपरमात्मतत्त्वसंवित्तिप्राप्तिलेन केवलदर्शनावरणक्षये सति मूर्त्तमूर्त्तसमस्तवस्तुगतसत्तासामान्यं विकल्परहितं सकलप्रत्यक्षरूपेणैकसमये पश्यति तदुपादेयभूतं क्षायिकं केवलदर्शनं ज्ञातव्यमिति ॥ ४ ॥

अथाष्टविकल्पं ज्ञानोपयोगं प्रतिपादयति—

गाणं अट्टवियप्पं मदिसुदिओही अणाणणाणाणि ।
मणापज्जवकेवलमवि पच्चक्खपरोक्खभेयं च ॥ ५ ॥

ज्ञानं अष्टविकल्पं मतिश्रुतावधयः अज्ञानज्ञानानि ।
मनःपर्ययः केवलं अपि प्रत्यक्षपरोक्षभेदं च ॥ ५ ॥

व्याख्या—“गाणं अट्टवियप्पं” ज्ञानमष्टविकल्पं भवति । “मदिसुदिओही अणाणणाणाणि” अत्राष्टविकल्पमध्ये मतिश्रुतावधयो मिथ्यात्वोदयवशाद्विपरीताभिनिवेश-

रहित जो एकदेश-प्रत्यक्षरूपसे देखता है वह अवधिदर्शन है । तथा जो सहजशुद्ध है और सदा आनन्द जिसका एक रूप है ऐसे परमात्मतत्त्वकी संवित्तिकी प्राप्तिके बलसे, केवलदर्शनावरणका क्षय होने पर, मूर्त्त-अमूर्त्त समस्त वस्तुके सत्तासामान्यको विकल्प रहित सकल-प्रत्यक्षरूपसे जो एक समयमें देखता है उसे उपादेयभूत, क्षायिक केवलदर्शन जानना ॥ ४ ॥

अब आठ भेदवाले ज्ञानोपयोगका प्रतिपादन करते हैं ।

गाथा-५

गाथार्थः—कुमति, कुश्रुत, कुअवधि, मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवल-ज्ञान—इस प्रकार आठ प्रकारका ज्ञान है । इसमें भी प्रत्यक्ष और परोक्षरूप भेद है ।

टीकाः—“गाणं अट्टवियप्पं” ज्ञान आठ प्रकारका है । “मदिसुदिओही अणाणणाणाणि” इन आठ भेदोंमें मति, श्रुत और अवधिज्ञान—ये तीन मिथ्यात्वके उदयवश

ज्ञान-भेद मति श्रुत अवधिका, भले-बुरेते है छहैतिका ।
मनपर्यय केवल मिलि आठ, है परतक्ष परोक्ष सुपाठ ॥ ५ ॥

रूपाण्यज्ञानानि भवन्ति; तान्येव शुद्धात्मादितत्त्वविषये विपरीताभिनिवेशरहितत्वेन सम्यग्दृष्टिजीवस्य सम्यग्ज्ञानानि भवन्ति । “मणपञ्चकेवलमवि” मनःपर्ययज्ञानं केवलज्ञानमप्येव मष्टविधं ज्ञानं भवति । “पञ्चक्खपरोक्खभेयं च” प्रत्यक्षपरोक्षभेदं च । अवधिमनःपर्ययद्वयमेकदेशप्रत्यक्षं विभङ्गावधिरपि देशप्रत्यक्षं, केवलज्ञानं सकलप्रत्यक्षं; शेषचतुष्टयं परोक्षमिति ।

इतो विस्तरः—आत्मा हि निश्चयनयेन सकलविमलाखण्डैकप्रत्यक्षप्रतिभासमय-केवलज्ञानरूपस्तावत् । स च व्यवहारेणानादिकर्मबन्धप्रच्छादितः सन् मतिज्ञानावरणीय-क्षयोपशमाद्वीर्यान्तरायक्षयोपशमाच्च बहिरङ्गपञ्चेन्द्रियमनोऽवलम्बनाच्च मूर्त्तामूर्त्तं वस्त्वेकदेशेन विकल्पाकारेण परोक्षरूपेण सांव्यवहारिकप्रत्यक्षरूपेण वा यज्जानाति तत्क्षायोपशमिकं मतिज्ञानम् । किञ्च छद्मस्थानां वीर्यान्तरायक्षयोपशमः केवलानां तु

विपरीत अभिनिवेशरूप अज्ञान है और वे ही शुद्धात्मादि तत्त्वके विषयमें विपरीता-भिनिवेशरहितपनेके कारण सम्यग्दृष्टि जीवको सम्यग्ज्ञान है । “मणपञ्चकेवलमवि” मन पर्ययज्ञान और केवलज्ञान—ये दोनो मिलकर ज्ञानके आठ भेद हुए । “पञ्चक्ख-परोक्खभेयं च” वे प्रत्यक्ष और परोक्ष ऐसे भेद रूप है । अवधि और मन.पर्यय—ये दो (भेद) एकदेशप्रत्यक्ष है, विभग-अवधिज्ञान भी देशप्रत्यक्ष है, केवलज्ञान सकलप्रत्यक्ष है और शेष चार परोक्ष है ।

अब उनका विस्तार कहा जाता है— प्रथम तो आत्मा वास्तवमें निश्चय-नयसे सकलविमल, अखड एक प्रत्यक्षप्रतिभासमय केवलज्ञानरूप है । वह व्यवहारसे अनादिकर्मबन्धसे आच्छादित होता हुआ, मतिज्ञानावरणीयके क्षयोपशमसे और वीर्या-न्तरायके क्षयोपशमसे तथा बहिरंग पचेन्द्रिय और मनके अवलम्बनसे मूर्त्त और अमूर्त्त वस्तुओको, एकदेश, विकल्पाकारसे, परोक्षरूपसे अथवा सांव्यवहारिक प्रत्यक्षरूपसे जो जानता है वह क्षायोपशमिक मतिज्ञान है । छद्मस्थोको ज्ञान—चारित्रादिकी उत्पत्तिमे वीर्यान्तरायका क्षयोपशम और केवलियोंको सर्वथा क्षय सर्वत्र सहकारी जानना ।

१—गाथा ४ का फूटनोट यहा भी पढना चाहिए ।

२—कार्यकालमे साथ रहनेवाला—निमित्त—सहचर । श्री गोम्मटसार—जीवकाँडकी गाथा ५६७ की बडी टीकामे धर्मास्तिकायको गमनमे ‘सहकारी कारण’ कहा गया है । वहां ‘सहकारी कारण’ का अर्थ इस प्रकार समझाया है—‘स्वयमेव ही गमनादि क्रियारूप वर्तते हुए जो जीव-पुद्गल

निरवशेषक्षयो ज्ञानचारित्रायुत्पत्तौ सहकारी सर्वत्र ज्ञातव्यः । संव्यवहारलक्षणं कथ्यते—
समीचीनो व्यवहारः संव्यवहारः । प्रवृत्तिनिवृत्तिलक्षणः संव्यवहारो भण्यते ।
संव्यवहारे भवं सांव्यवहारिकं प्रत्यक्षम् । यथा घटरूपमिदं मया दृष्टमित्यादि । तथैव
श्रुतज्ञानावरणक्षयोपशमानोऽन्द्रियावलम्बनाच्च प्रकाशोपाध्यायादिबहिरङ्गसहकारिकार-
णाच्च मूर्त्तमूर्त्तवस्तुलोकालोकव्याप्तिज्ञानरूपेण यदस्पष्टं जानाति तत्परोक्षं श्रुतज्ञानं
भण्यते । किञ्च विशेषः—शब्दात्मकं श्रुतज्ञानं परोक्षमेव तावत्, स्वर्गापवर्गादिबहि-
र्विषयपरिच्छिन्तिपरिज्ञानं विकल्परूपं तदपि परोक्षं, यत्पुनरभ्यन्तरे सुखदुःखविकल्प-
रूपोऽहमनन्तज्ञानादिरूपोऽहमिति वा तदीषत् परोक्षम्; यच्च निश्चयभावश्रुतज्ञानं
तच्च शुद्धात्माभिमुखसुखसंवित्तिस्वरूपं स्वसंवित्त्याकारेण सविकल्पमपीन्द्रियमनोजनित-
रागादिविकल्पजालरहितत्वेन निर्विकल्पम् । अभेदनयेन तदेवात्मशब्दवाच्यं वीतरागसम्यक्-

अब संव्यवहारका लक्षण (स्वरूप) कहा जाता है । समीचीन व्यवहार वह
संव्यवहार है । प्रवृत्तिनिवृत्तिस्वरूप संव्यवहार कहलाता है । जो संव्यवहारमें हो
वह सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष—जैसे कि 'घटका रूप मैंने देखा' आदि ।

श्रुतज्ञानावरणके क्षयोपशमसे, मनके अवलम्बनसे तथा प्रकाश, उपाध्यायादि
बहिरंग सहकारी कारणोंसे मूर्त्त-अमूर्त्त वस्तुको लोक-अलोकको व्याप्ति ज्ञानरूपसे
जो अस्पष्ट जानता है वह परोक्ष श्रुतज्ञान कहलाता है ।

तथा विशेष—जो शब्दात्मक श्रुतज्ञान है वह तो परोक्ष ही है । (परन्तु)
स्वर्ग, मोक्षादि बाह्य वस्तुओका बोध करानेवाला विकल्परूप जो ज्ञान है वह भी
परोक्ष है और जो अभ्यन्तरमें 'सुख-दुःखके विकल्परूप मैं हूँ' 'अनन्तज्ञानादिरूप मैं हूँ'
—ऐसा ज्ञान वह इषत् (किञ्चित्) परोक्ष है । और जो निश्चय-भावश्रुतज्ञान है
वह शुद्धात्माभिमुख होनेसे सुखके सवेदनस्वरूप है; वह स्वसवेदनके आकाररूप
होनेसे सविकल्प होने पर भी, इन्द्रिय-मनजनित रागादि विकल्पजालसे रहित होनेसे
निर्विकल्प है; अभेदनयसे जो 'आत्मा' शब्दसे कहा जाता है ऐसा वही (निश्चय-

उनको धर्मास्तिकाय सहकारी कारण है । उसमें उसका कारणपना इतना ही है कि जहां
धर्मादिक द्रव्य होते हैं वहां जीव-पुद्गल गमनादि क्रियारूप वर्तते हैं ।" जहां निमित्त हो वहां
उपादान अपना कार्य अपनेसे ही करता है वहां निमित्तको 'सहकारी' कहा जाता है ।
'सहकारी' का ऐसा अर्थ समझना ।

चारित्र्याविनाभूतं केवलज्ञानापेक्षया परोक्षमपि संसारिणां क्षायिकज्ञानाभावात् क्षायोप-
शमिकमपि प्रत्यक्षमभिधीयते । अत्राह शिष्यः—आद्ये परोक्षमिति तत्त्वार्थसूत्रे मतिश्रुतद्वयं
परोक्षं भणितं तिष्ठति, कथं प्रत्यक्षं भवतीति ? परिहारमाह—तदुत्सर्गव्याख्यानम्,
इदं पुनरपवादव्याख्यानम् । यदि तदुत्सर्गव्याख्यानं न भवति तर्हि मतिज्ञानं कथं
तत्त्वार्थं परोक्षं भणितं तिष्ठति । तर्कशास्त्रे सांख्यव्यवहारिकं प्रत्यक्षं कथं जातम् । यथा
अपवादव्याख्यानेन मतिज्ञानं परोक्षमपि प्रत्यक्षज्ञानम्, तथा स्वात्माभिमुखं भावश्रुत-
ज्ञानमपि परोक्षं सत्प्रत्यक्षं भण्यते । यदि पुनरेकान्तेन परोक्षं भवति तर्हि सुखदुःखादि-
संवेदनमपि परोक्षं प्राप्नोति, न च तथा । तथैव च स एवात्मा, अवधिज्ञानावरणीय-
क्षयोपशमान्मूर्त्तं वस्तु यदेकदेशप्रत्यक्षेण सविकल्पं जानाति तदवधिज्ञानम् । यत्पुनर्मनः-
पर्ययज्ञानावरणक्षयोपशमाद्वीर्यान्तरायक्षयोपशमाच्च स्वकीयमनोऽवलम्बनेन परकीयमनोगतं
मूर्त्तमर्थमेकदेशप्रत्यक्षेण सविकल्पं जानाति तदीहामतिज्ञानपूर्वकं मनःपर्ययज्ञानम् । तथैव

भावश्रुतज्ञान) — जो वीतराग सम्यक् चारित्र्यके साथ अविनाभावी है वह—केवल-
ज्ञानकी अपेक्षासे परोक्ष होने पर भी, ससारी जीवोको क्षायिकज्ञानका अभाव होनेसे
क्षायोपशमिक होने पर भी, प्रत्यक्ष कहलाता है ।

यहा शिष्य पूछता है 'आद्ये परोक्षम् ।' ऐसा तत्त्वार्थसूत्रमें मति—श्रुत इन दो
ज्ञानोको परोक्ष कहा है, तो फिर (श्रुतज्ञान) प्रत्यक्ष किस प्रकार है ? उसका निरा-
करण किया जाता है : वह उत्सर्गका व्याख्यान है और यहा जो कथन है वह अप-
वादका व्याख्यान है । यदि वह उत्सर्गकथन न होता तो, तत्त्वार्थसूत्रमें मतिज्ञानको
परोक्ष किस प्रकार कहा है ? और तर्कशास्त्रमे वही (मतिज्ञान) सांख्यव्यवहारिकप्रत्यक्ष
किस प्रकार हो गया ? अत (ऐसा समझना कि) जिस प्रकार अपवादव्याख्यानसे,
मतिज्ञानको परोक्ष होने पर भी प्रत्यक्षज्ञान कहा है उसी प्रकार स्व-आत्माभिमुख
भावश्रुतज्ञानको भी परोक्ष होने पर भी प्रत्यक्ष कहा है । तथा यदि वह एकान्तिक
परोक्ष हो तो सुख दुःखादिका संवेदन भी परोक्ष हो जाता है ; परंतु ऐसा तो है नहीं ।

वही आत्मा अवधिज्ञानावरणके क्षयोपशमसे मूर्त्त वस्तुको विकल्पसहित
(साकाररूपसे) जो एकदेश प्रत्यक्ष जानता है वह अवधिज्ञान है ।

जो मनःपर्ययज्ञानावरणके क्षयोपशमसे तथा वीर्यान्तरायके क्षयोपशमसे अपने
मनके अवलंबन द्वारा अन्यके मनमे रहे हुए मूर्त्त पदार्थको विकल्पसहित (साकार-
रूपसे) एकदेशप्रत्यक्ष जानता है वह ईहामतिज्ञानपूर्वक मनःपर्ययज्ञान है ।

निजशुद्धात्मतत्त्वमम्पृथग्दानशानानुचरणलक्षणैकाग्रध्यानेन केवलज्ञानावरणादिघातिचतु-
ष्टयस्ये सति यत्समुत्पद्यते तदेकसमये समस्तद्रव्यक्षेत्रकालभावग्राहकं सर्वप्रकारोपादेय-
भूतं केवलज्ञानमिति ॥ ५ ॥

अथ ज्ञानदर्शनोपयोगउच्यत्यान्यानस्य नयविभागेतोपसंहारः कथ्यते—

अट्टु चट्टु गणदंसण सामणं जीवलक्खणं भणियं ।

ववहारा सुद्धणाया सुद्धं पुण दंसणं णणं ॥ ६ ॥

अष्टचतुर्ज्ञानदर्शने सामान्यं जीवलक्षणं भणितम् ।

व्यवहारतः शुद्धनयान् शुद्धं पुनः दर्शनं ज्ञानम् ॥ ६ ॥

निज शुद्धात्मतत्त्वका मम्पृथग्दान-ज्ञान-चारित्र जिसका लक्षण है ऐसे
एकाग्रध्यान द्वारा केवलज्ञानावरणादि चार घातिकर्मोंका नाश होने पर जो उत्पन्न
होना है वट, एक समयमें समस्त द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावको ग्रहण करनेवाला,
सर्व प्रकारसे उपोपादेयभूत केवलज्ञान है ॥ ५ ॥

अथ, ज्ञान-दर्शन दोनों उपयोगोंके व्याख्यानका नयविभागसे उपसंहार
करते हैं—

गाथा-६

गाथार्थः—व्यवहारनयसे आठ प्रकारका ज्ञान और चार प्रकारका दर्शन—यह
सामान्यरूपसे जीवका लक्षण कहा है । शुद्धनयकी अपेक्षासे शुद्ध ज्ञान-दर्शनको
जीवका लक्षण कहा है ।

* उपादेय—प्राप्त, ग्रहण करने योग्य । उपादेयपना मुख्यरूपसे दो प्रकारसे कहा जाता है :
(१) जब निज ध्रुव शुद्धात्मा-ज्ञानरुक्त्वभाव आत्मा-उपादेय कहा जाता है तब वह 'आश्रय
करने योग्य' रूपसे उपादेय समझना । (२) जब केवलज्ञान, सिद्धत्व आदि पर्याये उपादेय
कही जाती हैं तब वे पर्याये 'प्रगट करने योग्य' रूपसे उपादेय समझना । [यहा यह ध्यानमे
रखना चाहिए कि सिद्धत्वादि पर्याय 'प्रगट करने' का उपाय निज ध्रुव शुद्धात्माका 'आश्रय
लेना' हो है ।]

यह सामान्य जीवका चिह्न, नय व्यवहार बताया गिह्न ।

निश्चय शुद्ध ज्ञान-दर्शना, लिंग यथार्थ जिनवर भनां ॥ ६ ॥

व्याख्या—“अद्भु चद्गु णाणदंसण सामण्णं जीवलक्खणं भणियं” अष्टविधं ज्ञानं चतुर्विधं दर्शनं सामान्यं जीवलक्षणं भणितम् । सामान्यमिति कोऽर्थः ? संसारि-जीवमुक्तजीवविवक्षा नास्ति, अथवा शुद्धाशुद्धज्ञानदर्शनविवक्षा नास्ति । तदपि कथमिति-चेद् ? विवक्षाया अभावः सामान्यलक्षणमिति वचनात् । कस्मात् सामान्यम् जीवलक्षणं भणितम् ? “ववहारा” व्यवहारात् व्यवहारनयात् । अत्र केवलज्ञानदर्शनं प्रति शुद्ध-सद्भूतशब्दवाच्योऽनुपचरितसद्भूतव्यवहारः, छद्मस्थज्ञानदर्शनापरिपूर्णापेक्षया पुनरशुद्ध-सद्भूतशब्दवाच्य उपचरितसद्भूतव्यवहारः, कुमतिकुश्रुतविभङ्गत्रये पुनरुपचरितासद्भूत-व्यवहारः । “सुद्धणया सुद्धं पुण दंसणं णाणं” शुद्धनिश्चयनयात्पुनः शुद्धमखण्डं केवलज्ञानदर्शनद्वयं जीवलक्षणमिति । किञ्च ज्ञानदर्शनोपयोगविवक्षायामुपयोगशब्देन विवक्षितार्थपरिच्छित्तिलक्षणोऽर्थग्रहणव्यापारो गृह्यते । शुभाशुभशुद्धोपयोगत्रयविवक्षायां पुनरुपयोगशब्देन शुभाशुभशुद्धभावनैकरूपमनुष्ठानं ज्ञातव्यमिति । अत्र सहजशुद्धनिर्वि-

टीकाः—“अद्भु चद्गु णाणदंसण सामण्णं जीवलक्खणं भणियं” आठ प्रकारके ज्ञान और चार प्रकारके दर्शनको सामान्यरूपसे जीवका लक्षण कहा है । यहा ‘सामान्य’ इस कथनका क्या अर्थ है ? यह अर्थ है कि इस लक्षणमे ससारी जीव अथवा मुक्त जीवकी विवक्षा नही है अथवा शुद्ध या अशुद्ध ज्ञान-दर्शनकी विवक्षा नही है । ऐसा अर्थ किस प्रकार है ? “विवक्षाका अभाव—यह सामान्यका लक्षण है”—ऐसा वचन होनेसे ।

किस अपेक्षासे जीवका सामान्य लक्षण कहा है ? “ववहारा” व्यवहारसे—व्यवहारनयकी अपेक्षासे कहा है । यहा केवलज्ञान-दर्शनके प्रति ‘शुद्ध-सद्भूत’ शब्दसे वाच्य ‘अनुपचरित सद्भूत’ व्यवहार है, छद्मस्थके अपूर्ण ज्ञान-दर्शनकी अपेक्षासे ‘अशुद्ध सद्भूत’ शब्दसे वाच्य ‘उपचरित सद्भूत’ व्यवहार है और कुमति, कुश्रुत, कुअवधि—इन तीन ज्ञानोंमे ‘उपचरित असद्भूत’ व्यवहार है ।

“सुद्धणया सुद्धं पुण दंसणं णाणं” शुद्धनिश्चयनयसे शुद्ध अखण्ड केवलज्ञान और केवलदर्शन—ये दोनो जीवका लक्षण है ।

यहा ज्ञान-दर्शन उपयोगकी विवक्षामे ‘उपयोग’ शब्दका अर्थ विवक्षित पदार्थको जानना-देखना जिसका लक्षण है ऐसा ‘पदार्थग्रहणरूप व्यापार’ ऐसा होता है । परन्तु शुभ, अशुभ और शुद्ध—इन तीन उपयोगकी विवक्षामे ‘उपयोग’ शब्दका अर्थ शुभ, अशुभ अथवा शुद्ध भावना जिसका एक रूप है ऐसा ‘अनुष्ठान’ समझना ।

कारपरमानन्दैकलक्षणस्य साक्षादुपादेयभूतस्याक्षयमुखस्योपादानकारणत्वात् केवलज्ञान-दर्शनद्वयमुपादेयमिति । एवं नैयायिकं प्रति गुणगुणिभेदैकान्तनिराकरणार्थमुपयोग-व्याख्यानैर्न गाथात्रयं गतम् ॥ ६ ॥

अथामूर्त्तान्द्रियनिजात्मद्रव्यसंप्रितिरहितेन मूर्त्तपञ्चेन्द्रियविषयासक्तेन च यदुपाजितं मूर्त्तं कर्म तद्दृश्येन व्यवहारेण मूर्त्ताऽपि निश्चयेनामूर्त्ता जीव इत्युपदिशति—

वराणां रस पंच गंधा दो फासा अट्टु णिच्छया जीवे ।
एतो संति अमुत्ति तदो व्यवहारा मुत्ति बंधादो ॥ ७ ॥

वर्णाः रसाः पंच गन्धौ द्वौ स्पर्शाः अष्टौ निश्चयात् जीवे ।
नो मन्ति अमूर्त्तिः ततः व्यवहारात् मूर्त्तिः बन्धतः ॥ ७ ॥

यहां सद्गुरु निर्विकार परमानन्द जिसका एक लक्षण (स्वरूप) है ऐसा जो साक्षात् उपादेयभूत अक्षय मुख उसका उपादानकारण होनेसे केवलज्ञान और केवलदर्शन—ये दोनों 'उपादेय' हैं ।

इस प्रकार नैयायिकके प्रति गुण-गुणीभेदके एकान्तका निराकरण करनेके लिये उपयोगके व्याख्यान द्वारा तीन गाथायें पूर्ण हुईं ॥ ६ ॥

अत्र, अमूर्त्त अतीन्द्रिय निज आत्मद्रव्यके ज्ञानसे रहित होनेसे और मूर्त्त पचेन्द्रियके विषयमें आसक्त होनेसे जो मूर्त्तकर्म उपाजित किया है उसके उदयसे व्यवहारसे जीव मूर्त्त है तो भी निश्चयनयसे जीव अमूर्त्त है ऐसा उपदेश करते हैं :—

१—श्री नियमसार कलश १७ के अर्थमें इस प्रकार लिखा है.— “जिनेन्द्रकथित समस्त दर्शन-ज्ञानके भेदोको जानकर, जो पुरुष परभावोका परिहार करके निज स्वरूपमें स्थित रहता हुआ, शीघ्र चैतन्य चमत्कारमात्र तत्त्वमें प्रविष्ट हो जाता है—गहरा उतर जाता है वह निर्वाण-सुखको प्राप्त होता है ।” इससे ऐसा समझना कि—आश्रय करने योग्य तो सदा निज चैतन्य-चमत्कारमात्र त्रिकाली ध्रुवतत्त्व एक ही उपादेय है ।

वर्णं पांच रस पांच जु गंध, दोय फास अठ नांही खंध ।
निश्चय मूर्त्ति-विन जिय सार, बंधसहित मूर्त्त विवहार ॥ ७ ॥

व्याख्या—“वण्ण रस पञ्च गंधा दो फासा अट्ट णिच्छया जीवे णो संति” श्वेतपीतनीलारुणकृष्णसंज्ञाः पञ्च वर्णाः, तिक्तकटुकपायाम्लमधुरसंज्ञाः पञ्च रसाः, सुगन्धदुर्गन्धसंज्ञौ द्वौ गन्धौ, शीतोष्णस्निग्धरूक्षमृदुकर्कशगुरुलघुसंज्ञा अष्टौ स्पर्शाः, “णिच्छया” शुद्धनिश्चयनयात् शुद्धबुद्धैकस्वभावे शुद्धजीवे न सन्ति । “अमुत्ति तदो” ततः कारणादमूर्तः । यद्यमूर्तस्तर्हि तस्य कथं कर्मबन्ध इति चेत् ? “ववहारा मुत्ति” अनुपचरितासद्भूतव्यवहारान्मूर्तो यतः । तदपि कस्मात् ? “बंधादो” अनन्तज्ञानाद्युपलम्भलक्षणमोक्षविलक्षणादनादिकर्मबन्धनादिति । तथा चोक्तम्—कथंचिन्मूर्तामूर्त-जीवलक्षणम्—“बंधं पडि एयत्तं लक्खणदो हवदि तस्स भिण्णत्तं । तम्हा अमुत्तिभावो शेगंतो होदि जीवस्स ॥ १ ॥” अयमत्रार्थः—यस्यैवामूर्तस्यात्मनः प्राप्त्यभावादनादि-संसारे भ्रमितोऽयं जीवः स एवामूर्तो मूर्तपञ्चेन्द्रियविषयत्यागेन निरंतरं ध्यातव्यः ।

गाथा-७

गाथार्थः—निश्चयसे जीवमें पांच वर्ण, पांच रस, दो गंध और आठ स्पर्श नहीं है अतः जीव अमूर्तिक है, व्यवहारनयकी अपेक्षासे कर्मबन्ध होनेसे जीव मूर्तिक है ।

टीकाः—“वण्ण रस पञ्च गंधा दो फासा अट्ट णिच्छया जीवे णो संति” श्वेत, पीत, नील, लाल और कृष्ण—ये पांच रङ्ग; चरपरा, कड़वा, कषायला, खट्टा और मधुर—ये पांच रस, सुगंध और दुर्गंध—ये दो गंध; शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष, कोमल, कठोर, हलका और भारी—ये आठ स्पर्श; “णिच्छया” शुद्ध निश्चयनयसे शुद्ध-बुद्ध-एक-स्वभाववाले शुद्ध जीवमें नहीं है । “अमुत्ति तदो” इस कारण यह जीव अमूर्त है । यदि जीव अमूर्तिक है, तो उसे कर्मबंध किस प्रकार होता है ? “ववहारा मुत्ति” क्योंकि जीव अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनयसे मूर्त है, अतः (कर्मबंध होता है) । जीव मूर्त किस कारणसे है ? “बंधादो” अनन्त ज्ञानादिकी उपलब्धि जिसका लक्षण है ऐसे मोक्षसे विलक्षण अनादि कर्मबन्धनके कारण जीव मूर्त है । तथा अन्यत्र जीवका लक्षण कथंचित् मूर्त और कथंचित् अमूर्त कहा है; वह इस प्रकार—“कर्म-बंध प्रति जीवकी एकता है और लक्षणसे उसकी भिन्नता है अतः एकांतसे जीवको ‘अमूर्तिकपना नहीं है ।”

तात्पर्य यह है कि जिस अमूर्त आत्माकी प्राप्तिके बिना अनादि संसारमें इस जीवने भ्रमण किया है उसी अमूर्तिक आत्माका, मूर्त पंचेन्द्रियके विषयोंके त्याग द्वारा

इति भट्टचार्वकमतं प्रत्यमूर्तजीवस्थापनमुख्यत्वेन सूत्रं गतम् ॥ ७ ॥

अथ निष्क्रियामूर्तटङ्कोत्कीर्णज्ञायकैकस्वभावेन कर्मादिकर्तृत्वरहितोऽपि जीवो व्यवहारादिनयविभागेन कर्ता भवतीति कथयति—

पुद्गलकम्मादीणं कत्ता व्यवहारदो दु णिच्छयदो ।

चेदणकम्माणादा सुद्धणया सुद्धभावाणं ॥ ८ ॥

पुद्गलकम्मादीनां कर्ता व्यवहारतः तु निश्चयतः ।

चेतनकर्मणां आत्मा शुद्धनयात् शुद्धभावानाम् ॥ ८ ॥

व्याख्या—अत्र सूत्रे भिन्नप्रक्रमरूपव्यवहितसम्बन्धेन मध्यपदं गृहीत्वा व्याख्यानं क्रियते । “आदा” आत्मा “पुद्गलकम्मादीणं कत्ता व्यवहारदो दु” पुद्गल-कर्मादीनां कर्ता व्यवहारतस्तु पुनः, तथाहि—मनोवचनकायव्यापारक्रियारहितनिज-

निरन्तर ध्यान 'करना चाहिये । इस प्रकार भट्ट और चार्वक मतके प्रति अमूर्त जीवकी स्थापनाकी मुख्यतासे सूत्र कहा ॥ ७ ॥

अब निष्क्रिय, अमूर्त, टकोत्कीर्ण ज्ञायक एक स्वभावसे जीव यद्यपि कर्मादिके कर्तृत्वसे रहित है तो भी व्यवहारादि नय-विभागसे कर्ता होता है इस प्रकार कहते है :—

गाथा-८

गाथार्थः—आत्मा व्यवहारनयसे पुद्गलकर्मादिका कर्ता है, निश्चयनयसे चेतनकर्माका कर्ता है और शुद्धनयसे शुद्धभावोका कर्ता है ।

टीकाः—इस सूत्रमे भिन्न प्रक्रमरूप व्यवहित सबधसे मध्यमपद लेकर व्याख्यान किया जाता है । “आदा” आत्मा “पुद्गलकम्मादीणं कत्ता व्यवहारदो दु” व्यवहार-नयसे पुद्गलकर्मादिका कर्ता है । जैसे कि—मन-वचन-काय व्यापार क्रिया रहित

१-पुद्गलकर्म मेरेसे अत्यंत भिन्न है, वस्तुतः वह मुझे लाभ-हानि नहीं कर सकता है ऐसा निर्णय करके, अमूर्तिक निज त्रिकाली ध्रुवस्वभावका आश्रय करना चाहिए । इसी प्रकार करनेसे ही धर्म प्रगट होता है, वृद्धिको प्राप्त होता है और पूर्ण होता है; और पूर्ण होने पर पुद्गल कर्मों और शरीरका आत्यंतिक वियोग होने पर जीव सिद्धपदको प्राप्त करता है ।

पुद्गल कर्म करै व्यवहार, कर्ता यातै कहे करार ।

निश्चय निज रागादिक करै, शुद्ध दृष्टि शुद्ध भावहि धरै ॥ ८ ॥

शुद्धात्मतत्त्वभावनाशून्यः सन्ननुपचरितासद्भूतव्यवहारेण ज्ञानावरणादिद्रव्यकर्मणामादि-
शब्देनौदारिकवैक्रियिकाहारकशरीरत्रयाहारादिषट्पर्याप्तियोग्यपुद्गलपिण्डरूपनोकर्मणां
तथैवोपचरितासद्भूतव्यवहारेण बहिर्विषयघटपटादीनां च कर्ता भवति । “णिच्छयदो
चेदणकम्माणादा” निश्चयनयतश्चेतनकर्मणां; तद्यथा—रागादिविकल्पोपाधिरहितनिष्क्रिय-
परमचैतन्यभावनारहितेन यदुपार्जितं रागाद्युत्पादकं कर्म तदुदये सति निष्क्रियनिर्मल-
स्वसंवित्तिमलभमानो भावकर्मशब्दवाच्यरागादिविकल्परूपचेतनकर्मणामशुद्धनिश्चयेन
कर्ता भवति । अशुद्धनिश्चयस्यार्थः कथ्यते—कर्मोपाधिसमुत्पन्नत्वादशुद्धः, तत्काले
तप्तायःपिण्डवत्तन्मयत्वाच्च निश्चयः, इत्युभयमेलापकेनाशुद्धनिश्चयो भण्यते । “सुद्धणया
सुद्धभावाणं” शुभाशुभयोगत्रयव्यापाररहितेन शुद्धबुद्धैकस्वभावेन यदा परिणमति
तदानन्तज्ञानसुखादिशुद्धभावानां छद्मस्थावस्थायां भावनारूपेण विवक्षितैकदेशशुद्धनिश्चयेन
कर्ता, मुक्तावस्थायां तु शुद्धनयेनेति । किन्तु शुद्धाशुद्धभावानां परिणममानानाम् एव

निज शुद्धात्मतत्त्वकी भावनासे शून्य होकर, अनुपचरित असद्भूत व्यवहारसे ज्ञाना-
वरणादि द्रव्यकर्मोका तथा आदि शब्दसे औदारिक, वैक्रियिक और आहारक—इन
तीन शरीरोका, आहारादि छह पर्याप्तियोग्य पुद्गलपिण्डरूप नोकर्मोका और उप-
चरित असद्भूत व्यवहारसे घटपटादि बहिर्विषयोका भी कर्ता (यह जीव) होता है ।

“णिच्छयदो चेदणकम्माणादा” निश्चयनयकी अपेक्षासे आत्मा चेतनकर्मोका
कर्ता है । वह इस प्रकार—रागादि विकल्परूप उपाधिरहित, निष्क्रिय परम चैतन्यकी
भावनासे रहित होनेसे जीवने रागादिको उत्पन्न करनेवाला जो कर्म उपार्जित किया
है, उसका उदय होने पर, निष्क्रिय, निर्मल स्वसवित्तिको नहीं प्राप्त करता हुआ
जीव, ‘भावकर्म’ शब्दसे वाच्य रागादि विकल्परूप चेतनकर्मोका अशुद्ध निश्चयनयसे
कर्ता होता है । अशुद्ध निश्चयनयका अर्थ कहा जाता है —कर्मोपाधिसे उत्पन्न हुआ
होनेसे अशुद्ध कहलाता है और उस समय तपे हुए लोहखडके गोलेके समान तन्मय
होनेसे निश्चय कहलाता है । इस प्रकार अशुद्ध और निश्चय इन दोनोंका मिलाप
करके अशुद्ध निश्चय कहा जाता है । “सुद्धणया सुद्धभावाणं” जब जीव, शुभ-अशुभ-
रूप तीन योग (मन, वचन, काया)के व्यापारसे रहित, शुद्ध-बुद्ध ऐसे एकस्वभाव-
रूपसे परिणमन करता है तब अनन्त ज्ञान-सुखादि शुद्धभावोका छद्मस्थ अवस्थामें
भावनारूपसे, विवक्षित एकदेश शुद्ध निश्चयनयसे कर्ता है और मुक्त अवस्थामे शुद्ध-
नयसे अनन्त ज्ञान-सुखादि शुद्धभावोका कर्ता है ।

कर्तृत्वं ज्ञातव्यम्, न च हस्तादिव्यापाररूपाणामिति । यतो हि नित्यनिरञ्जननिष्क्रिय-
निजात्मस्वरूपभावनारहितस्य कर्मादिकर्तृत्वं व्याख्यातम्, ततस्तत्रैव निजशुद्धात्मनि
भावना कर्तव्या । एवं सांख्यमतं प्रत्येकान्ताकर्तृत्वनिराकरणमुख्यत्वेन गाथा गता ॥ ८ ॥

अथ यद्यपि शुद्धनयेन निर्विकारपरमाह्लादैकलक्षणसुखामृतस्य भोक्ता तथाप्य-
शुद्धनयेन सांसारिकसुखदुःखस्यापि भोक्तात्मा भवतीत्याख्याति—

व्यवहारा सुहृदुक्त्वं पुद्गलकर्मफलं पभुंजेदि ।

आदा शिच्छयण्यदो चेदणभावं खु आदस्स ॥ ६ ॥

व्यवहारात् सुखदुःखं पुद्गलकर्मफलं प्रभुङ्क्ते ।

आत्मा निश्चयनयतः चेतनभावं खलु आत्मनः ॥ ९ ॥

परंतु परिणमित होते हुए शुद्ध-अशुद्ध भावोंका ही कर्तापना जीवमें जानना,
'हस्तादिके व्यापाररूप (पुद्गल-परिणामो) का नहीं ।

नित्य-निरञ्जन-निष्क्रिय निजात्मस्वरूपकी भावना रहित जीवको कर्मादिका
कर्तृत्व कहा है, अतः उस निज शुद्धात्मामे ही भावना करना ।

इस प्रकार सांख्यमतके प्रति एकांत अकर्तृत्वका (जीवके एकातसे अकर्ता
होनेका) निराकरण करनेकी मुख्यतासे गाथा पूर्ण हुई ॥ ८ ॥

अब, यद्यपि आत्मा शुद्धनयसे निर्विकार परम आह्लाद जिसका एक लक्षण है
ऐसे सुखामृतका भोक्ता है तो भी अशुद्धनयसे सांसारिक सुख-दुःखका भी भोक्ता
होता है इस प्रकार कहते हैं.—

१-श्री समयसारमे भी जीव पुद्गलादि अथवा अन्य जीवोंकी पर्यायोका कर्ता नहीं है, ऐसा कर्ता-
कर्म-अधिकार तथा सर्वविशुद्धज्ञान-अधिकारमे कहा है । शरीरकी, परपदार्थोंकी, वचनकी,
'खाने-पीनेकी इत्यादि क्रियाओंमे अनादि अज्ञानसे जीवकी जो कर्तृत्व बुद्धि है, वह अपने
त्रिकाल आत्मस्वरूपके लक्षसे शुद्धरूपसे परिणमित होनेसे ही टूटती है अतः 'जीव परपदार्थकी
कोई क्रिया वास्तवमें एक समय भी नहीं कर सकता है' ऐसा निर्णय करना—यही इस
गाथाका तात्पर्य है ।

सुख-दुःखमय फल पुद्गलकर्म, भोगै नय व्यवहार सुमर्म ।

निश्चयनय निज चेतनभाव, जीव भोगवै सदा कहाव ॥ ९ ॥

व्याख्या—“ववहारा सुहदुखं पुगलकम्मफलं पभुंजेदि” व्यवहारात् सुख-दुःखरूपं पुद्गलकर्मफलं प्रभुंक्ते । स कः कर्त्ता ? “आदा” आत्मा । “णिच्छयणयदो चेदणभावं आदस्स” निश्चयनयतरचेतनभावं भुंक्ते । “खु” स्फुटम् । कस्य सम्बन्धिन-मात्मनः स्वस्येति । तद्यथा—आत्मा हि निजशुद्धात्मसंवित्तिसमुद्भूतपारमार्थिकसुख-सुधारसभोजनमलभमान उपचरितासद्भूतव्यवहारेणोष्टानिष्टपञ्चेन्द्रियविषयजनितसुखदुःखं भुंक्ते, तथैवानुपचरितासद्भूतव्यवहारेणाभ्यन्तरे सुखदुःखजनकं द्रव्यकर्मरूपं सातासातोदयं भुंक्ते, स एवाशुद्धनिश्चयनयेन हर्षविषादरूपं सुखदुःखं च भुंक्ते । शुद्धनिश्चयनयेन तु परमात्मस्वभावसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानोत्पन्नसदानन्दैकलक्षणं सुखामृतं भुंक्त इति । अत्र यस्यैव स्वाभाविकसुखामृतस्य भोजनाभावादिन्द्रियसुखं भुञ्जानः सन् संसारे

गाथा-९

गाथार्थः—व्यवहारनयसे आत्मा सुख-दुःखरूप पुद्गलकर्मके फलको भोगता है और निश्चयनयसे अपने चेतनभावको भोगता है ।

टीकाः—“ववहारा सुहदुखं पुगलकम्मफलं पभुंजेदि” व्यवहारनयकी अपेक्षासे सुख-दुःखरूप पुद्गलकर्मके फलोको भोगता है । उन कर्मफलोका भोक्ता कौन है ? “आदा” आत्मा । “णिच्छयणयदो चेदणभावं आदस्स” निश्चयनयकी अपेक्षासे चेतन-भावका भोक्ता है । “खु” प्रगटरूपसे । किसके चेतनभावका ? आत्माके अपने चेतनभावका । वह इस प्रकार—आत्मा ही निज शुद्धात्म सवित्तिसे उत्पन्न पार-मार्थिक सुख-सुधारसके भोजनको नहीं प्राप्त करता हुआ, उपचरित असद्भूत व्यव-हारनयसे इष्ट-अनिष्ट पचेन्द्रिय विषयजनित सुख-दुःखको भोगता है, उसी प्रकार अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनयसे अन्तरगमें सुख-दुःखजनक द्रव्यकर्मरूप साता और असाताके उदयको भोगता है और वही अशुद्धनिश्चयनयसे हर्ष-विषादरूप सुख-दुःखको भोगता है; शुद्धनिश्चयनयसे तो परमात्मस्वभावके सम्यक् श्रद्धान-ज्ञान-आचरणसे उत्पन्न, सदा आनन्द जिसका एक लक्षण है ऐसे सुखामृतको भोगता है ।

यहा, जिस स्वाभाविक सुखामृतके भोजनके अभावसे आत्मा इन्द्रियसुख भोगता हुआ ससारमें ^१परिभ्रमण करता है वही अतीन्द्रिय सुख (—स्वाभाविक सुखामृत)

१-ससारमे परिभ्रमण करनेवाले प्रथम गुणस्थानधारक सर्व मिथ्यादृष्टि है । चतुर्थ गुणस्थानसे सिद्ध तकके सर्व जीव उनकी भूमिकाकी शुद्धि अनुसार आत्मिक अतीन्द्रिय-सुखको भोगते है ऐसा इस गाथाका तात्पर्य है ।

परिभ्रमति तदेवातीन्द्रियसुखं सर्वप्रकारेणोपादेयमित्यभिप्रायः । एवं कर्ता कर्मफलं न भुंक्त इति बौद्धमतनिषेधार्थं भोक्तृत्वव्याख्यानरूपेण सूत्रं गतम् ॥ ९ ॥

अथ निश्चयेन लोकप्रमितासंख्येयप्रदेशमात्रोऽपि व्यवहारेण देहमात्रो जीव इत्यावेदयति—

अणुगुरुदेहप्रमाणो उवसंहारप्पसप्पदो चेदा ।
असमुहदो ववहारा णिच्छयणायदो असंखदेशो वा ॥१०॥
अणुगुरुदेहप्रमाणः उपसंहारप्रसर्पितः चेतयिता ।
असमुद्घातात् व्यवहारात् निश्चयनयतः असंख्यदेशो वा ॥१०॥

सर्व प्रकारसे उपादेय है ऐसा 'अभिप्राय है ।

इस प्रकार, 'कर्ता, कर्मफलको नहीं भोगता है' इस बौद्धमतका निषेध करनेके लिये 'भोक्तृत्वके' व्याख्यानरूपसे सूत्र पूर्ण हुआ ॥ ९ ॥

अब निश्चयनयसे लोकप्रमाण असख्यात प्रदेशमात्र होने पर भी व्यवहार-नयसे जीव अपने शरीरप्रमाण है ऐसा बतलाते है :—

१-पंडित हीरालालजी रचित और मथुरा सघसे प्रकाशित द्रव्यसंग्रहकी टीका पृष्ठ २३ मे गाथा ८-९ के सबधमे निम्न प्रकार लिखा है :—

“जीवके कर्तृत्व और भोक्तृत्वका विवेचन करनेका ग्रन्थकारका ऐसा अभिप्राय है कि जीव यथार्थ वस्तुस्वरूपको जानकर, परकी और विकारकी कर्तृत्व और भोक्तृत्वबुद्धिको छोड़ दे और अपनी सहज निर्विकार चिदानदस्वरूप शुद्धपर्यायका कर्ता-भोक्ता होनेका सतत प्रयत्न करे ।”

जीव परवस्तुका कुछ भी नहीं कर सकता है और उसे भोग भी नहीं सकता है । असद्भूत व्यवहारनयसे साता-असाताके उदयको तथा इष्ट-अनिष्ट इन्द्रिय-विषयोंको जीव भोगता है, ऐसा कहा जाता है ।

[असद्भूत=झूठा]

अणुगुरुदेहमान व्यवहार, सकुचै फैले जिय निरधार ।
समुद्घात-बिन कहिये एम, निश्चय देश असंख्य जु नेम ॥१०॥

व्याख्या—“अणुगुरुदेहप्रमाणो” निश्चयेन स्वदेहाद्भिन्नस्य केवलज्ञानाद्यनन्तगुण-
राशेरभिन्नस्य निजशुद्धात्मस्वरूपस्योपलब्धेरभावात्तथैव देहममत्वमूलभूताहारभयमैथुन-
परिग्रहसंज्ञाप्रभृतिसमस्तरागादिविभावानामासक्तिसद्भावाच्च यदुपार्जितं शरीरनामकर्म
तदुदये सति अणुगुरुदेहप्रमाणो भवति । स कः कर्ता ? “चेदा” चेतयिता जीवः ।
कस्मात् ? “उवसंहारप्पसप्पदो” उपसंहारप्रसर्पतः । शरीरनामकर्मजनितविस्तारोपसंहार-
धर्माभ्यामित्यर्थः । कोऽत्र दृष्टान्तः ? यथा प्रदीपो महद्भाजनप्रच्छादितस्तद्भाजनान्तरं
सर्वं प्रकाशयति लघुभाजनप्रच्छादितस्तद्भाजनान्तरं प्रकाशयति । पुनरपि कस्मात् ?
‘असमुहदो’ असमुद्घातात् । वेदनाकषायविक्रियामारणान्तिकतैजसाहारककेवलिसंज्ञसप्त-
समुद्घातवर्जनात् । तथा चोक्तं सप्तसमुद्घातलक्षणम्—“वेयणकसायवेउव्वियो मारणंतिओ

गाथा-१०

गाथार्थः—समुद्घातके अतिरिक्त, यह जीव व्यवहारनयकी अपेक्षासे सकोच-
विस्तारके कारण अपने छोटे अथवा बड़े शरीरप्रमाण रहता है और निश्चयनयकी
अपेक्षासे असख्यात प्रदेशी है ।

टीकाः—“अणुगुरुदेहप्रमाणो” निश्चयनयसे अपने देहसे भिन्न और केवल-
ज्ञानादि अनन्त गुणसमूहसे 'अभिन्न' ऐसे निज शुद्धात्मस्वरूपकी उपलब्धिके अभावसे
तथा देहकी ममता जिसका मूल है ऐसी आहार-भय-मैथुन-परिग्रहरूप संज्ञा आदि
समस्त रागादिविभावोमे आसक्तिका सद्भाव होनेसे जीवने जो शरीर नामकर्म
उपार्जित किया है उसका उदय होने पर (जीव अपने) छोटे अथवा बड़े देहके
बराबर होता है । वह कौन होता है ? “चेदा” चेतन अर्थात् जीव । किस कारण ?
“उवसंहारप्पसप्पदो” सकोच तथा विस्तारसे ; शरीरनामकर्मसे उत्पन्न विस्तार और
सकोचरूप (जीवके) धर्मसे—ऐसा अर्थ है ।

यहा दृष्टात क्या है ? जैसे दीपक बड़े बर्तनमे रखा गया हो तो उस बर्तनके
भीतर सबको प्रकाशित करता है और छोटे बर्तनमे रखा गया हो तो उस बर्तनमें
सबको प्रकाशित करता है । तथा, अन्य किस कारणसे यह जीव देह प्रमाण है ?
'असमुहदो' असमुद्घातके कारण । वेदना, कषाय, विक्रिया, मारणान्तिक, तैजस,
आहारक और केवली नामक सात प्रकारका समुद्घात छोड़ दिया होनेके कारण
(—समुद्घातके अतिरिक्तका कथन होनेके कारण) । सात समुद्घातोका लक्षण इस
प्रकार कहा है—

१-यहाँ एक ही भावको भिन्न और अभिन्न दिखाकर अनेकान्तस्वरूप सिद्ध किया है ।

समुग्धादो । तेजाहारो छट्टो सत्तमओ केवलीणं तु ॥ १ ॥” तद्यथा—“मूलशरीरम-
छंडिय उत्तरदेहस्स जीवर्पिंडस्स । णिग्गमणं देहादो हवदि समुग्धादयं णाम ॥ १ ॥”
तीव्रवेदनानुभवान्मूलशरीरमत्यक्त्वा आत्मप्रदेशानां बहिर्निर्गमनमिति वेदनासमुद्-
घातः । १ । तीव्रकषायोदयान्मूलशरीरमत्यक्त्वा परस्य घातार्थमात्मप्रदेशानां बहिर्गमन-
मिति कषायसमुद्घातः । २ । मूलशरीरमपरित्यज्य किमपि विकर्तुमात्मप्रदेशानां बहि-
र्गमनमिति विक्रियासमुद्घातः । ३ । मरणान्तसमये मूलशरीरमपरित्यज्य यत्र कुत्र-
चिद्बद्धमायुस्तत्प्रदेशं स्फुटितुमात्मप्रदेशानां बहिर्गमनमिति मारणान्तिकसमुद्घातः । ४ ।
स्वस्य मनोनिष्ठजनकं किञ्चित्कारणान्तरमवलोक्य समुत्पन्नक्रोधस्य संयमनिधानस्य
महामुनेर्मूलशरीरमपरित्यज्य सिन्दूरपुञ्जप्रभो दीर्घत्वेन द्वादशयोजनप्रमाणः सूच्यङ्गुल-
संख्येयभागमूलविस्तारो नवयोजनाग्रविस्तारः काहलाकृतिपुरुषो वामस्कन्धान्निर्गत्य वाम-

“वेयणकसायवेउव्वियो मारणंतिओ समुग्धादो ।

तेजाहारो छट्टो सत्तमओ केवलीणं तु ॥”

“(१) वेदना, (२) कषाय, (३) विक्रिया, (४) मारणातिक, (५) तैजस, (६) आहार, और (७) केवली—ये सात समुद्घात है ।” वे इस प्रकार—“अपना
मूल शरीर छोड़े बिना (तैजस और कार्माणरूप) उत्तर देहके साथ-साथ जीव-
प्रदेशोके शरीरसे बाहर निकलनेको समुद्घात कहते है ।” तीव्र पीड़ाका अनुभव
होनेसे, मूल शरीर छोड़े बिना, आत्मप्रदेशोका बाहर निकलना उसे वेदनासमुद्घात
कहते है ॥१॥ तीव्र कषायके उदयसे, मूल शरीरको छोड़े बिना, अन्यका घात करनेके
लिये आत्मप्रदेशोका बाहर निकलना उसे कषायसमुद्घात कहते है ॥ २ ॥ मूल
शरीर छोड़े बिना, किसी भी प्रकारकी विक्रिया करनेके लिये आत्मप्रदेशोका बाहर
निकलना उसे विक्रियासमुद्घात कहते है ॥ ३ ॥ मृत्युके समय, मूल शरीरको
छोड़े बिना, जब इस आत्माने कहीका आगामी आयुष्य बाधा हो उस प्रदेशको स्पर्श
करनेके लिये आत्मप्रदेशोका बाहर निकलना, उसे मारणान्तिकसमुद्घात कहते
हैं ॥४॥ अपने मनको अनिष्ट उत्पन्न करनेवाला कोई अन्य कारण देखकर जिसको
क्रोध उत्पन्न हुआ है ऐसे संयमके निधानरूप महामुनिके, मूल शरीरको छोड़े बिना,
सिंदूरके पिंड समान प्रकाशयुक्त, बारह योजन लम्बा, सूच्यंगुलके संख्यातवे भाग

१-गोम्मटसार जीवकांड गाथा-६६६

२-गोम्मटसार जीवकांड गाथा-६६७

प्रदक्षिणेन हृदये निहितं विरुद्धं वस्तु भस्मसात्कृत्य तेनैव संयमिना सह स च भस्म
 व्रजति द्वीपायनवत्, असावशुभस्तेजस्समुद्घातः । लोकं व्याधिदुर्भिक्षादिपीडित-
 मवलोक्य समुत्पन्नकृपस्य परमसंयमनिधानस्य महर्षेर्मूलशरीरमपरित्यज्य शुभ्राकृतिः
 प्रागुक्तदेहप्रमाणः पुरुषो दक्षिणप्रदक्षिणेन व्याधिदुर्भिक्षादिकं स्फोटयित्वा पुनरपि
 स्वस्थाने प्रविशति, असौ शुभरूपस्तेजस्समुद्घातः । ५ । समुत्पन्नपदपदार्थभ्रान्तेः
 परमर्द्धिसंपन्नस्य महर्षेर्मूलशरीरमपरित्यज्य शुद्धस्फटिकाकृतिरेकहस्तप्रमाणः पुरुषो
 मस्तकमध्यान्निर्गत्य यत्र कुत्रचिदन्तर्मुहूर्तमध्ये केवलज्ञानिनं पश्यति, तद्दर्शनाच्च
 स्वाश्रयस्य मुनेः पदपदार्थनिश्चयं समुत्पाद्य पुनः स्वस्थाने प्रविशति, असावाहारसमुद्-
 घातः । ६ । सप्तमः केवललिनां दण्डकपाटप्रतरपूरणः सोऽयं केवलिसमुद्घातः । ७ ।

नयविभागः कथ्यते—“ववहारा” अनुपचरितासद्भूतव्यवहारनयात् ।
 “णिच्छयणयदो असंखदेसो वा” निश्चयनयतो लोकाकाशप्रमितासंख्येयप्रदेशप्रमाणः ।

जितना मूलविस्तारवाला और नव योजनके अग्र-विस्तारवाला; काहल (बिलाव)के
 आकारवाला एक पुतला, बाये कन्धेमेसे निकलकर बायी प्रदक्षिणा देकर हृदयमे रही
 हुई विरुद्ध वस्तुको भस्मीभूत करके, उसी समयी (मुनि)के साथ स्वयं भी भस्मीभूत
 हो जाता है, द्वीपायन मुनिके समान; यह अशुभतैजस-समुद्घात है । लोकको व्याधि,
 दुष्काल आदिसे पीडित देखकर जिसको दया उत्पन्न हुई है ऐसे परम संयमके निधान
 महर्षिके मूल शरीरको छोड़े बिना पूर्व कथित देहप्रमाणवाला, शुभआकृतिवाला
 पुतला दाये कंधेसे निकलकर, दायी ओर प्रदक्षिणा करके, व्याधि, दुष्काल आदि
 मिटाकर पुन अपने मूल स्थानमें प्रवेश करता है यह शुभतैजससमुद्घात है ॥५॥
 पद और पदार्थमें जिसको कोई सशय उत्पन्न हुआ है ऐसे परम ऋद्धिवाले महर्षिके
 मूल शरीरको छोड़े बिना, शुद्ध स्फटिक जैसी आकृतिवाला, एक हाथका पुरुषाकार
 पुतला मस्तकके मध्यमेसे निकलकर अंतर्मुहूर्तमे जहा कही केवलज्ञानीको देखता है
 वहा उनके दर्शनसे, अपने आश्रयभूत मुनिको पद और पदार्थका निश्चय उत्पन्न करके
 फिर अपने स्थानमे प्रवेश करता है उसे आहारक-समुद्घात कहते हैं ॥६॥ केवलियोके
 दण्ड-कपाट-प्रतर-लोकपूरणरूप होते हैं वह सातवा केवलीसमुद्घात है ॥७॥

नयविभाग कहते हैं—“ववहारा” अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनयसे ऊपर कहे
 अनुसार (जीव अपने शरीरप्रमाण है) । “णिच्छयणयदो असंखदेसो वा” निश्चयनयसे
 लोकाकाश प्रमाण असंख्य प्रदेशी है । ‘वा’ यहा जो ‘वा’ शब्द प्रयुक्त किया है

‘वा’ शब्देन तु स्वसंवित्तिसमुत्पन्नकेवलज्ञानोत्पत्तिप्रस्तावे ज्ञानापेक्षया व्यवहारनयेन लोकालोकव्यापकः; न च प्रदेशापेक्षया नैयायिकमीमांसकसांख्यमतवत् । तथैव पञ्चेन्द्रियमनोविषयविकल्परहितसमाधिकाले स्वसंवेदनलक्षणबोधसद्भावेऽपि बहिर्विषयेन्द्रियबोधाभावाज्जडः, न च सर्वथा सांख्यमतवत् । तथा रागादिविभावपरिणामापेक्षया शून्योऽपि भवति, न चानन्तज्ञानाद्यपेक्षया बौद्धमतवत् । किञ्च—अणुमात्रशरीरशब्देनात्र उत्सेधघनाङ्गुलासंख्येयभागप्रमितं लब्धपूर्णसूक्ष्मनिगोदशरीरं ग्राह्यम्, न च पुद्गलपरमाणुः । गुरुशरीरशब्देन च योजनसहस्रपरिमाणं महामत्स्यशरीरं मध्यमावगाहेन मध्यमशरीराणि च । इदमत्रतात्पर्यम्—देहममत्वनिमित्तेन देहं गृहीत्वा संसारे परिभ्रमति तेन कारणेन देहादिममत्वं त्यक्त्वा निर्मोहनिजशुद्धात्मनि भावना कर्तव्येति । एवं स्वदेहमात्रव्याख्यानानेन गाथा गता ॥ १० ॥

उससे ऐसा सूचित होता है कि—‘स्वसंवित्तिसे उत्पन्न केवलज्ञानकी उत्पत्ति होने पर ज्ञान-अपेक्षासे व्यवहारनयसे जीव लोकालोक व्यापक है परन्तु नैयायिक, मीमांसक और सांख्यमतवालोकी मान्यतानुसार प्रदेशोकी अपेक्षासे लोकालोकव्यापक नहीं है । उसी प्रकार पांच इन्द्रिय और मनके विषयके विकल्पोसे रहित समाधिके समय स्वसंवेदनलक्षण ज्ञानका सद्भाव होने पर भी बाह्य विषयवाले इन्द्रियज्ञानका अभाव होनेकी अपेक्षासे आत्माको जड कहा है, परन्तु सांख्यमतकी मान्यतानुसार सर्वथा जड़ नहीं है । उसी प्रकार रागादि विभावपरिणामोंकी अपेक्षासे (आत्मा) शून्य भी है, परन्तु बौद्ध मतके समान अनंत ज्ञानादिकी अपेक्षासे शून्य नहीं है ।

विशेष—(गाथामे) ‘अणु’ मात्र शरीर कहा वहा उत्सेधघनाङ्गुलके असख्यातवें भाग-प्रमाण लब्धि-अपर्याप्तिक सूक्ष्म-निगोदका शरीर समझना परन्तु पुद्गल-परमाणु नहीं समझना । उसी प्रकार ‘गुरुशरीर’ शब्दसे ‘एक हजार योजनप्रमाण महामत्स्यका शरीर’ समझना और मध्यम अवगाहन द्वारा मध्यम शरीर समझना ।

यहा यह तात्पर्य है—शरीरके ममत्वके कारण, जीव शरीर ग्रहण करके संसारमें परिभ्रमण करता है अतः देहादिका ममत्व त्यागकर निर्मोह निज शुद्धात्मामें भावना करनी चाहिए ।

इस प्रकार जीवके स्वदेह प्रमाणत्वके व्याख्यानसे गाथा पूर्ण हुई ॥१०॥

१-शुद्ध आत्माकी स्वसंवेदन-क्रियाको ‘स्वसंवित्ति’ कहते हैं ।

अतः परं गाथात्रयेण नयविभागेन संसारिजीवस्वरूपं तदवसाने शुद्धजीवस्वरूपं च कथयति । तद्यथा :—

पुढविजलतेयवाऊ वणफफदी विविहथावरेइंदी ।

विगतिगचदुपंचक्खा तसजीवा होंति संखादा ॥ ११ ॥

पृथिवीजलतेजोवायुवनस्पतयः विविधस्थावरैकेन्द्रियाः ।

द्विकत्रिकचतुःपञ्चाक्षाः त्रसजीवाः भवन्ति संखादयः ॥११॥

व्याख्या—“होंति” इत्यादिव्याख्यानं क्रियते । “होंति” अतीन्द्रियामूर्तनिज-परमात्मस्वभावानुभूतिजनितसुखामृतरसस्वभावमलभमानास्तुच्छमपीन्द्रियसुखमभिलषन्ति छद्मस्थाः, तदासक्ताः सन्त एकेन्द्रियादिजीवानां घातं कुर्वन्ति तेनोपार्जितं यत्रसस्थावर-नामकर्म तदुदयेन जीवा भवन्ति । कथंभूता भवन्ति ? “पुढविजलतेयवाऊ वणफफदी विविहथावरेइंदी” पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः । कतिसंख्योपेता ? विविधा आगम-कथितस्वकीयस्वकीयान्तर्भेदैर्बहुविधाः । स्थावरनामकर्मोदयेन स्थावरा, एकेन्द्रियजाति-

उसके पश्चात् तीन गाथाओ द्वारा नयविभागपूर्वक ससारी जीवका स्वरूप और उसके अतमे शुद्धजीवका स्वरूप कहते हैं । वह इस प्रकारः—

गाथा ११

गाथार्थः—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति आदि विविध प्रकारके स्थावर, एकेन्द्रिय जीव हैं और शखादि दो, तीन, चार तथा पाच इन्द्रियवाले त्रस जीव हैं ।

टीकाः—“होंति” आदि पदोकी व्याख्याकी जाती है । “होंति” छद्मस्थ जीव, अतीन्द्रिय अमूर्त निजपरमात्मस्वभावकी अनुभूतिसे उत्पन्न सुखरूपी अमृतरसस्व-भावको प्राप्त न करता हुआ, इन्द्रियसुख तुच्छ होने पर भी उसकी अभिलाषा करता है, उसमे आसक्त होकर एकेन्द्रियादि जीवोंका घात करता है, उस जीवघातसे उपार्जित त्रस और स्थावर नामकर्मके उदयसे जीव होते हैं । कैसे होते हैं ? “पुढविजलतेयवाऊ वणफफदी विविहथावरेइंदी” पृथ्वी, जल, तेज, वायु और वनस्पति—ऐसे प्रकारके होते हैं, आगममे कहे हुए अपने-अपने अनेक प्रकारके अवान्तर भेद सहित हैं । स्थावर नाम कर्मके उदयसे स्थावर, एकेन्द्रियजातिनामकर्मके उदयसे

भूमि तेज जल वृक्ष समीर, एकेन्द्रिय थावर जु शरीर ।

वे ते चउ पण इन्द्रिय जीव, त्रस है संख आदि भवनीव ॥ ११ ॥

नामकर्मोदयेन स्पर्शनेन्द्रिययुक्ता एकेन्द्रियाः, न केवलमित्थं भूताः स्थावरा भवन्ति । “विगतिगचदुपंचक्खा तसजीवा” द्वित्रिचतुः पञ्चाक्षास्त्रसनामकर्मोदयेन त्रसजीवा भवन्ति । ते च कथंभूताः ? “संखादी” शङ्खादयः । स्पर्शनरसनेन्द्रियद्वययुक्ताः । शङ्खशुक्तिकृम्यादयो द्वीन्द्रियाः । स्पर्शनरसनघ्राणेन्द्रियत्रययुक्ताः कुन्थुपिपीलिकायुकाम-त्कुणादयस्त्रीन्द्रियाः, स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुरिन्द्रियचतुष्टययुक्ता दंशमशकमक्षिकाभ्रमरादयश्च-तुरिन्द्रियाः, स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्रेन्द्रियपञ्चयुक्ता मनुष्यादयः पञ्चेन्द्रिया इति । अयमत्रार्थः— विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावनिजपरमात्मस्वरूपभावनोत्पन्नपारमार्थिकसुखमलभ-माना इन्द्रियसुखासक्ता एकेन्द्रियादिजीवानां वधं कृत्वा त्रसस्थावरा भवन्तीत्युक्तं पूर्वं तस्मात्त्रसस्थावरोत्पत्तिविनाशार्थं तत्रैव परमात्मनि भावना कर्त्तव्येति ॥ ११ ॥

तदेव त्रसस्थावरत्वं चतुर्दशजीवसमासरूपेण व्यक्तीकरोति :—

समणा अमणा गेया पंचिन्द्रिय शिम्मणा परे सव्वे ।

वादरसुहमेइंदी सव्वे पज्जत्त इदरा य ॥ १२ ॥

स्पर्शेन्द्रियसहित एकेन्द्रिय होते है । वे मात्र ऐसे स्थावर ही नहीं होते । “विगति-गचदुपंचक्खा तसजीवा” दो, तीन, चार तथा पाच इन्द्रियोंवाले त्रसनामकर्मके उदयसे, त्रस जीवभी होते है । वे कैसे है ? “संखादी” शख आदि । स्पर्शन और रसना— इन दो इन्द्रियोंवाले शख, छीप (सीप), कृमि आदि दो इन्द्रिय जीव है; स्पर्शन, रसना, घ्राण—ये तीन इन्द्रियवाले कुन्थु, पिपीलिका (कीड़ी, चीटी), जूं, खटमल आदि तीन इन्द्रिय जीव है; स्पर्शन, रसना, घ्राण और चक्षु—ये चार इन्द्रियोंवाले डांस, मच्छर, मक्खी, भौरा आदि चतुरिन्द्रिय जीव है, स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्रेन्द्रिय—ये पाच इन्द्रियोंवाले मनुष्यादि पचेन्द्रिय जीव है ।

साराश यह है कि—विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावी निज परमात्माके स्वरूपकी भावनासे उत्पन्न पारमार्थिक सुखको प्राप्त न करते हुए, इन्द्रियसुखमे आसक्त जीव एकेन्द्रियादि जीवोंका वध करके त्रस और स्थावर होते है—इस प्रकार पूर्वमें कहा है, अतः त्रस और स्थावरमे उत्पत्ति न हो उसके लिये उसी परमात्मामे भावना करना चाहिये ॥११॥

अब वही त्रस और स्थावरपना चौदह जीवसमासरूपसे प्रगट करते हैः—

मन-बिन अर मन-सहित सुजान, पंचेन्द्रिय पर सव मन-हानि ।

वादर सूक्ष्म एकहि अक्ष, सव पर्यापत इतर प्रत्यक्ष ॥ १२ ॥

समनस्काः अमनस्काः ज्ञेयाः पंचेन्द्रियाः निर्मनस्काः परे सर्वे ।
बादरसूक्ष्मैकेन्द्रियाः सर्वे पर्याप्ताः इतरे च ॥ १२ ॥

व्याख्या—“समणा अमणा” समस्तशुभाशुभविकल्पातीतपरमात्मद्रव्यविलक्षणं नानाविकल्पजालरूपं मनो भण्यते, तेन सह ये वर्तन्ते ते समनस्काः संज्ञिनः, तद्विपरीता अमनस्का असंज्ञिनः । “ज्ञेया” ज्ञेया ज्ञातव्याः । “पंचिन्द्रिय” ते संज्ञिनस्तथैवासंज्ञिनश्च पञ्चेन्द्रियाः । एवं संज्ञिसंज्ञिपञ्चेन्द्रियास्तिर्यञ्च एव, नारकमनुष्यदेवाः संज्ञिपञ्चेन्द्रिया एव । “णिम्मणा परे सव्वे” निर्मनस्काः पञ्चेन्द्रियात्सकाशात् परे सर्वे द्वित्रिचतुरिन्द्रियाः । “बादरसुहमेइंदी” बादरसूक्ष्मा एकेन्द्रियास्तेऽपि यदष्टपत्रपद्माकारं द्रव्यमनस्तदाधारेण शिक्षालापोपदेशादिग्राहकं भावमनश्चेति तदुभयाभावादसंज्ञिन एव । “सव्वे पञ्च इदरा य” एवमुक्तप्रकारेण संज्ञिसंज्ञिरूपेण पञ्चेन्द्रियद्वयं

गाथा-१२

गाथार्थः—पचेन्द्रिय जीव सज्ञी और असज्ञी ऐसे दो प्रकारके जानना । शेष सूक्ष्म जीव मनरहित असज्ञी है । एकेन्द्रिय जीव बादर और सूक्ष्म दो प्रकारके है । ये सब जीव पर्याप्त और अपर्याप्त होते है ।

टीकाः—“समणा अमणा” समस्त शुभाशुभविकल्परहित परमात्मद्रव्यसे विलक्षण अनेक प्रकारके विकल्पोके जालरूप मन है । जो जीव उस मनसहित हो उन्हें ‘समनस्क’-संज्ञी और उनसे विपरीत (अर्थात् मनरहित) हो उन्हें ‘अमनस्क’-असज्ञी “ज्ञेया”—जानना । “पंचिन्द्रिय” ऐसे अर्थात् सज्ञी और असज्ञी इन दो भेदवाले पचेन्द्रिय जीव होते है । इस प्रकार सज्ञी पचेन्द्रिय और असज्ञी पचेन्द्रिय इन दो भेदवाले तिर्यञ्च ही होते है, नारकी, मनुष्य और देव सज्ञी पचेन्द्रिय ही होते है । “णिम्मणा परे सव्वे” पचेन्द्रियके अतिरिक्त अन्य सब द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीव अमनस्क ही होते है । “बादरसुहमेइंदी” बादर और सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव है वे भी, आठ पाखड़ीवाले कमलके आकारवाला जो द्रव्यमन और उसके आधारसे शिक्षा, वचन, उपदेशादिको ग्रहण करनेवाला जो भावमन-इन दोनोंसे रहित होनेके कारण असज्ञी ही है । “सव्वे पञ्च इदरा य” उपरोक्त प्रकारसे सज्ञी और असज्ञीरूपसे पचेन्द्रियके दो भेद, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रियरूपसे विकलत्रयके तीन भेद

द्वित्रिचतुरिन्द्रियरूपेण विकलेन्द्रियत्रयं बादरसूक्ष्मरूपेणैकेन्द्रियद्वयं चेति सप्त भेदाः ।
 “आहारसरीरिन्दिय पञ्चती आणपाणभासमणो । चत्वारिपंचष्वपियएइन्द्रियवियलसण्णिसण्णीणं । १ ।” इति गाथाकथितक्रमेण ते सर्वे प्रत्येकं स्वकीयस्वकीयपर्याप्तिसंभवात्सप्त पर्याप्ताः सप्तापर्याप्ताश्च भवन्ति । एवं चतुर्दश जीवसमासा ज्ञातव्यास्तेषां च “इन्दियकायाऊणिय पुण्णापुण्णोसु पुण्णगे आणा । वेइन्दियादिपुण्णे वचीमणो सण्णिसण्णेव । १ । दस सण्णीणं पाणा सेसेगूणंति मस्सवे ऊणा । पञ्जतेसिदरेसु य

तथा बादर और सूक्ष्मरूपसे एकेन्द्रियके दो भेद ऐसे कुल सात भेद हुए । “आहारसरीरिन्दिय पञ्चती आणपाणभासमणो । चत्वारिपंचष्वपियएइन्द्रियवियलसण्णिसण्णीणं ॥”^१
 [आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मन—ये छह पर्याप्ति है । इनमेंसे एकेन्द्रिय जीवको चार (आहार, शरीर, स्पर्शेन्द्रिय और श्वासोच्छ्वास), विकलेन्द्रिय तथा असञ्जी पचेन्द्रिय जीवको (मनके अतिरिक्त) पांच और सञ्जी पचेन्द्रिय जीवको छह पर्याप्ति होती है ।] इस गाथामे कहे हुए क्रमसे वे सब (सात प्रकारके) जीव अपनी-अपनी पर्याप्ति पूर्ण होनेसे पर्याप्त होते हैं अर्थात् ये सात पर्याप्त होते हैं । और अपनी पर्याप्ति पूर्ण नहीं होनेसे सात अपर्याप्त होते हैं । इस प्रकार चौदह जीवसमास जानना ।

“इन्दियकायाऊणिय पुण्णापुण्णोसु पुण्णगे आणा ।
 वेइन्दियादिपुण्णे वचीमणो सण्णिसण्णेव ॥
 दस सण्णीणं पाणा सेसेगूणंति मस्स वेऊणा ।
 पञ्जतेसिदरेसु य सत्त दुगे सेसेगूणा ॥”^२

[“इन्द्रिय, काय और आयुष्य—ये तीन प्राण पर्याप्त और अपर्याप्त दोनोंको होते हैं । श्वासोच्छ्वास पर्याप्तको ही होता है । वचनबलप्राण दो इन्द्रिय आदि पर्याप्तको ही होते हैं, मनोबलप्राण सञ्जी पर्याप्तको ही होता है । पर्याप्त अवस्थामें सञ्जी पचेन्द्रियोको दस प्राण, असञ्जी पचेन्द्रियोको (मनके बिना) नौ प्राण, चतुरिन्द्रियको (मन और कर्णेन्द्रियके बिना) आठ प्राण, त्रीन्द्रियको (मन, कर्ण और चक्षु इन्द्रियके बिना) सात प्राण, द्वीन्द्रियको (मन, कर्ण, चक्षु और घ्राणेन्द्रियके बिना)

१—गोम्मटसार जीवकाड गाथा ११८

२—गोम्मटसार जीवकाड गाथा १३१-१३२

सत्तदुगे सेसगेगूणा । २ ।” इति गाथाद्वयकथितक्रमेण यथासंभवमिन्द्रियादिदश-
प्राणाश्च विज्ञेयाः । अत्रैतेभ्यो भिन्नं निजशुद्धात्मतत्त्वमुपादेयमिति भावार्थः ॥ १२ ॥

अथ शुद्धपारिणामिकपरमभावग्राहकेण शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन शुद्धबुद्धैकस्वभावा
अपि जीवाः पश्चादशुद्धनयेन चतुर्दशमार्गणास्थानचतुर्दशगुणस्थानसहिता भवन्तीति
प्रतिपादयति :—

मग्गणगुणठाणेहि य चउदसहि हवंति तह असुद्धणया ।

विण्णेया संसारी सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया ॥ १३ ॥

मार्गणागुणस्थानैः चतुर्दशभिः भवन्ति तथा अशुद्धनयात् ।

विज्ञेयाः संसारिणः सर्वे शुद्धाः खलु शुद्धनयात् ॥ १३ ॥

छह प्राण और एकेन्द्रियको (मन, कर्ण, चक्षु, घ्राण, रसना तथा वचनके बिना)
चार प्राण होते हैं । अपर्याप्त जीवोमे संज्ञी तथा असंज्ञी—इन दोनों पचेन्द्रियोको
श्वासोच्छ्वास, वचनबल और मनोबलके बिना सात प्राण होते हैं और चतुरिन्द्रियसे
एकेन्द्रिय तक क्रम-क्रमसे एक-एक प्राण घटता है”] इन दोनों गाथाओंमें कहे हुए
क्रमानुसार यथासंभव इन्द्रियादिक दश प्राण समझना ।

यहा भावार्थ यह है कि इनसे (इन्द्रियो, पर्याप्तियों, प्राणो आदिसे) भिन्न
निजशुद्धात्मतत्त्व उपादेय है ॥१२॥

अब 'शुद्ध-पारिणामिक-परमभावग्राहक शुद्धद्रव्यार्थिकनयसे जीव शुद्ध-बुद्ध-
एक-स्वभाववाले हैं तो भी पश्चात् अशुद्धनयसे चौदह मार्गणास्थान और चौदह
गुणस्थान सहित होते हैं इस प्रकार प्रतिपादन करते हैं:—

गाथा-१३

गाथार्थः—सर्वं संसारी जीव अशुद्धनयसे मार्गणास्थान और गुणस्थानकी
अपेक्षासे चौदह-चौदह प्रकारके हैं । शुद्धनयसे यथार्थमें सब संसारी जीव शुद्ध जानना ।

१-देखो फूटनोट गाथा ४

चौदह मार्गणा गुणस्थान, नय अशुद्ध संसारी मान ।

निश्चय सर्व जीव हैं शुद्ध, नांही भेद चेतन नित बुद्ध ॥ १३ ॥

व्याख्या—“मग्गणगुणठाणेहि य हवंति तह विण्णयेया” यथा पूर्वसूत्रोदित-चतुर्दशजीवसमासैर्भवन्ति मार्गणागुणस्थानैश्च तथा भवन्ति सम्भवन्तीति विज्ञेया ज्ञातव्याः । कतिसंख्योपेतैः ? “चउदसहि” प्रत्येकं चतुर्दशभिः । कस्मात् ? “असुद्धणया” अशुद्धनयात् सकाशात् । इत्थंभूताः के भवन्ति ? “संसारी” संसारिजीवाः । “सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया” त एव सर्वे संसारिणः शुद्धाः सहजशुद्धज्ञायकैकस्वभावाः । कस्मात् ? शुद्धनयात् शुद्धनिश्चयनयादिति । अथागमप्रसिद्धगाथाद्वयेन गुणस्थाननामानि कथयति । “मिच्छो सासण मिस्सो अविरदसम्मो य देसविरदो य । विरया पमत्त इयरो अपुव्व अणियठ्ठि सुहमो य । १ । उवसंत खीणमोहो सजोगिकेवल्लिजिणो अजोगी य । चउदस गुणठाणाणि य कप्पेण सिद्धा य णायव्वा । २ ।” इदानीं तेषामेव गुणस्थानानां प्रत्येकं संक्षेपलक्षणं कथ्यते । तथाहि—सहजशुद्धकेवलज्ञानदर्शन-रूपाखण्डैकप्रत्यक्षप्रतिभासमयनिजपरमात्मप्रभृतिषड्द्रव्यपञ्चास्तिकायसप्ततत्त्वनवपदार्थेषु-मूढत्रयादिपञ्चविंशतिमलरहितं वीतरागसर्वज्ञप्रणीतनयविभागेन यस्य श्रद्धानं नास्ति

टीकाः—“मग्गणगुणठाणेहि य हवंति तह विण्णयेया” जिस प्रकार पूर्व गाथामें कहे हुए चौदह जीवसमासोसे जीव चौदह भेदवाले होते हैं उसी प्रकार मार्गणा और गुणस्थानसे भी होते हैं इस प्रकार जानना । (मार्गणा और गुणस्थानसे) कितनी सख्यावाले होते हैं ? “चउदसहि” प्रत्येक चौदह-चौदह सख्यावाले होते हैं । किस अपेक्षासे ? “असुद्धणया” अशुद्धनयकी अपेक्षासे । इस प्रकारके कौन होते हैं ? “संसारी” संसारी जीव होते हैं । “सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया” वे ही सब संसारी जीव शुद्ध हैं अर्थात् जिनका सहजशुद्धज्ञायक एकस्वभाव है, ऐसे हैं । किस अपेक्षासे ? शुद्धनयकी अपेक्षासे—शुद्धनिश्चयनयकी अपेक्षासे ।

अब आगम प्रसिद्ध दो गाथाओ द्वारा गुणस्थानोके नाम कहते हैं : मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र, -अविरतसम्यक्त्व, देशविरत, प्रमत्तविरत, अप्रमत्तविरत, अपूर्व-करण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसापराय, उपशातमोह, क्षीणमोह, सयोगीकेवली और अयोगीकेवली । इस प्रकार क्रमपूर्वक चौदह गुणस्थान 'जानना ।

अब उन गुणस्थानोमेसे प्रत्येकका संक्षिप्त लक्षण कहते हैं । वह इस प्रकार है—सहजशुद्धकेवलज्ञानदर्शनरूप अखंड-एक-प्रत्यक्ष-प्रतिभासमय निजपरमात्मा आदि छह द्रव्य, पांच अस्तिकाय, सात तत्त्व और नौ पदार्थोमे, तीन मूढता आदि पच्चीस

स मिथ्यादृष्टिर्भवति । पाषाणरेखासदृशानन्तानुबन्धिक्रोधमानमायालोभान्यतरोदयेन प्रथमौपशमिकसम्यक्त्वात्पतितो मिथ्यात्वं नाद्यापि गच्छतीत्यन्तरालवर्ती सासादनः । निजशुद्धात्मादितत्त्वं वीतरागसर्वज्ञप्रणीतं परप्रणीतं च मन्यते यः स दर्शनमोहनीय-भेदमिश्रकर्मोदयेन दधिगुडमिश्रभाववत् मिश्रगुणस्थानवर्ती भवति । अथ मतं—येन केनाप्येकेन मम देवेन प्रयोजनं तथा सर्वे देवा वन्दनीया न च निन्दनीया इत्यादि-वैनयिकमिथ्यादृष्टिः संशयमिथ्यादृष्टिर्वा तथा मन्यते तेन सह सम्यगमिथ्यादृष्टेः को विशेष इति ? अत्र परिहारः—“स सर्वदेवेषु सर्वसमयेषु च भक्तिपरिणामेन येन केनाप्येकेन मम पुण्यं भविष्यतीति मत्वा संशयरूपेण भक्तिं कुरुते निश्चयो नास्ति । मिश्रस्य पुनरुभयत्र निश्चयोऽस्तीति विशेषः ।” स्वाभाविकानन्तज्ञानाद्यनन्तगुणाधार भूतं निजपरमात्मद्रव्यमुपादेयम्, इन्द्रियसुखादिपरद्रव्यं हि हेयमित्यर्हत्सर्वज्ञप्रणीतनिश्चय-

दोष रहित, वीतराग-सर्वज्ञ प्रणीत नयविभाग 'अनुसार जिस जीवको श्रद्धान नही है वह जीव 'मिथ्यादृष्टि' है ॥१॥ पत्थरमें उकेरी हुई रेखा समान अनंतानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभमेसे किसी एकके उदय द्वारा प्रथम-उपशमसम्यक्त्वसे गिरकर जहां तक मिथ्यात्वको प्राप्त न हो वहां तक सम्यक्त्व और मिथ्यात्व इन दोनोंके बीचके परिणामवाला जीव 'सासादन' है ॥२॥ निजशुद्धात्मादि वीतराग-सर्वज्ञप्रणीत तत्त्वोको और परप्रणीत तत्त्वोको भी जो मानता है वह मिश्रदर्शनमोहनीयकर्मके उदयसे दही और गुडके मिश्रणयुक्त पदार्थोकी भांति 'मिश्रगुणस्थान' वाला जीव है ॥३॥

यहा शका—‘जिस किसी भी (चाहे जो हो) एक देवसे हमे तो प्रयोजन है’ तथा ‘सभी देव वदनीय है, किसी भी देवकी निन्दा नही करनी चाहिये’ इत्यादि वैनयिक मिथ्यादृष्टि अथवा संशय मिथ्यादृष्टि मानता है तो उसमे और सम्यग-मिथ्यादृष्टिमें क्या अन्तर है ? उसका उत्तर—वह तो सब देवोंके प्रति और सब शास्त्रोके प्रति भक्तिके परिणाम करनेके कारण किसी भी एकसे मुझे पुण्य होगा—ऐसा मानकर संशयरूपसे भक्ति करता है, उसे किसी एक देवमें निश्चय नही है और मिश्रगुणस्थानवर्ती जीवको तो दोनोंमें निश्चय है;—यह अन्तर है ।

“स्वाभाविक अनतज्ञानादि अनत गुणके आधारभूत निजपरमात्मद्रव्य उपादेय है और इन्द्रियसुखादि परद्रव्य हेय है” इस प्रकार अर्हत्सर्वज्ञप्रणीत १-सर्वज्ञप्रणीत नयविभागमे शुद्धबुद्ध एकस्वभाव परमात्मद्रव्य उपादेय है, अन्य सर्व हेय है । देखो गाथा १५ भूमिका तथा चूलिका ।

व्यवहारनयसाध्यसाधकभावेन मन्यते परं किन्तु भूमिरेखादिसदृशक्रोधादिद्वितीयकषायो-
दयेन मारणनिमित्तं तलवरगृहीततस्करवदात्मनिन्दासहितः सन्निन्द्रियसुखप्रनुभवतीत्य-
विरतसम्यग्दृष्टैर्लक्षणम् । यः पूर्वोक्तप्रकारेण सम्यग्दृष्टिः सन् भूमिरेखादिसमानक्रोधादि-
द्वितीयकषायोदयाभावे सत्यभ्यन्तरे निश्चयनयेनैकदेशरागादिरहितस्वाभाविकसुखानु-
भूतिलक्षणेषु बहिर्विषयेषु पुनरेकदेशहिंसानृतास्तेयाब्रह्मपरिग्रहनिवृत्तिलक्षणेषु “दंसणवय-
सामाङ्ग्यपोसहसच्चिराद्भत्ते य । बम्हारंभपरिग्गह अणुमण उद्दिट्ट देसविरदो य ।१।”

‘निश्चय-व्यवहारनयरूप साध्य-साधकभावसे मानता है, परंतु भूमिकी रेखाके समान
क्रोधादि अप्रत्याख्यान कषायके उदयसे, मारनेके लिये कोतवाल द्वारा पकड़े गये
चोरकी भांति, आत्मनिन्दा सहित वर्तता हुआ इन्द्रियसुखका अनुभव करता है वह
‘अविरत सम्यग्दृष्टि’ का लक्षण है ॥ ४ ॥ जो पूर्वोक्त प्रकारसे सम्यग्दृष्टि होता
हुआ भूमिकी रेखाके समान क्रोधादि अप्रत्याख्यानावरणरूप द्वितीय कषायके उदयका
अभाव होने पर, ‘दंसणवयसामाङ्ग्य पोसहसच्चिराद्भत्ते य । बम्हारंभपरिग्गह अणुमण
उद्दिट्ट देसविरदो य ।१।’ (दर्शन, व्रत, सामायिक, प्रोषध, सच्चित्तविरत, रात्रिभोजन-
त्याग, ब्रह्मचर्य, आरंभत्याग, परिग्रहत्याग, अनुमतित्याग और उद्दिष्टत्याग)’ इस
गाथामें कहे हुए (श्रावकोके) ग्यारह स्थानोमे—(१) अतरंगमें निश्चयनयसे एक-
देश रागादिरहित स्वाभाविक सुखकी अनुभूति जिसका लक्षण है, और (२) बाह्य
विषयोमे (व्यवहारसे) हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्म तथा परिग्रहकी एकदेश निवृत्ति

१-अविरत सम्यग्दृष्टि जीव ‘निज परमात्मद्रव्य उपादेय है और इन्द्रियसुखादि परद्रव्य हेय है’
ऐसा अतरंगमे आशिक शुद्ध परिणतिरूप परिणमित होकर निरन्तर मानता है (अर्थात्
निश्चयरूप साध्यभावसे-शुद्ध सम्यग्दर्शनभावसे परिणमित होकर निरन्तर मानता है); और
वह बाह्यमे-विकल्पमे नव तत्त्वश्रद्धानादिभावसे परिणमित होकर भी ऐसा मानता है (अर्थात्
व्यवहाररूप साधकभावसे-नव तत्त्वश्रद्धानादिरूप विकल्पभावसे भी ऐसा मानता है) ।
निश्चय-व्यवहारका ऐसा सुमेल होता है । इससे ऐसा तात्पर्य ग्रहण करना:—कोई जीव ऐसा
कहता है कि—‘मैं अतरंग शुद्धपरिणतिसे तो निज द्रव्यकी उपादेयता और परद्रव्यकी
हेयता मानता हूँ परन्तु मुझे विकल्पमे नव तत्त्वश्रद्धानादिसे विरुद्धभाव है’, तो यह बात ठीक
नहीं है, और वह जीव सम्यग्दृष्टि नहीं है । तथा कोई जीव ऐसा कहता है कि ‘मैं नव तत्त्व-
श्रद्धानादिरूप विकल्पभावमे तो निजद्रव्यकी उपादेयता और परद्रव्यकी हेयता यथार्थ मानता
हूँ परन्तु मुझे अतरंग शुद्ध परिणामन नहीं है’, तो वह जीव भी सम्यग्दृष्टि नहीं है ।

२-यह अनुभव-भोगना अनीहित वृत्तिसे-वियोगबुद्धिसे होता है और उसका स्वामित्व चतुर्थ
गुणस्थानवर्ती जीवको नहीं होता ।

इति गाथाकथितैकादशानिलयेषु वर्तते स पञ्चमगुणस्थानवर्ती श्रावको भवति । ५ । स एव सद्दृष्टिर्धूलिरेखादिसदृशक्रोधादितृतीयकषायोदयाभावे सत्यभ्यन्तरे निश्चयनयेन रागाद्युपाधिरहितस्वशुद्धात्मसंविच्चिसमुत्पन्नसुखामृतानुभवलक्षणेषु बहिर्विषयेषु पुनः साम-
स्त्येन हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहनिवृत्तिलक्षणेषु च पञ्चमहाव्रतेषु वर्तते यदा तदा दुःस्वप्ना-
दिव्यक्ताव्यक्तप्रमादसहितोऽपि षष्ठगुणस्थानवर्ती प्रमत्तसंयतो भवति । ६ । स एव जलरेखादिसदृशसंज्वलनकषायमन्दोदये सति निष्प्रमदाशुद्धात्मसंविच्चिमलजनकव्यक्ता-
व्यक्तप्रमादरहितः सप्तमगुणस्थानवर्ती अप्रमत्तसंयतो भवति । ७ । स एवातीतसंज्वलन-
कषायमन्दोदये सत्यपूर्वपरमाह्लादैकसुखानुभूतिलक्षणापूर्वकरणोपशमकक्षपकसंज्ञोऽष्टमगुण-
स्थानवर्ती भवति । ८ । दृष्टश्रुतानुभूतभोगाकांक्षादिरूपसमस्तसङ्कल्पविकल्परहितनिज-
निश्चलपरमात्मतत्त्वैकाग्रध्यानपरिणामेन कृत्वा येषां जीवानामेकसमये ये परस्परं
पृथक्कर्तुं नायान्ति ते वर्णसंस्थानादिभेदेऽप्यनिवृत्तिकरणौपशमिकक्षपकसंज्ञा द्वितीय-
कषायाद्यैकविंशतिभेदभिन्नचारित्रमोहप्रकृतिनामुपशमनक्षपणसमर्था नवमगुणस्थानवर्तिनो

जिसका लक्षण है उसमें—वर्तता है, वह पचम गुणस्थानवर्ती श्रावक है ॥५॥ जब वही सम्यग्दृष्टि धूलकी रेखा समान क्रोधादि प्रत्याख्यानावरण तीसरे कषायका उदय होने पर पांच महाव्रतोंमें—(१) अंतरंगमें निश्चयनयसे रागादि-उपाधिरहित स्व-शुद्धात्मसवेदनसे उत्पन्न सुखामृतका अनुभव जिसका लक्षण है, और (२) बाह्य विषयोमें (व्यवहारसे) हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्म तथा परिग्रहकी सपूर्णरूपसे निवृत्ति जिसका लक्षण है उसमें—वर्तता है तब, दुःस्वप्न आदि व्यक्त और अव्यक्त प्रमादसहित होने पर भी, वह छठे गुणस्थानवर्ती 'प्रमत्तसंयत' है ॥६॥ वही जीव जलकी रेखा समान संज्वलन कषायका मद उदय होने पर प्रमादरहित शुद्धात्मानु-भवमें दोष उत्पन्न करनेवाले व्यक्त और अव्यक्त प्रमादरहित वर्तता हुआ सप्तम गुण-स्थानवर्ती 'अप्रमत्तसंयत' है ॥७॥ वही (जीव) संज्वलन कषायका अत्यंत मद उदय होने पर अपूर्व (परम—आह्लादारूप एक सुखकी अनुभूति जिसका लक्षण है ऐसा) 'अपूर्वकरण-उपशमक अथवा क्षपक' नामक आठवां गुणस्थानवर्ती है ॥८॥ दृष्ट, श्रुत और अनुभूत भोगाकांक्षादिरूप समस्त सकल्प-विकल्परहित, निज निश्चल परमात्म-स्वरूपमे एकाग्र ध्यानके परिणामकी अपेक्षासे जिन जीवोंको एक समयमें परस्पर अंतर नहीं होता है वे, वर्ण और संस्थान आदिका भेद होने पर भी, 'अनिवृत्तिकरण-उपशमक अथवा क्षपक' संज्ञाके धारक, अप्रत्याख्यानावरणरूप द्वितीय कषायादि इक्कीस प्रकारकी चारित्रमोहनीय कर्मकी प्रकृतियोंके उपशम अथवा क्षयमे समर्थ

भवन्ति । ९ । सूक्ष्मपरमात्मतत्त्वभावनावलेन सूक्ष्मकृष्टिगतलोभकषायस्योपशमकाः क्षपकाश्च दशमगुणस्थानवर्तिनो भवन्ति । १० । परमोपशममूर्तिनिजात्मस्वभावसंविच्चिबलेन सकलोपशान्तमोहा एकादशगुणस्थानवर्तिनो भवन्ति । ११ । उपशमश्रेणिविलक्षणो क्षपकश्रेणिमार्गेण निष्कषायशुद्धात्मभावनावलेन क्षीणकषाया द्वादशगुणस्थानवर्तिनो भवन्ति । १२ । मोहक्षपणानन्तरमन्तर्मुहूर्तकालं स्वशुद्धात्मसंविच्चिलक्षणैकत्ववितर्का-वीचारद्वितीयशुक्लध्याने स्थित्वा तदनन्त्यसमये ज्ञानावरणदर्शनावरणान्तरायत्रयं युग-पदेकसमयेन निर्मूल्य मेघपुञ्जरविनिर्गतदिनकर इव सकलविमलकेवलज्ञानकिरणैर्लोक-लोकप्रकाशकास्त्रयोदशगुणस्थानवर्तिनो जिनभास्करा भवन्ति । १३ । मनोवचनकाय-वर्गणालम्बनकर्मादाननिमित्तात्मप्रदेशपरिस्पन्दलक्षणयोगरहिताश्चतुर्दशगुणस्थानवर्तिनो-ऽयोगिजिना भवन्ति । १४ । ततश्च निश्चयरत्नत्रयात्मककारणभूतसमयसारसंज्ञेन परम-यथाख्यातचारित्रेण चतुर्दशगुणस्थानातीताः ज्ञानावरणाद्यष्टकर्मरहिताः सम्यक्त्वाद्यष्ट-गुणान्तर्भूतनिर्नामनिर्गोत्राद्यनन्तगुणाः सिद्धा भवन्ति ।

ऐसे नवम गुणस्थानवर्ती जीव है ॥९॥ सूक्ष्म परमात्मतत्त्वकी भावनाके बलसे, सूक्ष्म-अत्यन्त कृश हुए लोभकषायका उपशम अथवा क्षय करनेवाले जीव दशम गुणस्थानवर्ती है ॥१०॥ परम-उपशममूर्ति निजात्माके स्वभावके अनुभवके बलसे सपूर्ण मोहका उपशम करनेवाले (जीव) ग्यारहवे गुणस्थानवर्ती है ॥११॥ उपशम श्रेणीसे विलक्षण ऐसे क्षपक श्रेणीके मार्गसे निष्कषाय शुद्धात्माकी भावनाके बलसे कषायका क्षय करनेवाले जीव बारहवे गुणस्थानवर्ती है ॥१२॥ मोहका क्षय करनेके पश्चात् अतर्मुहूर्त कालपर्यन्त, स्वशुद्धात्मसवित्ति (सवेदन) जिसका लक्षण है ऐसे 'एकत्ववितर्क अवीचार' नामक द्वितीय शुक्लध्यानमे स्थिर होकर, उसके अन्तिम समयमें ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय इन तीनोंका एक साथ एक समयमे नाश करके, मेघ पटलमेसे निकले हुए सूर्यकी भाति सकलनिर्मल केवलज्ञानकी किरणोंसे लोक और अलोकको प्रकाशित करनेवाले, तेरहवे गुणस्थानवर्ती जिन भास्कर है ॥१३॥ मन, वचन, कायाकी वर्गणाका जिन्हे अवलबन है और कर्मोंको ग्रहण करनेमें जो निमित्त है ऐसे आत्मप्रदेशोके परिस्पदस्वरूप जो योग, उनसे रहित चौदहवे गुणस्थानवर्ती अयोगीजिन है ॥१४॥ और उसके पश्चात् निश्चयरत्नत्रया-त्मक 'कारणभूत समयसार' नामक जो परम यथाख्यातचारित्र है उसके द्वारा पूर्वोक्त चौदह गुणस्थानोंसे अतीत हुए, ज्ञानावरणादि आठ कर्मोंसे रहित हुए तथा सम्यक्त्वादि आठ गुणोंमें अतर्भूत निर्नाम, निर्गोत्र आदि अनन्त गुणवाले 'सिद्ध' है ।

अत्राह शिष्यः—केवलज्ञानोत्पत्तौ मोक्षकारणभूतरत्नत्रयपरिपूर्णतायां सत्यां तस्मिन्नेव क्षणे मोक्षेण भाव्यं सयोग्ययोगिजिनगुणस्थानद्वये कालो नास्तीति ? परिहारमाह—यथाख्यातचारित्रं जातं परं किन्तु परमयथाख्यातं नास्ति । अत्र दृष्टांतः । यथा—चौरव्यापाराभावेऽपि पुरुषस्य चौरसंसर्गो दोषं जनयति तथा चारित्रविनाशक-चारित्रमोहोदयाभावेऽपि सयोगिकैवल्यलिनां निष्क्रियशुद्धात्माचरणविलक्षणो योगत्रयव्यापार-चारित्रमलं जनयति, योगत्रयगते पुनरयोगिजिने चरमसमयं विहाय शेषाघातिकर्मतीव्रो-दयश्चारित्रमलं जनयति, चरमसमये तु मन्दोदये सति चारित्रमलाभावात् मोक्षं गच्छति । इति चतुर्दशगुणस्थानव्याख्यानं गतम् । इदानीं मार्गणाः कथ्यन्ते । “गइ इंदियेसु काये जोगे वेदे कसायणाणे य । संयम दंसण लेस्सा भविया समत्तसण्णि आहारे ।१।” इति गाथाकथितक्रमेण गत्यादिचतुर्दशमार्गणा ज्ञातव्याः । तद्यथा—स्वात्मोपलब्धि-

यहा शिष्य पूछता है कि केवलज्ञानकी उत्पत्ति होने पर मोक्षके कारणभूत रत्नत्रयकी परिपूर्णता हो गई तो उसी क्षण मोक्ष होना चाहिये । अतः सयोगी और अयोगीजिन नामक दो गुणस्थानोका काल नहीं रहता है । इस शंकाका उत्तर देते हैं:—यथाख्यातचारित्र तो हुआ परन्तु परम यथाख्यातचारित्र नहीं है । यहां दृष्टांत है—जैसे कोई मनुष्य चोरी नहीं करता है तो भी उसे चोरके ससर्गका दोष लगता है उसी प्रकार सयोग केवलियोके चारित्रका नाश करनेवाले चारित्रमोहके उदयका अभाव होने पर भी निष्क्रिय शुद्धात्म-आचरणसे विलक्षण तीन योगका व्यापार चारित्रमें दोष उत्पन्न करता है; तथा तीन योगका जिसको अभाव है उस अयोगी जिनको, चरम समयके अतिरिक्त, शेष चार अघातिकर्मोका तीव्र उदय चारित्रमें दोष उत्पन्न करता है । चरम समयमे मद उदय होने पर, चारित्रमें दोषका अभाव होनेसे, वह मोक्षको प्राप्त करता है ।

इस प्रकार चौदह गुणस्थानोका व्याख्यान समाप्त हुआ ।

अब मार्गणाओका कथन किया जाता है:—“गइ इंदियेसु काये जोगे वेदे कसा यणाणे य । संयम दंसण लेस्सा भविया सम्मत्तसण्णि आहारे ॥” (गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, सयम, दर्शन, लेश्या, भव्यत्व, सम्यक्त्व, सज्ञा और आहार)” इसप्रकार 'गाथामें कथित क्रमानुसार गति आदि चौदह मार्गणाएं जानना । वे इसप्रकार:—निज आत्माकी उपलब्धिरूप सिद्धिसे विलक्षण ऐसी गतिमार्गणा नारक,

सिद्धिविलक्षणा नारकतिर्यङ्मनुष्यदेवगतिभेदेन चतुर्विधा गतिमार्गणा भवति । १ । अतीन्द्रियशुद्धात्मतत्त्वप्रतिपक्षभूताद्येकद्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रियभेदेन पञ्चप्रकारेन्द्रियमार्गणा । २ । अशरीरात्मतत्त्वविसदृशी पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतित्रसकायभेदेन षड्भेदा कायमार्गणा । ३ । निर्व्यापारशुद्धात्मपदार्थविलक्षणमनोवचनकाययोगभेदेन त्रिधा योगमार्गणा, अथवा विस्तरेण सत्यासत्योभयानुभयभेदेन चतुर्विधो मनोयोगो वचनयोगश्च, औदारिकौदारिक-मिश्रवैक्रियिकवैक्रियिकमिश्राहारकाहारकमिश्रकर्मणकायभेदेन सप्तविधो काययोगश्चेति समुदायेन पञ्चदशविधा वा योगमार्गणा । ४ । वेदोदयोद्भवरागादिदोषरहितपरमात्म-द्रव्याङ्गिन्ना स्त्रीपुंनपुंसकभेदेन त्रिधा वेदमार्गणा । ५ । निष्कषायशुद्धात्मस्वभावप्रतिकूल-क्रोधलोभमायामानभेदेन चतुर्विधा कषायमार्गणा, विस्तरेण कषायनोकषायभेदेन पञ्च-विंशतिविधा वा । ६ । मत्यादिसंज्ञापञ्चकं कुमत्याद्यज्ञानत्रयं चेत्यष्टविधा ज्ञानमार्गणा । ७ । सामायिकच्छेदोपस्थापनपरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसांपराययथाख्यातभेदेन चारित्रं पञ्चविधम्,

तिर्यच, मनुष्य और देवगतिके भेदसे चार प्रकारकी है ॥१॥ अतीन्द्रिय शुद्धात्मतत्त्वसे प्रतिपक्षभूत इन्द्रियमार्गणा एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रियके भेदसे पांच प्रकारकी है ॥२॥ अशरीरी आत्मतत्त्वसे विसदृश ऐसी कायमार्गणा पृथ्वी, जल, तेज, वायु, वनस्पति और त्रसकायके भेदसे छह प्रकारकी है ॥३॥ निर्व्यापार शुद्धात्मपदार्थसे विलक्षण मन, वचन और काययोगके भेदसे योगमार्गणा तीन प्रकारकी है; अथवा विस्तारसे सत्य, असत्य, उभय और अनुभयरूप भेदसे चार प्रकारका मनोयोग है, इसी प्रकार (सत्य, असत्य, उभय और अनुभय) चार प्रकारका वचनयोग है, औदारिक, औदारिकमिश्र, वैक्रियिक, वैक्रियिकमिश्र, आहारक, आहारकमिश्र और कार्माण-ये काययोगके सात प्रकार है । इस प्रकार सब मिलकर पन्द्रह प्रकारकी योगमार्गणा है ॥४॥ वेदके उदयसे उत्पन्न रागादिदोषरहित परमात्मद्रव्यसे भिन्न ऐसी वेदमार्गणा, स्त्री, पुरुष और नपुंसकवेदके भेदसे तीन प्रकार है ॥५॥ निष्कषाय शुद्धात्मस्वभावसे प्रतिकूल क्रोध, मान, माया और लोभके भेदसे चार प्रकारकी कषाय मार्गणा है; विस्तारसे कषाय और नोकषायके भेदसे पच्चीस प्रकारकी कषायमार्गणा है ॥६॥ मति, श्रुत, अवधि, मन.पर्यय और केवलज्ञान तथा कुमति, कुश्रुत और कुअवधि-इस प्रकार आठ प्रकारकी ज्ञानमार्गणा है ॥७॥ सामायिक, छेदोपस्थापन, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसांपराय और यथाख्यत-रूप भेदसे पांच प्रकारका चारित्र तथा संयमासयम और असयम ये दो प्रतिपक्ष-

संयमासंयमस्तथैवासंयमश्चेति प्रतिपक्षद्वयेन सह सप्तप्रकारा संयममार्गणा । ८ ।
 चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनभेदेन चतुर्विधा दर्शनमार्गणा । ९ । कषायोदयरञ्जितयोग-
 प्रवृत्तिविसदृशपरमात्मद्रव्यप्रतिपन्थिनी^१ कृष्णनीलकापोततेजःपद्मशुक्लभेदेन षड्विधा
 लेश्यामार्गणा । १० । भव्याभव्यभेदेन द्विविधा भव्यमार्गणा । ११ । अत्राह शिष्यः—
 शुद्धपारिणामिकपरमभावरूपशुद्धनिश्चयेन गुणस्थानमार्गणास्थानरहिता जीवा इत्युक्तं
 पूर्वम्, इदानीं पुनर्भव्याभव्यरूपेण मार्गणामध्येऽपि पारिणामिकभावो भणित इति
 पूर्वापरविरोधः ? अत्र परिहारमाह—पूर्वं शुद्धपारिणामिकभावापेक्षया गुणस्थानमार्गणा-
 निषेधः कृतः, इदानीं पुनर्भव्याभव्यत्वद्वयमशुद्धपारिणामिकभावरूपं मार्गणामध्येऽपि
 घटते । ननु—शुद्धाशुद्धभेदेन पारिणामिकभावो द्विविधो नास्ति किन्तु शुद्ध एव ?
 नैवं यद्यपि सामान्यरूपेणोत्सर्गव्याख्यानेन शुद्धपारिणामिकभावः कथ्यते तथाप्यप-
 वादव्याख्यानेनाशुद्धपारिणामिकभावोऽप्यस्ति । तथाहि—“जीवभव्याभव्यत्वानि च”

रूप भेद मिलकर सात प्रकारकी संयममार्गणा है ॥८॥ चक्षु, अचक्षु, अवधि और केवलदर्शनके भेदसे चार प्रकारकी दर्शनमार्गणा है ॥९॥ कषायोदयरजित योग-प्रवृत्तिसे विसदृश (कषायके उदयसे रजित योगकी प्रवृत्तिसे विपरीत) ऐसे परमात्मद्रव्यका विरोध करनेवाली लेश्यामार्गणा कृष्ण, नील, कापोत, तेजो, पद्म और शुक्ललेश्याके भेदसे छह प्रकारकी है ॥१०॥ भव्य और अभव्यके भेदसे दो प्रकारकी भव्यमार्गणा है ॥११॥

यहा शिष्य कहता है—शुद्ध पारिणामिकपरमभावरूप शुद्धनिश्चयसे जीव गुण-स्थान और मार्गणास्थानसे रहित है—इस प्रकार^२ पहले कहा गया है और अब यहा मार्गणाके कथनमे भव्य और अभव्यरूपसे पारिणामिकभाव कहा है । इस प्रकार वहा पूर्वापर विरोध आता है । उसका यहा समाधान करते हैं—पहले शुद्ध पारिणामिकभावकी अपेक्षासे गुणस्थान और मार्गणास्थानका निषेध किया था परंतु यहां भव्यत्व और अभव्यत्व ये दो, अशुद्ध पारिणामिकभावरूप होनेसे, मार्गणाके कथनमे घटित होते हैं । यदि इस प्रकार कहा जाय कि “शुद्ध और अशुद्धके भेदसे पारिणामिकभाव दो प्रकारका नहीं है परन्तु एक शुद्ध ही है”, तो ऐसा नहीं है; यद्यपि सामान्यरूपसे उत्सर्ग व्याख्यानसे शुद्ध पारिणामिकभाव कहा जाता है तो भी अपवाद व्याख्यानसे अशुद्ध पारिणामिक भाव भी है । जैसे—“जीवभव्याभव्यत्वानि च”

१—‘प्रतिपक्षी’ इति पाठान्तर ।

२—इस गाथाकी सूचनिकामे कहा है ।

इति तत्त्वार्थद्वये त्रिधा पारिणामिकभावो भणितः, तत्र शुद्धचैतन्यरूपं जीवत्वमविनश्वरत्वेन शुद्धद्रव्याश्रितत्वाच्छुद्धद्रव्याधिकमंत्रः शुद्धपारिणामिकभावो भण्यते, यत्पुनः कर्मजनित-दशप्राणरूपं जीवत्वं, भव्यत्वम्, अभव्यत्वं चेति त्रयं, तद्विनश्वरत्वेन पर्यायाश्रित-त्वात्पर्यायाधिकमंत्रस्त्वशुद्धपारिणामिकभाव उच्यते । अशुद्धत्वं कथमिति चेत् ? यद्यप्येतदशुद्धपारिणामिकत्रयं व्यवहारेण संसारिजीवेऽस्ति तथापि “सर्वे सुद्धा हु सुद्धण्या” इति वचनाच्छुद्धनिश्चयेन नास्ति त्रयं, मुक्तजीवे पुनः सर्वथैव नास्ति, इति हेतोरशुद्धत्वं भण्यते । तत्र शुद्धाशुद्धपारिणामिकमध्ये शुद्धपारिणामिकभावो ध्यानरूपेण ध्येयरूपो भवति ध्यानरूपो न भवति, कस्मात् ध्यानपर्यायस्य विन-श्वरत्वात्, शुद्धपारिणामिकस्तु द्रव्यरूपत्वादविनश्वरः, इति भावार्थः । औपशमिकक्षायोप-शमिकक्षायिकसम्यक्त्वभेदेन त्रिधा सम्यक्त्वमार्गणा मिथ्यादृष्टिसासादनमिश्रसंज्ञ-विपक्षत्रयभेदेन सह षड्विधा ज्ञातव्या । १२ ।

उक्त प्रकार तत्त्वार्थनूनामे जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्वरूप तीन प्रकारसे पारि-णामिकभाव कहा है । वहा शुद्ध चैतन्यरूप जीवत्व अविनश्वरपनेके कारण शुद्धद्रव्यके आश्रित होनेसे ‘शुद्ध-द्रव्याधिक’ ऐसी संज्ञावाला शुद्ध पारिणामिकभाव कहलाता है और कर्मजनित दश प्राणरूप जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व रूपसे तीन है वे विन-श्वरपनेके कारण पर्यायाश्रित होनेसे ‘पर्यायाधिक’ ऐसी संज्ञावाले अशुद्ध पारिणामिक भाव कहलाते हैं । प्रश्नः—अशुद्धपना कैसे है ? उत्तर.—यद्यपि ये तीन अशुद्ध पारिणामिकभाव व्यवहारसे ससारी जीवमे ह तो भी “सर्वे सुद्धा हु सुद्धण्या” [शुद्धनयसे सर्व (ससारी) जीव वास्तवमे शुद्ध है]” इस वचनसे शुद्धनिश्चयनयकी अपेक्षासे (ससारी जीवमे) ये तीनों भाव नहीं है और मुक्त जीवमे तो सर्वथा नहीं ह, इस हेतुसे अशुद्धपना कहलाता है । वहा शुद्ध और अशुद्ध पारिणामिकभावमेसे ‘शुद्ध पारिणामिकभाव ध्यानके समय ध्येयरूप होता है, ध्यानरूप नहीं होता है, क्योंकि ध्यानपर्याय विनश्वर है और शुद्ध पारिणामिकभाव तो द्रव्यरूप होनेसे अविनश्वर है । ऐसा भावार्थ है ।

औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिक सम्यक्त्वके भेदसे सम्यक्त्वमार्गणा—मिथ्यादर्शन, सासादन और मिश्र इन तीन विपरीत भेदो सहित—छह प्रकारकी जानना ॥१२॥ सज्ञी और असज्ञीपनेसे विसदृश ऐसे परमात्मस्वरूपसे भिन्न सज्ञी-
१—तीनों कालमे शुद्धता प्रगट करनेके लिये यह द्रव्यरूप शुद्ध पारिणामिकभाव आश्रय करने योग्य है ।

द्विन्ना संश्रयसंज्ञिभेदेन द्विधा संज्ञिमार्गणा । १३ । आहारकानाहारकजीवभेदेनाहारक-
मार्गणापि द्विधा । १४ । इति चतुर्दशमार्गणास्वरूपं ज्ञातव्यम् । एवं “पुढविजलतेय-
वाऊ” इत्यादिगाथाद्वयेन, तृतीयगाथापादत्रयेण च “गुणजीवापञ्जची पाणा सण्णा
य मग्गणाओय । उवओगोवि य कमसो वीसं तु परूवणा भणिया । १ ।” इति
गाथाप्रभृतिकथितस्वरूपं धवलजयधवलमहाधवलप्रबन्धाभिधानसिद्धान्तत्रयबीजपदं सूचि-
तम् । “सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया” इति शुद्धात्मतत्त्वप्रकाशकं तृतीयगाथाचतुर्थपादेन
पञ्चास्तिकायप्रवचनसारसमयसाराभिधानप्राभृतत्रयस्यापि बीजपदं सूचितमिति । अत्र
गुणस्थानमार्गणादिमध्ये केवलज्ञानदर्शनद्वयं क्षायिकसम्यक्त्वमनाहारकशुद्धात्मस्वरूपं च
साक्षादुपादेयं, यत्पुनश्च शुद्धात्मसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणलक्षणं कारणसमयसारस्वरूपं
तत्तस्यैवोपादेयभूतस्य विवक्षितैकदेशशुद्धनयेन साधकत्वात्पारम्पर्येणोपादेयं शेषं तु
मार्गणा सज्ञी और असज्ञीके भेदसे दो प्रकारकी है ॥१३॥ आहारक और अना-
हारक जीवोके भेदसे आहारमार्गणा भी दो प्रकारकी है ॥१४॥

इस प्रकार चौदह मार्गणाओका स्वरूप जानना ।

इस प्रकार “पुढविजलतेयवाऊ” इत्यादि दो गाथाओंसे और तीसरी गाथाके
तीन पादोसे ग्रंथकारने धवल-जयधवल-महाधवल प्रबध नामक तीन सिद्धातग्रंथोके
बीजपदको सूचित किया है—जिसका स्वरूप (जिस बीजपदका स्वरूप) “गुणजीवा-
पञ्जची पाणा सण्णा य मग्गणाओय । उवओगोवि य कमसो वीसं तु परूवणा भणिया ।”
गुणस्थान, जीवसमास, पर्याप्ति, प्राण, सज्ञा, चौदह मार्गणा और उपयोग—इस प्रकार
क्रमपूर्वक बीस ‘प्ररूपणा कही है ।” इस (गोम्मटसारकी) गाथा आदिमें कहा ।
“सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया” (शुद्धनयसे सर्व जीव वास्तवमें शुद्ध है)” इस तीसरी
गाथाके चौथे पादसे—जो शुद्धात्मतत्त्वका प्रकाशक है उससे—पञ्चास्तिकाय, प्रव-
चनसार और समयसार इन तीन प्राभृतोंके बीजपदको सूचित किया है ।

यहा गुणस्थान और मार्गणास्थान आदिमे केवलज्ञान और केवलदर्शन—ये
दो, क्षायिकसम्यक्त्व, अनाहारक शुद्धात्मस्वरूप^१ साक्षात् उपादेय हैं और शुद्धात्माके
सम्यक् श्रद्धान-ज्ञान-आचरणरूप कारणसमयसार है वही उपादेयभूतका (केवलज्ञा-
नादिका) विवक्षित एकदेश शुद्धनयकी अपेक्षासे साधक होनेसे परंपरासे उपादेय है;

१-गोम्मटसार जीवकाड गाथा-२

२-‘प्रगट करने योग्य’ उपादेय है ।

हेयमिति । यच्चाध्यात्मग्रन्थस्य वीजपदभूतं शुद्धात्मस्वरूपमुक्तं तत्पुनरुपादेयमेव । अनेन प्रकारेण जीवाधिकारमध्ये शुद्धाशुद्धजीवकथनमुख्यत्वेन सप्तमस्थले गाथात्रयं गतम् ॥१३॥

अथेदानीं गाथापूर्वाद्धेन सिद्धस्वरूपमुत्तराद्धेन पुनरूर्ध्वगतिस्वभावं च कथयति—

णिकम्मा अट्टगुणा किंचूणा चरमदेहदो सिद्धा ।

लोयग्गटिदा णिच्चा उत्पादवएहिं संजुत्ता ॥१४॥

निष्कर्माणः अष्टगुणाः किंचिदूनाः चरमदेहतः सिद्धाः ।

लोकाग्रस्थिताः नित्याः उत्पादव्ययाभ्यां संयुक्ताः ॥१४॥

व्याख्या—‘सिद्धा’ सिद्धा भवन्तीति क्रियाध्याहारः । किं विशिष्टाः ? “णिकम्मा अट्टगुणा किंचूणा चरमदेहदो” निष्कर्माणोऽष्टगुणाः किंचिदूनाश्चरमदेहतः

इसके अतिरिक्त सब हेय है । अध्यात्म-ग्रन्थके वीजपदभूत जो शुद्धात्मस्वरूप कहा है वह तो उपादेय ही है ।

इस प्रकार जीवाधिकारमे शुद्ध और अशुद्ध जीवके कथनकी मुख्यतासे सप्तम स्थलमें तीन गाथाए पूर्ण हुई ॥१३॥

अब, यहा गाथाके पूर्वार्धसे सिद्धोका स्वरूप और उत्तरार्धसे उनका उर्ध्वगमन स्वभाव कहते हैं—

गाथा-१४

गाथार्थः—सिद्ध भगवान कर्मोंसे रहित है, आठ गुणोंके धारक है, अन्तिम शरीरसे कुछ न्यून (कम) आकारवाले है, लोकके अग्रभागमें स्थित है, नित्य है और उत्पाद-व्ययसे युक्त है ।

टीकाः—“सिद्धा” सिद्ध होते है । इस प्रकार यहा ‘भवन्ति’ (होते है) क्रिया अध्याहार है । कैसे होते है ? “णिकम्मा अट्टगुणाः किंचूणा चरमदेहदो” कर्मोंसे

अष्टकर्म हति अठ गुण पाय, चरमदेहतै किञ्चू उनाय ।

लोकअंत थित सिद्ध कहाय, नित उत्पाद नाश हू भाय ॥१४॥

सकाशादिति सूत्रपूर्वाद्धेन सिद्धस्वरूपमुक्तम् । ऊर्ध्वगमनं कथ्यते “लोग्गठिदा णिच्चा उप्पादवण्हिं संजुत्ता” ते च सिद्धा लोकाग्रस्थिता नित्या उत्पादव्ययाभ्यां संयुक्ताः । अतो विस्तरः—कर्मारिविध्वंसकस्वशुद्धात्मसंवित्तिबलेन ज्ञानावरणादिमूलोत्तरगतसमस्त-कर्मप्रकृतिविनाशकत्वादष्टकर्मरहिताः “सम्मत्तणाणदंसणवीरियसुहुमं तहेव अवगहणं । अगुरुलहुअव्वबाहं अट्टगुणा होंति सिद्धाणं । १ । इति गाथाकथितक्रमेण तेषामष्ट-कर्मरहितानामष्टगुणाः कथ्यन्ते । तथाहि—केवलज्ञानादिगुणास्पदनिजशुद्धात्मैवोपादेयं इति रुचिरूपं निश्चयसम्यक्त्वं यत्पूर्वं तपश्चरणावस्थायां भावितं तस्य फलभूतं समस्त-जीवादितत्त्वविषये विपरीताभिनिवेशरहितपरिणतिरूपं परमक्षायिकसम्यक्त्वं भण्यते । पूर्वं छद्मस्थावस्थायां भावितस्य निर्विकारस्वसंवेदनज्ञानस्य फलभूतं युगपद्भोका लोक-समस्तवस्तुगतविशेषपरिच्छेदकं केवलज्ञानम् । निर्विकल्पस्वशुद्धात्मसत्तावलोकनरूपं यत्पूर्वं

रहित, आठ गुणोसे सहित, अतिम शरीरसे कुछ न्यून ऐसे सिद्ध है—होते है; इस प्रकार गाथाके पूर्वार्धसे सिद्धोका स्वरूप कहा । अब, उनका उर्ध्वगमन स्वभाव कहा जाता है : “लोग्गठिदा णिच्चा उप्पादवण्हिं संजुत्ता” वे सिद्ध भगवान लोकके अग्र-भागमे स्थित है, नित्य है और उत्पाद-व्ययसे सयुक्त है ।

अब विस्तार कहा जाता है —कर्मशत्रुओके विध्वंसक स्वशुद्धात्माकी सवित्तिके (सवेदनके) बलसे ज्ञानावरणादि मूल और उत्तर समस्त कर्मप्रकृतियोंका विनाश करनेके कारण सिद्ध भगवान आठ कर्मसे रहित है । “सम्मत्तणाणदंसणवीरियसुहुमं तहेव अवगहणं । अगुरुलहुअव्वबाहं अट्टगुणा होंति सिद्धाणं । १ ।” (सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, वीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहन, अगुरुलघु और अव्याबाध—ये सिद्धोके आठ गुण होते है)” इस गाथामें कथित क्रमपूर्वक, आठ कर्मरहित सिद्धोके आठ गुण कहे जाते है :

‘केवलज्ञानादि गुणोके स्थानरूप निज शुद्धात्मा ही उपादेय है’ ऐसी रुचिरूप निश्चयसम्यक्त्व जो पहले तपश्चर्याकी अवस्थामें भावित किया था (भावनाकी थी, अनुभव किया था) उसके फलभूत, समस्त जीवादि तत्त्वोके विषयमे विपरीत—अभिनिवेशरहित परिणतिरूप ‘परम क्षायिक सम्यक्त्व’ कहलाता है ॥१॥

पहले छद्मस्थ अवस्थामें भावित किया हुआ (भावनामें आया हुआ, अनुभव किया हुआ) निर्विकार स्वसंवेदनज्ञानके फलभूत, युगपद् लोक और अलोककी समस्त वस्तुओके विशेषोंका ज्ञाता ‘केवलज्ञान’ है ॥२॥ जो निर्विकल्प स्वशुद्धात्म-

दर्शनं भावितं तस्यैव फलभूतं युगपद्भोकालोकसमस्तवस्तुगतसामान्यग्राहकं केवल-
दर्शनम् । कस्मिंश्चित्स्वरूपचलनकारणे जाते सति घोरपरीषहोपसर्गादी निजनिरजन-
परमात्मध्याने पूर्वं यत् धैर्यमवलम्बितं तस्यैव फलभूतमनन्तपदार्थपरिच्छित्तिविषये खेद-
रहितत्वमनन्तवीर्यम् । सूक्ष्मातीन्द्रियकेवलज्ञानविषयत्वात्सिद्धस्वरूपस्य सूक्ष्मत्वं भण्यते ।
एकदीपप्रकाशे नानादीपप्रकाशवदेकसिद्धक्षेत्रे सङ्करव्यतिकरदोषपरिहारेणानन्तसिद्धावकाश-
दानसामर्थ्यमवगाहनगुणो भण्यते । यदि सर्वथा गुरुत्वं भवति तदा लोहपिण्डवदधःपतनं,
यदि च सर्वथा लघुत्वं भवति तदा वाताहतार्कतूलवत्सर्वदैव भ्रमणमेव स्यान्न च तथा
तस्माद्गुरुलघुत्वगुणोऽभिधीयते । सहजशुद्धस्वरूपानुभवसमुत्पन्नरागादिविभावरहितसुखा-
मृतस्य यदेकदेशसंवेदनं कृतं पूर्वं तस्यैव फलभूतमव्याबाधमनन्तसुखं भण्यते । इति
मध्यमरुचिशिष्यापेक्षया सम्यक्त्वादिगुणाष्टकं भणितम् । विस्तररुचिशिष्यं प्रति पुन-
र्विशेषभेदनयेन निर्गतित्वं, निरिन्द्रियत्वं, निष्कायत्वं, निर्योगत्वं, निर्वेदत्वं, निष्कषायत्वं,

सत्ताके अवलोकनरूप दर्शन पहले भावित किया था उसीके फलभूत, युगपद् लोक-
लोककी समस्त वस्तुओके सामान्यको ग्रहण करनेवाला 'केवलदर्शन' है ॥३॥ आत्म-
स्वरूपसे चलित होनेका कोई कारण उत्पन्न होनेपर घोर परीषह अथवा उपसर्गादि
में निजनिरजन परमात्माके ध्यानमे पहले जो धैर्यका अवलंबन किया था उसीके
फलभूत, अनन्त पदार्थोंको जाननेमें खेदके अभावरूप 'अनन्तवीर्य' है ॥४॥ सूक्ष्म
अतीन्द्रिय केवलज्ञानका विषय होनेके कारण सिद्धोके स्वरूपको 'सूक्ष्मत्व' कहते
हैं ॥५॥ जैसे एक दीपकके प्रकाशमें अनेक दीपकोका प्रकाश समा जाता है उसीप्रकार
एक सिद्धके क्षेत्रमें संकर-व्यतिकर दोष बिना अनन्त सिद्धोको अवकाश देनेका सामर्थ्य
वह 'अवगाहन' गुण कहलाता है ॥६॥ यदि सिद्ध सर्वथा गुरु हो तो लोहेके पिण्डकी
भाति नीचे गिरें; और यदि सर्वथा लघु हो तो पवनसे प्रेरित आककी रुईकी भाति
सदा उडते ही रहे; परन्तु ऐसा है नहीं । अतः उनके 'अगुरुलघु' गुण कहा जाता
है ॥७॥ सहज शुद्धस्वरूप-अनुभवसे उत्पन्न, रागादि विभावरहित सुखामृतका एक-
देश संवेदन जो पहले किया था उसके ही फलभूत 'अव्याबाध अनन्तसुख' कहा
जाता है ॥८॥ इस प्रकार मध्यमरुचियुक्त शिष्यके लिये सम्यक्त्वादि आठ गुणोंका
कथन किया ।

विस्ताररुचि शिष्यके लिये विशेष, भेदनयसे निर्गतित्व (गतिरहितपना),
निरिन्द्रियत्व (इन्द्रियरहितपना), निष्कायत्व (शरीररहितपना), निर्योगत्व (योग-
रहितपना), निर्वेदत्व (वेदरहितपना), निष्कषायत्व (कषायरहितपना), निर्नामित्व

निर्नामत्वं, निर्गोत्रत्वं, निरायुषत्वमित्यादिविशेषगुणास्तथैवास्तित्ववस्तुत्वप्रमेयत्वादि-सामान्यगुणाः स्वागमविरोधेनानन्ता ज्ञातव्याः । संक्षेपरुचिशिष्यं प्रति पुनर्विवक्षिता-भेदनयेनानन्तज्ञानादिचतुष्टयम्, अनन्तज्ञानदर्शनसुखत्रयं, केवलज्ञानदर्शनद्वयं, साक्षाद-भेदनयेन शुद्धचैतन्यमेवैको गुण इति । पुनरपि कथंभूताः सिद्धाः ? चरमशरीरात् किञ्चिद्गुणा भवन्ति । तत् किञ्चिद्गुणत्वं शरीरोपाङ्गजनितनासिकादिछिद्राणामपूर्णत्वे सति यस्मिन्नेव क्षणे सयोगिचरमसमये त्रिंशत्प्रकृति-उदयविच्छेदमध्ये शरीरोपाङ्गनाम-कर्मविच्छेदो जातस्तस्मिन्नेव क्षणे जातमिति ज्ञातव्यम् । कश्चिदाह—यथा प्रदीपस्य भाजनाधावरणे गते प्रकाशस्य विस्तारो भवति तथा देहाभावे लोकप्रमाणेन भाव्य-मिति ? तत्र परिहारमाह—प्रदीपसम्बन्धी योऽसौ प्रकाशविस्तारः पूर्वं स्वभावेनैव तिष्ठति पश्चादावरणं जातं; जीवस्य तु लोकमात्रासंख्येयप्रदेशत्वं स्वभावो भवति यस्तु प्रदेशानां सम्बन्धी विस्तारः स स्वभावो न भवति । कस्मादिति चेत्, पूर्वं लोकमात्रप्रदेशा विस्तीर्णा निरावरणास्तिष्ठन्ति, पश्चात् प्रदीपवदावरणं जातमेव । तन्न,

(नामरहितपना), निर्गोत्रत्व (गोत्ररहितपना), निरायुषत्व (आयुष्यरहितपना) —इत्यादि विशेष गुण तथा अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्वादि सामान्य गुण स्व-आगमसे अविरोधरूपसे (जैनागम अनुसार) अनन्त जानना ।

सक्षेपरुचि शिष्यके लिये विवक्षित अभेदनयसे (सिद्धको) अनन्तज्ञान आदि चार गुण अथवा अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन और अनन्तसुख ये तीन गुण अथवा केवलज्ञान और केवलदर्शन ये दो गुण हैं; साक्षात् अभेदनयसे शुद्धचैतन्य ही एक गुण है ।

तथा वे सिद्ध कैसे हैं ? चरम (अन्तिम) शरीरसे कुछ न्यून है । वह किञ्चित् न्यूनपना, शरीर-उपाङ्गजनित नासिकादि छिद्र अपूर्ण होनेसे जिस क्षण सयोगी गुण-स्थानके चरम समयमें तीस प्रकृतियोंके उदयका नाश हुआ, उनमें शरीरोपाङ्ग नाम-कर्मका भी नाश हुआ, उसी क्षण हो गया ऐसा जानना । कोई शका करता है कि—जिस प्रकार दीपकको ढकनेवाले पात्र आदि दूर होने पर, दीपकके प्रकाशका विस्तार हो जाता है उसी प्रकार शरीरका अभाव होने पर सिद्धोका आत्मा भी फैलकर लोकप्रमाण हो जाना चाहिये । उसका समाधान किया जाता है:—दीपकके प्रकाशका जो विस्तार है वह पहलेसे स्वभावसे ही होता है, पश्चात् उस दीपकका आवरण हुआ है; परन्तु जीवका तो लोकप्रमाण असंख्यात प्रदेशीपना स्वभाव है, प्रदेशोका विस्तार वह स्वभाव नहीं है । प्रश्नः—‘ऐसा किसलिये ? जीवके लोकप्रमाण प्रदेश पहले विस्तीर्ण (—लोकमें फैले हुए), निरावरण होते हैं और पश्चात् दीपककी

किन्तु पूर्वमेवानादिसन्तानरूपेण शरीरेणावृतास्तिष्ठन्ति ततः कारणात्प्रदेशानां संहारो न भवति, विस्तारश्च शरीरनामकर्माधीन एव, न च स्वभावस्तेन कारणेन शरीराभावे विस्तारो न भवति । अपरमप्युदाहरणं दीयते—यथा हस्तचतुष्टयप्रमाणवस्त्रं पुरुषेण मुष्टौ बद्धं तिष्ठति पुरुषाभावे सङ्कोचविस्तारौ वा न करोति, निष्पत्तिकाले सार्द्रं मृन्मयभाजनं वा शुष्कं सज्जलाभावे सति; तथा जीवोऽपि पुरुषस्थानीयजलस्थानीय शरीराभावे विस्तारसंकोचौ न करोति । यत्रैव मुक्तस्तत्रैव तिष्ठतीति ये कैचन वदन्ति, तन्निषेधार्थं पूर्वप्रयोगादसङ्गत्वाद्बन्धच्छेदात्तथा गतिपरिणामात् चेति हेतुचतुष्टयेन तथैवाविद्धकुलालचक्रवद् व्यपगतलेपालाबुवदेरण्डबीजवदग्निशिखावच्चेति दृष्टान्त-चतुष्टयेन च स्वभावोर्ध्वगमनं ज्ञातव्यं, तच्च लोकाग्रपर्यन्तमेव, न च परतो धर्मास्तिकायाभावादिति । 'नित्या' इति विशेषणं तु, मुक्तात्मनां कल्पशतप्रमितकाले गते

भाति आवरण हुआ है ।' उत्तर — इस प्रकार नहीं है । परन्तु जीवके प्रदेश तो पहलेसे ही अनादि सतानरूपसे शरीरसे आवृत्त रहे है अतः (जीवके) प्रदेशोका संकोच (बादमे) नहीं होता है । तथा विस्तार शरीरनामकर्मके आधीन ही है, स्वभाव नहीं है, इस कारण शरीरका अभाव होने पर प्रदेशोका विस्तार नहीं होता है । यहां अन्य उदाहरण दिया जाता है — (१) जैसे चार हाथ लम्बा वस्त्र किसी मनुष्यने मुट्टीमे रखा हो वह, (मुट्टी खोलनेके बादमें) पुरुषके अभावमे संकोच या विस्तार नहीं करता है, अथवा (२) जैसे गीली मिट्टीका बर्तन बनते समय संकोच और विस्तारको प्राप्त होता है परन्तु जब वह सूख जाता है तब जलका अभाव होनेसे संकोच और विस्तारको प्राप्त नहीं होता, उसी प्रकार (मुक्त) जीव भी (१) पुरुषस्थानीय अथवा (२) जलस्थानीय शरीरका अभाव होने पर संकोच-विस्तारको प्राप्त नहीं होता ।

कोई कहता है कि "जीव जहां मुक्त होता है वहां ही रहता है" उसका निषेध करनेके लिये, पूर्वके प्रयोगसे, असंग होनेसे, बधका छेद होनेसे तथा गति परिणामसे — इन चार हेतुओ द्वारा तथा कुम्हारके घूमते हुए चाककी भाति, जिसका मिट्टीका लेप दूर हुआ है ऐसी तूंबीकी भाति, एरडके बीजकी भाति और अग्निकी शिखाकी भाति—इन चार दृष्टांतों द्वारा, जीवको 'स्वभावसे ही उर्ध्वगमन जानना' और वह (उर्ध्वगमन) लोकके अग्रभाग तक ही होता है, उससे आगे नहीं होता क्योंकि धर्मास्तिकायका (आगे) अभाव है ।

'सिद्ध भगवान नित्य है' ऐसा जो 'नित्य' विशेषण है वह, सदाशिववादी

जगति शून्ये जाते सति पुनरागमनं भवतीति सदाशिववादिनो वदन्ति, तन्निषेधार्थं विज्ञेयम् । 'उत्पादव्ययसंयुक्तत्वं', विशेषणं सर्वथैवापरिणामित्वनिषेधार्थमिति । किञ्च विशेषः निश्चलाविनश्वरशुद्धात्मस्वरूपाद्भिन्नं सिद्धानां नारकादिगतिषु भ्रमणं नास्ति कथमुत्पादव्ययत्वमिति ? तत्र परिहारः—आगमकथितागुरुलघुषट्स्थानपतितहानिवृद्धिरूपेण येऽर्थपर्यायास्तदपेक्षया अथवा येन येनोत्पादव्ययध्रौव्यरूपेण प्रतिक्षणं ज्ञेयपदार्थाः परिणमन्ति तत्परिच्छित्याकारेणानीहितवृत्त्या सिद्धज्ञानमपि परिणमति तेन कारणेनोत्पादव्ययत्वम्, अथवा व्यञ्जनपर्यायापेक्षया संसारपर्यायविनाशः सिद्धपर्यायोत्पादः, शुद्धजीवद्रव्यत्वेन ध्रौव्यमिति । एवं नयविभागेन नवाधिकारैर्जीवद्रव्यं ज्ञातव्यम् अथवा तदेव बहिरात्मान्तरात्मपरमात्मभेदेन त्रिधा भवति । तद्यथा— स्वशुद्धात्मसंविच्चिसमुत्पन्नवास्तवसुखात्प्रतिपक्षभूतेनेन्द्रियसुखेनासक्तो बहिरात्मा, तद्विलक्षणोऽन्तरात्मा । अथवा देहरहितनिजशुद्धात्मद्रव्यभावनालक्षणभेदज्ञानरहितत्वेन

कहता है कि 'कल्पप्रमाण समय बीतने पर जब जगत शून्य हो जाता है तब मुक्त जीवोका संसारमें पुनरागमन होता है', उसका निषेध करनेके लिये है, ऐसा जानना ।

सिद्ध भगवानका एक विशेषण 'उत्पाद-व्यय संयुक्तपना' है वह सर्वथा अपरिणामीपनेका निषेध करनेके लिये है ।

तथा यहां विशेष समझाया जाता है कि—निश्चल अविनश्वर शुद्धात्मस्वरूपसे भिन्न नारकादि गतियोंमें सिद्धोका भ्रमण नहीं होतातो सिद्धोंमें उत्पाद-व्यय किस प्रकार होता है ? उसका समाधानः—(१) आगममें कहे अनुसार अगुरुलघुगुणकी षट्स्थानपतित हानि-वृद्धिरूप जो अर्थपर्याये है उनकी अपेक्षासे (सिद्ध भगवानको उत्पाद-व्यय घटित होता है), अथवा (२) ज्ञेय पदार्थ अपने जिस-जिस उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूपसे प्रति समय परिणमित होते हैं उनकी ज्ञप्तिके आकारसे अनीहितवृत्तिसे (बिना इच्छा) सिद्धका ज्ञान भी परिणमित होता है इस कारण सिद्धभगवानको उत्पाद-व्यय घटित होता है, अथवा (३) व्यजन पर्यायकी अपेक्षासे सिद्धोके संसार पर्यायका विनाश, सिद्धपर्यायका उत्पाद और शुद्ध जीवद्रव्यरूपसे ध्रौव्य है ।

इस प्रकार नयविभागसे नौ अधिकारों द्वारा जीवद्रव्य जानना ।

अथवा वही (जीव) बहिरात्मा, अंतरात्मा और परमात्माके भेदसे तीन प्रकारका है । वह इस प्रकारः—स्वशुद्धात्मसंविच्चिसमुत्पन्न वास्तविक सुखसे प्रतिपक्षभूत इन्द्रियसुखमें आसक्त (जीव) बहिरात्मा है और उससे विलक्षण जीव अंतरात्मा है; अथवा देहरहित निज शुद्धात्मद्रव्यकी भावना जिसका लक्षण है ऐसे भेद-

देहादिपरद्रव्येष्वेकत्वभावनापरिणतो बहिरात्मा, तस्मात्प्रतिपक्षभूतोऽन्तरात्मा । अथवा हेयोपादेयविचारकचिदां, निर्दोषपरमात्मनो भिन्ना रागादयो दोषाः, शुद्धचैतन्यलक्षण आत्मा, इत्युक्तलक्षणेषु चित्तदोषात्मसु त्रिषु वीतरागसर्वज्ञप्रणीतेषु अन्येषु वा पदार्थेषु यस्य परस्परसापेक्षनयविभागेन श्रद्धानं ज्ञानं च नास्ति स बहिरात्मा, तस्माद्विसदृशोऽन्तरात्मेति रूपेण बहिरात्मान्तरात्मनोर्लक्षणं ज्ञातव्यम् । परमात्मलक्षणं कथ्यते— सकलविमलकेवलज्ञानेन येन कारणेन समस्तं लोकालोकं जानाति व्याप्नोति तेन कारणेन विष्णुर्भण्यते । परमब्रह्मसंज्ञनिजशुद्धात्मभावनासमुत्पन्नसुखामृततृप्तस्य सत उर्वशीरम्भातिलोत्तमाभिर्देवकन्याभिरपि यस्य ब्रह्मचर्यव्रतं न खण्डितं स परमब्रह्म भण्यते । केवलज्ञानादिगुणैश्वर्ययुक्तस्य सतो देवेन्द्रादयोऽपि तत्पदाभिलाषिणः सन्तो यस्याज्ञां कुर्वन्ति स ईश्वराभिधानो भवति । केवलज्ञानशब्दवाच्यं गतं ज्ञानं यस्य स सुगतः, अथवा शोभनमविनश्वरं मुक्तिपदं गतः सुगतः । “शिवं परमकल्याणं निर्वाणं ज्ञानमक्षयम् । प्राप्तं मुक्तिपदं येन स शिवः परिकीर्तितः । १ ।” इति श्लोककथित-

ज्ञानसे रहित होनेसे देहादि परद्रव्योमे एकत्व भावनारूप परिणमित जीव बहिरात्मा है, उससे प्रतिपक्षभूत अतरात्मा है । अथवा हेय और उपादेयका विचार करनेवाला ‘चित्त’, निर्दोष परमात्मासे भिन्न रागादि ‘दोष’ और शुद्धचैतन्यलक्षण ‘आत्मा’,— इन तीनोंका तथा वीतराग-सर्वज्ञ प्रणीत अन्य पदार्थोंका जिसे परस्पर सापेक्ष नय-विभागसे श्रद्धान और ज्ञान नहीं है वह बहिरात्मा है, उससे विरुद्ध अतरात्मा है— इस प्रकार बहिरात्मा और अतरात्माका लक्षण जानना ।

(अब) परमात्माका लक्षण कहा जाता है:—सकलविमल केवलज्ञान द्वारा समस्त लोकालोकको जानता है—व्याप्त होता है अतः ‘विष्णु’ कहलाता है । परम-ब्रह्म नामक निजशुद्धात्माकी भावनासे उत्पन्न सुखामृत द्वारा तृप्त होनेसे उर्वशी, रभा, तिलोत्तमा आदि देवकन्याओ द्वारा भी जिसका ब्रह्मचर्यव्रत खण्डित नहीं होता वह ‘परमब्रह्म’ कहलाता है । केवलज्ञानादि गुणरूप ऐश्वर्य सहित होनेके कारण देवेन्द्रादि भी उस पदकी अभिलाषा करते हुए जिनकी आज्ञा मानते हैं, उन्हें ‘ईश्वर’ नाम होता है । केवलज्ञान शब्दसे वाच्य, ‘सु’ अर्थात् उत्तम, ‘गत’ अर्थात् ज्ञान जिसको है वह ‘सुगत’ है, अथवा जिसने शोभायमान अविनश्वर मुक्तिपदको प्राप्त किया है वह ‘सुगत’ है । ‘शिवं परमकल्याणं निर्वाणं ज्ञानमक्षयम् । प्राप्तं मुक्तिपदं येन स शिवः परिकीर्तितः । १ ।” (शिव अर्थात् परमकल्याण, निर्वाण और अक्षयज्ञान-

लक्षणः शिवः । कामक्रोधादिदोषजयेनानन्तज्ञानादिगुणसहितो जिनः । इत्यादिपरमागम-
कथिताष्टोत्तरसहस्रसंख्यनामवाच्यः परमात्मा ज्ञातव्यः । एवमेतेषु त्रिविधात्मसु मध्ये
मिथ्यादृष्टिभव्यजीवे बहिरात्मा व्यक्तिरूपेण तिष्ठति, अन्तरात्मपरमात्मद्वयं शक्तिरूपेण
भाविनैगमनयापेक्षया व्यक्तिरूपेण च । अभव्यजीवे पुनर्बहिरात्मा व्यक्तिरूपेण
अन्तरात्मपरमात्मद्वयं शक्तिरूपेणैव, न च भाविनैगमनयेनेति । यद्यभव्यजीवे परमात्मा
शक्तिरूपेण वर्तते तर्हि कथमभव्यत्वमिति चेत् ? परमात्मशक्तेः केवलज्ञानादिरूपेण
व्यक्तिः न भविष्यतीत्यभव्यत्वं, शक्तिः पुनः शुद्धनयेनोभयत्र समाना । यदि पुनः
शक्तिरूपेणाप्यभव्यजीवे केवलज्ञानं नास्ति तदा केवलज्ञानावरणं न घटते । भव्याभव्यद्वयं
पुनरशुद्धनयेनेति भावार्थः । एवं यथा मिथ्यादृष्टिसंज्ञे बहिरात्मनि नयविभागेन
दर्शितमात्मत्रयं तथा शेषगुणस्थानेष्वपि । तद्यथा—बहिरात्मावस्थायामन्तरात्मपरमात्मद्वयं

रूप मुक्तिपदको जिसने प्राप्त किया है वह 'शिव' कहलाता है)”—इस श्लोकमें
कथित लक्षणयुक्त 'शिव' है । काम-क्रोधादि दोषका जय करनेसे अनन्तज्ञानादि गुण-
सहित वह 'जिन' है—इत्यादि परमागममें कहे हुए एक हजार और आठ नामोंसे
वाच्य परमात्मा जानना ।

इस प्रकार इन त्रिविध आत्माओंमें, मिथ्यादृष्टि भव्यजीवमें बहिरात्मा व्यक्त्-
रूपसे रहता है, अतरात्मा और परमात्मा ये दो शक्तिरूपसे रहते हैं और भावि-
नैगमनयकी अपेक्षासे व्यक्तिरूपसे भी रहते हैं । अभव्यजीवमें बहिरात्मा व्यक्त्-
रूपसे तथा अंतरात्मा और परमात्मा—ये दो शक्तिरूपसे ही रहते हैं; भाविनैगमनयकी
अपेक्षासे भी उसमें अतरात्मा और परमात्मा व्यक्तिरूपसे नहीं रहते हैं । प्रश्न —यदि
अभव्यजीवमें परमात्मा शक्तिरूपसे रहता है तो उसमें अभव्यत्व किस प्रकार है ?
उत्तरः—अभव्यजीवमें परमात्म शक्तिकी व्यक्तता केवलज्ञानादिरूपसे नहीं होती
है अतः उसमें अभव्यत्व है और शक्ति तो (परमात्मशक्ति तो) शुद्धनयकी अपेक्षासे
अभव्य और भव्य दोनोंमें समान है । तथा यदि अभव्यजीवमें शक्तिरूपसे भी
केवलज्ञान नहीं हो तो उसे केवलज्ञानावरण कर्म सिद्ध नहीं होता है । भव्यत्व और
अभव्यत्व—ये दोनों अशुद्धनयकी अपेक्षासे हैं ऐसा भावार्थ है ।

इस प्रकार जैसे 'मिथ्यादृष्टि' संज्ञक बहिरात्मामें नयविभागसे तीनों आत्मा
दिखलाये हैं, वैसे ही शेष गुणस्थानोंमें भी समझना । वह इसप्रकार—बहिरात्म-
अवस्थामें अतरात्मा और परमात्मा—ये दोनों शक्तिरूपसे और भाविनैगमनयसे

शक्तिरूपेण भाविनैगमनयेन व्यक्तिरूपेण च विज्ञेयम्, अन्तरात्मावस्थायां तु बहिरात्मा भूतपूर्वनयेन घृतघटवत्, परमात्मस्वरूपं तु शक्तिरूपेण भाविनैगमनयेन व्यक्तिरूपेण च । परमात्मावस्थायां पुनरन्तरात्मबहिरात्मद्वयं भूतपूर्वनयेनेति । अथ त्रिधात्मानं गुणस्थानेषु योजयति । मिथ्यात्वसासादनमिश्रगुणस्थानत्रये तारतम्यन्यूनाधिकभेदेन बहिरात्मा ज्ञातव्यः, अविरतगुणस्थाने तद्योग्याशुभलेश्यापरिणतो जघन्यान्तरात्मा, क्षीणकषायगुणस्थाने पुनरुत्कृष्टः, अविरतक्षीणकषाययोर्मध्ये मध्यमः, सयोग्ययोगिगुणस्थानद्वये विवक्षितैकदेशशुद्धनयेन सिद्धसदृशः परमात्मा, सिद्धस्तु साक्षात्परमात्मेति । अत्र बहिरात्मा हेयः, उपादेयभूतस्यानन्तसुखसाधकत्वादान्तरात्मोपादेयः, परमात्मा पुनः साक्षादुपादेय इत्यभिप्रायः । एवं षड्द्रव्यपञ्चास्तिकायप्रतिपादकप्रथमाधिकारमध्ये नमस्कारादिचतुर्दशगाथाभिर्नवभिरन्तरस्थलैर्जीवद्रव्यकथनरूपेण प्रथमोऽन्तराधिकारः समाप्तः ॥ १४ ॥

व्यक्तिरूपसे भी रहते हैं, ऐसा जानना । अन्तरात्म-अवस्थामें बहिरात्मा भूतपूर्वनयसे तथा घीके घड़ेकी भाँति और परमात्मस्वरूप शक्तिरूपसे तथा भाविनैगमनयसे व्यक्तिरूपसे भी रहता है । परमात्म-अवस्थामें अन्तरात्मा और बहिरात्मा दोनों भूतपूर्वनयसे रहते हैं ।

अब तीन प्रकारके आत्माओंको गुणस्थानोंमें घटित करते हैं : मिथ्यात्व, सासादन और मिश्र—इन तीन गुणस्थानोंमें तारतम्यरूप न्यूनाधिक भेदसे बहिरात्मा जानना । अविरत गुणस्थानमें उसके योग्य अशुभ लेश्यारूपसे परिणमित (जीव) जघन्य अन्तरात्मा है और क्षीणकषाय गुणस्थानमें उत्कृष्ट अन्तरात्मा है; अविरत और क्षीणकषाय गुणस्थानके बीचके गुणस्थानोंमें मध्यम अन्तरात्मा है, सयोगी और अयोगी गुणस्थानमें विवक्षित एकदेश शुद्धनयकी अपेक्षासे सिद्ध सदृश परमात्मा है और सिद्ध तो साक्षात् परमात्मा है ।

यह बहिरात्मा हेय है, उपादेयभूत अनन्तसुखका साधक होनेसे अन्तरात्मा 'उपादेय है और परमात्मा तो साक्षात् 'उपादेय है—ऐसा अभिप्राय है ।

इस प्रकार षड्द्रव्य-पञ्चास्तिकायके प्रतिपादक प्रथम अधिकारमें नमस्कार—गाथादि चौदह गाथाओं द्वारा नौ अन्तरस्थलों द्वारा जीवद्रव्यके कथनरूपसे प्रथम अन्तराधिकार पूर्ण हुआ ॥ १४ ॥

१—यह, प्रगट करने योग्य रूपसे उपादेय है । वह पर्याय होनेसे आश्रय करने योग्य नहीं है । आश्रय करने योग्य तो सदा निज त्रिकाली ध्रुव शुद्धात्मा ही है । देखो गाथा १५ की भूमिका तथा नियमसार गाथा—५०

अतः परं यद्यपि शुद्धबुद्धैकस्वभावं परमात्मद्रव्यमुपादेयं भवति तथापि हेयरूपस्याजीवद्रव्यस्य गाथाष्टकेन व्याख्यानं करोति । कस्मादिति चेत् ? हेयतत्त्व-परिज्ञाने सति पश्चादुपादेयस्वीकारो भवतीति हेतोः । तद्यथा—

अजीवो पुण शोओ पुग्गलधम्मो अधम्म आयासं ।

कालो पुग्गल मुत्तो रूवादिगुणो अमुत्ति सेसा दु (हु) ॥१५॥

अजीवः पुनः ज्ञेयः पुद्गलः धर्मः अधर्मः आकाशम् ।

कालः पुद्गलः मूर्त्तः रूपादिगुणः अमूर्त्ताः शेषाः तु ॥१५॥

व्याख्या—“अजीवो पुण शोओ” अजीवः पुनर्ज्ञेयः । सकलविमलकेवल-ज्ञानदर्शनद्वयं शुद्धोपयोगः, मतिज्ञानादिरूपो विकलोऽशुद्धोपयोग इति द्विविधोपयोगः, अव्यक्तसुखदुःखानुभवनरूपा कर्मफलचेतना, तथैव मतिज्ञानादिमनःपर्ययपर्यन्तमशुद्धो-

इसके पश्चात्, यद्यपि शुद्ध-बुद्ध-एकस्वभाव जिसका है वैसा परमात्मद्रव्य 'उपादेय है तो भी 'हेयरूप अजीव द्रव्यका आठ गाथाओ द्वारा व्याख्यान करते हैं । किसलिये ? प्रथम हेयतत्त्वका परिज्ञान होने पर फिर उपादेय तत्त्वका स्वीकार होता है इस कारणसे । वह व्याख्यान इस प्रकार है —

गाथा-१५

गाथार्थः—पुद्गल, धर्म, अधर्म आकाश और काल—ये अजीव द्रव्य जानना, रूपादि गुणका धारक पुद्गल मूर्त्त द्रव्य है और शेष (चार) अमूर्त्त है ।

टीकाः—“अजीवो पुण शोओ” तथा, अजीव जानने योग्य है । सकलविमल केवलज्ञान और केवलदर्शन ये दोनो शुद्ध उपयोग है, मतिज्ञानादिरूप विकल-अशुद्ध उपयोग है; इस प्रकार उपयोग दो प्रकार है । अव्यक्त सुख-दुःखके अनुभवरूप 'कर्मफल चेतना' है, और मतिज्ञानसे मन-पर्ययज्ञान पर्यंत अशुद्धोपयोगरूप ऐसी, स्व-

१—यह आश्रय करने योग्यरूपसे सदा उपादेय है ।

२—उसका आश्रय छोड़ने योग्य होनेसे हेय है ।

अब अजीव कौ सुनौ विलास, पुद्गल धर्म अधर्म अकास ।

काल, तहां मूर्त्त पुद्गला, रूपादिक युत, शेष न रला ॥१५॥

पयोग इति, स्वेहापूर्वेष्टानिष्टविकल्परूपेण विशेषरागद्वेषपरिणमनं कर्मचेतना, केवलज्ञान-रूपा शुद्धचेतना इत्युक्तलक्षणोपयोगरचेतना च यत्र नास्ति स भवत्यजीव इति विज्ञेयः । 'पुण' पुनः पश्चाज्जीवाधिकारानन्तरं । "पुग्गलधम्मो अधम्म आयासं कालो" स च पुद्गलधर्माधर्माकाशकालद्रव्यभेदेन पञ्चधा । पूरणगलनस्वभावत्वात्पुद्गल इत्युच्यते । गतिस्थित्यवगाहवर्तनालक्षणा धर्माधर्माकाशकालाः, "पुग्गल मुत्तो" पुद्गलो मूर्त्तः । कस्मात् ? "रूवादिगुणो" रूपादिगुणसहितो यतः । "अमुत्ति सेसा हु" रूपादिगुणाभावादमूर्त्ता भवन्ति पुद्गलाच्छ्लेषाश्चत्वार इति । तथाहि—यथा अनन्त ज्ञानदर्शनसुखवीर्यगुणचतुष्टयं सर्वजीवसाधारणं तथा रूपरसगन्धस्पर्शगुणचतुष्टयं सर्वपुद्गल-साधारणं, यथा च शुद्धबुद्धैकस्वभावसिद्धजीवे अनन्तचतुष्टयमतीन्द्रियं तथैव शुद्धपुद्गल-परमाणुद्रव्ये रूपादिचतुष्टयमतीन्द्रियं, यथा रागादिस्नेहगुणेन कर्मबन्धावस्थायां ज्ञानादि-चतुष्टयस्याशुद्धत्वं तथा स्निग्धरूक्षत्वगुणेन द्व्यणुकादिवन्धावस्थायां रूपादिचतुष्टयस्या-शुद्धत्वं, यथा निःस्नेहनिजपरमात्मभावनावलेन रागादिस्निग्धत्वविनाशे सत्यनंतचतु-

ईहापूर्वक इष्ट-अनिष्ट विकल्परूपसे विशेष राग-द्वेषके परिणमनरूप 'कर्मचेतना' है, केवलज्ञानरूप 'शुद्धचेतना' है । इस प्रकार उपरोक्त प्रकारके लक्षणयुक्त उपयोग और चेतना जिसमें नहीं है वह अजीव है, ऐसा जानना, 'पुण' पश्चात्, अर्थात् जीव अधिकारके पश्चात् "पुग्गलधम्मो अधम्म आयासं कालो" और वह (अजीव) पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और कालद्रव्यके भेदसे पाच प्रकारका है ।

पूरण और गलनका स्वभाव होनेसे पुद्गल कहलाता है । गति, स्थिति, अव-गाह और वर्तना (हेतुरूप) लक्षणयुक्त (क्रमपूर्वक) धर्म, अधर्म, आकाश और काल-द्रव्य है । "पुग्गल मुत्तो" पुद्गल मूर्त्त है । किसलिये ? "रूवादिगुणो" रूपादि गुणयुक्त है इसलिये । "अमुत्ति सेसा हु" पुद्गलके अतिरिक्त शेष चार द्रव्य रूपादि गुण रहित होनेसे अमूर्त्त है । वह इस प्रकार—

जैसे अनतज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य—ये चारो गुण सर्व जीवोमे सामान्य है वैसे ही रूप, रस, गंध और स्पर्श—ये चारो गुण सर्व पुद्गलोंमे सामान्य है और जिस प्रकार शुद्ध-बुद्ध-एकस्वभावयुक्त सिद्ध जीवमे अनतचतुष्टय अतीन्द्रिय है उसी प्रकार शुद्ध पुद्गल परमाणु द्रव्यमें रूपादि चतुष्टय अतीन्द्रिय है । जिस प्रकार रागादि स्नेहगुणसे कर्मबन्धकी अवस्थामे ज्ञानादि चतुष्टयका अशुद्धपना है, उसी प्रकार स्निग्ध-रूक्षत्वगुणसे द्वि-अणुकादि बन्ध-अवस्थामे रूपादि चतुष्टयका अशुद्धपना है । जिस प्रकार स्नेह रहित निजपरमात्मभावनाके बलसे रागादि स्निग्धत्वका विनाश

एयस्य शुद्धत्वं तथा जघन्यगुणानां बन्धो न भवतीति वचनात्परमाणुद्रव्ये स्निग्धरूक्षत्व-
गुणस्य जघन्यत्वे सति रूपादिचतुष्टयस्य शुद्धत्वमवबोद्धव्यमित्यभिप्रायः ॥१५॥

✓ अथ पुद्गलद्रव्यस्य विभावव्यञ्जनपर्यायान्प्रतिपादयतिः—

सद्दो बंधो सुहुमो थूलो संठाणभेदतमछाया ।

उज्जोदादवसहिया पुग्गलदव्वस्स पज्जाया ॥१६॥

शब्दः बन्धः सूक्ष्मः स्थूलः संस्थानभेदतमश्छायाः ।

उद्योतातपसहिताः पुद्गलद्रव्यस्य पर्यायाः ॥१६॥

व्याख्या—शब्दबन्धसौक्ष्म्यस्थौल्यसंस्थानभेदतमश्छायातपोद्योतसहिताः पुद्-
गलद्रव्यस्य पर्याया भवन्ति । अथ विस्तरः—भाषात्मकोऽभाषात्मकश्च द्विविधः शब्दः ।
तत्राक्षरानक्षरात्मभेदेन भाषात्मको द्विधा भवति । तत्राप्यक्षरात्मकः संस्कृतप्राकृतापभ्रन्श-
पैशाचिकादिभाषाभेदेनार्यम्लेच्छमनुष्यादिव्यवहारहेतुर्बहुधा । अनक्षरात्मकस्तु इन्द्रियादि-

होने पर अनंतचतुष्टय शुद्ध होता है उसी प्रकार “जघन्य गुणोका बंध नहीं होता”
इस वचनके अनुसार परमाणुद्रव्यमे स्निग्ध-रूक्षत्वगुणकी जघन्यता होने पर रूपादि
चतुष्टयका शुद्धपना होता है ऐसा जानना । ऐसा अभिप्राय है ॥१५॥

अब पुद्गल द्रव्यकी विभावव्यञ्जनपर्यायोका प्रतिपादन करते हैं :—

गाथा—१६

गाथार्थः—शब्द, बंध, सूक्ष्म, स्थूल, संस्थान, भेद, तम, छाया, उद्योत और
आतप पुद्गल द्रव्यकी पर्याये हैं ।

टीकाः—शब्द, बंध, सूक्ष्मता, स्थूलता, संस्थान, भेद, तम, छाया, आतप
और उद्योत पुद्गल द्रव्यकी पर्याये हैं ।

अब विस्तार करते हैंः—भाषात्मक और अभाषात्मकके भेदसे शब्द दो प्रकारके
हैं; वहा अक्षररूप और अनक्षररूप भेदसे भाषात्मक शब्दके दो भेद हैं । उनमें भी
संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रन्श, पिशाची आदि भाषाके भेदसे, आर्य अथवा म्लेच्छ-मनुष्योके
व्यवहारके कारण अक्षरात्मक भाषा अनेक प्रकारकी है । अनक्षरात्मक भाषा
दो इन्द्रियादि तिर्यच जीवोमे और सर्वज्ञकी दिव्यध्वनिमे होती है । अभाषात्मक

शब्द बंध सूक्ष्म अरु थूल, संस्थान अरु भेद समूल ।

तम, छाया, आताप, उजास, पुद्गल के पर्याय समास ॥१६॥

तिर्यग्जीवेषु सर्वज्ञदिव्यध्वनौ च । अभाषात्मकोऽपि प्रायोगिकवैज्ञानिकभेदेन द्विविधः । “ततं वीणादिकं ज्ञेयं विततं पटहादिकम् । घनं तु कांस्यतालादि सुषिरं वंशादिकं विदुः । १ ।” इति श्लोककथितक्रमेण प्रयोगे भवः प्रायोगिकश्चतुर्धा भवति । विज्ञप्ता स्वभावेन भवो वैज्ञानिको मेघादिप्रभवो बहुधा । किञ्च शब्दातीतनिजपरमात्म-भावनाव्युत्तेन शब्दादिमनोज्ञामनोज्ञपञ्चेन्द्रियविषयामक्तेन च जीवेन यदुपार्जितं सुस्वर-दुःस्वरनामकर्म तद्दुदयेन यद्यपि जीवे शब्दो दृश्यते तथापि स जीवसंयोगेनोत्पन्नत्वाद् व्यवहारेण जीवशब्दो भण्यते, निश्चयेन पुनः पुद्गलस्वरूप एवेति । त्रयः कथ्यते— मृत्पिण्डादिरूपेण योऽसौ बहुधा बंधः स केवलः पुद्गलबंधः, यस्तु कर्मनोकर्मरूपः स जीवपुद्गलसंयोगबंधः । किञ्च विशेषः—कर्मबंधपृथग्भूतस्वशुद्धात्मभावनारहितजीव-स्यानुपचरितासद्भूतव्यवहारेण द्रव्यबंधः, तथैवाशुद्धनिश्चयेन योऽसौ रागादिरूपो भाव-

शब्द भी 'प्रायोगिक' और 'वैज्ञानिक'के भेदसे दो प्रकार है । “ततं वीणादिकं ज्ञेयं विततं पटहादिकम् । घनं तु कांस्यतालादि सुषिरं वंशादिकं विदुः ॥” (वीणा आदिके शब्दको 'तत', ढोल आदिके शब्दको 'वितत', मजीरा आदिकी ध्वनिको 'घन' और वशी आदिके शब्दको 'सुषिर' कहते हैं ।) ” इस श्लोकमे कथित क्रमानुसार प्रयोगसे हुए 'प्रायोगिक' शब्द चार प्रकारके हैं । विज्ञप्ता अर्थात् स्वभावसे हुए ऐसे 'वैज्ञानिक' शब्द वादलो आदि द्वारा होते हैं वे अनेक प्रकारके हैं ।

विशेष —शब्दातीत निज परमात्माकी भावनासे च्युत हुए, शब्दादि मनोज्ञ और अमनोज्ञ पाच इन्द्रियोके विषयोमे आसक्त जीवोने जो सुस्वर और दुःस्वर नामक नामकर्म उपार्जित किया था उसके उदयसे यद्यपि जीवमे शब्द दिखलाई देता है तो भी उस जीवके संयोगसे उत्पन्न हुआ होनेसे व्यवहारसे 'जीवका शब्द' कहलाता है, परन्तु निश्चयसे तो वह शब्द पुद्गल स्वरूप ही है ।

अब बंधका कथन किया जाता है—मिट्टीके पिण्डादिरूप जो यह अनेक प्रकारका बंध है वह तो केवल पुद्गलबंध ही है और जो कर्म—नोकर्मरूप बंध है वह जीव और पुद्गलके संयोगरूप बंध है । तथा विशेषः—कर्मबंधसे पृथग्भूत स्वशुद्धात्माकी भावनासे रहित जीवको अनुपचरित असद्भूत व्यवहारसे द्रव्यबंध कहलाता है उसी प्रकार अशुद्धनिश्चयनयसे जो यह रागादिरूप भावबंध कहलाता है वह भी शुद्ध-

बंधः कथ्यते सोऽपि शुद्धनिश्चयनयेन पुद्गलबंध एव । विल्वाद्यपेक्षया बदरादीनां सूक्ष्मत्वं, परमाणोः साक्षादिति; बदराद्यपेक्षया विल्वादीनां स्थूलत्वं, जगद्व्यापिनि महास्कन्धे सर्वोत्कृष्टमिति । समचतुरस्रन्यग्रोधसातिककुब्जवामनहुण्डभेदेनषट्प्रकारसंस्थानं यद्यपि व्यवहारनयेन जीवस्यास्ति तथाप्यसंस्थानाच्चिच्चमत्कारपरिणतेभिन्नत्वान्निश्चयेन पुद्गलसंस्थानमेव; यद्यपि जीवादन्यत्र वृत्तत्रिकोणचतुष्कोणादिव्यक्ताव्यक्तरूपं बहुधा संस्थानं तद्यपि पुद्गल एव । गोधूमादिचूर्णरूपेण घृतखण्डादिरूपेण बहुधा भेदो ज्ञातव्यः । दृष्टिप्रतिबन्धकोऽन्धकारस्तम इति भण्यते । वृक्षाद्याश्रयरूपा मनुष्यादिप्रतिबिम्बरूपा च छाया विज्ञेया । उद्योतश्चंद्रविमाने खद्योतादितिर्यग्जीवेषु च भवति । आतप आदित्यविमाने अन्यत्रापि सूर्यकान्तमणिविशेषादौ पृथ्वीकाये ज्ञातव्यः । अयमत्रार्थः—यथा जीवस्य शुद्धनिश्चयेन स्वात्मोपलब्धिलक्षणे सिद्धस्वरूपे स्वभाव-

निश्चयनयसे पुद्गलबंध ही है ।

बिल्वफल आदिकी अपेक्षासे बेर आदिका सूक्ष्मपना है और परमाणुको साक्षात् सूक्ष्मपना है । बेर आदिकी अपेक्षासे बिल्व आदिका स्थूलपना है और तीनोलोकमें व्याप्त महास्कन्धमे सबसे अधिक स्थूलता है ।

समचतुरस्र, न्यग्रोध, सातिक, कुब्जक, वामन और हुडकके भेदसे छह प्रकारका संस्थान यद्यपि जीवको व्यवहारनयसे है तो भी सस्थानरहित चैतन्यचमत्कारकी परिणतिसे भिन्न होनेसे निश्चयनयसे वह सस्थान पुद्गलका ही है । जीवसे भिन्न जो गोल, त्रिकोण, चतुष्कोण आदि व्यक्त-अव्यक्तरूप अनेक प्रकारके सस्थान है वे भी पुद्गल ही है । गेहूँ आदिके चूर्णरूप तथा घी, शक्कर आदिरूप अनेक प्रकारके (सस्थान) भेद जानना ।

दृष्टिको रोकनेवाले अंधकारको 'तम' कहा जाता है ।

वृक्षादिके आश्रयसे होनेवाले तथा मनुष्यादिकी प्रतिच्छायारूप जो है उसे छाया जानना ।

चन्द्रके विमानमें तथा जुगनू आदि तिर्यच जीवोमे उद्योत होता है ।

सूर्यके विमानमें और अन्य भी सूर्यकान्तमणि आदि विशेष प्रकारके पृथ्वी-कायमें आतप जानना ।

सारांश यह है कि—जिस प्रकार जीवको शुद्धनिश्चयनयसे स्वात्मोपलब्धि जिसका लक्षण है ऐसी सिद्धस्वरूप स्वभावव्यंजनपर्याय विद्यमान होने पर भी,

व्यञ्जनपर्याये विद्यमानेऽप्यनादिकर्मबंधवशात् स्निग्धरूक्षस्थानीयरागद्वेषपरिणामे सति स्वाभाविकपरमानंदैकलक्षणस्वास्थ्यभावभ्रष्ट नरनारकादिविभावव्यञ्जनपर्याया भवन्ति तथापुद्गलस्यापि निश्चयनयेन शुद्धपरमाण्ववस्थालक्षणे स्वभावव्यञ्जनपर्याये सत्यपि स्निग्धरूक्षत्वाद्बंधो भवतीति वचनाद्रागद्वेषस्थानीयबंधयोग्यस्निग्धरूक्षत्वपरिणामे सत्युक्तलक्षणाच्छब्दादन्येऽपि आगमोक्तलक्षणाआकुञ्चनप्रसारणदधिदुग्धादयो विभाव-व्यञ्जनपर्याया ज्ञातव्याः । एवमजीवाधिकारमध्ये पूर्वसूत्रोदितरूपादिगुणचतुष्टययुक्तस्य तथैवात्र सूत्रोदितशब्दादिपर्यायसहितस्य संक्षेपेणाणुस्कंधभेदभिन्नस्य पुद्गलद्रव्यस्य व्याख्यानमुख्यत्वेन प्रथमस्थले गाथाद्वयं गतम् ॥१६॥

अथ धर्मद्रव्यमाख्याति :—

गइपरिणयाण धम्मो पुग्गलजीवाण गमणसहयारी ।
तोयं जह मच्छाणं अछंत्ताणेव सा रोई ॥१७॥

अनादि कर्मबंधके वशसे स्निग्धरूक्षस्थानीय (—जिसप्रकार पुद्गल और पुद्गलके बंधमे स्निग्धरूक्षत्व निमित्तभूत होता है उसी प्रकार जीव-पुद्गलोके बंधमे जो निमित्तभूत होते है ऐसे—) राग-द्वेष परिणाम होने पर स्वाभाविक परमानंद जिसका एक लक्षण है ऐसे स्वास्थ्यभावसे भ्रष्ट नर-नारकादि विभावव्यजनपर्याये होती है, उसी प्रकार पुद्गलको भी निश्चयनयसे शुद्धपरमाणुरूप अवस्था जिसका लक्षण है ऐसी स्वभावव्यजनपर्याय होने पर भी, 'स्निग्ध-रूक्षत्वसे बंध होता है' इस वचनसे राग-द्वेषस्थानीय बंधयोग्य स्निग्ध-रूक्षत्वपरिणाम होनेपर ऊपर कहे हुए शब्दादिकसे अन्य भी, आगमोक्त लक्षणयुक्त सकोच-विस्तार, दही-दूध आदि विभावव्यजनपर्याये जानना ।

इस प्रकार अजीव अधिकारमें पूर्वसूत्रमें कहे हुए रूपादि चार गुणयुक्त और इस सूत्रमे कही हुई शब्दादि पर्यायसहित, अणु और स्कन्धरूप भेदवाले पुद्गलद्रव्यके संक्षेपव्याख्यानकी मुख्यतासे प्रथम स्थलमे दो गाथाये पूर्ण हुई ॥१६॥

अब धर्मद्रव्यका व्याख्यान करते है :—

जीव रु पुद्गल गमन कराहि, सहकारी तब गिनिये ताहि ।
धर्मद्रव्य जिम जल माछला, बैठेकूं न चलावै बला ॥१७॥

गतिपरिणतानां धम्मः पुद्गलजीवानां गमनसहकारी ।
तोयं यथा मत्स्यानां अगच्छतां नैव सः नयति ॥१७॥

व्याख्या—गतिपरिणतानां धर्मो जीवपुद्गलानां गमनसहकारिकारणं भवति ।
दृष्टान्तमाह—तोयं यथा मत्स्यानाम् । स्वयं तिष्ठतो नैव स नयति तानिति । तथाहि—
यथा सिद्धो भगवानमूर्त्तोऽपि निष्क्रियस्तथैवाप्रेरकोऽपि सिद्धवदनन्तज्ञानादिगुणस्वरूपो-
ऽहमित्यादिव्यवहारेण सविकल्पसिद्धभक्तियुक्तानां निश्चयेन निर्विकल्पसमाधिरूपस्व-
कीयोपादानकारणपरिणतानां भव्यानां सिद्धगतेः सहकारिकारणं भवति । तथा निष्क्रियो-
ऽमूर्त्तो निष्प्रेरकोऽपि धर्मास्तिकायः स्वकीयोपादानकारणेन गच्छतां जीवपुद्गलानां
गतेः सहकारिकारणं भवति । लोकप्रसिद्धदृष्टान्तेन तु मत्स्यादीनां जलादिवदित्य-
भिप्रायः । एवं धर्मद्रव्यव्याख्यानरूपेण गाथा गता ॥१७॥

गाथा-१७

गाथार्थः—गमन करनेमें परिणत पुद्गल और जीवोको गमनमें सहकारी धर्म-
द्रव्य है, जिस प्रकार मछलियोको गमन करनेमे जल सहकारी है उसी प्रकार गमन
नही करते हुए जीव और पुद्गलोको वह (धर्मद्रव्य) गमन नही कराता ।

टीकाः—गतिरूपसे परिणमित जीव और पुद्गलोको गति करनेमें 'सहकारी
कारण धर्मद्रव्य है । उसका दृष्टांत कहते हैं : जिस प्रकार मछलियोको गमन करनेमे
सहायक जल है उसीकी भांति । अपने आप स्थित हो (—स्वयं गति न करता हो)
उनको (—ऐसे जीव-पुद्गलोको) वह गमन नही कराता है । वह इस प्रकार.—जिस
प्रकार सिद्ध भगवान् अमूर्त्त होने पर भी, निष्क्रिय और अप्रेरक होने पर भी 'मै
सिद्धसमान अनन्त ज्ञानादिगुणस्वरूप हूँ' इत्यादि व्यवहारसे सविकल्प सिद्धभक्तियुक्त
ऐसे जीवोकी ओर निश्चयसे निर्विकल्पसमाधिरूप निज-उपादानकारण परिणत
जीवोंको सिद्धगतिके सहकारी कारण है, उसी प्रकार निष्क्रिय, अमूर्त्त और अप्रेरक
होने पर भी धर्मद्रव्य, अपने उपादानकारणसे गति करते हुए जीव और पुद्गलोको
गतिमें सहकारी कारण है—जैसे मछली आदिको जल आदिके गमनमे सहायक
होनेके लोकप्रसिद्ध दृष्टांतकी भांति । ऐसा अभिप्राय है ।

इस प्रकार धर्मद्रव्यके व्याख्यानरूपसे यह गाथा पूर्ण हुई ॥१७॥

१-सहकारी कारण=निमित्त कारण

अथाधर्मद्रव्यमुपदिशति :—

ठाणजुदाण अधम्मो पुग्गलजीवाण ठाणसहयारी ।
छाया जह पहियाणं गच्छंता एव सो धरई ॥१८॥

स्थानयुतानां अधर्मः पुद्गलजीवानां स्थानसहकारी ।
छाया यथा पथिकानां गच्छतां नैव सः धरति ॥१८॥

व्याख्या—स्थानयुक्तानामधर्मः पुद्गलजीवानां स्थितेः सहकारिकारणं भवति । तत्र दृष्टान्तः— छाया यथा पथिकानाम् । स्वयं गच्छतो जीवपुद्गलान् स नैव धरतीति । तद्यथा—स्वसंवित्तिसमुत्पन्नसुखामृतरूपं परमस्वास्थ्यं यद्यपि निश्चयेन स्वरूपे स्थितिकारणं भवति तथा “सिद्धोऽहं सुद्धोऽहं अणंतणाणाइगुणसमिद्धोऽहं । देहपमाणो णिच्चो असंखदेशो अमुत्तो य । १ ।” इति गाथाकथितसिद्धभक्तिरूपेणेह पूर्वं सवि-

अब अधर्मद्रव्यको कहते हैं :—

गाथा—१८

गाथार्थः—स्थितियुक्त पुद्गल और जीवोंको स्थितिमें सहकारीकारण अधर्मद्रव्य है; जिस प्रकार छाया यात्रियोकी स्थितिमें सहकारी है उसी प्रकार । गमन करते हुए जीव और पुद्गलोको अधर्मद्रव्य स्थिर नहीं करता है ।

टीकाः—स्थितियुक्त पुद्गल और जीवोंको स्थितिमें सहकारी कारण अधर्मद्रव्य है । वहा दृष्टात .—जिस प्रकार छाया यात्रियोकी स्थितिमें सहकारी है उसी प्रकार । स्वयं गति करते हुए जीव और पुद्गलोको वह स्थिर नहीं करता है । वह इस प्रकार—स्वसंवेदनसे उत्पन्न सुखामृतरूप परम स्वास्थ्य यद्यपि निश्चयनयसे स्वरूपमें स्थितिका कारण है तथा “सिद्धोऽहं सुद्धोऽहं अणंतणाणाइगुणसमिद्धोऽहं । देहपमाणो णिच्चो असंखदेशो अमुत्तो च ।” (मैं सिद्ध हूँ, मैं शुद्ध हूँ, अनंतज्ञानादि गुणोका मैं धारक हूँ, मैं देहप्रमाण, नित्य, असंख्यप्रदेशी और अमूर्त्त हूँ ।)” इस गाथामें कथित सिद्धभक्तिरूपसे पहले सविकल्प अवस्थामें सिद्ध भी जिस प्रकार भव्योको

तिष्ठै पुद्गल जीव सु जबै, थिति-सहकारी होय सु तबै ।

छाया जिम पंथीकू जानि, द्रव्य अधर्म, गमन न विभानि ॥१८॥

कल्पावस्थायां सिद्धोऽपि यथा भव्यानां बहिरङ्गसहकारिकारणं भवति तथैव स्वकीयो-
पादानकारणेन स्वयमेव तिष्ठतां जीवपुद्गलानामधर्मद्रव्यं स्थितेः सहकारिकारणम् ।
लोकव्यवहारेण तु छायावद्वा पृथिवीवद्वेति सूत्रार्थः । एवमधर्मद्रव्यकथनेन गाथा गता ॥१८॥

अथाकाशद्रव्यमाह :—

अवगासदाणजोग्गं जीवादीणं वियाण आयासं ।

जेण्हं लोगागासं अल्लोगागासमिदि दुविहं ॥१९॥

अवकाशदानयोग्यं जीवादीनां विजानीहिं आकाशम् ।

जैनं लोकाकाशं अलोकाकाशं इति द्विविधम् ॥१९॥

व्याख्या—जीवादीनामवकाशदानयोग्यमाकाशं विजानीहि हे शिष्य ! किं
विशिष्टं ? “जेण्हं” जिनस्येदं जैनं, जिनेन प्रोक्तं वा जैनम् । तच्च लोकालोका-
काशभेदेन द्विविधमिति । इदानीं विस्तरः—सहजशुद्धसुखामृतरसास्वादेन परमसमरसी-

सहकारी कारण होते है उसी प्रकार अपने उपादानकारणसे स्वयमेव स्थिति करते
हुए जीव और पुद्गलोको अधर्मद्रव्य स्थितिका सहकारी कारण है, लोकव्यवहारसे
छाया अथवा पृथ्वीकी भाति । इस प्रकार सूत्रार्थ है ।

इस प्रकारसे अधर्मद्रव्यके कथनकी गाथा पूर्ण हुई ॥१८॥

अब आकाशद्रव्यका कथन करते है :—

गाथा—१९

गाथार्थः—जो जीवादि द्रव्योको अवकाश देनेके योग्य है उसे जिनेन्द्रदेव द्वारा
कथित आकाशद्रव्य जानो । लोकाकाश और अलोकाकाश इस भाति आकाश दो
प्रकारका है ।

टीकाः—हे शिष्य ! जिसमे जीवादिको अवकाश देनेकी योग्यता है उसे
जिनेन्द्रकथित आकाशद्रव्य जानो । वह लोक और अलोक रूप आकाशके भेदसे दो
प्रकारका है ।

अब इसका विस्तार कहा जाता हैः—सहज शुद्ध सुखामृतरसके आस्वादवाले

जीवादिक सबकुं अवकाश, देय द्रव्य सो गिनुं आकाश ।

लोक-अलोक दोय विधि अख्या, देव जिनेश्वर जैसँ लख्या ॥१९॥

भावेन भरितावस्थेषु केवलज्ञानाद्यनन्तगुणाधारभूतेषु लोकाकाशप्रमितासंख्येयस्वकीय-
शुद्धप्रदेशेषु यद्यपि निश्चयनयेन सिद्धास्तिष्ठन्ति, तथाप्युपचरितासद्भूतव्यवहारेण मोक्ष-
शिलायां तिष्ठन्तीति भण्यते इत्युक्तोऽस्ति । स च ईदृशो मोक्षो यत्र प्रदेशे परम-
ध्यानेनात्मा स्थितः सन् कर्मरहितो भवति, तत्रैव भवति नान्यत्र । ध्यानप्रदेशे
कर्मपुद्गलान् त्यक्त्वा ऊर्ध्वगमनस्वभावेन गत्वा मुक्तात्मानो यतो लोकाग्रे तिष्ठन्तीति
तत उपचारेण लोकाग्रमपि मोक्षः प्रोच्यते, यथा तीर्थभूतपुरुषसेवितस्थानमपि भूमि-
जलादिरूपमुपचारेण तीर्थं भवति । सुखबोधार्थं कथितमास्ते । यथा तथैव सर्वद्रव्याणि
यद्यपि निश्चयनयेन स्वकीयप्रदेशेषु तिष्ठन्ति तथाप्युपचरितासद्भूतव्यवहारेण लोकाकाशे
तिष्ठन्तीत्यभिप्रायो भगवतां श्रीनेमिचंद्रसिद्धान्तदेवानामिति ॥१९॥

तमेव लोकाकाशं विशेषेण द्रढयति :—

धम्माऽधम्मा कालो पुग्गलजीवा य संति जावदिथे ।
आयासे सो लोगो तत्ता परदो अलोगुत्ति ॥२०॥

परमसमरसीभावसे भरितावस्थ, केवलज्ञानादि अनन्तगुणके आधाररूप, लोकाकाश
प्रमाण असख्यात निज शुद्ध प्रदेशोमे यद्यपि निश्चयनयसे सिद्धभगवत रहते है तो भी
उपचरित असद्भूत व्यवहारनयसे 'सिद्ध भगवान मोक्षशिला पर रहते है' ऐसा कहा
जाता है, इस प्रकार पहले कहा गया है । ऐसा मोक्ष जिस प्रदेशमे परमध्यान द्वारा
आत्मा स्थिर होकर कर्मरहित होता है, वहां ही होता है, अन्यत्र नही, ध्यान करनेके
स्थानमे कर्मपुद्गलोको छोडकर उर्ध्वगमन स्वभावसे गति करके मुक्तात्माये लोकाग्रमे
स्थिर होती है अत उपचारसे लोकके अग्रभागको भी मोक्ष कहते है । तीर्थस्वरूप
पुरुषके द्वारा सेवित भूमि-जलादिरूप स्थान भी उपचारसे तीर्थ (कहा जाता) है ।
इस प्रकार सरलतासे बोध होनेके लिये कहा जाता है । उसी प्रकार सर्व द्रव्य,
यद्यपि निश्चयनयसे अपने प्रदेशोमे रहते है तो भी, उपचरित असद्भूत व्यवहारनयसे
लोकाकाशमे रहते है । इस प्रकार भगवान श्री नेमिचन्द्र सिद्धातिदेवका अभिप्राय
जानना चाहिए ॥१९॥

उसी लोकाकाशको विशेषरूपसे दृढ करते है :—

धर्म-अधर्म जीव पुद्गला, कालद्रव्य ये सब ही रला ।
जेतेमें है लोकाकाश, ताँ परँ अलोक अकाश ॥२०॥

धर्माधर्मौ कालः पुद्गलजीवाः च सन्ति यावतिके ।
आकाशे सः लोकः ततः परतः अलोकः उक्तः ॥२०॥

व्याख्या—धर्माधर्मकालपुद्गलजीवाश्च सन्ति यावत्याकाशे स लोकः । तथा चोक्तं—लोक्यन्ते दृश्यन्ते जीवादिपदार्था यत्र स लोक इति । तस्मान्लोकाकाशात्-परतो बहिर्भागे पुनरनन्ताकाशमलोक इति । अत्राह सोमाभिधानो राजश्रेष्ठी । हे भगवन् ! केवलज्ञानस्यानन्तभागप्रमितमाकाशद्रव्यं तस्याप्यनन्तभागे सर्वमध्यमप्रदेशे लोकस्तिष्ठति । स चानादिनिधनः केनापि पुरुषविशेषेण न कृतो न हतो न धृतो न च रक्षितः । तथैवासंख्यातप्रदेशस्तत्रासंख्यातप्रदेशे लोकेऽनन्तजीवास्तेभ्योऽप्यनन्तगुणाः पुद्गलाः, लोकाकाशप्रमितासंख्येयकालाणुद्रव्याणि, प्रत्येकं लोकाकाशप्रमाणं धर्माधर्मद्वयमित्युक्त-लक्षणाः पदार्थाः कथमवकाशं लभन्त इति ? भगवानाह—एकप्रदीपप्रकाशे नानाप्रदीप-प्रकाशवदेकगूढरसनागगद्याणके बहुसुवर्णवद्भस्मघटमध्ये सूचिकोष्टुद्गुध्वदित्यादिदृष्टान्तेन

गाथा-२०

गाथार्थः—धर्म, अधर्म, काल, पुद्गल और जीव—ये पाच द्रव्य जितने आकाशमें रहते हैं वह लोकाकाश है; उस लोकाकाशसे बाहर अलोकाकाश है ।

टीकाः—धर्म, अधर्म, काल, पुद्गल और जीव जितने आकाशमें हैं वह लोकाकाश है । कहा भी है किः—जहां जीवादि पदार्थ देखनेमें आते हैं वह लोक है । उस लोकाकाशसे बाहर अनन्त आकाश है वह 'अलोकाकाश' है ।

यहां सोम नामक राजश्रेष्ठी प्रश्न करता है : हे भगवन् ! केवलज्ञानके अनन्तवे भागप्रमाण आकाशद्रव्य है, उसके भी अनन्तवे भागमें सर्व मध्यम प्रदेशमें (बीचमें) लोकाकाश है और वह अनादिनिधन है, किसी भी विशिष्ट पुरुष द्वारा न रचा गया है, न नष्ट होता है, न धारण किया जाता है और न रक्षा किया जाता है, तथा वह असंख्यातप्रदेशी है । उस असंख्यातप्रदेशी लोकमें अनन्तजीव, उनसे भी अनन्तगुणे पुद्गल, लोकाकाश प्रमाण असंख्यात कालद्रव्य, प्रत्येक लोकाकाशप्रमाण ऐसे धर्म और अधर्म दो द्रव्य—ये पदार्थ किस प्रकार अवकाश प्राप्त करते हैं ?

भगवान् उत्तर देते हैं—एक दीपकके प्रकाशमें अनेक दीपकोका प्रकाश, एक गूढ रसके शीशियोंमें बहुतसा स्वर्ण, राखसे भरे घड़ेमें सूई और ऊटनीका दूध जिस प्रकार समा जाता है—इत्यादि दृष्टान्तसे, विशिष्ट अवगाहन शक्तिके कारण असंख्य-देरी लोकमें भी पूर्वोक्त पदार्थोंके अवगाहमें विरोध नहीं आता है । तथा यदि इस

विशिष्टावगाहनशक्तिवशादसंख्यातप्रदेशेऽपि लोकेऽवस्थानमवगाहो न विरुध्यते । यदि पुनरित्थंभूतावगाहनशक्तिर्न भवति तर्ह्यसंख्यातप्रदेशेष्वसंख्यातपरमाणूनामेव व्यवस्थानं, तथा सति सर्वे जीवा यथा शुद्धनिश्चयेन शक्तिरूपेण निरावरणाः शुद्धबुद्धैकस्वभावास्तथा व्यक्तिरूपेण व्यवहारनयेनापि, न च तथा प्रत्यक्षविरोधादागमविरोधाच्चेति । एवमाकाशद्रव्यप्रतिपादनरूपेण सूत्रद्वयं गतम् ॥२०॥

अथ निश्चयव्यवहारकालस्वरूपं कथयति :—

द्ववपरिवट्टरूवो जो सो कालो हवेइ ववहारो ।

परिणामादीलखो वट्टणलखो य परमट्टो ॥२१॥

द्रव्यपरिवर्तनरूपः यः सः कालः भवेत् व्यवहारः ।

परिणामादिलक्ष्यः वर्तनालक्षणः च परमार्थः ॥२१॥

व्याख्या—“द्ववपरिवट्टरूवो जो” द्रव्यपरिवर्तनरूपो यः “सो कालो हवेइ

प्रकारकी अवगाहनशक्ति न हो तो लोकके असख्य प्रदेशोमे असख्य परमाणुओंका ही समावेश होता और ऐसा होने पर जिस प्रकार शुद्धनिश्चयनयसे शक्तिरूपसे सब जीव निरावरण और शुद्ध-बुद्ध-एक-स्वभावयुक्त है उसी प्रकार व्यक्तिरूपसे व्यवहारनयसे भी हो जाते ! परंतु ऐसा तो है नहीं, क्योंकि प्रत्यक्ष और आगम—दोनों प्रकारसे उसमे विरोध है ।

इस प्रकार आकाशद्रव्यके प्रतिपादनरूपसे दो गाथाये समाप्त हुई ॥२०॥

अब निश्चयकाल और व्यवहारकालका स्वरूप कहते हैं :—

गाथा-२१

गाथार्थः—जो द्रव्योके परिवर्तनरूप है (अर्थात् द्रव्य परिवर्तनकी स्थितिरूप है) और परिणामादिसे लक्षित होता है वह व्यवहारकाल है, वर्तना लक्षणयुक्त काल निश्चयकाल है ।

टीकाः—“द्ववपरिवट्टरूवो जो” जो द्रव्यके परिवर्तनरूप है (अर्थात् द्रव्यकी

द्रव्यनिके परिवर्तनरूप, काल लखो व्यवहार विरूप ।

लख्यो पढै परिणामनि एह, निश्चय वर्तन लक्षण तेह ॥२१॥

व्यवहारो” स कालो भवति व्यवहाररूपः । स च कथंभूतः ? “परिणामादीलक्षो” परिणामक्रियापरत्वापरत्वेन लक्ष्यते इति परिणामादिलक्ष्यः । इदानीं निश्चयकालः कथ्यते “वट्टणलक्षो य परमट्टो” वर्तनालक्षणश्च परमार्थकाल इति । तद्यथा— जीवपुद्गलयोः परिवर्त्तो नवजीर्णपर्यायस्तस्य या समयघटिकादिरूपा स्थितिः स्वरूपं यस्य स भवति द्रव्यपर्यायरूपो व्यवहारकालः । तथाचोक्तं संस्कृतप्राभृतेन—“स्थितिः कालसंज्ञका” तस्य पर्यायस्य सम्बन्धिनी याऽसौ समयघटिकादिरूपा स्थितिः सा व्यवहारकालसंज्ञा भवति, न च पर्याय इत्यभिप्रायः । यत एव पर्यायसम्बन्धिनी स्थितिव्यवहारकालसंज्ञां भजते तत एव जीवपुद्गलसम्बन्धिपरिणामेन पर्यायेण तथैव देशान्तरचलनरूपया गोदोहनपाकादिपरिस्पन्दलक्षणरूपया वा क्रियया तथैव दूरासन्न-चलनकालकृतपरत्वापरत्वेन च लक्ष्यते ज्ञायते यः, स परिणामक्रियापरत्वापरत्वलक्षण इत्युच्यते । अथ द्रव्यरूपनिश्चयकालमाह । स्वकीयोपादानरूपेण स्वयमेवपरिणममानानां

पर्यायिके साथ सबधवाली कालावधिरूप है) “सो कालो हवेइ व्यवहारो” वह काल व्यवहाररूप है । और वह कैसा है ? “परिणामादीलक्षो” परिणाम, क्रिया, परत्व और अपरत्वसे लक्षित होता है—ज्ञात होता है अतः वह परिणामादिसे लक्ष्य है ।

अब निश्चयकालका कथन किया जाता है । “वट्टणलक्षो य परमट्टो” जो वर्तना लक्षणवाला है वह परमार्थकाल है ।

उसे स्पष्ट किया जाता है:—जीव और पुद्गलके परिवर्तनरूप जो नवीन और नष्ट पर्याय उसकी समय-घड़ी इत्यादिरूप ‘स्थिति’ जिसका स्वरूप है, वह द्रव्य-पर्यायरूप व्यवहारकाल है । वही संस्कृतप्राभृतमें भी कहा है—“स्थितिः कालसंज्ञकाः (स्थितिको ‘काल’ संज्ञा है) ।” उस पर्यायसे संबंधित जो समय, घड़ी आदिरूप स्थिति है वह ‘स्थिति’ व्यवहारकाल है, (पुद्गलादिके परिवर्तनरूप) पर्याय व्यवहार-काल नहीं है—ऐसा अभिप्राय है । पर्यायसबधी स्थितिको व्यवहारकाल ऐसा नाम मिलता है इसीलिए जीव और पुद्गलके परिणामसे—पर्यायसे तथा एक प्रदेशसे अन्य प्रदेशको चलनेरूप अथवा गाय दोहना, रसोई करना आदि परिस्पन्दरूप क्रियासे, उसी प्रकार दूर अथवा समीप चलनेरूप कालकृत परत्व और अपरत्वसे वह लक्षित होता है—ज्ञात होता है अतः वह व्यवहारकाल परिणाम, क्रिया, परत्व और अपरत्व लक्षणयुक्त कहलाता है ।

अब द्रव्यरूप निश्चयकालका कथन कहते हैं:—अपने उपादानरूपसे स्वयमेव

पदार्थानां कुम्भकारचक्रस्याधस्तनशिलावत्, शीतकालाध्ययने अग्निवत्, पदार्थ-परिणतेर्यत्सहकारित्वं सा वर्तना भण्यते । सैव लक्षणं यस्य स वर्तनालक्षणः कालाणु-द्रव्यरूपो निश्चयकालः, इति व्यवहारकालस्वरूपं निश्चयकालस्वरूपं च विज्ञेयम् ।

कश्चिदाह “समयरूप एव निश्चयकालस्तस्मादन्यः कालाणुद्रव्यरूपो निश्चय-कालो नास्त्यदर्शनात् ?” तत्रोत्तरं दीयते—समयस्तावत्कालस्तस्यैव पर्यायः । स कथं पर्याय इति चेत् ? पर्यायस्योत्पन्नप्रध्वंसित्वात् । तथाचोक्तं “समओ उत्पण्ण पद्धंसी” । स च पर्यायो द्रव्यं विना न भवति, पश्चात्तस्य समयरूपपर्यायकालस्योपादानकारणभूतं द्रव्यं तेनापि कालरूपेण भाव्यम् । इन्धनाग्निसहकारिकारणोत्पन्नस्यौदनपर्यायस्य तन्दुलोपादानकारणवत्, अथ कुम्भकारचक्रचीवरादिबहिरंगनिमित्तोत्पन्नस्य मृण्मयघट-पर्यायस्य मृत्पिण्डोपादानकारणवत्, अथवा नरनारकादिपर्यायस्य जीवोपादानकारणवदिति । तदपि कस्मादुपादानकारणसदृशं कार्यं भवतीति वचनात् । अथ मतं “समयादिकाल-

परिणमित पदार्थोको—कुम्हारके चाकको फिरनेमें नीचेकी कीलीके सहकारीपनेकी भाति, शीतकालमें अध्ययन करते हुए विद्यार्थीको अध्ययनमे अग्निके सहकारीपनेकी भाति—पदार्थपरिणतिमें जो सहकारीपना उसे ‘वर्तना’ कहते हैं; यह ‘वर्तना’ जिसका लक्षण है वह, वर्तनालक्षणवाला कालाणुद्रव्यरूप ‘निश्चयकाल’ है ।

इस प्रकार व्यवहारकाल और निश्चयकालका स्वरूप जानना ।

कोई कहता है कि समयरूप ही निश्चयकाल है, उससे भिन्न अन्य कालाणु-द्रव्यरूप निश्चयकाल नहीं है क्योंकि वह देखनेमे नहीं आता है । उसका उत्तर देते हैं—प्रथम तो समयकालकी ही पर्याय है । समयकालकी पर्याय किस प्रकार है ? पर्याय उत्पन्नध्वसी होती है इसलिये । तथा कहा है कि “समओ उत्पण्ण पद्धंसी । (समय उत्पन्न होता है और नाशको प्राप्त होता है ।)” और वह पर्याय द्रव्य के बिना नहीं होती है । उस समयरूप पर्यायकालके उपादानकारणरूप द्रव्य वह भी काल-रूप होना चाहिये । ईन्धन, अग्नि आदि सहकारी कारणसे उत्पन्न भातरूप पर्यायके उपादानकारण धानकी भांति, कुम्हार, चाक, डोरी आदि बहिरंग निमित्तसे उत्पन्न मिट्टीके घटपर्यायके उपादानकारण मिट्टीके पिडकी भाति । अथवा नर-नारकादि पर्यायके उपादानकारण जीवकी भाति समय, घडी आदि कालका उपादानकारण कालद्रव्य होना चाहिये । वह भी किसलिये ? ‘उपादानकारणके जैसा ही कार्य होता है’ ऐसा वचन होनेसे ।

पर्यायाणां कालद्रव्यमुपादानकारणं न भवति; किन्तु समयोत्पत्तौ मन्दगतिपरिणत-पुद्गलपरमाणुस्तथा निमेषकालोत्पत्तौ नयनपुटविघटनं, तथैव घटिकाकालपर्यायोत्पत्तौ घटिकासामग्रीभूतजलभाजनपुरुषहस्तादिव्यापारो, दिवसपर्याये तु दिनकरबिम्बमुपादान-कारणमिति ।” नैवम् । यथा तन्दुलोपादानकारणोत्पन्नस्य सदोदनपर्यायस्य शुक्ल-कृष्णादिवर्णा, सुरभ्यसुरभिगन्ध—स्निग्धरूक्षादिस्पर्श—मधुरादिरसविशेषरूपा गुणा दृश्यन्ते । तथा पुद्गलपरमाणुनयनपुटविघटनजलभाजनपुरुषव्यापारादिदिनकरबिम्बरूपैः पुद्गलपर्यायैरुपादानभूतैः समुत्पन्नानां समयनिमिषघटिकादिकालपर्यायाणामपि शुक्ल-कृष्णादिगुणाः प्राप्नुवन्ति, न च तथा । उपादानकारणसदृश कार्यमिति वचनात् । किं बहुना । योऽसावनाद्यनिधनस्तथैवामूर्त्तौ नित्यः समयाद्युपादानकारणभूतोऽपि समयादिविकल्परहितः कालाणुद्रव्यरूपः स निश्चयकालो, यस्तु सादिसान्तसमयघटिका-प्रहरादिविवक्षितव्यवहारविकल्परूपस्तस्यैव द्रव्यकालस्य पर्यायभूतो व्यवहारकाल इति ।

अब कोई ऐसा मानता है कि “समय आदि कालके पर्यायोंका उपादानकारण कालद्रव्य नहीं है, परन्तु समयरूप पर्यायकी उत्पत्तिमें मन्दगतिपरिणत पुद्गलपरमाणु, निमेषरूप पर्यायकी उत्पत्तिमें आखोका बंद होना और खुलना, घडीरूप कालपर्यायकी उत्पत्तिमें घडीकी सामग्रीरूप जलका बर्तन, मनुष्यके हाथ आदिके व्यापार और दिवसरूप पर्यायकी उत्पत्तिमें सूर्यका बिंब उपादानकारण है ।” परन्तु ऐसा नहीं है । यदि ऐसा हो तो, जिस प्रकार चावलरूप उपादानकारणसे उत्पन्न भातरूप पर्यायमें सफेद, काला आदि रंग, सुगंध अथवा दुर्गंध, स्निग्ध अथवा रूक्षादि स्पर्श, मधुर आदि रस इत्यादि विशेष गुण दिखाई पड़ते हैं; उसी प्रकार पुद्गलपरमाणु, आखोंका खुलना अथवा बन्द होना, जलका कटोरा और मनुष्यका व्यापार आदि, तथा सूर्य बिम्बरूप उपादानभूत पुद्गल पर्यायोसे उत्पन्न समय, निमिष, घडी, दिवस आदि कालपर्यायोंमें भी सफेद, कृष्ण आदि गुण प्राप्त होने चाहिये ! परन्तु ऐसा तो होता नहीं क्योंकि उपादानकारणके समान कार्य होता है ऐसा वचन है ।

बहुत कहनेसे क्या ? जो अनादिनिधन है, अमूर्त्त है, नित्य है, समयादिके उपादानकारणभूत होने पर भी समयादिके भेदरहित है; वह कालाणुद्रव्यरूप निश्चयकाल है । और जो सादि-सान्त है, समय, घडी, प्रहर आदि विवक्षित व्यवहारनयके भेदरूप है वही द्रव्यकालकी पर्यायरूप व्यवहारकाल है ।

अयमत्र भावः । यद्यपि काललब्धिवशेनानन्तसुखभाजनो भवति जीवस्तथापि विशुद्ध-
ज्ञानदर्शनस्वभावनिजपरमात्मतत्त्वस्य सम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानसमस्तवहिर्द्रव्येच्छानिवृत्ति-
लक्षणतपश्चरणरूपा या निश्चयचतुर्विधाराधना सैव तत्रोपादानकारणं ज्ञातव्यम् न च
कालस्तेन स हेय इति ॥२१॥

अथ निश्चयकालस्यावस्थानक्षेत्रं द्रव्यगणनां च प्रतिपादयति :—

लोयायासपदेसे इक्किक्के जे ठिया हु इक्किक्का ।

रयणाणं रासी इव ते कालाणू असंखदव्वाणि ॥२२॥

लोकाकाशप्रदेशे एकैकस्मिन् ये स्थिताः हि एकैकाः ।

रत्नानां राशिः इव ते कालाणवः असंख्यद्रव्याणि ॥२२॥

व्याख्या—“लोयायासपदेसे इक्किक्के जे ठिया हु इक्किक्का” लोकाकाश-
प्रदेशेष्वेकैकेषु ये स्थिता एकैकसंख्योपेता “हु” स्फुटं । क इव ? “रयणाणं रासी इव”

साराश यह है कि—यद्यपि काललब्धिके वशसे जीव अनन्तसुखका भाजन
होता है, तो भी विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावी निजपरमात्मतत्त्वके सम्यक्श्रद्धान-ज्ञान-
आचरणरूप तथा समस्त वहिर्द्रव्यकी इच्छाकी निवृत्ति जिसका लक्षण है ऐसे तप-
श्चरणरूप जो निश्चय चतुर्विध आराधना है वही उसमे उपादानकारण जानना, काल
नहीं; अतः वह (काल) हेय है ॥२१॥

अब निश्चयकालके रहनेके क्षेत्रका तथा द्रव्यकी सख्याका प्रतिपादन करते हैं :—

गाथा-२२

गाथार्थः—जो लोकाकाशके एक-एक प्रदेश पर रत्नोकी राशिकी भाति भिन्न-
भिन्नरूपसे एक-एक स्थित है वे कालाणु असंख्य द्रव्य है ।

टीकाः—“लोयायासपदेसे इक्किक्के जे ठिया हु इक्किक्का” लोकाकाशके एक-एक
प्रदेश पर जो एक-एक सख्यामे स्थित है, “हु” स्पष्टरूपसे, किसके समान ?
“रयणाणं रासी इव” परस्पर तादात्म्यरहित रत्नोकी राशिकी भाति । “ते कालाणू”

लोकाकाश-प्रदेशानि मांहि, एक एक परि जुंदे गिणांहि ।

जे असंख्य तिष्ठै थिररूप, कालाणू जिम रत्ननि तूप ॥२२॥

परस्परतादात्म्यपरिहारेण रत्नानां राशिरिव । “ते कालाणू” ते कालाणवः । कति संख्योपेताः ? “असंखदब्वाणि” लोकाकाशप्रमितासंख्येयद्रव्याणीति । तथाहि—यथा अंगुलिद्रव्यस्य यस्मिन्नेव क्षणे वक्रपर्यायोत्पत्तिस्तस्मिन्नेव क्षणे पूर्वप्राञ्जलपर्याय-विनाशोऽङ्गलिरूपेण ध्रौव्यमिति द्रव्यसिद्धिः । यथैव च केवलज्ञानादिव्यक्तिरूपेण कार्यसमयसारस्योत्पादो निर्विकल्पसमाधिरूपकारणसमयसारस्य विनाशस्तदुभयाधारपर-मात्मद्रव्यत्वेन ध्रौव्यमिति वा द्रव्यसिद्धिः । तथा कालाणोरपि मन्दगतिपरिणतपुद्गल-परमाणुना व्यक्तीकृतस्य कालाणुपादानकारणोत्पन्नस्य य एव वर्तमानसमयस्योत्पादः स एवातीतसमयापेक्षया विनाशस्तदुभयाधारकालाणुद्रव्यत्वेन ध्रौव्यमित्युत्पादव्यय-ध्रौव्यात्मककालद्रव्यसिद्धिः । लोकबहिर्भागेकालाणुद्रव्याभावात्कथमाकाशद्रव्यस्य परिणति-रिति चेत् ? अखण्डद्रव्यत्वादेकदेशदण्डाहतकुम्भकारचक्रभ्रमणवत्, तथैवैकदेशमनोहर-स्पर्शनेन्द्रियविषयानुभवसर्वाङ्गसुखवत्, लोकमध्यस्थितकालाणुद्रव्यधारणैकदेशेनापि सर्वत्र

वे कालाणु है । उनकी कितनी संख्या है ? “असंखदब्वाणि” लोकाकाशके प्रदेश-प्रमाण असंख्य द्रव्य है । विशेष—जिसप्रकार अंगुलिकी वक्र पर्यायिकी उत्पत्ति जिस क्षण होती है उसी क्षण पूर्वकी सीधी पर्यायिका व्यय होता है और अंगुलिरूपसे ध्रौव्य रहता है—इस प्रकार द्रव्यकी सिद्धि होती है; तथा जिस प्रकार केवल-ज्ञानादिकी व्यक्तिरूपसे कार्य-समयसारका उत्पाद, निर्विकल्प समाधिरूप कारण सम-यसारका विनाश और उन दोनोंके आधारभूत परमात्मद्रव्यत्वरूपसे ध्रौव्य है—इस प्रकार भी द्रव्यकी सिद्धि है, उसी प्रकार कालाणुको भी मन्दगतिसे परिणमित पुद्गलपरमाणु द्वारा प्रगट किये गये और कालाणुरूप उपादानकारणसे उत्पन्न हुए जो वर्तमान समयका उत्पाद है वही भूतकालके समयकी अपेक्षासे विनाश है और उन दोनोंके आधारभूत कालाणुद्रव्यरूपसे ध्रौव्य है—इस प्रकार उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यात्मक कालद्रव्यकी सिद्धि है ।

शंकाः—लोकाकाशके बाह्य भागमे कालाणुद्रव्यका अभाव होनेसे आकाश-द्रव्यका परिणमन (अलोकाकाशमे) किस प्रकार होता है ?

समाधानः—आकाश अखण्ड द्रव्य होनेसे, जिस प्रकार कुम्हारके चाकके एक भागमें लकड़ीसे प्रेरणा करने पर पूरा चाक भ्रमण करता है, तथा स्पर्शेन्द्रियके विषयका एक भागमे मनोहर अनुभव करनेसे समस्त शरीरमें सुखका अनुभव होता है, उसी प्रकार लोकाकाशमें रहे हुए कालाणुद्रव्य आकाशके एक भागमे स्थित होने पर भी सम्पूर्ण आकाशमे परिणमन होता है ।

परिणमनं भवतीति कालद्रव्यं शेषद्रव्याणां परिणतेः सहकारिकारणं भवति । कालद्रव्यस्य किं सहकारिकारणमिति ? यथाकाशद्रव्यमशेषद्रव्याणामाधारः स्वस्यापि, तथा कालद्रव्यमपि परेषां परिणतिसहकारिकारणं स्वस्यापि । अथ मतं यथा कालद्रव्यं स्वस्योपादानकारणं परिणतेः सहकारिकारणं च भवति तथा सर्वद्रव्याणि, कालद्रव्येण किं प्रयोजनमिति ? नैवम्; यदि पृथग्भूतसहकारिकारणेनप्रयोजनं नास्ति तर्हि सर्वद्रव्याणां साधारणगतिस्थित्यवगाहनविषये धर्माधर्माकाशद्रव्यैरपि सहकारिकारणभूतैः प्रयोजनं नास्ति । किञ्च, कालस्य घटिकादिवसादिकार्यं प्रत्यक्षेण दृश्यते; धर्मादीनां पुनरागमकथनमेव, प्रत्यक्षेण किमपि कार्यं न दृश्यते; ततस्तेषामपि कालद्रव्यस्यैवाभावः प्राप्नोति । ततश्च जीवपुद्गलद्रव्यद्वयमेव, स चागमविरोधः । किञ्च, सर्वद्रव्याणां परिणतिसहकारित्वं कालस्यैव गुणः, घ्राणेन्द्रियस्य रसास्वादनिमित्तान्यद्रव्यस्य गुणोऽन्यद्रव्यस्य कर्तुं नायाति द्रव्यसंकरदोषप्रसंगादिति ।

शंकाः—कालद्रव्य शेष अन्य द्रव्योके परिणमनको सहकारी कारण होता है; कालद्रव्यके परिणमनमे सहकारी कारण कौन होता है ?

समाधानः—जिसप्रकार आकाशद्रव्य अन्य सब द्रव्योका आधार है और अपना भी आधार है, उसी प्रकार कालद्रव्य भी अन्य द्रव्योके परिणमनमे सहकारी कारण है और अपने परिणमनमे भी सहकारी कारण है ।

शंकाः—जिसप्रकार कालद्रव्य अपने परिणमनमे उपादान कारण है और सहकारी कारण भी है उसीप्रकार सब द्रव्य भी अपने परिणमनमे उपादान और सहकारी कारण होवे; उन द्रव्योके परिणमनमे कालद्रव्यका क्या प्रयोजन है ?

समाधानः—ऐसा नहीं है । यदि अपनेसे भिन्न सहकारी कारणका प्रयोजन न हो तो सर्वद्रव्योके सामान्य गति, स्थिति और अवगाहनके विषयमे सहकारी कारणभूत धर्म, अधर्म और आकाशद्रव्यका भी कोई प्रयोजन न रहे । तथा, कालद्रव्यका घडी, दिवस आदि कार्य तो प्रत्यक्षरूपसे दिखाई पडता है, परंतु धर्म आदि द्रव्योका तो आगम कथन ही है, प्रत्यक्षरूपसे उनका कोई कार्य दिखाई नहीं देता है, अतः कालद्रव्यकी भांति उनका भी अभाव प्राप्त होगा, तत्पश्चात् जीव और पुद्गल दो ही द्रव्य रहते हैं और वह तो (ऐसा मानना तो) आगमसे विरुद्ध है । तथा, सर्वद्रव्योको परिणमनमें सहकारी होना यह कालद्रव्यका ही गुण है, जिसप्रकार घ्राणइन्द्रियसे रसास्वाद नहीं हो सकता है उसीप्रकार अन्य द्रव्यका गुण अन्य द्रव्य द्वारा नहीं हो सकता है क्योंकि ऐसा माननेसे द्रव्यसकररूप दोषका प्रसंग आता है ।

कश्चिदाह—यावत्कालेनैकाकाशप्रदेशं परमाणुरतिक्रामति ततस्तावत् कालेन समयो भवतीत्युक्तमागमे एकसमयेन चतुर्दशरज्जुगमने यावंत आकाशप्रदेशास्तावन्तः समयाः प्राप्नुवन्ति । परिहारमाह—एकाकाशप्रदेशातिक्रमेण यत् समयव्याख्यानं कृतं तन्मन्दगत्यपेक्षया, यत्पुनरेकसमये चतुर्दशरज्जुगमनव्याख्यानं तत्पुनः शीघ्रगत्यपेक्षया । तेन कारणेन चतुर्दशरज्जुगमनेऽप्येकसमयः । तत्र दृष्टान्तः—कोऽपि देवदत्तो योजनशतं मन्दगत्या दिनशतेन गच्छति । स एव विद्याप्रभावेण शीघ्रगत्या दिनेनैकेनापि गच्छति तत्र किं दिनशतं भवति । किन्त्वेक एव दिवसः । तथा चतुर्दशरज्जुगमनेऽपि शीघ्रगमनेनैक एव समयः ।

किञ्च—स्वयं विषयानुभवरहितोऽप्ययं जीवः परकीयविषयानुभवं दृष्टम् श्रुतं च मनसि स्मृत्वा यद्विषयाभिलाषं करोति तदपध्यानं भण्यते, तत्प्रभृतिसमस्तजालरहितं स्वसंविच्चिसमुत्पन्नसहजानन्दैकलक्षणसुखरसास्वादसहितं यत्तद्वीतरागचारित्रं भवति ।

कोई कहता है—‘जितनेकालमे आकाशके एक प्रदेशसे दूसरे प्रदेशमें परमाणु गमन करता है उतने कालको समय कहते हैं’ इस प्रकार आगममें कहा है तो एक समयमे चौदह राजू गमन करता हुआ परमाणु जितने आकाश प्रदेशोको पार करता है उतना समय होना चाहिये ! उसका समाधान करते हैं:—परमाणु एक आकाश प्रदेशसे अन्य प्रदेश पर जाता है उतने कालको शास्त्रमे समय कहा है वह परमाणुकी मन्दगतिकी अपेक्षासे है और परमाणुका एक समयमे चौदह राजू गमन करता है तो भी एक समय ही होता है । यहा यह दृष्टात है कि कोई देवदत्त नामक पुरुष मन्दगतिसे चलकर सौ दिनोमे सौ योजन चलता है, और वही पुरुष विद्याके प्रभावसे शीघ्र गति करके एक दिनमे भी सौ योजन जाता है तो (तब) क्या उसको सौ योजन चलनेमें सौ दिन लगते हैं ? नहीं, परन्तु एक ही दिन लगता है, उसीप्रकार चौदह राजू गमन करनेमे भी शीघ्रगमनके कारण परमाणुको एक ही समय लगता है ।

तथा विशेष—स्वयं विषयोके अनुभवरहित होने पर भी यह जीव दूसरोके द्वारा देखे हुए, सुने हुए, अनुभव किये हुए विषयका मनमे स्मरण करके जो विषयोंकी अभिलाषा करता है उसे अपध्यान कहा जाता है । उस विषय—अभिलाषरूप अपध्यानादि समस्त जाल रहित, स्वसवेदनसे उत्पन्न सहजानन्द जिसका एक लक्षण है ऐसे सुखके रसास्वाद सहित जो है वह वीतरागचारित्र है और उसके साथ जो अविनाभावी होता है वह निश्चयसम्यक्त्व अथवा वीतरागसम्यक्त्व कहलाता है ।

यत्पुनस्तदविनाभूतं तन्निश्चयसम्यक्त्वं वीतरागसम्यक्त्वं चेति भण्यते । तदेव कालत्रये-
ऽपि मुक्तिकारणम् । कालस्तु तदभावे सहकारिकारणमपि न भवति ततः स हेय इति ।
तथाचोक्तम्—“किं पलविण्ण बहुणा जे सिद्धा णरवरा गए काले । सिद्धिहंहि
जेवि भविया तं जाणह सम्ममाहप्पं ॥” इदमत्र तात्पर्यम्—कालद्रव्यमन्यद्वा परमा-
गमाविरोधेन विचारणीयं परं किन्तु वीतरागसर्वज्ञवचनं प्रमाणमिति मनसि निश्चित्य
विवादो न कर्तव्यः । कस्मादिति चेत् ? विवादे रागद्वेषौ भवतस्ततश्च संसारवृद्धि-
रिति ॥२२॥

एवं कालद्रव्यव्याख्यानमुख्यतया पञ्चमस्थले सूत्रद्वयं गतं । इतिगाथाष्टक-
समुदायेन पंचभिः स्थलैः पुद्गलादिपंचविधाजीवद्रव्यकथनरूपेण द्वितीयो अन्तराधि-
कारः समाप्तः ।

अतः परं सूत्रपञ्चकपर्यन्तं पञ्चास्तिकायव्याख्यानं करोति । तत्रादौ गाथा-

वही (निश्चयसम्यक्त्व ही) तीनों कालमें मुक्तिका कारण है । उसके अभावमे काल
तो सहकारी कारण भी नहीं होता है, अत वह हेय है । इसी प्रकार कहा भी है
कि—“किं पलविण्ण बहुणा जे सिद्धा णरवरा गए काले । सिद्धिहंहि जेवि भविया तं
जाणह सम्ममाहप्पं ॥” (बहुत कहनेसे क्या ? जो श्रेष्ठ पुरुष भूतकालमे सिद्ध हुए
है, होते है और भविष्यकालमे होंगे वह सम्यक्त्वका 'माहात्म्य जानो ।) ”

यहां तात्पर्य यह है कि—कालद्रव्य तथा अन्य द्रव्यमे परमागमके अविरोध-
रूपसे विचार करना परतु 'वीतराग सर्वज्ञका वचन सत्य है' इस प्रकार मनमे
निश्चय करके विवाद न करना । किसलिये ? क्योंकि विवाद करनेसे राग-द्वेष होता
है और राग-द्वेषसे संसारकी वृद्धि होती है ॥२२॥

इस प्रकार कालद्रव्यके व्याख्यानकी मुख्यतासे पाचवे स्थलमें दो गाथाये पूर्ण
हुई । इस प्रकार आठ गाथाओके समुदायसे पाच स्थलोंमे पुद्गल आदि पाच प्रकारके
अजीव द्रव्योके कथनरूपसे दूसरा अन्तराधिकार पूर्ण हुआ ।

अब पांच गाथाओ तक पचास्तिकायका व्याख्यान करते है । उनमे भी प्रथम

पूर्वाद्धेन षड्द्रव्यव्याख्यानोपसंहार उत्तरार्धेन तु पंचास्तिकायव्याख्यानप्रारम्भः कथ्यते:—

एवं छब्भेयमिदं जीवाजीवप्पभेददो दव्वं ।

उत्तं कालविजुत्तं णादव्वा पंच अत्थिकाया दु ॥२३॥

एवं षड्भेदं इदं जीवाजीवप्रभेदतः द्रव्यम् ।

उक्तं कालवियुक्तम् ज्ञातव्याः पञ्च अस्तिकायाः तु ॥२३॥

व्याख्या—“एवं छब्भेयमिदं जीवाजीवप्पभेददो दव्वं उत्तं” एवं पूर्वोक्त-
प्रकारेण षड्भेदमिदं जीवाजीवप्रभेदतः सकाशाद्द्रव्यमुक्तं कथितं प्रतिपादितम् । “काल-
विजुत्तं णादव्वा पंच अत्थिकाया दु” तदेव षड्विधं द्रव्यं कालेन वियुक्तं रहितं
ज्ञातव्याः पञ्चास्तिकायास्तु पुनरिति ॥२३॥

पञ्चेति संख्या ज्ञाता तावदिदानीमस्तित्वं कायत्वं च निरूपयति:—

सन्ति जदो तेणेदे अत्थित्ति भण्णंति जिणवरा जह्मा ।

काया इव बहुदेसा तह्मा काया य अत्थिकाया य ॥२४॥

गाथाके पूर्वार्धसे छह द्रव्योके व्याख्यानका उपसंहार और उत्तरार्धसे पंचास्तिकायके व्याख्यानका प्रारम्भ करते हैं .—

गाथा—२३

गाथार्थः—इस प्रकार जीव और अजीवके प्रभेदसे द्रव्य छह प्रकारके हैं ।
कालद्रव्यके अतिरिक्त शेष पांच द्रव्योको अस्तिकाय जानना ।

टीका:—“एवं छब्भेयमिदं जीवाजीवप्पभेददो दव्वं उत्तं” इस प्रकार पूर्वोक्त
प्रकारसे जीव और अजीवके प्रभेदसे ये छह प्रकारके द्रव्य कहे हैं । “कालविजुत्तं
णादव्वा पंच अत्थिकाया दु” उन्ही छह प्रकारके द्रव्योमेंसे पंचास्तिकाय रूपसे
जानना ॥२३॥

पाच ऐसी संख्या तो ज्ञात हुई; अब इनके अस्तित्व और कायत्वका निरूपण
करते हैं :—

ऐसैं द्रव्य कहे छह भेद, जीव-अजीवतणे, विन खेद ।

काल विना पण अस्ति जु काय, जानूं जिन भापे समुदाय ॥२३॥

एते 'हैं' ऐसैं जिनदेव, भापे अस्तिरूप स्वयमेव ।

वहु प्रदेश काय जिम लखैं, अस्तिकाय पांचूं इम अखैं ॥२४॥

सन्ति यतः तेन एते अस्ति इति भणन्ति जिनवराः यस्मान् ।

काया इव बहुप्रदेशाः तस्मान् कायाः च अस्तिकायाः च ॥२४॥

व्याख्या—“मंति जदो तेणेदे अत्थित्ति भणंति जिणवरा” सन्ति विग्रन्ते यत एते जीवाद्याकाशपर्यन्ताः पञ्च तेन कारणेनैतेऽस्तीति भणंति जिणवराः सर्वज्ञाः । “जत्ता काया इव बहुदेसा तस्मा काया य” यस्मात्काया इव बहुप्रदेशास्तस्मात्कारणात्कायाश्च भणंति जिणवराः । “अत्थिकाया य” एवं न केवलं पूर्वोक्तप्रकारेणास्तित्वेन युक्ता अस्तिमंज्ञास्तथैव कायत्वेन युक्ताः कायमंज्ञा भवन्ति किन्तुभयमेलापकेनास्तिकायमंज्ञाश्च भवन्ति । इदानीं मंज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदेऽप्यस्तित्वेन महाभेदं दर्शयति । तथाहि शुद्धजीवास्तिकायं मिद्वन्वलक्षणः शुद्धद्रव्यव्यजनपर्यायः, केवलज्ञानादयो विशेषगुणाः, अस्तिवस्तुत्वागुरुलघुत्वादयः सामान्यगुणाश्च । तथैवाव्यावाधानन्तमुखाद्यनन्तगुणव्यक्तिरूपस्य कार्यसमयसारकात्पादो रागादिविभावरहितपरमस्वास्थ्यरूपस्य कारणसमयसारस्य व्यथस्तदभयाधारभूतपरमान्मद्रव्यत्वेन ध्रौव्यमित्युक्तलक्षणैर्गुणपर्यायैरुत्पाद-

गाथा-२४

गाथार्थः—यद्योऽपि वे विद्यमान ह अत. जिनवरोने इन्हे ‘अस्ति’ कहा हे और ये कायकी भांति बहुप्रदेशी है अत इनको ‘काय’ कहा ह । दोनो मिलकर ‘अस्तिकाय’ होते ह ।

टीकाः—“मंति जदो तेणेदे अत्थित्ति भणंति जिणवरा” जीवसे आकाशतकके पाच द्रव्य विद्यमान है इस कारणसे इनको सर्वज्ञ जिनवर ‘अस्ति’ कहते हैं । “जत्ता काया इव बहुदेसा तस्मा काया य” और वे कायाकी भांति बहुप्रदेशी है अत जिनवर उनको ‘काय’ कहते हैं । “अत्थिकाया य” इस प्रकार पहले कहा है उसी प्रकार ‘अस्तित्व’ युक्त होनेसे केवल ‘अस्ति’ सज्ञा नहीं है, तथा ‘कायत्व’ युक्त होनेसे केवल ‘काय’ सज्ञा भी नहीं है; परन्तु दोनोके मिलापसे ‘अस्तिकाय’ सज्ञा है ।

अब सज्ञा, लक्षण, प्रयोजन आदिका भेद होने पर भी अस्तित्वके साथ (ये पाचो) अभेद है ऐसा बतलाते हैं—शुद्ध जीवास्तिकायमे (मुक्त दशामे) सिद्धत्व-लक्षणरूप शुद्धद्रव्य-व्यजनपर्याय, केवलज्ञान आदि विशेष गुण और अस्तित्व, वस्तुत्व, अगुरुलघुत्व आदि सामान्य गुण है, तथा (मुक्त दशामे) अव्यावाध अनतसुखादि अनत गुणकी व्यक्तारूप कार्य-समयसारका उत्पाद, रागादि विभावरहित परम-स्वास्थ्यरूप कारण-समयसारका व्यय और उन दोनोके आधारभूत परमात्मद्रव्यत्वरूपसे ध्रौव्य है, शुद्ध जीवास्तिकायको इस भांति उपरोक्त लक्षणवाले गुण-पर्याय

व्ययध्रौव्यैश्च सह मुक्तावस्थायां संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदेऽपि सत्तारूपेण प्रदेशरूपेण च भेदो नास्ति । कस्मादिति चेत् ? मुक्तात्मसत्तायां गुणपर्यायाणामुत्पादव्ययध्रौव्याणां चास्तित्वं सिद्धयति, गुणपर्यायोत्पादव्ययध्रौव्यसत्तायाश्च मुक्तात्मास्तित्वं सिद्धयतीति परस्परसाधितसिद्धत्वादिति । कायत्वं कथ्यते—बहुप्रदेशप्रचयं दृष्ट्वा यथा शरीरं कायो भण्यते तथानन्तज्ञानादिगुणाधारभूतानां लोकाकाशप्रमाणासंख्येयशुद्धप्रदेशानां प्रचयं समूहं संघातं मेलापकं दृष्ट्वा मुक्तात्मनि कायत्वं भण्यते । यथा शुद्धगुणपर्यायोत्पाद-व्ययध्रौव्यैः सह मुक्तात्मनः सत्तारूपेण निश्चयेनाभेदो दर्शितस्तथा यथासंभवं संसारिजीवेषु पुद्गलधर्माधर्माकाशकालेषु च द्रष्टव्यः । कालद्रव्यं विहाय कायत्वं चेति सूत्रार्थः ॥२४॥

अथ कायत्वव्याख्याने पूर्वं यत्प्रदेशास्तित्वं सूचितं तस्य विशेषव्याख्यानं करोती-
त्येका पातनिका, द्वितीया तु कस्य द्रव्यस्य कियन्तः प्रदेशा भवन्तीति प्रतिपादयतिः—

और उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यके साथ मुक्तअवस्थामे सज्ञा, लक्षण, प्रयोजन आदिका भेद होने पर भी सत्तारूपसे और प्रदेशरूपसे भेद नहीं है । भेद किसलिये नहीं है ? मुक्तात्माकी सत्तामे गुण-पर्यायोका और उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यका अस्तित्व सिद्ध होता है तथा गुण-पर्याय और उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यकी सत्तासे मुक्तात्माका अस्तित्व सिद्ध होता है; इस प्रकार परस्पर साधित सिद्धत्व (—साध्यसाधनपना) है ।

अब इनके कायत्वका कथन किया जाता हैः—जिस प्रकार बहुत प्रदेशोके समूहको देखकर शरीरको 'काय' कहा जाता है, उसी प्रकार अनन्त ज्ञानादि गुणोके आधारभूत लोकाकाशप्रमाण असंख्य शुद्ध प्रदेशोका समूह देखकर मुक्तात्मामें 'कायत्व' कहा जाता है ।

जिस प्रकार शुद्ध गुण-पर्याय और उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यके साथ मुक्तात्माको सत्तारूपसे निश्चयनयसे अभेदपना कहा (दर्शाया), उसी प्रकार यथासंभव ससारी जीवोमे तथा पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और कालमें भी जानना, और काल-द्रव्यके अतिरिक्त कायत्व भी जानना ।

—इस प्रकार इस गाथाका अर्थ है ॥२४॥

अब कायत्वके व्याख्यानमे पहले जो प्रदेशोका अस्तित्व सूचित किया था उसका विशेष व्याख्यान करते हैं । [एक पातनिका (उत्थानिका) तो इसप्रकार है, दूसरी पातनिका इसप्रकार है कि,] किस द्रव्यके कितने प्रदेश है इसका प्रतिपादन करते हैं :—

होति असंखा जीवे धम्माधम्मे अणंत आयासे ।

मुत्ते तिविह पदेसा कालस्सेगो ण तेण सो काओ ॥२५॥

भवन्ति असंख्याः जीवे धर्माधर्मयोः अनन्ताः आकाशे ।

मूर्त्ते त्रिविधाः प्रदेशाः कालस्य एकः न तेन सः कायः ॥२५॥

व्याख्या—“होति असंखा जीवे धम्माधम्मे” भवन्ति लोकाकाशप्रमिता-संख्येयप्रदेशाः प्रदीपवदुपसंहारविस्तारयुक्तेऽप्येकजीवे, नित्यं स्वभावविस्तीर्णयोर्धर्माधर्मयोरपि । “अणंत आयासे” अनन्तप्रदेशा आकाशे भवन्ति । “मुत्ते तिविह पदेसा” मूर्त्ते पुद्गलद्रव्ये संख्यातासंख्यातानन्ताणूनां पिण्डाः स्कन्धास्त एव त्रिविधाः प्रदेशा भण्यन्ते, न च क्षेत्रप्रदेशाः । कस्मात् ? पुद्गलस्यानन्तप्रदेशक्षेत्रे अवस्थानाभावादिति । “कालस्सेगो” कालाणुद्रव्यस्यैक एव प्रदेशः । “ण तेण सो काओ” तेन कारणेन स कायो न भवति । कालस्यैकप्रदेशत्वविषये युक्तिं प्रदर्शयति । तद्यथा—किञ्चिद्न-

गाथा-२५

गाथार्थः—जीव, धर्म तथा अधर्मद्रव्यके असंख्य प्रदेश है, आकाशके अनन्त प्रदेश है; मूर्त्तिके (पुद्गलके) तीन प्रकारके (संख्यात, असंख्यात और अनन्त) प्रदेश है । कालका एक प्रदेश है अतः वह 'काय' नहीं है ।

टीकाः—“होति असंखा जीवे धम्माधम्मे” दीपककी भांति सकोच-विस्तारयुक्त एक जीवमे और सदा स्वभावसे विस्तृत धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्यमें भी लोकाकाश-प्रमाण असंख्य प्रदेश होते हैं । “अणंत आयासे” आकाशमें अनन्त प्रदेश होते हैं । “मुत्ते तिविह पदेसा” मूर्त्ति-पुद्गल द्रव्यमे संख्यात, असंख्यात और अनन्त परमाणुओके पिण्ड अर्थात् स्कन्ध होते हैं उन्हींको तीन प्रकारके प्रदेश कहे जाते हैं, क्षेत्र प्रदेशोको नहीं; क्योंकि पुद्गल अनन्त प्रदेशी क्षेत्रमे नहीं रहता है । “कालस्सेगो” कालाणुको एक ही प्रदेश है । “ण तेण सो काओ” इस कारण वह काय नहीं है । कालद्रव्यके एक प्रदेश होनेके विषयमे युक्ति दिखलाते हैं । वह इस प्रकार—जिस प्रकार अंतिम शरीरसे कुछ न्यून प्रमाणवाली सिद्धत्व पर्यायिका उपादानकारणभूत जो शुद्धात्मद्रव्य

देश असंख्य जीव एकै, धर्म-अधर्म तथा गिनि तकै ।

नम अनन्त, पुद्गल बहु भाय, एक कालकै, इम विन-काय ॥२५॥

चरमशरीरप्रमाणस्य सिद्धत्वपर्यायस्योपादानकारणभूतं शुद्धात्मद्रव्यं तत्पर्यायप्रमाणमेव । यथा वा मनुष्यदेवादिपर्यायोपादानकारणभूतं संसारिजीवद्रव्यं तत्पर्यायप्रमाणमेव, तथा कालद्रव्यमपि समयरूपस्य कालपर्यायस्य विभागेनोपादानकारणभूतमविभाग्येकप्रदेश एव भवति । अथवा मन्दगत्या गच्छतः पुद्गलपरमाणोरेकाकाशप्रदेशपर्यन्तमेव कालद्रव्यं गतेः सहकारिकारणं भवति ततो ज्ञायते तदप्येकप्रदेशमेव ।

कश्चिदाह—पुद्गलपरमाणोर्गतिसहकारिकारणं धर्मद्रव्यं तिष्ठति, कालस्य किमायातम् ? नैवं वक्तव्यम्—धर्मद्रव्ये गतिसहकारिकारणे विद्यमानेऽपि मत्स्यानां जलवन्मनुष्याणां शकटारोहणादिवत्सहकारिकारणानि बहून्यपि भवन्ति इति । अथ मतं कालद्रव्यं पुद्गलानां गतिसहकारिकारणं कुत्र भणितमास्ते ? तदुच्यते—“पुग्गल-करणा जीवा खंधा खलु कालकरणादु” इत्युक्तं श्रीकुंदकुन्दाचार्यदेवैः पञ्चास्तिकायप्राभृते । अस्यार्थः कथ्यते—धर्मद्रव्ये विद्यमानेऽपि जीवानाम् कर्मनोकर्मपुद्गला गतेः सहकारिकारणं भवन्ति, अणुस्कन्धभेदभिन्नपुद्गलानां तु कालद्रव्यमित्यर्थः ॥२५॥

है वह सिद्धत्वपर्याय प्रमाण (उसके समान) ही है, अथवा जिस प्रकार मनुष्य, देव आदि पर्यायोका उपादानकारणभूत जो संसारी जीवद्रव्य है वह इस मनुष्यादि पर्यायप्रमाण ही (उसके बराबर ही) है, उसीप्रकार कालद्रव्य भी समयरूप काल-पर्यायके अविभागपनेसे उपादानकारणभूत अविभागी एक प्रदेश ही होता है । अथवा मन्दगतिसे गमन करते हुए पुद्गलपरमाणुको एक आकाश प्रदेश तक ही कालद्रव्य गतिका सहकारी कारण होता है अत ज्ञात होता है कि वह कालद्रव्य भी एक प्रदेशी ही है ।

शंकाः—कोई प्रश्न करता है कि पुद्गलपरमाणुको गतिमें सहकारी कारण धर्मद्रव्य है उसमे कालद्रव्यका क्या प्रयोजन है ?

समाधानः—ऐसा नहीं कहना चाहिए । गतिमें सहकारी कारण धर्मद्रव्य विद्यमान होने पर भी मछलीको गति करनेमे जलकी भाति और मनुष्यको शकट-आरोहण आदिकी भाति अन्य भी बहुतसे सहकारी कारण होते हैं । कोई कहता है कि कालद्रव्य पुद्गलोकी गतिमे सहकारी कारण है ऐसा कहाँ पर कहा है ? उसका उत्तर देते हैंः—श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवने पञ्चास्तिकाय प्राभृतमें कहा है कि “पुग्गल-करणा जीवा खंधा खलु कालकरणा दु” इसका अर्थ कहा जाता है.—धर्मद्रव्य विद्यमान होने पर भी, जीवको गतिमें कर्म-नोकर्मरूप पुद्गल सहकारी कारण होते हैं और अणु तथा स्कन्ध—इन दो भेदवाले पुद्गलोको गमनमे कालद्रव्य सहकारी कारण होता है ॥२५॥

अथैकप्रदेशस्यापि पुद्गलपरमाणोरुपचारेण कायत्वमुपदिशति :—

एयपदेसो वि अणू णाणाखंधप्पदेसदो होदि ।

बहुदेसो उवयारा तेण य काओ भणंति सब्वणहु ॥२६॥

एकप्रदेशः अपि अणुः नानास्कन्धप्रदेशतः भवति ।

बहुदेशः उपचारात् तेन च कायः भणन्ति सर्वज्ञः ॥२६॥

व्याख्या—“एयपदेसो वि अणू णाणाखंधप्पदेसदो होदि बहुदेसो” एक-प्रदेशोऽपि पुद्गलपरमाणुर्नानास्कन्धरूपबहुप्रदेशतः सकाशाद्बहुप्रदेशो भवति । “उवयारा” उपचाराद् व्यवहारनयात्, “तेण य काओ भणंति सब्वणहु” तेन कारणेन कायमिति सर्वज्ञा भणन्तीति । तथाहि—यथायं परमात्मा शुद्धनिश्चयनयेन द्रव्यरूपेण शुद्धस्तथैकोऽप्यनादिकर्मबन्धवशात्स्निग्धरूक्षस्थानीयरागद्वेषाभ्यां परिणम्य नरनारकादि-विभावपर्यायरूपेण व्यवहारेण बहुविधो भवति । तथा पुद्गलपरमाणुरपि स्वभावेनैको-

अव पुद्गल परमाणु एक प्रदेशी है तो भी उपचारसे उसे कायत्व है ऐसा उपदेश देते हैं :—

गाथा-२६

गाथार्थः—एक प्रदेशी (होने पर) भी परमाणु अनेक स्कन्धरूप बहुप्रदेशी हो सकता है इस कारण सर्वज्ञदेव उपचारसे परमाणुको ‘काय’ कहते हैं ।

टीकाः—“एयपदेसो वि अणू णाणाखंधप्पदेसदो होदि बहुदेसो” पुद्गल-परमाणु एक प्रदेशी है तो भी भिन्न-भिन्न स्कंधरूप बहुप्रदेशी होता है; “उवयारा” उपचार अर्थात् व्यवहारनयसे; “तेण य काओ भणंति सब्वणहु” इस कारण सर्वज्ञदेव उस पुद्गल परमाणुको ‘काय’ कहते हैं ।

विशेषः—जिस प्रकार यह परमात्मा शुद्ध निश्चयनयसे द्रव्यरूपसे शुद्ध तथा एक है तो भी अनादि कर्मबन्धके वश स्निग्ध-रूक्षगुणस्थानीय राग-द्वेषरूप परिणमित होकर व्यवहारसे नर-नारकादि विभाव-पर्यायरूपसे अनेक प्रकारका होता है, उसी प्रकार पुद्गल परमाणु भी स्वभावसे एक और शुद्ध होने पर भी राग-द्वेष स्थानीय

पुद्गल-अणु एक प्रदेश, खंध रूक्ष चीकणतै वेश ।

बहुदेशी उपचार कहाव, कायरूप इम कखौ स्वभाव ॥२६॥

ऽपि शुद्धोऽपि रागद्वेषस्थानीयबन्धयोग्यस्निग्धरूक्षगुणाभ्यां परिणम्य द्विअणुकादिस्कन्ध-
रूपविभावपर्यायैर्बहुविधो बहुप्रदेशो भवति तेन कारणेन बहुप्रदेशलक्षणकायत्वकारणत्वा-
दुपचारेण कायो भण्यते । अथ मतं यथा पुद्गलपरमाणोर्द्रव्यरूपेणैकस्यापि द्व्यणुकादि-
स्कन्धपर्यायरूपेण बहुप्रदेशरूपं कायत्वं जातं तथा कालाणोरपि द्रव्येणैकस्यापि पर्यायेण
कायत्वं भवत्विति ? तत्र परिहारः—स्निग्धरूक्षहेतुकस्य बन्धस्याभावान्न भवति ।
तदपि कस्मात् ? स्निग्धरूक्षत्वं पुद्गलस्यैव धर्मो यतः कारणादिति । अणुत्वं पुद्गल-
संज्ञा, कालस्याणुसंज्ञा कथमिति चेत् ? तत्रोचरम्—अणुशब्देन व्यवहारेण पुद्गला
उच्यन्ते निश्चयेन तु वर्णादिगुणानां पूरणगलनयोगात्पुद्गला इति वस्तुवृत्त्या पुनरणुशब्दः
सूक्ष्मवाचकः । तद्यथा—परमेण प्रकर्षेणाणुः । अणुः कोऽर्थः ? सूक्ष्म, इति व्युत्पत्त्या
परमाणुः । स च सूक्ष्मवाचकोऽणुशब्दो निर्विभागपुद्गलविवक्षायां पुद्गलाणुं वदति ।
अविभागिकालद्रव्यविवक्षायाम् तु कालाणुं कथयतीत्यर्थः ॥२६॥

बन्धयोग्य स्निग्ध-रूक्षगुणरूपसे परिणमित होकर द्वि-अणुक आदि स्कन्धरूप विभाव-
पर्यायरूपसे अनेक प्रकारसे बहुप्रदेशी होता है इस कारण 'बहुप्रदेशत्व' जिसका
लक्षण है ऐसे कायत्वके कारण उपचारसे 'काय' कहलाता है ।

कोई मानता है कि जिसप्रकार पुद्गलपरमाणुको, उसके द्रव्यरूपसे एक होने
पर भी, द्वि-अणुक आदि स्कन्धपर्यायरूपसे बहुप्रदेशरूप कायत्व है, उसी प्रकार
कालाणुको भी, उसके द्रव्यसे एक होने पर भी, पर्यायोसे कायत्व हो ! उसका
परिहार किया जाता है :—स्निग्ध-रूक्षत्व जिसका कारण है ऐसे बधका (कालमे)
अभाव होनेसे वैसा नहीं होता है । वह किसलिये है ? क्योंकि स्निग्ध-रूक्षत्व पुद्-
गलका ही धर्म है ।

शंकाः—'अणु' पुद्गलकी संज्ञा है, कालको अणु संज्ञा किसप्रकार है ?

उत्तरः—'अणु' शब्द द्वारा व्यवहारनयसे पुद्गलोका कथन किया जाता है,
निश्चयसे तो वर्णादि गुणोके पूरण और गलनके सबधसे उनको पुद्गल कहा जाता
है । वास्तविकरूपसे 'अणु' शब्द सूक्ष्मताका वाचक है । जैसे कि परमपने अर्थात्
प्रकृष्टपने जो अणु है वह 'परमाणु' है । 'अणु' का अर्थ क्या ? 'सूक्ष्म', इस व्युत्पत्तिसे
'परमाणु' शब्द 'अतिसूक्ष्म' को कहता है । और वह सूक्ष्मतावाचक 'अणु' शब्द
निर्विभाग पुद्गलकी विवक्षामे 'पुद्गलाणु'को कहता है और अविभागी कालद्रव्यकी
विवक्षामें 'कालाणु' को कहता है ॥२६॥

अथ प्रदेशलक्षणमुपलक्षयति :—

जावदियं आयासं अविभागीपुग्गलाणुउट्टद्धं ।
तं खु पदेसं जाणे सव्वाणुट्टाणदाणरिहं ॥२७॥
यावतिकं आकाशं अविभागीपुद्गलाणववट्टवधम् ।
तं खलु प्रदेशं जानीहि सव्वाणुस्थानदानार्हम् ॥२७॥

व्याख्या—“जावदियं आयासं अविभागीपुग्गलाणुउट्टद्धं तं खु पदेसं जाणे”
यावत्प्रमाणमाकाशमविभागीपुद्गलपरमाणुना विष्टव्यं व्याप्तं तदाकाशं खु स्फुटं प्रदेशं
जानीहि । हे शिष्य ! कथंभूतं “सव्वाणुट्टाणदाणरिहं” सर्वाणानां सर्वपरमाणुनां
सूक्ष्मस्कन्धानां च स्थानदानस्यावकाशदानस्यार्हं योग्यं समर्थमिति । यत एवेत्थंभूताव-
गाहनशक्तिरस्त्याकाशस्य तत एवासंख्यातप्रदेशेऽपि लोके अनन्तानन्तजीवास्तेभ्योऽप्य-
नन्तगुणपुद्गला अवकाशं लभन्ते । तथा चोक्तम्, जीवपुद्गलविषयेऽवकाशदान-

अव प्रदेशका लक्षण कहते हे :—

गाथा-२७

गाथार्थः—जितना आकाश अविभागी पुद्गलाणु से रोका जाता है उसे सर्व
अणुओको स्थान देनेमे योग्य प्रदेश जानो ।

टीकाः—“जावदियं आयासं अविभागी पुग्गलाणुउट्टद्धं तं खु पदेसं जाणे” हे
शिष्य ! जितना आकाश अविभागी पुद्गलपरमाणुसे व्याप्त हो उतने आकाशको
स्पष्टरूपसे प्रदेश जानो । कैसा है वह ? “सव्वाणुट्टाणदाणरिहं” वह प्रदेश सर्व
अणुओको-सर्व परमाणुओको और सूक्ष्म स्कन्धोंको-स्थान अर्थात् अवकाश देनेमे
योग्य है । आकाशद्रव्यमे ऐसी अवगाहनशक्ति है इसी कारण ही असंख्यात प्रदेशी
लोकाकाशमे भी अनन्तानन्त जीव और उनसे भी अनन्तगुणे पुद्गल अवकाश प्राप्त
करते हैं । इसीप्रकार जीवो और पुद्गलोंके सबधमे अवकाश देनेका सामर्थ्य
(अन्यत्र इस प्रकार) कहा है :—“एक निगोदके शरीरमें भूतकालमें हो गये सर्व

पुद्गल-अणु जितो आकाश, रोकै सो परदेश विकास ।

सर्व अणुकुं दे अवगाह, शक्ति ऐसी धारै जु अथाह ॥२७॥

।।मथ्यम् “एगणिगोदसरीरे जीवा दव्वप्पमाणदो दिट्ठा । सिद्धेहि अणंतगुणा सव्वेण
वेतीदकालेण ॥१॥ ओगाढगाढणिचिदो पोग्गलकाएहिं सव्वदो लोगो । सुहमेहिं
।।दरेहिं य णंताणंतेहिं विविधेहिं ॥२॥” अथ मतं मूर्त्तपुद्गलानां विभागो भेदो
भवतु नास्ति विरोधः, अमूर्त्तखण्डस्याकाशद्रव्यस्य कथं विभागकल्पनेति ? तन्न ।
।।गाद्युपाधिरहितस्वसंवेदनप्रत्यक्षभावनोत्पन्नसुखामृतरसास्वादतृप्तस्य मुनियुगलस्या-
।।स्थानक्षेत्रमेकमनेकं वा । यद्येकं, तर्हि द्वयोरेकत्वं प्राप्नोति, न च तथा । भिन्नं चेत्तदा
नेर्विभागद्रव्यस्यापि विभागकल्पनमायातं घटाकाशपटाकाशमित्यादिवदिति ॥२७॥
।। एवं सूत्रपञ्चकेन पञ्चास्तिकायप्रतिपादकनामा तृतीयोऽन्तराधिकारः ॥

इति श्रीनेमिचन्द्रसैद्धान्तदेवविरचिते द्रव्यसंग्रहग्रन्थे नमस्कारादिसप्तविंशति-
।।गाथाभिरन्तराधिकारत्रयसमुदायेन षड्द्रव्यपञ्चास्तिकायप्रतिपादकनामा प्रथमोधिकारः
समाप्तः ।

सैद्धोंसे अनतगुणे जीव द्रव्यप्रमाणसे 'देखे गये है ॥१॥ यह लोक सब ओरसे विविध
।। तथा अनतानत सूक्ष्म और बादर पुद्गलोसे ठसाठस ²भरा है ॥२॥

शंकाः—मूर्त्त ऐसे पुद्गलोमे भेद हो, इसमे विरोध नहीं है; परतु अमूर्त्त और
।। अखण्ड आकाशद्रव्यमे भेद कल्पना किस प्रकार सभव है ?

समाधानः—यह शका योग्य नहीं है । रागादि उपाधिरहित, स्वसंवेदन-
।। प्रत्यक्षभावनसे उत्पन्न सुखामृतके रसास्वादसे तृप्त दो मुनियोके रहनेका क्षेत्र एक है
।। या अनेक ? यदि दोनोके रहनेका क्षेत्र एक हो तो दोनो एकत्वको प्राप्त होते है,
।। परतु ऐसा तो है नहीं । और यदि कहो कि दोनोका निवास क्षेत्र भिन्न है तो निर्वि-
।। भाग ऐसे आकाशद्रव्यमें भी घटाकाश, पटाकाश इत्यादिकी भाति विभागकल्पना
।। सिद्ध हुई ॥२७॥

इस प्रकार पांच सूत्रोंसे पञ्चास्तिकायका प्रतिपादन करनेवाला तीसरा अत-
।। राधिकार पूर्ण हुआ ।

इस प्रकार श्री नेमिचन्द्रसिद्धान्तदेव विरचित द्रव्यसंग्रह ग्रन्थमें नमस्कारादि
।। सत्ताईस गाथाओ द्वारा, तीन अतराधिकारो द्वारा छह द्रव्य और पञ्चास्तिकायका
।। प्रतिपादन करनेवाला प्रथम अधिकार समाप्त हुआ ।

।।—गोम्मटसार जीवकाण्ड गाथा—१६५

।।—पञ्चास्तिकाय गाथा—१६४

चूलिका

अतः परं पूर्वोक्तषड्द्रव्याणां चूलिकारूपेण विस्तरव्याख्यानं क्रियते । तद्यथा—

परिणामि जीव-मुत्तं, सपदेमं एय-खेत्त-किरिया य ।

णिच्चं कारण कत्ता, सव्वगदमिदरंहि यपवेसे ॥१॥

दुण्णि य एयं एयं, पंच त्तिय एय दुण्णि चउरो य ।

पंच य एयं एयं, एदेसं एय उत्तरं शेयं ॥२॥ (युग्मम्)

व्याख्या—“परिणामि” इत्यादिव्याख्यानं क्रियते । “परिणामि” परिणामिनौ जीवपुद्गलौ स्वभावविभावपरिणामाभ्यां कृत्वा, शेष चत्वारि द्रव्याणि विभावव्यञ्जनपर्यायाभावान्मुख्यवृत्त्या पुनरपरिणामीनीति । “जीव” शुद्धनिश्चयनयेन विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावं शुद्धचैतन्यं प्राणशब्देनोच्यते तेन जीवतीति जीवः । व्यवहारनयेन

इसके पश्चात् पूर्वोक्त छह द्रव्योका चूलिकारूपसे (उपसंहार रूपसे) विशेष व्याख्यान करते हैं—

चूलिका

गाथार्थः—छह द्रव्योंमें जीव और पुद्गल ये दो द्रव्य परिणामी है, चेतनद्रव्य एक जीव है, मूर्तिक एक पुद्गल है, प्रदेश सहित जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म तथा आकाश ये पांच द्रव्य है, एक-एक सख्यावाले धर्म, अधर्म और आकाश—ये तीन द्रव्य है, क्षेत्रवान एक आकाश द्रव्य है, क्रियासहित जीव और पुद्गल—ये दो द्रव्य है, नित्यद्रव्य धर्म, अधर्म, आकाश और काल—ये चार है, कारणद्रव्य पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल—ये पाच है, कर्त्ता एक जीवद्रव्य है, सर्वव्यापक द्रव्य एक आकाश है, (एक क्षेत्रावगाह होने पर भी) इन छहों द्रव्योको परस्पर प्रवेश नहीं है । इस प्रकार छहो मूल द्रव्योके उत्तरगुण जानना ।

टीकाः—“परिणामि” स्वभाव तथा विभाव परिणामोसे जीव और पुद्गल—ये दो द्रव्य परिणामी है, शेष चार द्रव्य विभावव्यजनपर्यायिके अभावकी मुख्यतासे अपरिणामी है ।

“जीव” शुद्धनिश्चयनयसे विशुद्ध ज्ञानदर्शनस्वभावी शुद्धचैतन्यको ‘प्राण’ शब्दसे कहा जाता है, उस शुद्धचैतन्यरूप प्राणसे जो जीता है वह जीव है । व्यवहार-

पुनः कर्मोदयजनितद्रव्यभावरूपैश्चतुर्भिः प्राणैर्जीवति, जीविष्यति, जीवितपूर्वो वा जीवः । पुद्गलादिपञ्चद्रव्याणि पुनरजीवरूपाणि । “मुत्तं” अमूर्तं शुद्धात्मनो विलक्षण-स्पर्शरसगन्धवर्णवती मूर्तिरुच्यते, तत्सद्भावात्मूर्तिः पुद्गलः । जीवद्रव्यं पुनरनुपचरिता-सद्भूतव्यवहारेण मूर्त्तमपि, शुद्धनिश्चयनयेनामूर्त्तम्, धर्माधर्माकाशकालद्रव्याणि चामूर्त्तानि । “सपदेसं” लोकमात्रप्रमितासंख्येयप्रदेशलक्षणं जीवद्रव्यमादिं कृत्वा पञ्चद्रव्याणि पञ्चास्तिकायसंज्ञानि सप्रदेशानि । कालद्रव्यं पुनर्बहुप्रदेशत्वलक्षणकायत्वाभावादप्रदेशम् । “एय” द्रव्यार्थिकनयेन धर्माधर्माकाशद्रव्याण्येकानि भवन्ति । जीवपुद्गलकालद्रव्याणि पुनरनेकानि भवन्ति । “खेत्त” सर्वद्रव्याणामवकाशदानसामर्थ्यात् क्षेत्रमाकाशमेकम् । शेषपञ्चद्रव्याण्यक्षेत्राणि । “किरियाय” क्षेत्रात्क्षेत्रान्तरगमनरूपा परिस्पन्दवती चलनवती क्रिया सा विद्यते ययोस्तौ क्रियावन्तौ जीवपुद्गलौ । धर्माधर्माकाशकालद्रव्याणि पुनर्निष्क्रियाणि । “णिच्चं” धर्माधर्माकाशकालद्रव्याणि यद्यप्यर्थपर्यायत्वेनानित्यानि,

नयसे कर्मोदयजनित द्रव्य और भावरूप चारप्रकारके (इन्द्रिय, बल, आयु, श्वासो-च्छ्वास) प्राणोसे जो जीता है, जीयेगा और पहले जीता था वह जीव है । पुद्गल आदि पांच द्रव्य अजीवरूप है ।

“मुत्तं” अमूर्तं शुद्धात्मासे विलक्षण स्पर्श, रस, गंध और वर्णरूप मूर्ति कह-लाता है, उसके सद्भावसे पुद्गल मूर्त है । जीवद्रव्य अनुपचरित असद्भूत व्यव-हारसे मूर्त है परन्तु शुद्धनिश्चयनयसे अमूर्त है । धर्म, अधर्म, आकाश और काल द्रव्य अमूर्त है ।

“सपदेसं” लोकमात्रप्रमाण असंख्य प्रदेशयुक्त जीवद्रव्यसे लेकर पांच द्रव्य (जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश) ‘पञ्चास्तिकाय’ सज्ञक सप्रदेश है । काल-द्रव्यको, बहुप्रदेश जिसका लक्षण है ऐसे कायत्वका, अभाव होनेसे वह अप्रदेश है ।

“एय” द्रव्यार्थिकनयसे धर्म, अधर्म और आकाश द्रव्य एक-एक है । जीव, पुद्गल, काल द्रव्य अनेक है । “खेत्त” सर्व द्रव्योको अवकाश देनेसे समर्थ होनेसे क्षेत्र एक आकाशद्रव्य है, शेष पांच द्रव्य अक्षेत्र है ।

“किरिया य” जिनसे एक क्षेत्रसे अन्य क्षेत्रमें गमन करनेरूप, परिस्पन्दरूप अथवा चलनेरूप क्रिया है वे क्रियावान जीव और पुद्गल—ये दो द्रव्य है । धर्म, अधर्म, आकाश और काल—ये चार द्रव्य निष्क्रिय है । “णिच्चं” धर्म, अधर्म, आकाश और कालद्रव्य यद्यपि अर्थपर्यायवाले होनेकी अपेक्षासे अनित्य है तो भी मुख्यरूपसे

तथापि मुख्यवृत्त्या विभावव्यञ्जनपर्यायाभावान्नित्यानि, द्रव्यार्थिकनयेन च; जीवपुद्गल-द्रव्ये पुनर्यद्यपि द्रव्यार्थिकनयापेक्षया नित्ये तथाप्यगुरुलघुपरिणतिस्वरूपस्वभावपर्यायापेक्षया विभावव्यञ्जनपर्यायापेक्षया चानित्ये । “कारण” पुद्गलधर्माधर्माकाशकालद्रव्याणि व्यवहारनयेन जीवस्यशरीरवाङ्मनःप्राणापानादिगतिस्थित्यवगाहवर्तनाकार्याणि कुर्वन्तीति कारणानि भवंति । जीवद्रव्यं पुनर्यद्यपि गुरुशिष्यादिरूपेण परस्परोपग्रहं करोति तथापि पुद्गलादिपंचद्रव्याणां किमपि न करोतीत्यकारणम् । “कर्त्ता” शुद्धपारिणामिकपरमभाव-ग्राहकेन शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन यद्यपि बंधमोक्षद्रव्यभावरूपपुण्यपापघटपटादीनामकर्त्ता जीव-स्तथाप्यशुद्धनिश्चयेन शुभाशुभोपयोगाभ्यां परिणतः सन् पुण्यपापबंधयोः कर्त्ता तत्फल-भोक्ता च भवति । विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावनिजशुद्धात्मद्रव्यस्य सम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठान-रूपेण शुद्धोपयोगेन तु परिणतः सन् मोक्षस्यापि कर्त्ता तत्फलभोक्ता चेति । शुभाशुभ-शुद्धपरिणामानां परिणमनमेव कर्त्तृत्वं सर्वत्र ज्ञातव्यमिति । पुद्गलादिपंचद्रव्याणां च स्वकीयस्वकीयपरिणामेन परिणमनमेव कर्त्तृत्वम्, वस्तुवृत्त्या पुनः पुण्यपापादिरूपेणा-

उनमें विभावव्यञ्जनपर्यायिका अभाव होनेसे वे नित्य है, द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे भी नित्य है । जीव और पुद्गल द्रव्य यद्यपि द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे नित्य है तो भी अगुरुलघुगुणके परिणमनरूप स्वभावपर्यायिकी अपेक्षासे तथा विभावव्यजन-पर्यायिकी अपेक्षासे अनित्य है ।

“कारण” पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और कालद्रव्य व्यवहारनयसे जीवके शरीर-वाणी-मन-प्राण-उच्छ्वास, गति, स्थिति, अवगाहन और वर्तनारूप कार्य करते हैं अतः कारण है । जीवद्रव्य यद्यपि गुरु-शिष्यादिरूपसे परस्पर उपकार करते हैं तो भी पुद्गलादि पांच द्रव्योका कुछ भी कार्य नहीं करते हैं अतः जीव ‘अकारण’ है ।

“कर्त्ता” शुद्ध-पारिणामिक-परमभावग्राहक शुद्धद्रव्यार्थिकनयसे जीव यद्यपि बंध-मोक्ष, द्रव्य-भावरूप पुण्य-पाप और घट-पटादिका अकर्त्ता है तो भी अशुद्धनिश्चयसे शुभ और अशुभोपयोगरूप परिणमित होकर पुण्य-पापबंधका कर्त्ता और उनके फलका भोक्ता होता है, विशुद्ध ज्ञानदर्शनस्वभावी निज शुद्धात्मद्रव्यके सम्यक्श्रद्धानज्ञान और अनुष्ठानरूप शुद्धोपयोगसे परिणत होता हुआ मोक्षका भी कर्त्ता और उसके फलका भोक्ता होता है । सर्वत्र जीवको शुभ, अशुभ तथा शुद्ध परिणामोके परिण-मनरूपही कर्त्तृत्व जानना । पुद्गलादि पांच द्रव्योको तो अपने-अपने परिणामसे जो परिणमन है वही कर्त्तृत्व है; वास्तवमें पुण्य-पापादिरूपसे अकर्त्तृत्व ही है ।

कर्तृत्वमेव । “सर्वगतं” लोकालोकव्याप्त्यपेक्षया सर्वगतमाकाशं भण्यते । लोकव्याप्त्य-
पेक्षया धर्माधर्मौ च । जीवद्रव्यं पुनरेकजीवापेक्षया लोकपूरणावस्थां विहायासर्वगतं,
नानाजीवापेक्षया सर्वगतमेव भवति, पुद्गलद्रव्यं पुनर्लोकरूपमहास्कन्धापेक्षया सर्वगतं,
शेषपुद्गलापेक्षया सर्वगतं न भवति, कालद्रव्यं पुनरेककालाणुद्रव्यापेक्षया सर्वगतं,
न भवति, लोकप्रदेशप्रमाणनानाकालाणुविवक्षया लोके सर्वगतं भवति । “इदं हि य पवेसे”
यद्यपि सर्वद्रव्याणि व्यवहारेणैकक्षेत्रावगाहेनान्योन्यप्रवेशेन तिष्ठन्ति तथापि निश्चय-
नयेन चेतनादिस्वकीयस्वरूपं न त्यजन्तीति । अत्र षड्द्रव्येषु मध्ये वीतरागचिदानन्दै-
कादिगुणस्वभावं शुभाशुभमनोवचनकायव्यापाररहितं निजशुद्धात्मद्रव्यमेवोपादेयमिति
भावार्थः ।

अत ऊर्ध्वं पुनरपि षड्द्रव्याणां मध्ये हेयोपादेयस्वरूपं विशेषेण विचारयति ।
तत्र शुद्धनिश्चयनयेन शक्तिरूपेण शुद्धबुद्धैकस्वभावत्वात् सर्वे जीवा उपादेया भवन्ति ।

“सर्वगतं” लोक और अलोकमे व्याप्त होनेकी अपेक्षासे आकाशको ‘सर्वगत’
कहा जाता है । लोकाकाशमें व्याप्त होनेकी अपेक्षासे धर्म और अधर्मद्रव्य सर्वगत
है । जीवद्रव्य, एक जीवकी अपेक्षासे लोकपूरण नामक समुद्घातकी अवस्थाके अति-
रिक्त असर्वगत है परन्तु भिन्न-भिन्न जीवकी अपेक्षासे सर्वगत ही है । पुद्गलद्रव्य
लोकव्यापक महास्कन्धकी अपेक्षासे सर्वगत है और शेष पुद्गलोकी अपेक्षासे सर्वगत
नहीं है । कालद्रव्य, एक कालाणुद्रव्यकी अपेक्षासे सर्वगत नहीं है, लोकाकाशके
प्रदेशके बराबर भिन्न-भिन्न कालाणुओकी विवक्षासे कालद्रव्य लोकमे सर्वगत है ।

“इदं हि य पवेसे” यद्यपि सर्व द्रव्य व्यवहारनयसे एक क्षेत्र अवगाह होनेसे
एक दूसरेमे प्रवेश करके रहते हैं तो भी निश्चयनयसे चेतना आदि अपने-अपने
स्वरूपको नहीं छोड़ते हैं ।

सारांश यह है कि इन छह द्रव्योंमे वीतराग, चिदानन्द, एक आदि गुणस्व-
भावी और शुभाशुभ मन, वचन और कायाके व्यापाररहित निज शुद्धात्मद्रव्य ही
उपादेय है ।

(हेय-उपादेयस्वरूपका विशेष विचार)

इसके पश्चात्, पुनः छह द्रव्योंमे हेय-उपादेय स्वरूपका विशेष विचार करते हैं ।
वहाँ शुद्धनिश्चयनयसे शक्तिरूपसे सर्व जीव शुद्ध-बुद्ध-एकस्वभावी होनेसे उपादेय है

व्यक्तिरूपेण पुनः पञ्चपरमेष्ठिन एव । तत्राप्यर्हत्सिद्धद्वयमेव । तत्रापि निश्चयेन सिद्ध एव । परमनिश्चयेन तु भोगाकांक्षादिरूपसमस्तविकल्पजालरहितपरमसमाधिकाले सिद्ध-सदृशः स्वशुद्धात्मैवोपादेयः, शेषद्रव्याणि हेयानीति तात्पर्यम् । शुद्धबुद्धैकस्वभाव इति कोऽर्थः ? मिथ्यात्वरगादिसमस्तविभावरहितत्वेन शुद्ध इत्युच्यते, केवलज्ञानाद्यनन्तगुण-सहितत्वाद् बुद्धः । इति शुद्धबुद्धैकलक्षणम् सर्वत्र ज्ञातव्यम् ।

चूलिकाशब्दार्थः कथ्यते—चूलिका विशेषव्याख्यानम्, अथवा उक्तानुक्त-व्याख्यानम्, उक्तानुक्तसंकीर्णव्याख्यानम् चेति ।

॥ इति षड्द्रव्यचूलिका समाप्ता ॥

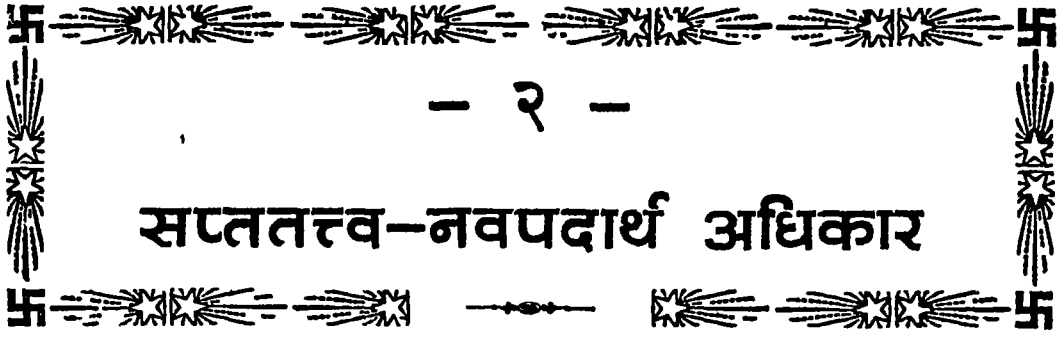
और व्यक्तिरूपसे पंच परमेष्ठी ही उपादेय है । उनमें भी (पचपरमेष्ठियोंमें भी) अर्हत और सिद्ध—ये दो ही उपादेय है । इन दोनोंमें भी निश्चयसे सिद्ध ही उपादेय हैं और परम निश्चयनयसे तो भोगाकाक्षादिरूप समस्त विकल्पजालरहित परम-समाधिकालमे सिद्धसमान स्वशुद्धात्मा ही उपादेय है, अन्य सर्व द्रव्य हेय है—यह तात्पर्य है ।

‘शुद्ध-बुद्ध-एकस्वभाव’ इस पदका क्या अर्थ है ? मिथ्यात्व-रागादि समस्त विभावरहित होनेसे आत्मा ‘शुद्ध’ कहलाता है और केवलज्ञानादि अनन्तगुणोसे सहित होनेसे आत्मा ‘बुद्ध’ कहलाता है । ‘शुद्धबुद्ध’का लक्षण सर्वत्र इसप्रकार जानना ।

अब ‘चूलिका’ शब्दका अर्थ कहा जाता है—किसी पदार्थके विशेष व्याख्यानको, कथन किये गये विषयमें अकथित विषयके व्याख्यानको और कहे गये तथा नहीं कहे गये विषयके मिश्र व्याख्यानको ‘चूलिका’ कहते हैं ।

इस प्रकार छह द्रव्योंकी चूलिका समाप्त हुई ।





अथ द्वितीयः अधिकारः ।

अतः परं जीवपुद्गलपर्यायरूपाणामास्रवादिसप्तपदार्थानामेकादशगाथापर्यन्तं व्याख्यानं करोति । तत्रादौ “आसवबंधण” इत्याद्यधिकारसूत्रगाथैका, तदनन्तरमास्रव-पदार्थव्याख्यानरूपेण “आसवादि जेण” इत्यादि गाथात्रयम्, ततः परं बन्धव्याख्यान-कथनेन “ब्रज्जदि कम्मं” इति प्रभृतिगाथाद्वयं, ततोऽपि संवरकथनरूपेण “चेदणपरिणामो” इत्यादि सूत्रद्वयं, ततश्च निर्जराप्रतिपादनरूपेण “जहकालेण तवेण य” इति प्रभृति-सूत्रमेकं, तदनन्तरं मोक्षस्वरूपकथनेन “सव्वस्स कम्मणो” इत्यादि सूत्रमेकं, ततश्च पुण्यपापद्वयकथनेन “सुहअसुह” इत्यादि सूत्रमेकं चेत्येकादशगाथाभिः स्थलसप्तक-समुदायेन द्वितीयाधिकारे समुदायपातनिका ।

अब द्वितीय अधिकार कहा जाता है .—

इसके पश्चात् जीव और पुद्गल द्रव्यके पर्यायरूप आस्रव आदि सात पदार्थोंका ग्यारह गाथाओंमें व्याख्यान करते हैं । उनमें प्रथम “आसवबंधण” इत्यादि अधि-कारकी सूचनारूप एक गाथा है, तत्पश्चात् आस्रव पदार्थके व्याख्यानरूपसे “आसवादि जेण” इत्यादि तीन गाथाये हैं । तत्पश्चात् बंधका व्याख्यान करनेके लिये “ब्रज्जदि कम्मं” आदि दो गाथाये हैं । तत्पश्चात् संवरका कथन करनेके लिये “चेदणपरिणामो” इत्यादि दो गाथाये, तत्पश्चात् निर्जराके प्रतिपादनरूप “जहकालेण तवेण य” आदि एक गाथा, तत्पश्चात् मोक्षस्वरूपके कथनके लिये “सव्वस्स कम्मणो” आदि एक गाथा और इसके बाद पुण्य और पाप—इन दोनोंके कथनके लिये “सुहअसुह” इत्यादि एक गाथा है । इस प्रकार ग्यारह गाथाओंमें सात स्थलोके द्वारा द्वितीय अधिकारमें समुदायपातनिका (—समुदायभूमिका) कही गई ।

अत्राह शिष्यः—यद्येकान्तेन जीवाजीवौ परिणामिनौ भवतस्तदा संयोग-पर्यायरूप एक एव पदार्थः, यदि पुनरेकान्तेनापरिणामिनौ भवतस्तदा जीवाजीवद्रव्यरूपौ द्वावेव पदार्थौ, तत आस्रवादिसप्तपदार्थाः कथं घटन्त इति । तत्रोत्तरं—कथंचित्परिणामित्वाद् घटन्ते । कथंचित्परिणामित्वमिति कोऽर्थः ? यथा स्फटिकमणिविशेषो यद्यपि स्वभावेन निर्मलस्तथापि जपापुष्पाद्युपाधिजनितं पर्यायान्तरं परिणति गृह्णाति । यद्यप्युपाधि गृह्णाति तथापि निश्चयेन शुद्धस्वभावं न त्यजति तथा जीवोऽपि यद्यपि शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन सहजशुद्धचिदानन्दैकस्वभावस्तथाप्यनादिकर्मबन्धपर्यायवशेन रागादि-परद्रव्योपाधिपर्यायं गृह्णाति । यद्यपि परपर्यायेण परिणमति तथापि निश्चयेन शुद्ध-स्वरूपं न त्यजति । पुद्गलोऽपि तथेति । परस्परसापेक्षत्वं कथंचित्परिणामित्वशब्द-स्यार्थः । एवं कथंचित्परिणामित्वे सति जीवपुद्गलसंयोगपरिणतिनिवृत्तत्वादास्रवादि-सप्तपदार्था घटन्ते । ते च पूर्वोक्तजीवाजीवपदार्थाभ्यां सह नव भवन्ति ततः एव नव पदार्थाः । पुण्यपापपदार्थद्वयस्याभेदनयेन कृत्वा पुण्यपापयोरास्रवपदार्थस्य,

यहा शिष्य प्रश्न करता है—यदि एकातसे जीव और अजीव ये दो द्रव्य परिणामी हो तो संयोगपर्यायरूप एक ही पदार्थ सिद्ध हो और यदि एकातसे अपरिणामी हो तो जीव और अजीव द्रव्यरूप दो ही पदार्थ सिद्ध हो, अतः आस्रव आदि सात पदार्थ किस प्रकार सिद्ध होते हैं ? उसका उत्तर—कथंचित् परिणामीपनेके कारण सात पदार्थ सिद्ध होते हैं । 'कथंचित् परिणामीपने'का क्या अर्थ है ? जिस प्रकार स्फटिकमणि स्वभावसे निर्मल है तो भी जपापुष्पादि उपाधिजनित पर्यायांतररूप परिणतिको ग्रहण करता है यद्यपि (स्फटिकमणि) उपाधि ग्रहण करता है तो भी निश्चयसे शुद्धस्वभावको नहीं छोड़ता है, उसीप्रकार जीव भी यद्यपि शुद्ध-द्रव्यार्थिकनयसे सहज शुद्ध चिदानन्द एकस्वभावी है तो भी अनादि-कर्मबन्धपर्यायके वश रागादि परद्रव्य-उपाधिपर्यायको ग्रहण करता है, यद्यपि (जीव) परपर्यायरूपसे परिणमित होता है तो भी निश्चयसे शुद्धस्वरूपको नहीं छोड़ता है । पुद्गल भी इसीप्रकार है । ऐसा परस्पर सापेक्षपना 'कथंचित् परिणामीपना' शब्दका अर्थ है । इसप्रकार कथंचित् परिणामीपना होनेसे जीव और पुद्गलके संयोगरूप परिणतिसे रचित होनेके कारण आस्रवादि सात पदार्थ सिद्ध होते हैं और वे सात पदार्थ पूर्वोक्त जीव और अजीव द्रव्यके साथ मिलकर नौ होते हैं अतः नौ पदार्थ कहनेमे

बन्धपदार्थस्य वा मध्ये अन्तर्भावविवक्षया सप्ततत्त्वानि भण्यन्ते । हे भगवन् ! यद्यपि कथंचित्परिणामित्वबलेन भेदप्रधानपर्यायार्थिकनयेन नवपदार्थाः सप्ततत्त्वानि वा सिद्धानि तथापि तैः किं प्रयोजनम् । यथैवाभेदनयेन पुण्यपापपदार्थद्वयस्यान्तर्भावो जातस्तथैव विशेषाभेदनयविवक्षायामास्रवादिपदार्थानामपि जीवाजीवद्वयमध्येऽन्तर्भावे कृते जीवाजीवौ द्वावेव पदार्थाविति । तत्र परिहारः—हेयोपादेयतत्त्वपरिज्ञानप्रयोजनार्थमास्रवादिपदार्थाः व्याख्येया भवन्ति । तदेव कथयति—उपादेयतत्त्वमक्षयानन्तसुखं, तस्य कारणं मोक्षः, मोक्षस्य कारणं संवरनिर्जराद्वयं, तस्य कारणं विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावनिजात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणलक्षणं निश्चयरत्नत्रयस्वरूपं, तत्साधकं व्यवहार-

आते है । अभेदनयसे पुण्य और पाप—इन दो पदार्थोंका आस्रव पदार्थमें अथवा बध पदार्थमे समावेश करनेकी अपेक्षासे सात तत्त्व कहे जाते हैं ।

प्रश्नः— हे भगवान ! यद्यपि कथंचित् परिणामीपनेके बलसे, भेदप्रधान पर्यायार्थिकनयसे नौ पदार्थ और सात तत्त्व सिद्ध हुए तो भी उनसे क्या प्रयोजन है ? जिस प्रकार अभेदनयसे पुण्य और पापपदार्थका अतर्भाव सात तत्त्वोंमें हो गया उसी प्रकार विशेष अभेदनयकी विवक्षामें आस्रवादि पदार्थोंका भी जीव और अजीव इन दो द्रव्योंमें अतर्भाव करने पर जीव और अजीव ये दो पदार्थ ही सिद्ध होते है । इस शकाका परिहार करते हैः—हेय और उपादेय तत्त्वका परिज्ञान करानेरूप प्रयोजनके लिये आस्रवादि पदार्थोंका व्याख्यान करना योग्य है । वही कहते है.—अक्षय—अनन्त सुख वह उपादेयतत्त्व है, उसका कारण मोक्ष है, मोक्षका कारण संवर और निर्जरा—ये दो हैं, उसका कारण विशुद्ध ज्ञानदर्शनस्वभावी निजात्मतत्त्वके सम्यक् श्रद्धा—ज्ञान—अनुचरणरूप लक्षणयुक्त ^१निश्चयरत्नत्रयस्वरूप और उसका ^२साधक व्यवहाररत्नत्रयरूप है । अब, हेयतत्त्व कहा जाता है—

१—आत्माश्रित निश्चयनय है । [देखो, श्री समयसार गाथा २७२ की श्री आत्मख्याति टीका ।]

२—यहा साधक कहा है वह 'भिन्न साधक'के अर्थमे समझना । भिन्न साध्य-साधनपना है वह वास्तविक साध्य-साधनपना नहीं है, मात्र उपचरित है । [देखो, श्री पचास्तिकाय संग्रह पृष्ठ २३० (भिन्न साध्यसाधनभाव); श्री समयसार गाथा ४१४ की तात्पर्यवृत्ति टीका बहिरंग सहकारी कारण (अर्थात् निमित्त); श्री मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ २४८-२४९ (जो मोक्षमार्ग तो नहीं है परन्तु मोक्षमार्गका निमित्त है अथवा सहचारी है उसे उपचारसे मोक्षमार्ग कहते है, वह व्यवहारमोक्षमार्ग है ।)]

रत्नत्रयरूपं चेति । इदानीं हेयतत्त्वं कथ्यते—आकुलत्वोत्पादकं नारकादिदुःखं निश्चयेनेन्द्रियसुखं च हेयतत्त्वम् । तस्य कारणं संसारः, संसारकारणमास्रवबन्धपदार्थद्वयं, तस्य कारणं पूर्वोक्तव्यवहारनिश्चयरत्नत्रयाद्विलक्षणं मिथ्यादर्शनज्ञानचारित्र्यमिति । एवं हेयोपादेयतत्त्वव्याख्याने कृते सति सप्ततत्त्वनवपदार्थाः स्वयमेव सिद्धाः ।

इदानीं कस्य पदार्थस्य कः कर्त्तेति कथ्यते—निजनिरञ्जनशुद्धात्मभावनोत्पन्नपरमानन्दकैवल्यसुखामृतरसास्वादपराङ्मुखो बहिरात्मा भण्यते । स चास्रवबन्धपापपदार्थत्रयस्य कर्ता भवति । कापि काले पुनर्मन्दमिथ्यात्वमन्दकषायोदये सति भोगाकांक्षादिनिदानबन्धेन भाविकाले पापानुबन्धिपुण्यपदार्थस्यापि कर्ता भवति । यस्तु पूर्वोक्तबहिरात्मनो विलक्षणः सम्यग्दृष्टिः स संवरनिर्जरामोक्षपदार्थत्रयस्य कर्ता भवति । रागादिविभावरहितपरमसामायिके यदा स्थातुं समर्थो न भवति तदा विषयकषायोत्पन्नदुर्ध्यानवञ्चनार्थं संसारस्थितिच्छेदं कुर्वन् पुण्यानुबन्धितीर्थकरनामप्रकृत्यादिविशिष्ट-

आकुलता उत्पन्न करनेवाला नरकगति आदिका दुःख और निश्चयसे इन्द्रियजनित सुख हेयतत्त्व है । उसका कारण संसार है, संसारका कारण आस्रव और बन्ध—दो पदार्थ हैं, उनका कारण पूर्वोक्त, 'व्यवहार और निश्चयरत्नत्रयसे विलक्षण मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र्य ये तीन हैं । इसप्रकार हेय और उपादेयतत्त्वका व्याख्यान करने पर सात तत्त्व और नौ पदार्थ स्वयमेव सिद्ध हुए ।

अब, किस पदार्थका कर्ता कौन है उसका कथन किया जाता है.—निज निरञ्जन शुद्धात्मभावनासे उत्पन्न परम आनन्द जिसका एक लक्षण है वैसे मुखामृतके रसास्वादसे पराङ्मुख जीव बहिरात्मा कहलाता है; वह बहिरात्मा आस्रव, बन्ध और पाप—इन तीन पदार्थोंका कर्ता होता है, और किसी समय मिथ्यात्व और कषायका मद उदय होने पर भोगोकी आकांक्षा आदि निदान बन्धसे भविष्यकालमें पापानुबन्धि पुण्य पदार्थका भी कर्ता होता है । जो पूर्वोक्त बहिरात्मासे विपरीत लक्षणवाले सम्यग्दृष्टि है वह संवर, निर्जरा और मोक्ष—इन तीन पदार्थोंका कर्ता होता है, जब वह रागादि विभावरहित परम सामायिकमें स्थिर होनेमें समर्थ नहीं होता है तब विषयकषायसे उत्पन्न दुर्ध्यानसे बचनेके लिये, संसारकी स्थितिका छेद करता हुआ पुण्यानुबन्धि तीर्थकर नामकर्मकी प्रकृति आदि विशिष्ट पुण्यपदार्थका भी कर्ता होता है ।

१—देखो—श्री समयसार गाथा २७२ की श्री आत्मख्याति टीका । (पराश्रित व्यवहारनय है ।), ३] श्रीसमयसार गाथा २७२ की तात्पर्यवृत्ति टीकामें उत्थानिका (परम-अभेद-रत्नत्रयात्मक निर्विकल्पसमाधिरूप निश्चयनय द्वारा विकल्पात्मक व्यवहारनय वास्तवमें बाधित किया जाता है ।)

पुण्यपदार्थस्यापि कर्ता भवति । कर्तृत्वविषये नयविभागः कथ्यते । मिथ्यादृष्टेर्जीवस्य पुद्गलद्रव्यपर्यायरूपाणामास्रवबंधपुण्यपापपदार्थानां कर्तृत्वमनुपचरितासद्भूतव्यवहारेण, जीवभावपर्यायरूपाणां पुनरशुद्धनिश्चयनयेनेति । सम्यग्दृष्टेस्तु संवरनिर्जरामोक्षपदार्थानां द्रव्यरूपाणां यत्कर्तृत्वं तदप्यनुपचरितासद्भूतव्यवहारेण, जीवभावपर्यायरूपाणां तु विवक्षितैकदेशशुद्धनिश्चयनयेनेति । परमशुद्धनिश्चयेन तु “ण वि उत्पन्नइ, ण वि मरइ, बन्धु ण मोक्खु करेइ । जिउ परमत्थे जोइया, जिणवरु एउं भणेइ ।” इति वचनाद्-बन्धमोक्षौ न स्तः । स च पूर्वोक्तविवक्षितैकदेशशुद्धनिश्चय आगमभाषया किं भण्यते—स्वशुद्धात्मसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणरूपेण भविष्यतीति भव्यः, एवंभूतस्य भव्यत्वसंज्ञस्य पारिणामिकभावस्य संबन्धिनी व्यक्तिर्भण्यते । अध्यात्मभाषया पुनर्द्रव्यशक्तिरूपशुद्ध-पारिणामिकभावविषये भावना भण्यते, पर्यायनामान्तरेण निर्विकल्पसमाधिर्वा शुद्धो-पयोगादिकं चेति । यतः एव भावना मुक्तिकारणं ततः एव शुद्धपारिणामिकभावो

अब, कर्तृत्वके विषयमे नयविभागका कथन करते है : मिथ्यादृष्टि जीवको पुद्गल-द्रव्यके पर्यायरूप आस्रव, बंध, पुण्य और पाप पदार्थोंका कर्तृत्व अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनयसे है और जीवभाव पर्यायरूप आस्रव-बंध-पुण्य-पाप-पदार्थोंका कर्तृत्व अशुद्धनिश्चयनयसे है । सम्यग्दृष्टि जीवको जो द्रव्यरूप, संवर, निर्जरा और मोक्षपदार्थका कर्तृत्व है वह भी अनुपचरित असद्भूत व्यवहारसे है और जीवभाव पर्यायरूप संवर-निर्जरा-मोक्ष पदार्थोंका कर्तृत्व विवक्षित एकदेश शुद्धनिश्चयनयसे है । परमशुद्धनिश्चयनयसे तो “हे योगी, परमार्थसे यह जीव उत्पन्न नहीं होता है, मरता नहीं है, बंध और मोक्ष करता नहीं है इसप्रकार जिनेन्द्र कहते है ।” इस वचनसे जीवको ‘बंधमोक्ष नहीं है ।

पूर्वोक्त विवक्षित एकदेश शुद्धनिश्चयनयको आगमभाषामें क्या कहते है ? —जो स्व-शुद्धात्माके सम्यक् श्रद्धान, ज्ञान, आचरणरूप होगा वह ‘भव्य’; इसप्रकारके ‘भव्यत्व’ नामक पारिणामिकभावके साथ संबन्धित ‘व्यक्ति’ कही जाती है (अर्थात् भव्यत्व पारिणामिकभावकी व्यक्तता अर्थात् प्रगटता कही जाती है) । और अध्यात्मभाषामे उसे ही द्रव्यशक्तिरूप शुद्धपारिणामिकभावकी भावना कहते है, अन्य नामसे उसे ‘निर्विकल्प समाधि’ अथवा ‘शुद्धोपयोग’ आदि कहते है ।

क्योकि भावना मुक्तिका कारण है अतः शुद्धपारिणामिक भाव ध्येयरूप है,

ध्येयरूपो भवति, ध्यानभावनारूपी न भवति । कस्मादिति चेत् ? ध्यानभावनापर्यायो विनश्वरः स च द्रव्यरूपत्वाद् विनश्वर इति । इदमत्र तात्पर्यं—मिथ्यात्वरारागादिविकल्प-जालरहितनिजशुद्धात्मभावनोत्पन्नसहजानन्दैकलक्षणसुखसंवित्तिरूपा च भावना मुक्ति-कारणं भवति । तां च कोऽपि जनः केनापि पर्यायनामान्तरेण भणतीति । एवं पूर्वोक्तप्रकारेणानेकांतव्याख्यानानेनास्रवबंधपुण्यपापपदार्थाः जीवपुद्गलसंयोगपरिणामरूप-विभावपर्यायेणोत्पद्यन्ते । संवरनिर्जरामोक्षपदार्थाः पुनर्जीवपुद्गलसंयोगपरिणामविनाशो-त्पन्नेन विवक्षितस्वभावपर्यायेणेति स्थितम् । तद्यथा—

• आस्रव बंधण संवर गिज्जर मोक्खो सपुण्यपापा जे ।

जीवाजीवविसेसा तेवि समासेण पभणामो ॥२८॥

आस्रवबंधनसंवरनिर्जरमोक्षाः सपुण्यपापाः ये ।

जीवाजीवविशेषाः तान् अपि समासेन प्रभणामः ॥२८॥

ध्यान अथवा भावनारूप नहीं है । ऐसा किसलिये ?

समाधानः—ध्यान अथवा भावनारूप पर्याय विनाशीक है और वह (शुद्ध-पारिणामिकभाव) तो द्रव्यरूप होनेसे अविनाशी है । यहा तात्पर्य यह है—मिथ्यात्व-रागादि विकल्पजालरहित निजशुद्धात्माकी भावनासे उत्पन्न सहजानन्द जिसका एक लक्षण है ऐसे सुखके सवेदनरूप जो भावना है वह मुक्तिका कारण है । उस भावनाको कोई पुरुष किसी अन्य नामसे कहते हैं ।

इस प्रकार पूर्वोक्त प्रकारसे अनेकातके व्याख्यानसे सिद्ध हुआ कि—आस्रव, बंध, पुण्य और पाप—ये चार पदार्थ जीव और पुद्गलके सयोगपरिणामरूप जो विभावपर्याय है उससे उत्पन्न होते हैं, और संवर, निर्जरा तथा मोक्ष—ये तीन पदार्थ जीव और पुद्गलके सयोगरूप परिणामके विनाशसे उत्पन्न, विवक्षित स्वभावपर्याय द्वारा उत्पन्न होते हैं ।

वही अब कहा जाता है :—

गाथा-२८

गाथार्थः—आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, पुण्य और पापरूप जो पदार्थ जीव और अजीव द्रव्यके विशेष हैं, उन्हें भी हम सक्षेपमे कहते हैं ।

यह तौ भयो प्रथम अधिकार, दूजो सुणूं तत्त्व-विस्तार ।

जीव अजीव रु आस्रव बंध, संवर निर्जर मोक्ष अबंध ॥२८॥

व्याख्या—“आसव” निरास्रवस्वसंविच्चिविलक्षणशुभाशुभपरिणामेन शुभाशुभ-
कर्मागमनमास्रवः । “बंधण” बंधातीतशुद्धात्मतत्त्वोपलम्भभावनाच्युतजीवस्य कर्मप्रदेशैः
सह संश्लेषो बन्धः । “संवर” कर्मास्रवनिरोधसमर्थस्वसंविच्चिपरिणतजीवस्य शुभाशुभकर्मा-
गमनसंवरणं संवरः । “णिज्जर” शुद्धोपयोगभावनासामर्थ्येन नीरसीभूतकर्मपुद्गला-
नामेकदेशगलनं निर्जरा । “मोक्खो” जीवपुद्गलसंश्लेषरूपबन्धस्य विघटने समर्थः
स्वशुद्धात्मोपलब्धिपरिणामो मोक्ष इति । “सपुण्णपावा जे” पुण्यपापसहिता ये,
“ते वि समासेण पभणामो” यथा जीवाजीवपदार्थौ व्याख्यातौ पूर्वं तथा तानप्या-
स्रवादिपदार्थान् समासेण संक्षेपेण प्रभणामो वयं; ते च कथंभूताः ? “जीवाजीवविसेसा”
जीवाजीवविशेषाः । चैतन्यभावरूपा जीवस्य विशेषाः । चैतन्याभावरूपा अजीवस्य
विशेषाः । विशेषा इत्यस्य कोऽर्थः ? पर्यायाः । चैतन्याः अशुद्धपरिणामा जीवस्य,

टीकाः—“आसव” निरास्रव स्वसवेदनसे विलक्षण शुभाशुभ परिणाम द्वारा
शुभ और अशुभ कर्मोंका आना वह ‘आस्रव’ है । “बंधण” बंधरहित शुद्धात्मतत्त्वकी
उपलब्धिरूप भावनासे भ्रष्ट हुए जीवको कर्मके प्रदेशोके साथ संश्लेष (सबध)
होता है वह ‘बध’ है । “संवर” कर्मके आगमनको रोकनेमे समर्थ स्वानुभवरूपसे
परिणमित जीवको शुभाशुभ कर्मोंके आगमनका निरोध वह ‘सवर’ है । “णिज्जर”
शुद्धोपयोगकी भावनाके सामर्थ्यसे नीरस हुए कर्म पुद्गलोका एकदेश खिर जाना
वह ‘निर्जरा’ है । “मोक्खो” जीव और पुद्गलके संश्लेषरूप बधका नाश करनेमे
समर्थ निज शुद्धात्माकी उपलब्धिरूप परिणाम वह ‘मोक्ष’ है । “सपुण्णपावा जे”
जो (उपरोक्त आस्रवादि पदार्थ) पुण्य-पाप सहित है । “ते वि समासेण पभणामो”
जिस प्रकार पहले जीव और अजीव पदार्थोंका व्याख्यान किया है उसी प्रकार उन
आस्रवादि पदार्थोंको भी संक्षेपमे कहते हैं । वे कैसे है ? “जीवाजीवविसेसाः” जीव
और अजीवके विशेष है—चैतन्यभावरूप है वे जीवके विशेष है और चैतन्यके अभा-
वरूप है वे अजीवके विशेष हैं । ‘विशेष’का क्या अर्थ है ? ‘विशेष’का अर्थ पर्याय
है । चैतन्यरूप अशुद्ध परिणाम जीवकी (पर्यायें) है, अचेतनरूप कर्मपुद्गलकी पर्यायें

१—यहा मुख्यरूपसे मिथ्यादृष्टि जीवोंका कथन किया है क्योंकि वे ‘शुद्धात्मतत्त्वकी उपलब्धिरूप
भावनासे भ्रष्ट हैं ।’ अशुद्धनिश्चयनयसे जो रागादिरूप भावबध है वह भी शुद्धनिश्चयनयसे
पुद्गलका ही बध है । द्रव्यसंग्रह गाथा १६ टीका ।

अचेतनाः कर्मपुद्गलपर्याया अजीवस्येत्यर्थः । एवमधिकारसूत्रगाथा गता ॥२८॥

अथ गाथात्रयेणास्रवव्याख्यानं क्रियते । तत्रादौ भावास्रवद्रव्यास्रवस्वरूपं सूचयति :—

आस्रवदि जेण कम्मं परिणामेणप्पणो स विण्णेओ ।

भावासवो जिणुत्तो कम्मासवणं परो होदि ॥२६॥

आस्रवति येन कम्मं परिणामेन आत्मनः सः विज्ञेयः ।

भावास्रवः जिनोक्तः कर्मास्रवणं परः भवति ॥२९॥

व्याख्या—“आस्रवदि जेण कम्मं परिणामेणप्पणो स विण्णेओ भावासवो” आस्रवति कर्म येन परिणामेनात्मनः स विज्ञेयो भावास्रवः । कर्मास्रवनिर्मूलनसमर्थ-शुद्धात्मभावनाप्रतिपक्षभूतेन येन परिणामेनास्रवति कर्म; कस्यात्मनः ? स्वस्य; स परिणामो भावास्रवो विज्ञेयः । स च कथंभूतः ? “जिणुत्तो” जिनेन वीतराग-

है वे अजीवकी (पर्यायि) है । इस प्रकार अधिकार सूत्ररूप गाथा पूर्ण हुई ॥२८॥

अब तीन गाथाओ द्वारा आस्रव पदार्थका व्याख्यान करते हैं । उसमें प्रथम भावास्रव और द्रव्यास्रवके स्वरूपकी सूचना करते हैं .—

गाथा-२९

गाथार्थः—आत्माके जिस परिणामसे कर्मका आस्रव होता है उसे जिनेन्द्र कथित भावास्रव जानना और जो (ज्ञानावरणादि) कर्मोंका आस्रव है वह द्रव्यास्रव है ।

टीकाः—“आस्रवदि जेण कम्मं परिणामेणप्पणो स विण्णेओ भावासवो” आत्माके जिस परिणामसे कर्म आता है उसे भावास्रव जानना । कर्मके आस्रवका नाश करनेमें समर्थ ऐसी शुद्धात्माकी भावनासे प्रतिपक्षभूत जिस परिणामसे कर्म आता है; किसके परिणामसे ? आत्माके—अपने; उस परिणामको भावास्रव जानना । वह भावास्रव कैसा है ? “जिणुत्तो” जिनेन्द्र-वीतराग सर्वज्ञदेव द्वारा कथित है । “कम्मासवणं परो होदि” कर्मोंका जो आगमन है वह ‘पर’ है । (अर्थात् ज्ञाना-

१-परिणामके निमित्तसे

पुण्यपाप ये नव, इन मांहि, आवै कर्मसू आस्रव चाहि ।

भावास्रव आत्म-परिणाम, पुद्गल आवै द्रव्य सुनाम ॥२९॥

सर्वज्ञेनोक्तः । “कम्मासवणं परो होदि” कर्मास्रवणं परो भवति, ज्ञानावरणादिद्रव्य-
कर्मणामास्रवणमागमनं परः । पर इति कोऽर्थः ? भावास्रवादन्वो भिन्नो । भावास्रव-
निमित्तेन तैलमृक्षितानां धूलिसमागम इव द्रव्यास्रवो भवतीति । ननु “आस्रवति
येन कर्म” तेनैव पदेन द्रव्यास्रवो लब्धः, पुनरपि कर्मास्रवणं परो भवतीति द्रव्यास्रव-
व्याख्यानं किमर्थमिति यदुक्तं त्वया ? तन्न । येन परिणामेन किं भवति आस्रवति
कर्म, तत्परिणामस्य सामर्थ्यं दर्शितं, न च द्रव्यास्रवव्याख्यानमिति भावार्थः ॥२९॥

अथ भावास्रवस्वरूपं विशेषेण कथयति :—

मिच्छत्ताविरदिप्रमादजोगक्रोधादत्रोऽथ विण्णोया ।

पण पण पणदस तिय चदु कमसो भेदा दु पुव्वस्स ॥३०॥

मिथ्यात्वाविरतिप्रमादयोगक्रोधादयः अथ विज्ञेयाः ।

पञ्च पञ्च पञ्चदश त्रयः चत्वारः क्रमशः भेदाः तु पूर्वस्य ॥३०॥

वरणादि द्रव्यकर्मोका आस्रवण-आगमन वह पर अर्थात् अन्य है ।) ‘पर’ शब्दका
क्या अर्थ है ? ‘भावास्रवसे अन्य, भिन्न ।’ भावास्रवके निमित्तसे, तेल लगे हुए
पदार्थोको धूल चिपकती है उसीप्रकार, जीवको द्रव्यास्रव होता है ।

शंकाः—वास्तवमें “आस्रवति येन कर्म”—‘जिससे कर्मका आस्रव होता है’
इस पदसे ही द्रव्यास्रवका कथन हो गया तो फिर “कम्मासवणं परो होदि”—कर्मा-
स्रव अन्य होता है”—इस पदसे द्रव्यास्रवका व्याख्यान किसलिये किया ?

समाधानः—तुम्हारी शका योग्य नहीं है । क्योंकि ‘जिस परिणामसे, क्या
होता है ? कर्मका आस्रव होता है;’ ऐसा जो कथन है उससे परिणामका सामर्थ्य
बतलाया है, द्रव्यास्रवका व्याख्यान नहीं किया है । इस प्रकार तात्पर्य है ॥२९॥

अब भावास्रवका स्वरूप विशेषरूपसे कहते हैं:—

गाथा-३०

गाथार्थः—पहलेके (भावास्रवके) मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, योग और
क्रोधादि कषाय इतने भेद जानना । उनमें मिथ्यात्व आदिके अनुक्रमसे पाच, पाच,
पन्द्रह, तीन और चार भेद है ।

मिथ्या अविरत औ परमाद, योग कषाय तण्णं उन्माद ।

पांच-पांच पणदस तिय च्यारि, भावास्रव के भेद कहारि ॥३०॥

व्याख्या—“मिच्छत्ताविरदिप्रमादजोगक्रोधादो” मिथ्यात्वात्प्रमाद-
योगक्रोधादयः । अभ्यन्तरे वीतरागनिजात्मतत्त्वानुभूतिरुचिविषये विपरीताभिनिवेश-
जनकं बहिर्विषये तु परकीयशुद्धात्मतत्त्वप्रभृतिसमस्तद्रव्येषु विपरीताभिनिवेशोत्पादकं
च मिथ्यात्वं भण्यते । अभ्यन्तरे निजपरमात्मस्वरूपभावनोत्पन्नपरमसुखामृतरतिविलक्षणा
बहिर्विषये पुनरव्रतरूपा चेत्यविरतिः । अभ्यन्तरे निष्प्रमादशुद्धात्मानुभूतिचलनरूपः,
बहिर्विषये तु मूलोत्तरगुणमलजनकश्चेति प्रमादः । निश्चयेन निष्क्रियस्यापि परमात्मनो
व्यवहारेण वीर्यान्तरायक्षयोपशमोत्पन्नो मनोवचनकायवर्गणावलम्बनः कर्मादानहेतुभूत
आत्मप्रदेशपरिस्पन्दो योग इत्युच्यते । अभ्यन्तरे परमोपशममूर्तिकेवलज्ञानाद्यनन्तगुण-
स्वभावपरमात्मस्वरूपक्षोभकारकाः बहिर्विषये तु परेषां संबन्धित्वेन क्रूरत्वाद्यावेशरूपाः

टीकाः—“मिच्छत्ताविरदिप्रमादजोगक्रोधादो” मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद,
योग और क्रोधादि कषाय आस्रवके भेद है । अतरगमे जो वीतराग निजात्मतत्त्वकी
अनुभूति और रुचिमे विपरीत अभिनिवेश उत्पन्न कराता है और बाह्यमें अन्यके
शुद्धात्मतत्त्व आदि समस्त द्रव्योमे विपरीत अभिनिवेश उत्पन्न कराता है उसे
मिथ्यात्व कहते हैं ।

अतरगमे निज परमात्मस्वरूपकी भावनासे उत्पन्न परम सुखामृतमें जो रति
(—लीनता) उससे विलक्षण और बाह्य विषयमे अव्रतरूप (अर्थात् व्रत धारण न
करनेका भाव) वह अविरति है ।

अतरगमें प्रमादरहित शुद्धात्माकी अनुभूतिमे चलनरूप (चलपनेरूप) और
बाह्य-विषयमे मूल और उत्तरगुणोमे मल उत्पन्न करनेवाला वह प्रमाद है ।

निश्चयसे परमात्मा निष्क्रिय है तो भी उसे व्यवहारसे वीर्यान्तरायकर्मके
क्षयोपक्षमसे उत्पन्न ऐसा, मन-वचन-काय वर्गणाको अवलम्बन करनेवाला, कर्म-
वर्गणाके ग्रहण करनेमे हेतुभूत ऐसे आत्मप्रदेशोका जो परिस्पन्द होता है उसे
योग कहते हैं ।

अतरंगमें परम-उपशममूर्ति, केवलज्ञानादि अनन्तगुणस्वभावी परमात्मस्व-
रूपमे क्षोभ उत्पन्न करनेवाला और बाह्य-विषयमे अन्य पदार्थोंके संबन्धसे क्रूरता
आदि आवेशरूप वह क्रोधादि कषाय है ।

क्रोधादयश्चेत्युक्तलक्षणाः पञ्चास्रवाः । “अथ” अथो “विण्णोया” विज्ञेया ज्ञातव्याः । कति-
 भेदास्ते ? “पण पण पणदस तिय चदु कमसो भेदा दु” पञ्चपञ्चपञ्चदशत्रिचतुर्भेदाः क्रमशो
 भवन्ति पुनः । तथाहि “एयंतबुद्धदरसी विवरीओ ब्रह्म तावसो विणओ । इन्दो विय
 संसइदो मक्कडिओ चैव अण्णाणी ।१।” इति गाथाकथितलक्षणं पञ्चविधं मिथ्यात्वम् ।
 हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहाकाङ्क्षारूपेणाविरतिरपि पञ्चविधा । अथवा मनःसहितपञ्चेन्द्रिय-
 प्रवृत्तिपृथिव्यादिषट्कायविराधनाभेदेन द्वादशविधा । “विकहा तहा कसाया इन्द्रियणिहा
 तहेव पणयो य । चदु चदु पणमेगेगं हुंति पमादाहु पण्णरस ।१।” इति गाथा-
 कथितक्रमेण पञ्चदश प्रमादाः । मनोवचनकायव्यापारभेदेन त्रिविधो योगः, विस्तरेण
 पञ्चदशभेदो वा । क्रोधमानमायालोभभेदेन कषायाश्चत्वारः, कषायनोकषायभेदेन
 पञ्चविंशतिविधा वा । एते सर्वे भेदाः कस्य सम्बन्धिनः “पुव्वस्स” पूर्वस्रोदित-
 भावास्त्रयस्येत्यर्थः ॥३०॥

इस प्रकार ऊपर कहे लक्षणयुक्त पांच आस्रव है । ‘अथ’ अब, “विण्णोया”
 इसे जानना चाहिये । उसके कितने भेद है ? “पण पण पणदस तिय चदु कमसो
 भेदा दु” मिथ्यात्व आदिके अनुक्रमसे पाच, पाच, पन्द्रह, तीन और चार भेद है ।

उनका विस्तारः—(“एयंतबुद्धदरसी विवरीओ ब्रह्म तावसो विणओ । इन्दो
 विय संसइदो मक्कडिओ चैव अण्णाणी ॥ बौद्धमत एकान्तमिथ्यात्वी है, याज्ञिक-ब्रह्म
 विपरीतमिथ्यात्वी है, तापस विनयमिथ्यात्वी है, इन्द्राचार्य सशयमिथ्यात्वी है और
 मस्करी अज्ञानमिथ्यात्वी है ।”)—इस गाथामे कहे हुए लक्षण अनुसार पाच
 प्रकारका मिथ्यात्व है । हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्म और परिग्रहकी आकाक्षारूप
 अविरति भी पांच प्रकारकी है, अथवा मनसहित पाच इन्द्रियकी प्रवृत्ति और पृथ्वी
 आदि छहकायकी विराधनाके भेदसे बारह प्रकारकी है । “चार विकथा, चार
 कषाय, पाच इन्द्रिय, निद्रा एक और स्नेह एक—इसप्रकार पन्द्रह प्रमाद कहे है ।”
 —^१इस गाथामें कहे अनुसार पन्द्रह प्रमाद है । मन, वचन और कायाके व्यापारके
 भेदसे तीन प्रकारका योग है अथवा विस्तारसे पन्द्रह प्रकारका योग है । क्रोध,
 मान, माया और लोभके भेदसे कषाय चार है; अथवा कषाय और नोकषायके
 भेदसे पच्चीस प्रकार है । ये सब भेद किसके है ? “पुव्वस्स” पूर्व गाथामे कथित
 भावास्त्रवके है ॥३०॥

अथ द्रव्यास्रवस्वरूपमुद्योतयति :—

णाणावरणादीणां जोग्गं जं पुग्गलं समासवदि ।

दव्वासवो स णेओ अणोयभेओ जिणक्खादो ॥३१॥

ज्ञानावरणादीनां योग्यं यत् पुद्गलं समास्रवति ।

द्रव्यास्रवः सः ज्ञेयः अनेकभेदः जिनाख्यातः ॥३१॥

व्याख्या—“णाणावरणादीणं” सहजशुद्धकेवलज्ञानमभेदेन केवलज्ञानाद्यनन्त-
गुणाधारभूतं ज्ञानशब्दवाच्यं परमात्मानं वा आवृणोतीति ज्ञानावरणं, तदादिर्येषां तानि
ज्ञानावरणादीनि तेषां ज्ञानावरणादीनां “जोग्गं” योग्यं “जं पुग्गलं समासवदि”
स्नेहाभ्यक्तशरीराणां धूलिरेणुसमागम इव निष्कषायशुद्धात्मसंविच्चिद्युतजीवानां कर्म-
वर्गणारूपं यत्पुद्गलद्रव्यं समास्रवति, “दव्वासओ स णेओ” द्रव्यास्रवः स विज्ञेयः ।
“अणोयभेओ” स च ज्ञानदर्शनावरणीयवेदनीयमोहनीयाधुर्नामगोत्रान्तरायसंज्ञानामष्टमूल-

अब द्रव्यास्रवका स्वरूप कहते हैं :—

गाथा—३१

गाथार्थः—ज्ञानावरणादि आठ कर्मोंके योग्य जो पुद्गल आते हैं, उन्हें द्रव्या-
स्रव जानना, वे अनेक भेदवाले हैं ऐसा श्री जिनेन्द्रदेवने कहा है ।

टीकाः—“णाणावरणादीणं” सहज शुद्ध केवलज्ञानको अथवा अभेदकी अपे-
क्षासे केवलज्ञानादि अनन्तगुणके आधारभूत, ज्ञानशब्दसे वाच्य परमात्माको जो
आवृत्त करता है अर्थात् ढकता है उसे ज्ञानावरण कहते हैं । वह ज्ञानावरण जिनकी
आदिमें है ऐसे जो ज्ञानावरणादि; उन्हे “जोग्गं” योग्य “जं पुग्गलं समासवदि”
तेलयुक्त शरीरवालोको धूलके रजकणोंका जिस प्रकार समागम होता है उसीप्रकार
कषायरहित शुद्धात्माके सवेदनसे रहित जीवोंको जो कर्मवर्गणारूप पुद्गलका
आस्रव होता है, “दव्वासओ स णेओ” उसे द्रव्यास्रव जानना । “अणोयभेओ” और

१-शुद्धात्माके सवेदन रहित मिथ्याऽऽष्टि जीव है, उनकी मुख्यतासे यह कथन है ।

ज्ञानावरण आदिके योग्य, पुद्गल आवै जिवकै भोग्य ।

द्रव्यास्रव भाष्यो बहु भेद, जिणवरदेव, चखेद ॥३१॥

प्रकृतीनां भेदेन, तथैव “पण णव दु अट्टवीसा चउ तियणवदी य दोण्णि पंचेव । बावण्णहीण वियसयपयडिविणासेण होंति ते सिद्धा ॥१॥” इति गाथाकथितक्रमेणाष्ट-चत्वारिंशदधिकशतसंख्याप्रमितोत्तरप्रकृतिभेदेन तथा चासंख्येयलोकप्रमितपृथ्वीकाय-नामकर्माद्युत्तरोत्तरप्रकृतिरूपेणानेकभेद इति “जिणक्खादो” जिनख्यातो जिनप्रणीत इत्यर्थः ॥३१॥ एवमास्रवव्याख्यानगाथात्रयेण प्रथमस्थलं गतम् ।

अतः परं सूत्रद्वयेन बन्धव्याख्यानं क्रियते । तत्रादौ गाथापूर्वार्धेन भाव-बन्धमुत्तरार्धेन तु द्रव्यबन्धस्वरूपमावेदयति :—

बड्भदि कम्मं जेण दु चेदणभावेण भावबंधो सो ।

कम्मादपदेसाणं अणणोणणपवेसणं इदरो ॥३२॥

बध्यते कर्म येन तु चेतनभावेन भावबन्धः सः ।

कर्मात्मप्रदेशानां अन्योन्यप्रवेशनं इतरः ॥३२॥

वह (द्रव्यास्रव) ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र तथा अतराय नामक आठ मूल प्रकृतिरूप भेदसे, तथा “पण णव दु अट्टवीसा चउ तियणवदी य दोण्णि पंचेव । बावण्णहीण वियसयपयडिविणासेण होंति ते सिद्धा ॥१॥” (ज्ञानावरणीयकी पाच, दर्शनावरणीयकी नौ, वेदनीयकी दो, मोहनीयकी अट्टाइस, आयुकी चार, नामकी तिरानवे, गोत्रकी दो और अतरायकी पाच—इस प्रकार एक सौ अडतालीस प्रकृतियोंके नाशसे सिद्ध होते हैं ।)” इस ‘गाथामे कथित क्रमसे एक सौ अडतालीस उत्तर प्रकृतिरूप भेदसे, और असख्यात लोकप्रमाण पृथ्वीकाय-नाम-कर्म आदि उत्तरोत्तर प्रकृतिरूप भेदसे अनेक भेदयुक्त है इसप्रकार “जिणक्खादो” श्री जिनेन्द्रदेवने कहा है ॥३१॥

इस प्रकार आस्रवके व्याख्यानकी तीन गाथाओसे प्रथम स्थल समाप्त हुआ ।

अब दो गाथाओ द्वारा बन्धका व्याख्यान करते हैं । वहां प्रथम गाथाके पूर्वार्धसे भावबंध और उत्तरार्धसे द्रव्यबन्धका स्वरूप कहते हैं :—

गाथा-३२

गाथार्थः—जिस चेतनभावसे कर्म बधता है वह भावबंध है और कर्म तथा

१-सिद्धभक्ति गाथा-८

जिस चेतन परिणामह कर्म, बंधि है भावबंध सो मर्म ।

आत्म-कर्म-देश-परवेश, आपस माहि द्रव्य यह देश ॥३२॥

व्याख्या—“वज्झादि कम्मं जेण द्दु चेदणभावेण भाववन्धो सो” वध्यते कर्म येन चेतनभावेन स भाववन्धो भवति । समस्तकर्मबंधविध्वंसनसमर्थाखण्डैक-प्रत्यक्षप्रतिभासमयपरमचैतन्यविलासलक्षणज्ञानगुणस्य, अभेदनयेनानन्तज्ञानादिगुणाधार-भूतपरमात्मनो वा संवन्धिनी या तु निर्मलानुभूतिस्तद्विपक्षभूतेन मिथ्यात्वरगादिपरि-णतिरूपेण वाऽशुद्धचेतनभावेन परिणामेन वध्यते ज्ञानावरणादि कर्म येन भावेन स भाववन्धो भवति । “कम्मादपदेसाणं अण्णोण्णपवेसणं इदरो” कर्मात्मप्रदेशानामन्योन्य प्रवेशनमितरः । तेनैव भावबंधनिमित्तेन कर्मप्रदेशानामात्मप्रदेशानां च क्षीरनीरवदन्योन्यं प्रवेशनं संश्लेषो द्रव्यवन्ध इति ॥३२॥

अथ तस्यैव वन्धस्य गाथापूर्वार्धेन प्रकृतिवन्धादिभेदचतुष्टयं कथयति, उत्तरार्धेन तु प्रकृतिवन्धादीनां कारणं चेति ।

पयडिट्ठिदिअणुभागपदेसभेदादु चदुविधो वन्धो ।

जोगा पयडिपदेसा ठिदिअणुभागा कसायदो हीति ॥३३॥

आत्माके प्रदेशोका परस्पर प्रवेश वह द्रव्यवध है ।

टीका:—“वज्झादि कम्मं जेण द्दु चेदणभावेण भाववन्धो सो” जिस चेतनभावसे कर्म बंधता है वह भाववध है । समस्त कर्मवध नष्ट करनेमें समर्थ, अखण्ड, एक प्रत्यक्ष प्रतिभासमय, परम चैतन्यविलास जिसका लक्षण है ऐसे ज्ञानगुणसे सबधित अथवा अभेदनयसे अनन्तज्ञानादि गुणके आधारभूत परमात्माके साथ सबधित जो निर्मल अनुभूति, उससे विरुद्ध मिथ्यात्व-रागादि परिणतिरूप अथवा अशुद्ध चेतन-भावस्वरूप जिस परिणामसे ज्ञानावरणादि कर्म बधते हैं वह परिणाम भाववध कहलाता है । “कम्मादपदेसाणं अण्णोण्णपवेसणं इदरो” कर्म और आत्माके प्रदेशोका परस्पर प्रवेश होना वह अन्य अर्थात् द्रव्यवध है । उसी भाववधके निमित्तसे कर्मके प्रदेशोका और आत्माके प्रदेशोका, दूध और पानीकी भांति, एक दूसरेमें प्रवेश अर्थात् संश्लेष वह द्रव्यवध है ॥३२॥

अब गाथाके पूर्वार्धसे उसी वधके प्रकृतिवध आदि चार भेदोका कथन करते हैं और उत्तरार्धसे उनके कारणका कथन करते हैं .—

प्रकृति प्रदेश रु थिति अनुभाग, च्यारि भेद है बंध-विभाग ।

योग करै परकृति-परदेश, थिति-अनुभाग -असेस ॥३३॥

प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशभेदात् तु चतुर्विधो बन्धः ।

योगात् प्रकृतिप्रदेशौ स्थित्यनुभागौ कषायतः भवतः ॥३३॥

व्याख्या—“पयडिडिदिअणुभागप्पदेसभेदादु चदुविधो बन्धो” प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशभेदाच्चतुर्विधो बन्धो भवति । तथाहि—ज्ञानावरणीयस्य कर्मणः का प्रकृतिः ? देवतामुखवस्त्रमिव ज्ञानप्रच्छादनता । दर्शनावरणीयस्य का प्रकृतिः ? राजदर्शनप्रतिषेधकप्रतीहारवर्शनप्रच्छादनता । सातासातवेदनीयस्य का प्रकृतिः ? मधुलिप्त-खङ्गधारास्वादवदल्पसुखबहुदुःखोत्पादकता । मोहनीयस्य का प्रकृतिः ? मद्यपानवद्वेयोपादेयविचारविकलता । आयुःकर्मणः का प्रकृतिः ? निगडवद्गत्यन्तरगमननिवारणता । नामकर्मणः का प्रकृतिः ? चित्रकारपुरुषवन्नानारूपकरणता । गोत्रकर्मणः का प्रकृतिः ? गुरुलघुभाजनकारककुम्भकारवदुच्चनीचगोत्रकरणता । अन्तरायकर्मणः का प्रकृतिः ? भाण्डागारिकवदानादिविघ्नकरणतेति । तथाचोक्तं—“पटपडिहारसिमज्जाहलिचिचकुलाल-

गाथा-३३

गाथार्थः—प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश—इन भेदोसे बध चार प्रकारका है, योगसे प्रकृति और प्रदेशबध होता है और कषायसे स्थिति और अनुभागबध होता है ।

टीकाः—“पयडिडिदिअणुभागप्पदेसभेदादु चदुविधो बन्धो” प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशके भेदसे बध चार प्रकारका है । उसका विस्तारः—ज्ञानावरणकर्मका स्वभाव क्या है ? जिस प्रकार पर्दा देवके मुखको ढक देता है उसी प्रकार ज्ञानावरणकर्म ज्ञानको ढक देता है । दर्शनावरणकर्मका स्वभाव क्या है ? राजाके दर्शनमे प्रतिहारी जिसप्रकार रोकता है उसीप्रकार दर्शनावरणकर्म दर्शनमे रुकावट करता है । साता और असाता वेदनीयका स्वभाव क्या है ? मधुसे लिप्त तलवारकी धार चाटनेसे जिस प्रकार सुख थोड़ा और दुःख बहुत होता है उसीप्रकार वेदनीयकर्म सुख अल्प और दुःख अधिक उत्पन्न करता है । मोहनीयका स्वभाव क्या है ? मद्यपानकी भांति हेय-उपादेय पदार्थके विचारमें विकलता । आयुष्यकर्मका स्वभाव क्या है ? वेडीकी भांति एक गतिमेसे अन्य गतिमे जानेसे रोकना । नामकर्मका स्वभाव क्या है ? चित्रकारकी भांति अनेक प्रकारके रूप करना । गोत्रकर्मका स्वभाव क्या है ? छोटे-बड़े बर्तन बनानेवाले कुम्हारकी भांति उच्च अथवा नीच गोत्र करना । अन्तरायकर्मका स्वभाव क्या है ? भंडारीकी भांति दानादि कार्यमे विघ्न करना । कहा है कि—“पट, प्रतिहारी-द्वारपाल, तलवार, मद्य, वेडी, चित्रकार,

भंडयारीणं । जह एदेसिं भावा तहवि य कम्मा मुण्येयव्वा ॥ १ ॥” इति दृष्टान्ताष्टकेन प्रकृतिबन्धो ज्ञातव्यः । अजागोमहिष्यादिदुग्धानां प्रहरद्वयादिस्वकीयमधुररसावस्थानपर्यन्तं यथा स्थितिर्भण्यते, तथा जीवप्रदेशेष्वपि यावत्कालं कर्मसम्बन्धेन स्थितिस्तावत्कालं स्थितिबन्धो ज्ञातव्यः । यथा च तेषामेव दुग्धानां तारतम्येन रसगतशक्तिविशेषोऽनुभागो भण्यते तथा जीवप्रदेशस्थितकर्मस्कन्धानामपि सुखदुःखदानसमर्थशक्तिविशेषोऽनुभागबन्धो विज्ञेयः । सा च घातिकर्मसम्बन्धिनी शक्तिर्लतादार्वस्थिपाषाणभेदेन चतुर्धा । तथैवाशुभाघातिकर्मसम्बन्धिनी निम्बकाञ्जीरविपहालाहलरूपेण, शुभाघातिकर्मसम्बन्धिनी पुनर्गुडखण्डशर्करामृतरूपेण चतुर्धा भवति । एकैकात्मप्रदेशे सिद्धान्तैकभागसंख्या अभव्यान्तगुणप्रमिता अनंतानंतपरमाणवः प्रतिक्षणबंधमायांतीति प्रदेशबंधः । इदानीं बंधकारणं कथ्यते । “जोगा पयडिपदेसा ठिदिअणुभागा कसायदो हुंति ।” योगात्प्रकृतिप्रदेशौ, स्थित्यनुभागौ कषायतो भवत इति ।

कुम्हार और भडारी, —इन आठों जैसा स्वभाव है वैसा ही क्रमसे ज्ञानावरण आदि आठों कर्मोंका स्वभाव जानना ।” ये आठ दृष्टान्तोंके द्वारा प्रकृतिबंध जानना ।

बकरी, गाय, भेस आदिके दूधमे जिस प्रकार दो प्रहर आदि तक अपने मधुर रसमें रहनेकी कालकी मर्यादा है उसे स्थिति कहते हैं, उसी प्रकार जीवके प्रदेशोमे जितने काल तक कर्मसंबन्धरूपसे स्थिति है उतने कालको स्थितिबंध जानना ।

जिस प्रकार उन्हींके दूधमे तारतम्यतासे रस सम्बन्धी शक्तिविशेषको (चिकनाई, मिठासको) अनुभाग कहा जाता है, उसी प्रकार जीवके प्रदेशो पर स्थित कर्मके स्कन्धोमे भी सुख अथवा दुःख देनेकी शक्तिविशेषको अनुभागबध जानना । घातिकर्मसे संबन्धित वह शक्ति लता, काष्ठ, अस्थि (हड्डी) और पत्थरके भेदसे चार प्रकारकी है । उसी प्रकार अशुभ अघातिकर्मसे संबन्धित शक्ति नीम, काञ्जीर (कालीजीरी), विप तथा हालाहलरूपके भेदसे चार प्रकारकी है, और शुभ अघातिकर्मके साथ संबन्धित शक्ति गुड़, खाड, शकर (मिश्री) और अमृतरूप चार प्रकारकी है ।

आत्माके एक-एक प्रदेश पर सिद्धोके अनतवे भागप्रमाण और अभव्य जीवोकी संख्यासे अनतगुणे अनतानत परमाणु प्रत्येक क्षण बधते है वह प्रदेशबध है ।

अब बधका कारण कहते है —“जोगा पयडिपदेसा ठिदिअणुभागा कसायदो हुंति ।” योगसे प्रकृति और प्रदेश तथा कषायसे स्थिति और अनुभागबध होता है ।

तथाहि—निश्चयेन निष्क्रियाणामपि शुद्धात्मप्रदेशानां व्यवहारेण परिस्पंदनहेतुर्योगः, तस्मात्प्रकृतिप्रदेशबन्धद्वयं भवति । निर्दोषपरमात्मभावनाप्रतिबन्धकक्रोधादिकषायोदयात् स्थित्यनुभागबन्धद्वयं भवतीति । आस्रवे बन्धे च मिथ्यात्वाविरत्यादिकारणानि समानानि, को विशेषः ? इति चेत्, नैवं; प्रथमक्षणे कर्मस्कंधानामागमनमास्रवः, आगमनानन्तरं द्वितीयक्षणादौ जीवप्रदेशेष्ववस्थानं बंध इति भेदः । यत एव योगकषायाद्बंधचतुष्टयं भवति तत एव बंधविनाशार्थं योगकषायत्यागेन निजशुद्धात्मनि भावना कर्तव्येति तात्पर्यम् ॥३३॥ एवं बंधव्याख्यानेन सूत्रद्वयेन द्वितीयं स्थलं गतम् ।

अत ऊर्ध्वं गाथाद्वयेन संवरपदार्थः कथ्यते । तत्र प्रथमगाथायां भावसंवर-द्रव्यसंवरस्वरूपं निरूपयति :—

चेद्गणपरिणामो जो कम्मस्सासवणिरोहणे हेदू ।
सो भावसंवरो खलु दव्वासवरोहणे अरणो ॥३४॥

विस्तार —निश्चयसे निष्क्रिय ऐसे शुद्धात्माके प्रदेशोके व्यवहारसे परिस्पंदका कारण योग है, उससे प्रकृतिबध और प्रदेशबध—ये दो प्रकारके बध होते हैं । निर्दोष परमात्मभावनाके प्रतिबधक क्रोधादि कषायके उदयसे स्थितिबध और अनुभागबध—ये दो बध होते हैं ।

शंकाः—आस्रव और बधके होनेमे मिथ्यात्व, अविरति आदि कारण समान है तो आस्रव और बधमे क्या अन्तर है ?

उत्तरः—इस प्रकार नहीं है । प्रथम क्षणमे कर्मस्कन्धोका जो आगमन है वह आस्रव है और आगमनके पश्चात् द्वितीय आदि क्षणोमे जीवके प्रदेशोमे उन स्कन्धोका रहना वह बध है, इस प्रकार (आस्रव और बधमे) अंतर है ।

क्योकि योग और कषायसे चार प्रकारका बध होता है, अतः बंधका नाश करनेके लिये योग और कषायका त्याग करके निज शुद्धात्मामे भावना करना—यह तात्पर्य है ॥३३॥

इस प्रकार बधके व्याख्यानसे दो गाथाओ द्वारा, द्वितीय स्थल पूर्ण हुआ ।

अब, आगे दो गाथाओं द्वारा संवर पदार्थका कथन किया जाता है । वहां

आस्रवके रोकणकूं भाव, आत्मकौ, सो संवर भाव ।

पुद्गलकर्म रुकै सो जानि, संवर द्रव्य, नाम सो मांनि ॥३४॥

चेतनपरिणामः यः कर्मणः आस्रवनिरोधने हेतुः ।
सः भावसंवरः खलु द्रव्यास्रवरोधनः अन्यः ॥३४॥

व्याख्या—“चेदणपरिणामो” जो कम्मस्सासवणिरोहणे हेतू सो भावसंवरो खलु” चेतनपरिणामो यः, कथंभूतः ? कर्मास्रवनिरोधने हेतुः स भावसंवरो भवति खलु निश्चयेन । “द्रव्यास्रवरोहणे अण्णो” द्रव्यकर्मास्रवनिरोधने सत्यन्यो द्रव्यसंवर इति । तद्यथा—निश्चयेन स्वतः सिद्धत्वात्परकारणनिरपेक्षः, स चैवाविनश्वरत्वान्नित्यः परमोद्योतस्वभावत्वात्स्वपरप्रकाशनसमर्थः, अनाद्यनन्तत्वादादिमध्यान्तमुक्तः, दृष्टश्रुतानुभूतभोगाकांक्षारूपनिदानबन्धादिसमस्तरागादिविभावमलरहितत्वादत्यन्तनिर्मलः, परमचैतन्यविलासलक्षणत्वादुच्छलननिर्भरः, स्वाभाविकपरमानन्दैकलक्षणत्वात्परमसुखमूर्तिः, निरास्रवसहजस्वभावत्वात्सर्वकर्मसंवरहेतुरित्युक्तलक्षणः परमात्मा तत्स्वभावभावेनोत्पन्नो

प्रथम गाथामे 'भावसंवर और 'द्रव्यसवरका' स्वरूप कहते हैं' :—

गाथा-३४

गाथार्थः—आत्माका जो परिणाम कर्मके आस्रवको रोकनेमे कारण है उसे भावसवर कहते हैं और जो द्रव्यास्रवका रुकना वह द्रव्यसवर है ।

टीकाः—“चेदणपरिणामो जो कम्मस्सासवणिरोहणे हेतू सो भावसंवरो खलु” जो चेतन परिणाम, कैसा ? कर्मके आस्रवको रोकनेमे कारण है वह, वास्तवमे निश्चयसे भावसवर है । “द्रव्यास्रवरोहणे अण्णो” द्रव्यकर्मके आस्रवका निरोध होने पर अन्य द्रव्यसवर होता है । वह इस प्रकार है.—निश्चयसे स्वतः सिद्ध होनेसे अन्य कारणकी अपेक्षारहित, अविनश्वर होनेसे नित्य, परम प्रकाशरूप स्वभाव होनेसे स्वपरको प्रकाशित करनेमे समर्थ, अनादिअनन्त होनेसे आदि-मध्य और अतरहित, दृष्ट, श्रुत और अनुभव किये हुए भोगोकी 'आकाक्षारूप निदानबन्धादि' समस्त रागादि विभावमलसे रहित होनेके कारण अत्यन्त निर्मल, परमचैतन्यविलासरूप लक्षण होनेसे चिद्-उच्छलनसे (चैतन्यके उच्छलनसे) भरपूर, स्वाभाविक परमानन्द एक लक्षण होनेसे परमसुखकी मूर्ति, आस्रवरहित सहज स्वभाव होनेसे सर्व कर्मोका सवर करनेमे

१-भावसवर और द्रव्यसवरका प्रारभ चतुर्थ गुणस्थानसे होता है । और चौदहवे गुणस्थानमे आस्रवका सर्वथा अभाव होने पर सर्वसवर होता है ।

योऽसौ शुद्धचेतनपरिणामः स भावसंवरो भवति । यस्तु भावसंवरात्कारणभूतादुत्पन्नः कार्यभूतो नवतरद्रव्यकर्मागमनाभावः स द्रव्यसंवर इत्यर्थः ।

अथ संवरविषयनयविभागः कथ्यते । तथाहि—मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषाय-पर्यन्तमुपर्युपरि मन्दत्वाच्चारतम्येन तावदशुद्धनिश्चयो वर्त्तते । तस्य मध्ये पुनर्गुणस्थान-भेदेन शुभाशुभशुद्धानुष्ठानरूपउपयोगत्रयव्यापारस्तिष्ठति । तदुच्यते—मिथ्यादृष्टि-सासादनमिश्रगुणस्थानेषूपर्युपरि मन्दत्वेनाशुभोपयोगो वर्त्तते, ततोऽप्यसंयतसम्यग्दृष्टि-श्रावकप्रमत्तसंयतेषु पारम्पर्येण शुद्धोपयोगसाधक उपर्युपरि तारतम्येन शुभोपयोगो

कारण-ऐसे लक्षणोसे युक्त 'परमात्मा है । उसके 'स्वभावसे उत्पन्न जो शुद्धचेतन-परिणाम है वह भावसंवर है । और जो, कारणरूप भावसंवरसे उत्पन्न हुआ कार्य-रूप नये द्रव्यकर्माके आगमनका अभाव, वह द्रव्यसंवर है ।

अब संवरके विषयमें नयविभागका कथन करते हैं:—मिथ्यात्व गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषाय गुणस्थान तक ऊपर-ऊपर मदपना होनेसे तारतम्यतासे अशुद्ध निश्चय वर्त्तता है । उसमें गुणस्थानके भेदसे शुभ, अशुभ और शुद्ध अनुष्ठानरूप (आचरणरूप) तीन प्रकारके उपयोगका व्यापार होता है । उसे कहा जाता है—मिथ्यादृष्टि, सासादन और मिश्र—इन तीन गुणस्थानोंमें ऊपर-ऊपर मदरूपसे अशुभ उपयोग होता है । उससे आगे असंयत सम्यग्दृष्टि, श्रावक और प्रमत्तसंयत इन तीन 'गुणस्थानोंमें परपरासे शुद्धोपयोगका साधक ऊपर-ऊपर तारतम्यतासे शुभोपयोग होता है । इसके पश्चात् अप्रमत्तसे क्षीणकषाय तकके छह गुणस्थानोंमें

१-शुद्धचेतनस्वरूप त्रिकालध्रुवज्ञायकस्वभाव आत्मा जो श्री समयसार गाथा ६ में कहा है उसकी यह विस्तारमय व्याख्या है । वह त्रिकाल शुद्धस्वरूप सदा आश्रय करने योग्य होनेसे सर्व प्रकारसे उपादेय है ।

२-जहां चारित्रगुणकी आशिक शुद्धि होती है वहां उसके साथ वर्त्तते हुए शुभोपयोगको परपरासे शुद्धोपयोगका साधक कहा जाता है । चौथे, पाचवे और छठे गुणस्थानमें उसकी भूमिका अनुसार शुद्धि होती है । देखो, छठे गुणस्थान धारक मुनिसबधी प्रवचनसार गाथा २४५-२४६ दोनों आचार्योंकी टीका ।

श्री प्रवचनसार गाथा २४७ की श्री जयसेनाचार्यदेवकृत टीकामें मुनिकी अपेक्षासे 'शुद्धोपयोगसाधके शुभोपयोगे' शब्द कहे हैं । यहा (श्री द्रव्यसग्रहकी टीकामें) तो चौथे, पाचवे और छठे—इस प्रकार तीन गुणस्थानोंमें 'शुद्धोपयोगसाधक शुभोपयोग' कहा है अतः

वर्तते, तदनन्तरमप्रमत्तादिक्षीणकपायपर्यन्तं जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदेन विवक्षितैकदेशशुद्ध-
नयरूपशुद्धोपयोगो वर्तते । तत्रैवं, मिथ्यादृष्टिगुणस्थाने तावत् संवरो नास्ति,
सासादनादिगुणस्थानेषु “सोलसपणवीसणभं दसचउच्चकैकवन्धवोद्विण्णा । दुगतीसचदुर-
पुव्वेपणसोलस जोगिणो एक्को ।१।” इति बन्धविच्छेदत्रिभङ्गीकथितक्रमेणोपर्युपरि
प्रकर्षेण संवरो ज्ञातव्य इति । अशुद्धनिश्चयमध्ये मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानेषूपयोगत्रयं
व्याख्यातं, तत्राशुद्धनिश्चये शुद्धोपयोगः कथं घटते ? इति चेत्तत्रोत्तरं—शुद्धोपयोगे
शुद्धबुद्धैकस्वभावो निजात्मा ध्येयस्तिष्ठति तेन कारणेन शुद्धध्येयत्वाच्छुद्धावलम्बन-
त्वाच्छुद्धात्मस्वरूपसाधकत्वाच्च शुद्धोपयोगो घटते । स च संवरशब्दवाच्यः शुद्धोपयोगः
संसारकारणभूतमिथ्यात्वरारागाद्यशुद्धपर्यायवदशुद्धो न भवति तथैव फलभूतकेवलज्ञानलक्षण

जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट भेदसे विवक्षित एकदेश शुद्धनयरूप शुद्धोपयोग होता है । वहा मिथ्यादृष्टि (प्रथम) गुणस्थानमे तो संवर नहीं होता है, सासादन आदि गुणस्थानोमे ‘मिथ्यादृष्टि प्रथम गुणस्थानमें सोलह प्रकृति, दूसरेमे पचीस, तीसरेमें शून्य, चौथेमे दस, पाचवेमे चार, छठेमे छह, सातवेमे एक, आठवेमे दो, तीस और चार, नवमे पाच, दसवेमें सोलह और सयोगकेवलीमे (तेरहवेमे) एक प्रकृतिकी वध व्युच्छित्ति ‘होती है ।’—इस प्रकार वधविच्छेद त्रिभङ्गीमे कहे अनुसार क्रमसे ऊपर-ऊपर अधिकतासे संवर जानना ।

शंकाः—अशुद्धनिश्चयमें मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानोमे (अशुभ, शुभ और शुद्ध) तीन उपयोगोका व्याख्यान किया; वहा अशुद्धनिश्चयनयमें शुद्धोपयोग किस प्रकार घटित होता है ?

उत्तरः—शुद्धोपयोगमे शुद्ध-बुद्ध-एकस्वभावी निजात्मा ध्येय होता है इस कारण शुद्ध ध्येयवाला होनेसे, शुद्ध अवलम्बनवाला होनेसे और शुद्धात्मस्वरूपका साधक होनेसे शुद्धोपयोग सिद्ध होता है । और वह ‘संवर’ शब्दसे वाच्य शुद्धोपयोग संसारके कारणभूत मिथ्यात्व रागादि अशुद्धपर्यायकी भाँति अशुद्ध नहीं होता है

विलकुल स्पष्ट होता है कि इन तीनों गुणस्थानोमे आशिक शुद्ध परिणति होती ही है, क्योंकि जहा आशिक शुद्धि न हो वहा वर्तते हुए शुभोपयोगमे शुद्धोपयोगके साधकपनेका आरोप भी घटित नहीं होता है ।

शुद्धपर्यायवत् शुद्धोऽपि न भवति किन्तु ताभ्यामशुद्धशुद्धपर्यायाभ्यां विलक्षणं शुद्धात्मानुभूतिरूपनिश्चयरत्नत्रयात्मकं मोक्षकारणमेकदेशव्यक्तिरूपमेकदेशनिरावरणं च तृतीयमवस्थान्तरं भण्यते ।

कश्चिदाह—केवलज्ञानं सकलनिरावरणं शुद्धं तस्य कारणेनापि सकल-निरावरणेन शुद्धेन भाव्यम्, उपादानकारणसदृशं कार्यं भवतीति वचनात् । तत्रोत्तरं दीयते—युक्तमुक्तं भवता परं किन्तु उपादानकारणमपि षोडशवर्णिकासुवर्णकार्यस्याधस्तन-वर्णिकोपादानकारणवत्, मृन्मयकलशकायस्य मृत्पिण्डस्थासकोशकुशूलोपादानकारणवदिति च कार्यादिकदेशेन भिन्नं भवति । यदि पुनरेकान्तेनोपादानकारणस्य कार्येण सहाभेदो भेदो वा भवति, तर्हि पूर्वोक्तसुवर्णमृत्तिकादृष्टान्तद्वयवत्कार्यकारणभावो न घटते । ततः किं सिद्धं ? एकदेशेन निरावरणत्वेन क्षायोपशमिकज्ञानलक्षणमेकदेशव्यक्तिरूपं विवक्षितैकदेशशुद्धनयेन संवरशब्दवाच्यं शुद्धोपयोगस्वरूपं मुक्तिकारणं भवति । यच्च लब्धपर्याप्तसूक्ष्मनिगोदजीवे नित्योद्घाटं निरावरणं ज्ञानं श्रूयते तदपि सूक्ष्मनिगोद-

तथा उसके फलरूप केवलज्ञानरूप शुद्धपर्यायकी भाँति शुद्ध भी नहीं होता है परन्तु वह अशुद्ध और शुद्ध (दोनों) पर्यायोसे विलक्षण, शुद्धात्माके अनुभवरूप निश्चयरत्नत्रयात्मक, मोक्षका कारणभूत, एकदेश प्रगट, एकदेश आवरणरहित—ऐसी तीसरी अवस्थारूप कहलाता है ।

कोई शका करता है —केवलज्ञान समस्त आवरणरहित शुद्ध है तो उसका कारण भी समस्त आवरणरहित शुद्ध होना चाहिये, क्योंकि 'उपादानकारण जैसा कार्य होता है' ऐसा शास्त्रका वचन है । उसका उत्तर दिया जाता है —आपने जो कहा है वह तो योग्य है, परन्तु उपादानकारण भी कार्यसे एकदेश भिन्न होता है; जिस प्रकार सोलह वानके सुवर्णरूप कार्यका नीचेकी अवस्थावाला (पन्द्रह वान) सुवर्णरूप उपादानकारण एकदेश भिन्न होता है और जिस प्रकार मिट्टीके कलशरूप कार्यका मिट्टीका पिण्ड-स्थास-कोश-कुशूलरूप उपादानकारण एकदेश भिन्न होता है उसी प्रकार । यदि एकातसे उपादानकारणका कार्यके साथ अभेद या भेद हो तो पूर्वोक्त सुवर्ण और मिट्टीके दो दृष्टातोकी भाँति कार्यकारणभाव सिद्ध नहीं होता है । इससे क्या सिद्ध हुआ ? (यह सिद्ध हुआ कि) एकदेश-निरावरण होनेसे, क्षायोपशमिक ज्ञानरूप लक्षणयुक्त, एकदेश-प्रगटरूप, विवक्षित-एकदेश-शुद्धनयसे 'सवर' शब्दसे वाच्य शुद्धोपयोगस्वरूप (शुद्धोपयोगका स्वरूप) मुक्तिका कारण होता है, और जो लब्ध-अपर्याप्तक सूक्ष्म निगोदिया जीवमे नित्य उघाड़रूप आवरणरहित

सर्वजघन्यक्षयोपशमापेक्षया निरावरणं, न च सर्वथा । कस्मादिति चेत् ? तदावरणे जीवाभावः प्राप्नोति । वस्तुत उपरितनक्षायोपशमिकज्ञानापेक्षया केवलज्ञानापेक्षया च तदपि सावरणं, संसारिणां क्षायिकज्ञानाभावाच्च क्षायोपशमिकमेव । यदि पुनर्लोचनपटलस्यैकदेश-निरावरणवत्केवलज्ञानांशरूपं भवति तर्हि तेनैकदेशेनापि लोकालोकप्रत्यक्षतां प्राप्नोति, न च तथा दृश्यते । किन्तु प्रचुरमेघप्रच्छादितादित्यविम्बवन्निविडलोचनपटलवद्वा स्तोकं प्रकाशयतीत्यर्थः ।

अथ क्षयोपशमलक्षणं कथ्यते—सर्वप्रकारेणात्मगुणप्रच्छादिकाः कर्मशक्तयः सर्वघातिस्पर्द्धकानि भण्यन्ते, विवक्षितैकदेशेनात्मगुणप्रच्छादिकाः शक्तयो देशघातिस्पर्द्धकानि भण्यन्ते, सर्वघातिस्पर्द्धकानामुदयाभाव एव क्षयस्तेषामेवास्तित्वमुपशम उच्यते सर्व-घात्युदयाभावलक्षणक्षयेण सहित उपशमः तेषामेकदेशघातिस्पर्द्धकानामुदयश्चेति समुदायेन क्षयोपशमो भण्यते । क्षयोपशमे भवः क्षायोपशमिको भावः । अथवा देशघातिस्पर्द्धकोदये

ज्ञान सुननेमे आता है वह भी सूक्ष्मनिगोदके सर्व जघन्य क्षयोपशमकी अपेक्षासे निरावरण है, सर्वथा आवरणरहित नहीं है ।

शंकाः—वह आवरणरहित किस प्रकार रहता है ?

उत्तरः—यदि उस जघन्यज्ञानका भी आवरण हो जाय तो जीवका अभाव प्राप्त होता है । वास्तवमें तो ऊपरके क्षयोपशमज्ञानकी अपेक्षासे और केवलज्ञानकी अपेक्षासे वह ज्ञान भी आवरण सहित है और ससारी जीवोको क्षायिकज्ञानका अभाव होनेसे (वह ज्ञान) क्षायोपशमिक ही है । यदि नेत्रपटलके एकदेश निरावरणकी भांति (अर्थात् नेत्रपटल कुछ खुला हो उसकी भांति) केवलज्ञानके अशरूप वह ज्ञान हो तो उस एकदेशसे भी लोकालोककी प्रत्यक्षता होती, तो भी ऐसा तो देखनेमें नहीं आता है । परन्तु बहुतसे बादलोसे आच्छादित सूर्यके बिंबकी भांति अथवा निबिड़ नेत्रपटलकी भांति उस निगोदियाका ज्ञान थोड़ासा जानता है ऐसा तात्पर्य है ।

अब क्षयोपशमका लक्षण कहते हैं—सर्व प्रकारसे आत्माके गुणोका आच्छादन करनेवाली कर्मकी शक्तियोंको 'सर्वघाती स्पर्द्धक' कहते हैं और विवक्षित एकदेशसे आत्माके गुणोंका आच्छादन करनेवाली कर्मकी शक्तियोंको 'देशघाती' स्पर्द्धक कहते हैं । सर्वघाती स्पर्द्धकोके उदयके अभावको ही क्षय और उनका अशरूप अवस्थाको उपशम कहते हैं । सर्वघाती स्पर्द्धकोका उदयाभावी अथवा अशरूप उपशम और उनके एकदेशघाती स्पर्द्धकोका

इस प्रकार इन तीनों पदों

सति जीव एकदेशेन ज्ञानादिगुणं लभते यत्र स क्षायोपशमिको भावः । तेन किं सिद्धं ? पूर्वोक्तसूक्ष्मनिगोदजीवे ज्ञानावरणीयदेशघातिस्पर्द्धकोदये सत्येकदेशेन ज्ञानगुणं लभ्यते तेन कारणेन तत् क्षायोपशमिकं ज्ञानं, न च क्षायिकं, कस्मादेकदेशोदयसद्भावादिति । अयमत्रार्थः—यद्यपि पूर्वोक्तं शुद्धोपयोगलक्षणं क्षायोपशमिकं ज्ञानं मुक्तिकारणं भवति तथापि ध्यातृपुरुषेण यदेव नित्यसकलनिरावरणमखण्डैकसकलविमलकेवलज्ञानलक्षणं परमात्मस्वरूपं तदेवाहं, न च खण्डज्ञानरूप, इति भावनीयम् । इति संवरतत्त्वव्याख्यान-विषये नयविभागो ज्ञातव्य इति ॥ ३४ ॥

अथ संवरकारणभेदान् कथयतीत्येका पातनिका, द्वितीया तु कैः कृत्वा संवरो भवतीति पृष्टे प्रत्युत्तरं ददातीति पातनिकाद्वयं मनसि धृत्वा सूत्रमिदं प्रति-पादयति भगवान्—

वदसमिदीगुत्तीञ्चो धम्मागुपेहा परीसहजञ्चो य ।

चारित्तं बहुभेया णायव्वा भावसंवरविसेसा ॥३५॥

दायसे क्षयोपशम कहा जाता है । क्षयोपशममे हो उसे क्षायोपशमिकभाव कहते हैं अथवा देशघाती स्पर्द्धकोका उदय होने पर जीव एकदेश ज्ञानादि गुण प्राप्त करता है वह क्षायोपशमिक भाव है । इससे क्या सिद्ध हुआ ? पूर्वोक्त सूक्ष्मनिगोदके जीवमे ज्ञानावरणकर्मके देशघाती स्पर्द्धकोका उदय होने पर एकदेश ज्ञानगुण प्राप्त होता है इस कारण वह क्षायोपशमिकज्ञान है, क्षायिकज्ञान नहीं । किस कारण ? क्योंकि वहा कर्मके एकदेश उदयका सद्भाव है ।

यहा साराश यह है—यद्यपि पूर्वोक्त शुद्धोपयोगलक्षणयुक्त क्षायोपशमिकज्ञान मुक्तिका कारण होता है तो भी ध्याता पुरुषके द्वारा 'नित्य सकल निरावरण, अखण्ड, एक, सम्पूर्ण निर्मल केवलज्ञान जिसका लक्षण है ऐसा परमात्मस्वरूप वही मैं हूँ, खण्डज्ञानरूप नहीं'—ऐसी भावना करनी चाहिये ।

इस प्रकार संवर पदार्थके व्याख्यानमे नयविभाग जानना ॥ ३४ ॥

अब, संवरके कारणोके भेद कहते हैं—इस प्रकार एक भूमिका है, 'संवर किससे होता है ?' ऐसा प्रश्न पूछनेपर प्रत्युत्तर देते हैं—इस प्रकार द्वितीय भूमिका है । ये दोनों भूमिकायें मनमे धारण करके भगवान् श्रीनेमिचन्द्रआचार्य यह गाथा कहते हैं :—

व्रत अरु समिति गुप्ति दश धर्म, अनुप्रेक्षा चारित्र जु पर्म ।

सहन परिषह, ए बहुभेद, संवरभाव भनै जिनदेव ॥३५॥

व्रतसमितिगुप्तयः धर्मानुप्रेक्षाः परीषहजयः च ।
चारित्रं बहुभेदं ज्ञातव्याः भावसंवरविशेषाः ॥३५॥

व्याख्या—“वदसमिदीगुचीओ” व्रतसमितिगुप्तयः, “धर्माणुपेहा” धर्मस्तथै-
वानुप्रेक्षाः, “परीषहजओ य” परीषहजयश्च, “चारित्रं बहुभेया” चारित्रं बहुभेद-
युक्तं, “णायव्वा भावसंवरविसेसा” एते सर्वे मिलिता भावसंवरविशेषा भेदा ज्ञातव्याः ।
अथ विस्तरः—निश्चयेन विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावनिजात्मतत्त्वभावनोत्पन्नसुखसुधास्वाद-
बलेन समस्तशुभाशुभरागादिविकल्पनिवृत्तिव्रतम्, व्यवहारेण तत्साधकं हिंसानृतस्तेया-
ब्रह्मपरिग्रहाच्च यावज्जीवनिवृत्तिलक्षणं पञ्चविधं व्रतम् । निश्चयेनानन्तज्ञानादिस्वभावे
निजात्मनि सम् सम्यक् समस्तरागादिविभावपरित्यागेन तल्लीनतच्चिन्तनतन्मयत्वेन
अयनं गमनं परिणमनं समितिः, व्यवहारेण तद्बहिरङ्गसहकारिकारणभूताचारादिचरण-

गाथा—३५

गाथार्थः—व्रत, समिति, गुप्ति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परिषहजय और अनेक प्रकारका
चारित्र—इन सबको भावसंवरके भेद जानना ।

टीकाः—“वदसमिदीगुचीओ” व्रत, समिति, गुप्ति, “धर्माणुपेहा” धर्म, अनु-
प्रेक्षा “परीषहजओ य” परिषहोका जीतना और “चारित्रं बहुभेया” अनेक भेदयुक्त
चारित्र, “णायव्वा भावसंवरविसेसा” ये सब भावसंवरके भेद जानना । अब इनको
विस्तारसे कहते हैंः—निश्चयसे विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावी निजात्मतत्त्वकी भावनासे
उत्पन्न सुखरूपी सुधाके आस्वादके बलसे समस्त शुभाशुभ रागादि विकल्पोकी
निवृत्ति वह व्रत है । व्यवहारसे उस निश्चयव्रतके साधक, हिंसा, असत्य, चोरी,
अब्रह्म और परिग्रहके आजीवन त्यागलक्षणरूप पाच प्रकारके व्रत है । निश्चयसे
अनन्त ज्ञानादि स्वभावके धारक निजात्मामे ‘सम’ अर्थात् सम्यक् प्रकारसे समस्त
रागादि विभावोके परित्याग द्वारा, निजात्मामे लीनता-चितन-तन्मयतासे ‘अयन’
—गमन—परिणमन करना वह ‘समिति’ है, व्यवहारसे उसके बहिरंग सहकारी
कारणभूत, आचारादि चरणानुयोगके ग्रन्थोमे कथित ईर्या, भाषा, एषणा, आदान-
निक्षेपण और उत्सर्ग नामक पाच समितिया है । निश्चयसे सहज शुद्धात्माकी भावना-

१—साधनार=निमित्त ।

२—बहिरंग सहकारी कारणभूत=बहिरंग निमित्तभूत । बहिरंग साधन वह यथार्थ साधन नहीं
है, मात्र उपचरित साधन है ।

ग्रन्थोक्ता ईर्याभाषैषणादाननिक्षेपोत्सर्गसंज्ञाः पञ्च समितयः । निश्चयेन सहजशुद्धात्म-
भावनालक्षणे गूढस्थाने संसारकारणरागादिभयात्स्वस्यात्मनो गोपनं प्रच्छादनं झम्पनं
प्रवेशनं रक्षणं गुप्तिः, व्यवहारेण बहिरङ्गसाधनार्थं मनोवचनकायव्यापारनिरोधो गुप्तिः ।
निश्चयेन संसारे पतन्तमात्मानं धरतीति विशुद्धज्ञानदर्शनलक्षणनिजशुद्धात्मभावनात्मको
धर्मः, व्यवहारेण तत्साधनार्थं देवेन्द्रनरेन्द्रादिवन्द्यपदे धरतीत्युत्तमक्षमामार्दवार्जवसत्य-
शौचसंयमतपस्त्यागाकिञ्चन्यब्रह्मचर्यलक्षणो दशप्रकारो धर्मः ।

तद्यथा—प्रवर्तमानस्य प्रमादपरिहार्यं धर्मवचनं । क्रोधोत्पत्तिनिमित्ताविषद्या-
क्रोशादिसंभवेऽकालुष्योपरमः क्षमा । शरीरस्थितिहेतुमार्गणार्थं परकुलान्युपगच्छतो
भिक्षोर्दुष्टजनाक्रोशोत्प्रहसनावज्ञानताडनशरीरव्यापादनादीनां क्रोधोत्पत्तिनिमित्तानां
सन्निधाने कालुष्याभावः क्षमा इति उच्यते ॥ १ ॥ जात्यादिमदावेशादभिमानाभावो
मार्दवं ॥ २ ॥ योगस्यावक्रता आर्जवं । योगस्यकायवाङ्मनोलक्षणस्यावक्रता आर्जवं
इति उच्यते ॥ ३ ॥ सत्सु साधुवचनं सत्यं । सत्सु प्रशस्तेषु जनेषु साधुवचनं

रूप लक्षणयुक्त गुप्तस्थानमे संसारके कारणरूप रागादि भयोसे अपने आत्माका
छिपाना, ढकना, झम्पना, प्रवेश कराना अथवा रक्षा करना वह गुप्ति है । व्यवहारसे
बहिरंग साधनके लिये मन, वचन और कायाके व्यापारको रोकना वह गुप्ति है ।
निश्चयसे संसारमे पड़ते हुए आत्माको धारण करके रखता है वह विशुद्ध-ज्ञान-
दर्शनलक्षणमय निज शुद्धात्माकी भावनारूप धर्म है । 'व्यवहारसे उसके साधनके
लिये, देवेन्द्र, नरेन्द्र आदिसे वदपदमे जो धरता है—पहुचाता है वह उत्तम क्षमा,
मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिचन्य और ब्रह्मचर्यरूप दस
प्रकारका धर्म है ।

वह इस प्रकार है । धर्ममे प्रवर्तन करनेवालेके प्रमादको दूर करनेके लिये
धर्मका कथन है । क्रोध उत्पन्न होनेमे निमित्त ऐसे असह्य दुर्वचन आदि होने पर
भी कलुषता (मनकी मलिनता) न होना वह परम क्षमा है । शरीरकी स्थितिके
हेतु (आहार)की शोधमे अन्यके घर जाते हुए मुनिको दुष्टजनो द्वारा गाली, हसी,
तिरस्कारके वचन, मारना, शरीरका घात इत्यादि क्रोध उत्पन्न होनेके निमित्त
मिलने पर भी परिणामोमे मलिनताका अभाव होना उसे क्षमा कहते हैं ॥ १ ॥
जाति आदिके मदके आवेशसे हुए अभिमानके अभावको मार्दव कहते हैं ॥ २ ॥
योगोकी अवक्रताको आर्जव कहते हैं अर्थात् मन-वचन-कायरूप योगोकी सरलताको
आर्जव कहते हैं ॥ ३ ॥ सज्जनोंके प्रति अच्छे वचन बोलना उसे सत्य कहते हैं
अर्थात् प्रशस्तजनोंके प्रति समीचीन वचन बोलना वह सत्य कहलाता है ॥ ४ ॥

सत्यमिति उच्यते ॥ ४ ॥ प्रकर्षप्राप्ता लोभनिवृत्तिः शौचं । लोभस्य निवृत्तिः प्रकर्ष-
प्राप्ता, शुचेर्भावः कर्म वा शौचं इति निश्चीयते ॥ ५ ॥ समितिषु प्रवर्तमानस्य
प्राणीन्द्रियपरिहारः संयमः । ईर्यासमित्यादिषु वर्तमानस्य मुनेस्तत्प्रतिपालनार्थः प्राणीन्द्रिय
परिहारः संयम इत्युच्यते । एकेन्द्रियादि प्राणिपीडापरिहारः प्राणिसंयमः । शब्दादि-
ष्विन्द्रियार्थेषु रागानभिष्वङ्ग इन्द्रियसंयमः ।

तत्प्रतिपादनार्थः शुद्धयष्टकोपदेशः, तद्यथा—अष्टौ शुद्धयः—भावशुद्धिः,
कायशुद्धिः, विनयशुद्धिः, ईर्यापथशुद्धिः, भिक्षाशुद्धिः, प्रतिष्ठापनशुद्धिः, शयनासनशुद्धिः,
वाक्यशुद्धिश्चेति । तत्र भावशुद्धिः, कर्मक्षयोपशमजनिता, मोक्षमार्गरुच्याहितप्रसादा,
रागाद्युपप्लवरहिता । कायशुद्धिः, निरावरणाभरणा, निरस्तसंस्कारा, यथाजातमलधारिणी,
निराकृताङ्गविकारा । विनयशुद्धिः, अर्हदादिषु परमगुरुषु यथार्हं पूजाप्रवणा, ज्ञानादिषु
च यथाविधिभक्तियुक्ता, गुरोः सर्वत्रानुकूलवृत्तिः । ईर्यापथशुद्धिः, नानाविधजीवस्थान-
योन्याश्रयावबोधजनितप्रयत्नपरिहृतजन्तुपीडा, ज्ञानादित्यस्वेन्द्रियप्रकाशनिरीक्षितदेश-

लोभकी प्रकर्षरूपसे (अत्यत) निवृत्तिको शौच कहते है । लोभकी निवृत्ति प्रकर्ष-
पनेको प्राप्त हो वह शौच; शुचि (पवित्र) भाव अथवा शुचिकर्म वह शौच—इस
प्रकार निश्चित किया जाता है ॥ ५ ॥ समितिमे प्रवर्तमान मुनिको प्राणघात और
इन्द्रिय विषयोंका त्याग वह संयम है । ईर्यासमिति आदिमे वर्तते हुए मुनिको उनका
परिपालन करनेके लिये प्राणियोंके घातके त्याग और इन्द्रिय-विषयोंके त्यागको
संयम कहा जाता है ॥ ६ ॥ एकेन्द्रियादि प्राणियोंको पीडा पहुचानेका त्याग वह
प्राणीसंयम है और शब्दादि इन्द्रियविषयोंमे रागका आसक्तभाव न होना वह
इन्द्रियसंयम है ।

उसका प्रतिपादन करनेके लिये आठ शुद्धियोंका उपदेश है । वह इस प्रकार
है :—आठ शुद्धि —भावशुद्धि, कायशुद्धि, विनयशुद्धि, ईर्यापथशुद्धि, भिक्षाशुद्धि,
प्रतिष्ठापनशुद्धि, शयनासनशुद्धि और वाक्यशुद्धि । उनमे भावशुद्धि—कर्मके क्षयो-
पशमसे उत्पन्न होती है, मोक्षमार्गमे रुचि होनेसे परिणामोको निर्मल करनेवाली है,
रागादि विकारसे रहित है ॥१॥ कायशुद्धि—आवरण और आभूषणोंसे रहित,
शरीरके संस्कार रहित, जन्मसमय समान मैलयुक्त, शरीरके विकारोंसे रहित होती
है ॥२॥ विनयशुद्धि—परमगुरु अर्हत आदिके प्रति यथायोग्य पूजामे तत्परतासहित,
ज्ञानादिमें विधिपूर्वककी भक्तियुक्त, और गुरुके प्रति सर्वत्र अनुकूल वृत्तियुक्त होती
है ॥३॥ ईर्यापथशुद्धि.—भिन्न-भिन्न प्रकारके जीवोंके उत्पत्तिस्थान तथा योनिरूप

गामिनी, द्रुतविलम्बितसम्भ्रांतविस्मितलीलाविकारदिगान्तरावलोकनादिदोषविरहित-
गमना । भिक्षाशुद्धिः, आचारसूत्रोक्तकालदेशप्रकृतिप्रतिपत्तिकुशला, लाभालाभमानापमान-
समानमनोवृत्तिः. लोकगर्हितकुलपरिवर्जनपरा, चन्द्रगतिरिवहीनाधिकगृहा, विशिष्टोपस्थाना
दीनानाथदानशालाविवाहयजनगेहादि- परिवर्जनोपलक्षिता, दीनवृत्तिविगमा, प्रांसुकाहार-
गवेषणप्रणिधाना, आगमविहित निरवद्याशनपरिप्राप्तप्राणयात्राकला । प्रतिष्ठापनशुद्धिः,
नखरोमसिङ्घाणकनिष्ठीवनशुक्रोच्चारप्रस्रवणशोधने देहपरित्यागे च जंतूपरोधविरहिता ।
शयनासनशुद्धिः, स्त्रीक्षुद्रचौरपानाक्षशौण्डशाकुनिकादिपापजनवासा वर्ज्याः, अकृत्रिम-
गिरिशुहातरुकोटरादयः कृत्रिमाश्च शून्यागारादयो मुक्तमोचितावासा अनात्मोद्देश-
निर्वर्तिताः सेव्याः । वाक्यशुद्धिः, पृथिवीकायिकारम्भादिप्रेरणरहिता, परुषनिष्ठुरादि-
परपीडाकरप्रयोगनिरुत्सुका, व्रतशीलदेशनादिप्रधानफला, हितमितमधुरमनोहरा, संयतस्य-
योग्या, इति संयमान्तर्गताष्टशुद्धयः ॥ ६ ॥

आश्रयका बोध होनेसे जतुओको पीड़ा न हो ऐसे प्रयत्नयुक्त, ज्ञानरूपी सूर्यसे और
इन्द्रिय, प्रकाश आदिसे निरीक्षण किये प्रदेशमे गमनयुक्त (होती है), शीघ्र चलना,
विलंबसे चलना, चंचल उपयोग सहित, विस्मयपूर्वक, लीलापूर्वक, विकारपूर्वक,
इधर-उधर दिशाओमे देखकर चलना आदि प्रकारके दोषरहित गमनरूप होती है
॥४॥ भिक्षाशुद्धि —आचार सूत्रोमे कहे अनुसार काल, देश और प्रकृतिके ज्ञानमे
कुशल, लाभ-अलाभ, मान-अपमानमे समान मनोवृत्तियुक्त, लोकनिघ्न कुलमे (घरमे)
जानेसे रहित, चन्द्रमाकी गतिकी भाति कम या अधिक घरमे जानेकी मर्यादासे
युक्त, विशिष्ट प्रकारके स्थान—जैसे कि गरीब और अनाथोके लिये दानशाला,
विवाह अथवा यज्ञके प्रसंगवाले घर आदि स्थानोके त्यागरूप लक्षणसहित, दीनवृत्ति
रहित, प्रासुक (निर्दोष) आहार शोधनेकी इच्छायुक्त, आगम कथित निर्दोष भोजनसे
प्राणयात्रा टिकानेवाली होती है ॥५॥ प्रतिष्ठापनशुद्धि—नख, रोम, नासिकामल,
कफ, वीर्य, मल और मूत्रके त्यागमे तथा शरीरकी उठने-बैठनेकी क्रिया करनेमे
जतुओको पीडा न हो उसप्रकार आचरण करनेको कहते है ॥६॥ शयनासनशुद्धि—
स्त्री, क्षुद्र पुरुष, चोर, शराबी, जुआरी, कलाल, पारधि आदि पापी जनोके रहने
योग्य स्थान छोड़ना और अकृत्रिम पर्वतकी गुफा, वृक्षकी कोटर आदि तथा कृत्रिम
निर्जन आवास आदि, छोड़े गये अथवा छूट गये आवास, जो अपने लिये न बनाये
हो ऐसे स्थानोमे रहना वह (शयनासनशुद्धि है) ॥७॥ वाक्यशुद्धि—पृथ्वीकायादिके
आरंभ आदिकी प्रेरणारहित, कठोर, निर्दय आदि अन्यको पीड़ा देनेवाले प्रयोगोसे

कर्मक्षयार्थं तप्यत इति तपः । तद्द्विविधं, बाह्यमभ्यन्तरं च, तत्प्रत्येकं पद्विधम् ॥ ७ ॥ परिग्रहनिवृत्तिस्त्यागः । परिग्रहस्य चेतनाचेतनलक्षणस्य निवृत्तिस्त्याग इति निश्चीयते अथवा संयतस्य योग्यं ज्ञानादिदानं त्याग इत्युच्यते ॥ ८ ॥ ममेदमित्यभिसंधिनिवृत्तिराकिंचन्यं । उपात्तेष्वपि शरीरादिषु संस्कारापोहाय ममेदमित्यभिसंधिनिवृत्तिराकिंचन्यमित्याख्यायते । नास्य किंचनास्ति इत्यकिंचनः, तस्य भावः कर्म वा आकिंचन्यम् ॥९॥ अनुभूतांगनास्मरणतत्कथाश्रवण स्त्रीसंसक्तशयनासनादिवर्जनाद् ब्रह्मचर्यं । मया अनुभूतांगना कलागुणविशारदा इति स्मरणं तत्कथाश्रवणं रतिपरिमलादिवासितं स्त्रीसंसक्तशयनासनमित्येवमादिवर्जनात् परिपूर्णं ब्रह्मचर्यमवतिष्ठते । स्वातंत्र्यार्थं गुरौ ब्रह्मणि चर्यामिति वा ॥ १० ॥ एवं दशधा धर्मः ।

द्वादशानुप्रेक्षाः

कथ्यन्ते—अध्रुवाशरणसंसारैकत्वान्यत्वाशुचित्वास्रवसंवर-

रहित, व्रत-शील आदिका प्रधानरूपसे उपदेश देनेवाली, हितकारी, मर्यादित, मधुर, मनोहर और सयमीके योग्य होती है ॥८॥ इस प्रकार संयममे समाविष्ट आठ शुद्धियां हैं ॥६॥

कर्मका क्षय करनेके लिये जो तपा जाता है वह तप है । वह तप दो प्रकारका है; बाह्यतप और अभ्यन्तर तप । उनमेसे प्रत्येक छह प्रकारका है ॥७॥ परिग्रहकी निवृत्ति वह त्याग है । चेतन और अचेतनस्वरूप परिग्रहकी निवृत्ति वह त्याग अथवा संयमीको योग्य ज्ञानादिके दानको भी त्याग कहा जाता है ॥८॥ 'यह मेरा है' ऐसे अभिप्रायकी निवृत्ति वह आकिंचन्य है । शरीरादि प्राप्त परिग्रहोमे भी संस्कार छोड़कर 'यह मेरा है' ऐसे अभिप्रायकी निवृत्तिको आकिंचन्य कहा जाता है । 'जिसका कुछ भी नहीं' वह आकिंचन्य है, उसका भाव अथवा कर्म वह आकिंचन्य है ॥९॥ जिसका अनुभव किया हो उस स्त्रीका स्मरण, उसकी बातें सुनना, जिस पर स्त्री बैठी हो उस शय्या, आसन आदिके त्यागसे ब्रह्मचर्य होता है । भेटे द्वारा भोगी गई स्त्री कला और गुणोमे विशारद थी ऐसा स्मरण करना, उसकी बातोंको सुनना, रति समयके सुगंधी द्रव्योकी सुवास, स्त्रीके सबधयुक्त शय्या-आसन आदिके त्यागसे परिपूर्ण ब्रह्मचर्य होता है । अथवा स्वतंत्रताकी प्राप्तिके लिये स्वस्वरूप ब्रह्ममें चर्या करना ब्रह्मचर्य है ॥१०॥ इस प्रकार दस प्रकारके धर्म हैं ।

बारह अनुप्रेक्षाओका कथन किया जाता है—अध्रुव, अशरण, अन्यत्व, अशुचित्व, आस्रव, सवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ और करना—वह अनुप्रेक्षा है ।

निर्जरालोकबोधिदुर्लभधर्मानुचिन्तनमनुप्रेक्षाः । अथाध्रुवानुप्रेक्षा कथ्यते । तद्यथा—
द्रव्यार्थिकनयेन टङ्कोत्कीर्णज्ञायकैकस्वभावत्वेनाविनश्वरस्वभावनिजपरमात्मद्रव्यादन्यद्-
भिन्नं यज्जीवसंबन्धे अशुद्धनिश्चयनयेन रागादिविभावरूपं भावकर्म, अनुपचरितासद्भूत-
व्यवहारेण द्रव्यकर्मनोकर्मरूपं च तथैव (उपचरितासद्भूतव्यवहारेण) तत्स्वस्वामि-
भावसम्बन्धेन गृहीतं यच्चेतनं वनितादिकम्, अचेतनं सुवर्णादिकं, तदुभयमिश्रं
चेत्युक्तलक्षणं तत्सर्वमध्रुवमिति भावयितव्यम् । तद्भावनासहितपुरुषस्य तेषां वियोगेऽपि
सत्युच्छिष्टेष्विव ममत्वं न भवति तत्र ममत्वाभावादविनश्वरनिजपरमात्मानमेव भेदाभेद-
रत्नत्रयभावनया भावयति, यादृशमविनश्वरमात्मानं भावयति तादृशमेवाक्षयानन्तसुख-
स्वभावं मुक्तात्मानं प्राप्नोति । इत्यध्रुवानुप्रेक्षा गता ॥ १ ॥

अथाशरणानुप्रेक्षा कथ्यते—निश्चयरत्नत्रयपरिणतं स्वशुद्धात्मद्रव्यं तद् बहिरङ्ग-
सहकारिकारणभूतं पञ्चपरमेष्ठ्याराधनश्च शरणम्, तस्माद्बहिर्भूता ये देवेन्द्रचक्रवर्त्ति-
सुभटकोटिभटपुत्रादिचेतना गिरिदुर्गभूविवरमणिमन्त्राज्ञाप्रासादौषधादयः पुनरचेतनास्त-
दुभयात्मका मिश्राश्च मरणकालादौमहाटव्यां, व्याघ्रगृहीतमृगबालस्येव, महासमुद्रे पोतच्युत-

अब अध्रुव अनुप्रेक्षाका कथन किया जाता है । वह इस प्रकार—द्रव्यार्थिक-
नयसे टकोत्कीर्ण-ज्ञायक-एक स्वभावपनेसे, अविनाशी स्वभाववाले निज परमात्म-
द्रव्यसे भिन्न, जीवके सबंधी जो अशुद्धनिश्चयनयसे रागादि विभावरूप भावकर्म,
अनुपचरितअसद्भूतव्यवहारसे द्रव्यकर्म और नोकर्म, तथा (उपचरित असद्भूत-
व्यवहारसे) उसके स्व-स्वामी सबधभावसे गृहीत जो स्त्री आदि चेतन पदार्थ,
सुवर्णादि अचेतन पदार्थ तथा चेतन-अचेतन मिश्र पदार्थ आदि लक्षणयुक्त ये सब
पदार्थ अध्रुव है ऐसी भावना करनी चाहिये । वैसी भावनावाले पुरुषको उनका
वियोग होने पर भी भूठे भोजनके समान ममत्व नहीं होता । उनमे ममत्वका
अभाव होनेसे अविनाशी निज परमात्माको ही भेदाभेद रत्नत्रयकी भावना द्वारा
भाते है और जैसे अविनाशी आत्माकी भावना करते है वैसे ही अक्षय, अनंत सुख-
स्वभावी मुक्तात्माको प्राप्त करते है । इस प्रकार अध्रुव अनुप्रेक्षा पूर्ण हुई ॥१॥

अब अशरण अनुप्रेक्षा कहते है—निश्चयरत्नत्रयपरिणत स्वशुद्धात्मद्रव्य
और उसके बहिरंग सहकारी कारणभूत पंचपरमेष्ठीकी आराधना शरण है, उससे
भिन्न देव, इन्द्र, चक्रवर्ती, सुभट, कोटिभट, पुत्र आदि चेतन पदार्थ तथा पर्वत, किला,
भौहरा, मणि, मंत्र, तत्र, आज्ञा, महल, औषध आदि अचेतन पदार्थ तथा चेतन-अचेतन
मिश्र पदार्थ भी मरण आदिके समयमें, महान वनमें बाघके द्वारा पकड़े हुए हिरनके

पक्षिण इव शरणं न भवन्तीति विज्ञेयम् । तद्विज्ञाय भोगकांक्षारूपनिदानबन्धादिनिरालम्बने स्वसंविचितिसमुत्पन्नसुखामृतसालम्बने स्वशुद्धात्मन्येवावलम्बनं कृत्वा भावनां करोति । यादृशं शरणभूतमात्मानं भावयति तादृशमेव सर्वकालशरणभूतं शरणागतवज्रपञ्जरसदृशं निजशुद्धात्मानं प्राप्नोति । इत्यशरणानुप्रेक्षा व्याख्याता ॥२॥

अथ संसारानुप्रेक्षा कथ्यते—शुद्धात्मद्रव्यादितराणि सपूर्वापूर्वमिश्रपुद्गलद्रव्याणि ज्ञानावरणादिद्रव्यकर्मरूपेण, शरीरपोषणार्थाशनपानादिपञ्चेन्द्रियविषयरूपेण चानन्तवारान् गृहीत्वा विमुक्तानीति द्रव्यसंसारः । स्वशुद्धात्मद्रव्यसंबन्धिसहजशुद्धलोकाकाशप्रमितासंख्येयप्रदेशेभ्यो भिन्ना ये लोकक्षेत्रप्रदेशास्तत्रैकैकं प्रदेशं व्याप्यानन्तवारान् यत्र न जातो न मृतोऽयं जीवः स कोऽपि प्रदेशो नास्तीति क्षेत्रसंसारः । स्वशुद्धात्मानुभूतिरूपनिर्विकल्पसमाधिकालं विहाय प्रत्येकंदशकोटाकोटिसागरोपमप्रमितोत्सर्पिण्यवसर्पिण्येकैकसमये नानापरावर्तनकालेनानन्तवारानयं जीवो यत्र न जातो न मृतः स समयो नास्तीति कालसंसारः । अभेदरत्नत्रयात्मकसमाधिवलेन सिद्धगतौ स्वात्मोपलब्धिलक्षण-

बच्चेकी भाति अथवा महासमुद्रमे जहाजसे पृथक् हुए पक्षीकी भाति, शरणरूप नहीं होते है, ऐसा जानना । यह जानकर भोगोकी वांछारूप निदान बधादिका अवलम्बन न लेता हुआ, स्वसवेदनसे उत्पन्न सुखामृतके धारक स्व-शुद्धात्माका ही अवलम्बन लेकर (उस शुद्धात्माकी) भावना करता है । वह जैसे शरणभूत आत्माका चितवन करता है वैसे ही सर्वकालमे शरणभूत, शरणमें आए हुए वज्रके पन्जरकी भांति निज शुद्धात्माको प्राप्त करता है । इस प्रकार अशरण अनुप्रेक्षाका व्याख्यान किया ॥२॥

अब संसार अनुप्रेक्षा कहते है—इस जीवने शुद्धात्मद्रव्यसे भिन्न पूर्वमे मिले हुए, पूर्वमे नहीं मिले हुए और मिश्र ऐसे पुद्गल द्रव्य, ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्मरूपसे तथा शरीरके पोषणके लिये भोजन, पान आदि पाच इन्द्रियके विषयरूपसे अनतबार ग्रहणकर छोड़े है—यह 'द्रव्यसंसार' है । स्व-शुद्धात्मद्रव्य सबधी सहज शुद्ध लोकाकाशप्रमाण असख्य प्रदेशोसे भिन्न जो लोकाकाशके प्रदेश है उनमे एक-एक प्रदेशमे व्याप्त होकर इस जीवने यहा अनतबार जन्म या मरण न किया हो ऐसा कोई भी प्रदेश नहीं है—वह 'क्षेत्रसंसार' है । स्व-शुद्धात्माके अनुभवरूप निर्विकल्प समाधिका काल छोडकर दस कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण उत्सर्पिणीकाल और दस कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण अवसर्पिणी कालके एक-एक समयमे अनेक परावर्तन करके, इस जीवने जिसमें अनतबार जन्म या मरण न किया हो ऐसा कोई भी समय नहीं है—यह

सिद्धपर्यायरूपेण योऽसावुत्पादो भवस्तं विहाय नारकतिर्यग्मनुष्यभवेषु तथैव देवभवेषु च निश्चयरत्नत्रयभावनारहितभोगाकांक्षानिदानपूर्वकद्रव्यतपश्चरणरूपजिनदीक्षाबलेन नव-ग्रैवेयकपर्यन्तं, “सको सहग्गमहिस्सी दक्खिणइंदा य लोयवाला य । लोयंतिया य देवा तच्छ चुदा णिव्वुदिं जंति ।१।” इति गाथाकथितपदानि तथागमनिषिद्धान्यन्यपदानि च त्यक्त्वा भवविध्वंसकनिजशुद्धात्मभावनारहितो भवोत्पादकमिथ्यात्वरारागादिभावनासहितश्च सन्नयं जीवोऽनन्तवारान् जीवितो मृतश्चेति भवसंसारो ज्ञातव्यः ।

अथ भावसंसारः कथ्यते । तद्यथा—सर्वजघन्यप्रकृतिबन्धप्रदेशबन्धनिमित्तानि सर्वजघन्यमनोवचनकायपरिस्पन्दरूपाणि श्रेण्यसंख्येयभागप्रमितानि चतुःस्थानपतितानि सर्वजघन्ययोगस्थानानि भवन्ति तथैव सर्वोत्कृष्टप्रकृतिबन्धप्रदेशबन्धनिमित्तानि सर्वोत्कृष्ट-मनोवचनकायव्यापाररूपाणि तद्योग्यश्रेण्यसंख्येयभागप्रमितानि चतुःस्थानपतितानि सर्वोत्कृष्टयोगस्थानानि च भवन्ति । तथैव सर्वजघन्यस्थितिबन्धनिमित्तानि सर्व-

‘कालसंसार’ है । अभेदरत्नत्रयात्मक समाधिके बलसे सिद्धगतिमे निजात्माकी उपलब्धि जिसका लक्षण है ऐसी सिद्धपर्यायरूप जो उत्पाद—उसे छोड़कर नरक, तिर्यंच और मनुष्यभवमें तथा देवके भवोमे निश्चयरत्नत्रयकी भावनारहित, भोगा-काक्षानिदानपूर्वक द्रव्य-तपश्चरणरूप जिनदीक्षाके बलसे नव ग्रैवेयक तक, “सको सहग्गमहिस्सी दक्खिणइंदा य लोयवाला य । लोयंतिया य देवा तच्छ चुदा णिव्वुदिं जंति ॥” [शक्र (प्रथम स्वर्गका इन्द्र), प्रथम स्वर्गकी इन्द्राणी (शची), दक्षिण दिशाके इन्द्र, लोकपाल और लौकातिक देव ये सब स्वर्गसे च्युत होकर मोक्ष प्राप्त करते हैं ।] इस ‘गाथामे कहे हुए पद तथा आगम निषिद्ध अन्य पद छोड़कर, भवनाशक निजशुद्धात्मभावनासे रहित वर्तते हुए और भव-उत्पादक मिथ्यात्व-रागादिभावना सहित वर्तते हुए इस जीवने अनन्तबार जन्म और मरण किया है— इस प्रकार ‘भवसंसार’ जानना ।

अब, भावसंसारका कथन किया जाता है । वह इस प्रकार—सर्वजघन्य प्रकृतिबन्ध और प्रदेशबन्धके निमित्तभूत, सर्वजघन्य मन-वचन-कायाके परिस्पन्दरूप, श्रेणीके असख्यातवे भागप्रमाण, चार स्थानमे पतित ऐसे सर्वजघन्य योगस्थान होते हैं । उसी प्रकार सर्वोत्कृष्ट प्रकृतिबन्ध और प्रदेशबन्धके निमित्तभूत, सर्वोत्कृष्ट मन-वचन-कायाके व्यापाररूप, उसके योग्य श्रेणीके असख्यातवे भागप्रमाण, चार स्थानमे पतित ऐसे सर्वोत्कृष्ट योगस्थान होते हैं । उसी प्रकार सर्वजघन्य स्थिति-

जघन्यकषायाध्यवसायस्थानानि तद्योग्यासंख्येलोकप्रमितानि षट्स्थानपतितानि च भवन्ति । तथैव च सर्वोत्कृष्टस्थितिवंधनिमित्तानि सर्वोत्कृष्टकषायाध्यवसायस्थानानि तान्यप्यसंख्येलोकप्रमितानि षट्स्थानपतितानि च भवन्ति । तथैव सर्वजघन्यानुभाग-बन्धनिमित्तानि सर्वजघन्यानुभागाध्यवसायस्थानानि तान्यप्यसंख्येलोकप्रमितानि षट्स्थानपतितानि भवन्ति । तथैव च सर्वोत्कृष्टानुभागबंधनिमित्तानि सर्वोत्कृष्टानुभागाध्यवसायस्थानानि तान्यप्यसंख्येलोकप्रमितानि षट्स्थानपतितानि च विज्ञेयानि । तेनैव प्रकारेण स्वकीयस्वकीयजघन्योत्कृष्टयोर्मध्ये तारतम्येन मध्यमानि च भवन्ति । तथैव जघन्यादुत्कृष्टपर्यन्तानि ज्ञानावरणादिमूलोत्तरप्रकृतीनां स्थितिवंधस्थानानि च । तानि सर्वाणि परमागमकथितानुसारेणानन्तवारान् भ्रमितान्यनेन जीवेन, परं किन्तु पूर्वोक्त-समस्तप्रकृतिबन्धादीनां सद्भावविनाशकारणानि विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावनिजपरमात्मतत्त्व-सम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणरूपाणि यानि सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि तान्येव न लब्धानि इति भावसंसारः ।

एवं पूर्वोक्तप्रकारेण द्रव्यक्षेत्रकालभवभावरूपं पञ्चप्रकारं संसारं भावयतोऽस्य जीवस्य संसारातीतस्वशुद्धात्मसंविच्चि विनाशकेषु संसारवृद्धिकारणेषु मिथ्यात्वाविरति-

बंधके निमित्तभूत, सर्वजघन्य कषाय-अध्यवसायके स्थान, उनके योग्य असख्यात लोकप्रमाण और षट्स्थानपतित होते हैं और तथा सर्वोत्कृष्ट स्थितिबंधके निमित्तभूत, सर्वोत्कृष्ट कषाय-अध्यवसायके स्थान भी असख्यात लोकप्रमाण और षट्स्थानपतित होते हैं । उसीप्रकार सर्वजघन्य अनुभागबंधके निमित्तभूत, सर्वजघन्य अनुभाग-अध्यवसायके स्थान असख्यात लोकप्रमाण और षट्स्थानपतित होते हैं । उसी प्रकार सर्वोत्कृष्ट अनुभागबंधके निमित्तभूत, सर्वोत्कृष्ट अनुभाग-अध्यवसायके स्थान भी असख्यात लोकप्रमाण और षट्स्थानपतित जानना । उसी प्रकार अपने-अपने जघन्य और उत्कृष्ट भेदके मध्यमे तारतम्यतापूर्वक मध्यम भेद भी हैं । उसी प्रकार जघन्यसे लेकर उत्कृष्ट तकके ज्ञानावरणादि मूल तथा उत्तर प्रकृतियोंके स्थितिबंधस्थान हैं । उन सबमे परमागममे कहे अनुसार इस जीवने अनंतबार भ्रमण किया है परन्तु पूर्वोक्त समस्त प्रकृतिबंध आदिकी सत्ताके नाशके कारणरूप जो विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभाव निजपरमात्मतत्त्वके सम्यक् श्रद्धान-ज्ञान-अनुचरणरूप सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र वही इस जीवने प्राप्त नहीं किया है—इसप्रकार 'भावसंसार' है ।

इस पूर्वोक्त प्रकारसे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भावरूप पांच प्रकारके संसारका चितवन करते हुए इस जीवको संसाररहित स्वशुद्धात्मसवेदनके विनाशक और

प्रमादकषाययोगेषु परिणामो न जायते, किन्तु संसारातीतसुखास्वादे रतो भूत्वा स्वशुद्धात्मसंविच्चिबलेन संसारविनाशकनिजनिरञ्जनपरमात्मन्येव भावनां करोति । ततश्च यादृशमेव परमात्मानं भावयति तादृशमेव लब्ध्वा संसारविलक्षणे मोक्षेऽनन्तकालं तिष्ठतीति । अयं तु विशेषः—नित्यनिगोदजीवान् विहाय, पञ्चप्रकारसंसारव्याख्यानं ज्ञातव्यम् । कस्मादिति चेत्—नित्यनिगोदजीवानां कालत्रयेऽपि त्रसत्वं नास्तीति । तथा चोक्तं—“अत्थि अणंता जीवा जेहि ण पत्तो तसाण परिणामो । भावकलंक-सुपउरा णिगोदवासं ण मुंचंति । १ ।” अनुपममद्वितीयमनादिमिथ्यादृशोऽपि भरतपुत्रा-स्त्रयोविंशत्यधिकनवशतपरिमाणास्ते च नित्यनिगोदवासिनः क्षपितकर्माण इन्द्रगोपाः संजातास्तेषां च पुञ्जीभूतानामुपरि भरतहस्तिना पादो दत्तस्ततस्ते मृत्वापि वर्द्धनकुमारा-दयो भरतपुत्रा जातास्ते च केनचिदपि सह न वदन्ति । ततो भरतेन समवसरणे भगवान् पृष्टो, भगवता च प्राक्तनं वृत्तान्तं कथितम् । तच्छ्रुत्वा ते तपो गृहीत्वा

संसारकी वृद्धिमें कारणभूत मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योगके परिणाम नहीं होते हैं किन्तु संसारातीत सुखके आस्वादमें रत होकर, स्वशुद्धात्मसवेदनके बलसे संसार विनाशक निज निरञ्जन परमात्मामें ही भावना करता है, और तत्पश्चात् जैसे परमात्माकी भावना करता है वैसे ही परमात्माको प्राप्तकर संसारसे विलक्षण ऐसे मोक्षमें अनन्तकाल स्थित रहता है । यहाँ विशेष यह है कि नित्यनिगोदके जीवोंको छोड़कर पाँच प्रकारके संसारका व्याख्यान जानना ।

प्रश्नः—ऐसा क्यों ?

उत्तरः—क्योंकि नित्यनिगोदके जीवोंको तीनों कालोंमें भी त्रसपना नहीं है । कहा भी है—‘ऐसे अनन्त जीव है कि जिन्होंने अब तक त्रस-पर्याय नहीं प्राप्तकी है, वे प्रचुर भावकलक होनेसे निगोदवास नहीं छोड़ते हैं ।’

अनुपम और अद्वितीय कथन यह है कि नित्य-निगोदवासी, अनादि मिथ्या-दृष्टि जीव भी भरत चक्रवर्तीके नौ सौ तेइस पुत्र कर्मोंकी^१ निर्जरा करनेसे इन्द्र-गोप हुए और उनके समूह पर भरतके हाथीने पैर रखा जिससे वे मरकर वर्द्धन-कुमार आदि भरतके पुत्र हुए, वे किसीके साथ नहीं बोलते थे, अतः भरतने सम-वशरणमें भगवानसे पूछा तब भगवानने उनका पूर्ववृत्तांत कहा^२, उसे सुनकर

१—गोम्मटसार जीवकांड गाथा—१६६

२—अक्राम निर्जरा ।

३—मूल आराधना अ०—१ गाथा १७, पृष्ठ ६६

क्षणस्तोककालेन मोक्षं गताः । आचाराराधनाटिप्पणे कथितमास्ते । इति संसार-
नुप्रेक्षा गता । ३ ।

अथैकत्वानुप्रेक्षा कथ्यते । तद्यथा—निश्चयरत्नत्रयैकलक्षणैकत्वभावनापरिणत-
स्यास्य जीवस्य निश्चयनयेन सहजानन्दसुखाद्यनन्तगुणाधारभूतं केवलज्ञानमेवैकं सहजं
शरीरम् । शरीरं कोऽर्थः ? स्वरूपं, न च सप्तधातुमयौदारिकशरीरम् । तथैवार्त्तारौद्र-
दुर्ध्यानविलक्षणपरमसामायिकलक्षणैकत्वभावनापरिणतं निजात्मतत्त्वमेवैकं सदा शाश्वतं
परमहितकारी परमबन्धु, न च विनश्वराहितकारी पुत्रकलत्रादि । तेनैव प्रकारेण
परमोपेक्षासंयमलक्षणैकत्वभावनासहितः स्वशुद्धात्मपदार्थ एक एवाविनश्वरहितकारी
परमोऽर्थः, न च सुवर्णाद्यर्थः । तथैव निर्विकल्पसमाधिसमुत्पन्ननिर्विकारपरमानन्दैक-
लक्षणानाकुलत्वस्वभावात्मसुखमेवैकं सुखं न चाकुलत्वोत्पादकेन्द्रियसुखमिति । कस्मादिदं
देहबन्धुजनसुवर्णाद्यर्थेन्द्रियसुखादिकं जीवस्य निश्चयेन निराकृतमिति चेत् ? यतो
मरणकाले जीव एक एव गत्यन्तरं गच्छति, न च देहादीनि । तथैव रोगव्याप्तिकाले

उन्होने तप ग्रहण किया और बहुत थोड़े समयमें मोक्ष प्राप्त किया । यह कथा
आचार-आराधनाके टिप्पणमे है ।—इस प्रकार 'ससार-अनुप्रेक्षा' पूर्ण हुई ॥३॥

अब एकत्व-अनुप्रेक्षा कहते हैं । वह इस प्रकार है.—निश्चयरत्नत्रय ही
जिसका एक लक्षण है ऐसी एकत्वभावनारूपसे परिणमित इस जीवको निश्चयनयसे—
(१) सहजानन्द सुखादि अनन्तगुणके आधारभूत केवलज्ञान ही एक सहज शरीर है,
शरीर अर्थात् क्या ? स्वरूप, सात धातुमय औदारिक शरीर नहीं, (२) उसी
प्रकार आर्त्त और रौद्ररूप दुर्ध्यानसे विलक्षण परमसामायिक जिसका लक्षण (स्व-
रूप) है ऐसी एकत्वभावनारूपसे परिणमित निजात्मतत्त्व ही एक सदा शाश्वत,
परम हितकारी, परमबन्धु है, विनश्वर और अहितकारी पुत्र, स्त्री आदि नहीं, (३)
उसी प्रकार परम-उपेक्षासंयम जिसका लक्षण है ऐसी एकत्वभावना सहित स्व-
शुद्धात्मपदार्थ एक ही अविनाशी और हितकारी परम अर्थ है, सुवर्ण आदि अर्थ
नहीं । (४) उसी प्रकार निर्विकल्प समाधिसे उत्पन्न निर्विकार परमानन्द जिसका
लक्षण है ऐसे अनाकुलपनेरूप स्वभावयुक्त आत्मसुख ही एक सुख है, आकुलताका
उत्पादक इन्द्रियसुख नहीं ।

शंकाः—यह (१) शरीर, (२) बन्धुजन, (३) सुवर्णादि अर्थ और (४)
इन्द्रियसुख आदि जीवके निश्चयसे नहीं है ऐसा कैसे कहा ?

समाधानः—क्योंकि मरणके समय जीव अकेला ही दूसरी गतिमें जाता है,

विषयकषायादिदुर्ध्यानरहितः स्वशुद्धात्मैकसहायो भवति । तदपि कथमिति चेत् ? यदि चरमदेहो भवति तर्हि केवलज्ञानादिव्यक्तिरूपं मोक्षं नयति, अचरमदेहस्य तु संसारस्थितिं स्तोकां कृत्वा देवेन्द्राद्यभ्युदयसुखं दत्त्वा च पश्चात् पारम्पर्येण मोक्षं प्रापयतीत्यर्थः । तथा चोक्तम्—“सर्गं तवेण सव्वो, वि पावए तहि वि ज्ञाणजोयेण । जो पावइ सो पावइ, परलोए सासयं सोक्खं । १ ।” एवमेकत्वभावनाफलं ज्ञात्वा निरन्तरं निजशुद्धात्मैकत्वभावना कर्तव्या । इत्येकत्वानुप्रेक्षा गता ॥ ४ ॥

अथान्यत्वानुप्रेक्षां कथयति । तथा हि—पूर्वोक्तानि यानि देहबन्धुजन-सुवर्णाद्यर्थेन्द्रियसुखादीनि कर्माधीनत्वे विनश्वराणि तथैव हेयभूतानि च, तानि सर्वाणि टङ्कोत्कीर्णज्ञायकैकस्वभावत्वेन नित्यात्सर्वप्रकारोपादेयभूतान्निर्विकारपरमचैतन्यचित्त्वमत्कारस्वभावान्निजपरमात्मपदार्थान्निश्चयनयेनान्यानि भिन्नानि । तेभ्यः पुनरात्माप्यन्यो

शरीर आदि जीवके साथ नहीं जाते हैं । तथा जीव जब रोगोसे घिर जाता है तब भी विषय-कषायादि दुर्ध्यानसे रहित निज शुद्धात्मा ही सहायक होता है ।

शंकाः—वह किस प्रकार सहायक होता है ?

उत्तरः—यदि जीवका यह अन्तिम शरीर हो तो वह केवलज्ञानादिकी प्रगटता-रूप मोक्षमे ले जाता है और यदि अन्तिम शरीर न हो तो वह संसारकी स्थिति घटाकर देवेन्द्रादि सबधी पुण्यका सुख देकर तत्पश्चात् परंपरासे मोक्षकी प्राप्ति कराता है । कहा है किः—‘तप करनेसे स्वर्गं सब कोई प्राप्त करते हैं परन्तु ध्यानके योगसे जो स्वर्ग प्राप्त करता है वह आगामी भवमे अक्षय सुख प्राप्त करता है ।’ इसप्रकार एकत्वभावनाका फल जानकर निरन्तर निज शुद्धात्माके एकत्वकी भावना करना । इसप्रकार ‘एकत्व-अनुप्रेक्षा’ पूर्ण हुई ॥४॥

अब अन्यत्व-अनुप्रेक्षा कहते हैं । वह इस प्रकार—पूर्वोक्त देह, बन्धुजन, सुवर्णादि अर्थ और इन्द्रियसुखादि कर्मोंके आधीन होनेसे, विनश्वर और हेय भी हैं । वे सब, टङ्कोत्कीर्ण ज्ञायक एकस्वभावपनेके कारण नित्य और सब प्रकारसे उपादेय-भूत निर्विकार परमचैतन्यरूप चित्त्वमत्कारस्वभावी निज परमात्मपदार्थसे निश्चयनयसे अन्य-भिन्न है, आत्मा भी उनसे अन्य-भिन्न है । यहा भाव (आशय) यह है

१—मोक्षपाहुड गाथा—२३

२—परपदार्थ आत्मासे अन्य है—भिन्न है और आश्रय करने योग्य नहीं है । परपदार्थोंमे निमित्त भी समाविष्ट है, उनकी सन्मुखतासे राग-द्वेष उत्पन्न होते हैं अतः वे हेय हैं अर्थात् आत्मसन्मुखता द्वारा उनकी सन्मुखता (उनका आश्रय) छोड़ने योग्य है । सर्व प्रकारसे उपादेयभूत निज परमात्मपदार्थका आश्रय होने पर परपदार्थका आश्रय छूट जाता है अर्थात् वे हेयरूप होजाते हैं ।

भिन्न इति । अयमत्र भावः—एकत्वानुप्रेक्षायामेकोऽहमित्यादिविधिरूपेण व्याख्यानं, अन्यत्वानुप्रेक्षायां तु देहादयो मत्सकाशादन्ये, मदीया न भवन्तीति निषेधरूपेण । इत्येकत्वान्यत्वानुप्रेक्षायां विधिनिषेधरूप एव विशेषस्तात्पर्यं तदेव । इत्यन्यत्वानुप्रेक्षा समाप्ता ॥ ५ ॥

अतः परं अशुचित्वानुप्रेक्षा कथ्यते । तद्यथा—सर्वाशुचिशुक्रशोणित-कारणोत्पन्नत्वात्तथैव “वसासृग्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणि धातवः” इत्युक्ताशुचि-सप्तधातुमयत्वेन तथा नासिकादिनवरन्ध्रद्वारैरपि स्वरूपेणाशुचित्वात्तथैव मूत्रपुरीषाद्य-शुचिमलानामुत्पत्तिस्थानत्वाच्चाशुचिरयं देहः । न केवलमशुचिकारणत्वेनाशुचिः स्वरूपेणा-शुच्युत्पादकत्वेन चाशुचिः, शुचि सुगन्धमाल्यवस्त्रादीनामशुचित्वोत्पादकत्वाच्चाशुचिः ।

कि—एकत्व-अनुप्रेक्षामे “मै एक हूँ” इत्यादि प्रकारसे विधिरूप व्याख्यान है और अन्यत्व-अनुप्रेक्षामें ‘देहादि पदार्थ मेरेसे भिन्न है, मेरे नहीं है’—इस प्रकार निषेध-रूपसे व्याख्यान है । इस रीतिसे एकत्व और अन्यत्व इन दोनों अनुप्रेक्षाओमें विधि और निषेधरूप ही अन्तर है, दोनोंका तात्पर्य एक ही है ।—इस प्रकार ‘अन्यत्व-अनुप्रेक्षा’^१ समाप्त हुई ॥ ५ ॥

इसके पश्चात् अशुचि-अनुप्रेक्षा कहते हैं । वह इस प्रकार है—सर्व प्रकारसे अशुचि (अपवित्र) वीर्य और रजसे उत्पन्न होनेके कारण, और “वसासृग्मांसमेदोऽ-स्थिमज्जाशुक्राणि धातवः । (वसा, रुधिर, मांस, मेद, हड्डी, मज्जा और शुक्र—ये धातुएँ हैं)” इसमें कथित अशुचि सात धातुमय होनेसे तथा नाक आदि नव छिद्र-द्वार होनेसे स्वरूपसे भी अशुचि होनेके कारण, तथा मूत्र, विष्टा आदि अशुचि मलोकी उत्पत्तिका स्थान होनेके कारण यह देह अशुचि है । मात्र वह अशुचिका कारण होनेसे ही अशुचि नहीं है परंतु स्वरूपसे अशुचिको उत्पन्न करनेवाला होनेसे वह अशुचि है, शुचि (पवित्र) ऐसे सुगन्धित माला, वस्त्र आदिमें अशुचिपना उत्पन्न करनेके कारण भी देह अशुचि है ।

१—आत्मा और परपदार्थ परस्पर भिन्न और अन्य होनेसे प्रत्येकके छोड़ो कारक परस्पर सर्वथा भिन्न हैं, उसका अर्थ यह हुआ कि—कोई परका कुछ नहीं कर सकता है । (देखिये, गाथा ८ की टीका पृष्ठ २७) अतः सर्व प्रकारसे उपादेयभूत निज त्रिकाल परमात्मपदार्थके सन्मुख होकर आत्मामें एकत्वरूपसे परिणमित होना वह एकत्वभावना है । उस शुद्ध परिणामनमें अन्य-भिन्न पदार्थों (जिनमें निमित्त भी समाविष्ट है)का निषेध-हेयपना हो जाता है, उस हेयपनेको अन्यत्वभावना कहते हैं ।

इदानीं शुचित्वं कथ्यते—सहजशुद्धकेवलज्ञानादिगुणानामाधारभूतत्वात्स्वयं निश्चयेन शुचिरूपत्वाच्च परमात्मैव शुचिः । “जीवो ब्रह्मा जीवहि चैव चरिया हविज्ज जो जदिणो । तं जाण ब्रह्मचेरं विमुक्कपरदेहभत्तीए । १ ।” इति गाथाकथितनिर्मल-ब्रह्मचर्यं तत्रैव निजपरमात्मनि स्थितानामेव लभ्यते । तथैव “ब्रह्मचारी सदा शुचिः” इतिवचनात्तथाविधब्रह्मचारिणामेव शुचित्वं न च कामक्रोधादिरतानां जलस्नानादि-शौचेऽपि । तथैव च—“जन्मना जायते शूद्रः क्रियया द्विज उच्यते । श्रुतेन श्रोत्रियो ज्ञेयो ब्रह्मचर्येण ब्राह्मणः । १ ।” इतिवचनात् एव निश्चयशुद्धाः ब्राह्मणाः । तथा चोक्तं नारायणेन युधिष्ठिरं प्रति विशुद्धात्मनदीस्नानमेव परमशुचित्वकारणं, न च लौकिकगङ्गादितीर्थेस्नानादिकम् । “आत्मा नदी संयमतोयपूर्णा सत्यावहा शीलतटा दयोर्मिः । तत्राभिषेकं कुरु पाण्डुपुत्र न वारिणा शुद्धयति चान्तरात्मा । १ ।” इत्यशुचित्वानुप्रेक्षा गता ॥६॥

अब अशुचित्वका (पवित्रताका) कथन किया जाता है.—सहज शुद्ध केवल-ज्ञानादि गुणोका आधारभूत होनेसे और स्वय ही निश्चयसे शुचिरूप होनेसे परमात्मा ही शुचि है । “जीवो ब्रह्मा जीवहि चैव चरिया हविज्ज जो जदिणो । तं जाण ब्रह्मचेरं विमुक्कपरदेहभत्तीए ॥” (जीव ब्रह्म है, जीवमे ही मुनिकी जो चर्या होती है उसे पर ऐसे देहकी सेवारहित ब्रह्मचर्य जानना ।) —इस गाथामे कथित निर्मल ब्रह्मचर्य, वह निज परमात्मामे स्थित जीवोको ही होता है । उसी प्रकार “ब्रह्मचारी सदा शुचिः (ब्रह्मचारी सदा शुचि है)” इस वचनसे उस प्रकारके ब्रह्मचारियोको ही शुचिपना है, काम-क्रोधादिमे रत रहनेवालोको जलस्नान आदिसे शुद्धि करने पर भी शुचि-पना नहीं है । इसी प्रकार कहा है कि “जन्मसे शूद्र होता है, क्रियासे द्विज कह-लाता है, श्रुत द्वारा श्रोत्रिय और ब्रह्मचर्य द्वारा ब्राह्मण जानना ॥१॥” इस वचन अनुसार वे ही निश्चयशुद्ध (वास्तविक शुद्ध) ब्राह्मण है । इस प्रकार नारायणने युधिष्ठिरसे कहा है कि विशुद्ध आत्मारूपी नदीमें स्नान करना वही परम शुचिताका कारण है, लौकिक गंगा आदि तीर्थोमे स्नानादि वह शुचिका कारण नहीं है : “आत्मा नदी संयमतोयपूर्णा सत्यावहा शीलतटा दयोर्मिः । तत्राभिषेकं कुरु पाण्डुपुत्र न वारिणा शुद्धयति चान्तरात्मा ॥ (सयमरूपी जलसे परिपूर्ण, सत्यरूपी प्रवाहवाली, शीलरूपी किनारोवाली और दयारूपी तरगोवाली जो आत्मनदी है, उसमे हे पाण्डुपुत्र ! स्नान करो; अतरात्मा जलसे शुद्ध नहीं होता है ।)” —इस प्रकार ‘अशुचित्व-अनुप्रेक्षा’ पूर्ण हुई ॥६॥

अत ऊर्ध्वमास्रवानुप्रेक्षा कथ्यते । समुद्रे सच्छिद्रपोतवदयं जीव इन्द्रियाद्यास्रवैः संसारसागरे पततीति वार्तिकम् । अतीन्द्रियस्वशुद्धात्मसंवित्तिविलक्षणानि स्पर्शनरसन-घ्राणचक्षुःश्रोत्राणीन्द्रियाणि भण्यन्ते । परमोपशममूर्तिपरमात्मस्वभावस्य क्षोभोत्पादकाः क्रोधमानमायालोभकषाया अभिधीयन्ते । रागादिविकल्पनिवृत्तिरूपायाः शुद्धात्मानुभूतेः प्रतिकूलानि हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहप्रवृत्तिरूपाणि पञ्चाव्रतानि । निष्क्रियनिर्विकारात्म-तत्त्वाद्विपरीता मनोवचनकायव्यापाररूपाः परमागमोक्ताः सम्यक्त्वक्रिया मिथ्यात्व-क्रियेत्यादिपञ्चविंशतिक्रियाः उच्यन्ते । इन्द्रियकषायाव्रतक्रियारूपास्रवाणां स्वरूपमेत-द्विज्ञेयम् । यथा समुद्रेऽनेकरत्नभाण्डपूर्णस्य सच्छिद्रपोतस्य जलप्रवेशे पातो भवति, न च वेलापचनं प्राप्नोति । तथा सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रलक्षणामूल्यरत्नभाण्डपूर्णजीव-पोतस्य पूर्वोक्तास्रवद्वारैः कर्मजलप्रवेशे सति संसारसमुद्रे पातो भवति, न च केवल-ज्ञानाव्याबाधसुखाद्यनन्तगुणरत्नपूर्णमुक्तिवेलापचनं प्राप्नोतीति । एवमास्रवगतदोषानु-

अब आगे 'आस्रव—अनुप्रेक्षा कहते हैं'—'समुद्रमे छिद्रयुक्त नावकी भांति यह जीव इन्द्रियादि आस्रवोसे संसाररूपी सागरमे पडता है' यह वार्तिक है । अतीन्द्रिय स्वशुद्धात्मसंवेदनसे विलक्षण स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण—ये पांच इन्द्रिया हैं । परम-उपशममूर्ति परमात्मस्वभावको क्षोभ उत्पन्न करनेवाले क्रोध, मान, माया और लोभ—ये चार कषाय कहलाते हैं । रागादि विकल्पोकी निवृत्तिरूप शुद्धा-त्मानुभूतिसे प्रतिकूल हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्मचर्य और परिग्रहमे प्रवृत्तिरूप पांच अव्रत हैं । निष्क्रिय निर्विकार आत्मतत्त्वसे विपरीत ऐसी, मन-वचन-कायाके व्यापाररूप, परमागममे कथित सम्यक्त्वक्रिया, मिथ्यात्वक्रिया आदि पच्चीस क्रियाये हैं । इस प्रकार इन्द्रिय, कषाय, अव्रत और क्रियारूप आस्रवोका स्वरूप जानना । जिस प्रकार समुद्रमे अनेक रत्नोंरूपी मालसे भरा हुआ, छिद्रयुक्त जहाज उसमे जल प्रवेश करने पर डूब जाता है, समुद्रके किनारे नगरमें नहीं पहुच सकता है, उसी प्रकार सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वरूप अमूल्य रत्नोरूपी मालसे भरा हुआ जीवरूपी जहाज, पूर्वोक्त आस्रवरूपी द्वारोमे कर्मरूपी जल प्रवेश करने पर संसाररूपी समुद्रमे डूब जाता है, केवलज्ञान, अव्याबाध सुख आदि अनन्त गुणरूप रत्नोसे पूर्ण ऐसे, मुक्तिरूपी समुद्र किनारेके नगरमे नहीं पहुच सकता है । इस प्रकार आस्रवगत

१—श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव रचित द्वादशानुप्रेक्षा गाथा ६० मे कहा है कि —आस्रवके जो भेद कहे गये हैं वे निश्चयनयसे जीवके नहीं हैं अतः आत्माको दोनो प्रकारके आस्रवोसे रहित ही निरन्तर चिंतन करना चाहिये ।

चिन्तनमास्रवानुप्रेक्षा ज्ञातव्येति ॥ ७ ॥

अथ संवरानुप्रेक्षा कथ्यते—यथा तदेव जलपात्रं छिद्रस्य झम्पने सति जलप्रवेशाभावे निर्विघ्नेन वेलापत्तनं प्राप्नोति; तथा जीवजलपात्रं निजशुद्धात्मसंवित्तिवलेन इन्द्रियाद्यास्रवच्छिद्राणां झम्पने सति कर्मजलप्रवेशाभावे निर्विघ्नेन केवलज्ञानाद्यनन्तगुणरत्नपूर्णमुक्तिवेलापत्तनं प्राप्नोतीति । एवं संवरगतगुणानुचिन्तनं संवरानुप्रेक्षा ज्ञातव्या ॥ ८ ॥

अथ निर्जरानुप्रेक्षा प्रतिपादयति । यथा कोप्यजीर्णदोषेण मलसञ्चये जाते सत्याहारं त्यक्त्वा किमपि हरीतक्यादिकं मलपाचकमग्निदीपकं चौषधं गृह्णाति । तेन च मलपाकेन मलानां पातने गलने निर्जरणे सति सुखी भवति । तथायं भव्य जीवोऽप्यजीर्णजनकाहारस्थानीयमिथ्यात्वरागाद्यज्ञानभावेन कर्ममलसञ्चये सति मिथ्यात्वरगादिकं त्यक्त्वा परमौषधस्थानीयं जीवितमरणलाभालाभसुखदुःखादिसमभावनाप्रतिपादकं कर्ममलपाचकं शुद्धध्यानाग्निदीपकं च जिनवचनौषधं सेवते । तेन च कर्मदोषोका चित्तन करना उसे आस्रव-अनुप्रेक्षा जानना ॥७॥

अब, सवर-अनुप्रेक्षा कहते हैं —जिस प्रकार वही जहाज छिद्र बंद हो जानेसे, उसमें पानीका प्रवेश न होनेके कारण निर्विघ्नरूपसे समुद्रकिनारेके नगरमें पहुँच जाता है उसी प्रकार जीवरूपी जहाज निजशुद्धात्माकी सवित्तिके बलसे इन्द्रियादि आस्रवोरूपी छिद्र बंद होने पर, उसमें कर्मरूपी जलका प्रवेश न होनेके कारण निर्विघ्नरूपसे केवलज्ञानादि अनन्त गुणरत्नोसे पूर्ण ऐसे, मुक्तिरूपी समुद्रकिनारेके नगरमें पहुँच जाता है । इस प्रकार सवरगत गुणोके चित्तवनरूप 'सवर-अनुप्रेक्षा जानना ॥ ८ ॥

अब, निर्जरा-अनुप्रेक्षाका प्रतिपादन करते हैं —जिस प्रकार किसी मनुष्यको अजीर्णदोषके कारण मलसञ्चय होनेसे, वह मनुष्य आहारका त्याग करके मलको पकानेवाली और जठराग्नि बढानेवाली ऐसी हरड आदि दवा लेता है और उससे मल पक जानेसे, गल जाने-खिर जाने पर, वह सुखी होता है; उसी प्रकार यह भव्य जीव भी अजीर्ण उत्पन्न करनेवाले आहारके समान मिथ्यात्व-रागादि अज्ञानभावसे कर्मरूपी मलका सञ्चय होनेपर, मिथ्यात्व-रागादि छोड़कर; परम औषधसमान ऐसी जो, जीवन-मरण, लाभ-अलाभ, सुख-दुःख आदिमें समभावका प्रतिपादन

१-सवर चतुर्थ गुणस्थानसे प्रारम्भ होता है और चौदहवे गुणस्थानके पहले समयमें सवर पूर्ण हो जाता है अतः चतुर्थ गुणस्थानकी भूमिका अनुसार निज शुद्धात्मसवित्तिका बल प्रत्येक समय होता है ऐसा समझना ।

मलानां गलने निर्जरणे सति सुखी भवति । किञ्च—यथा कोऽपि धीमानजीर्णकाले यद्दुखं जातं तदजीर्णे गतेऽपि न विस्मरति ततश्चाजीर्णजनकाहारं परिहरति तेन च सर्वदैव सुखी भवति । तथा विवेकिजनोऽपि 'आर्ता नरा धर्मपरा भवन्ति' इति वचनाद्दुःखोत्पत्तिकाले ये धर्मपरिणामा जायन्ते तान् दुःखे गतेऽपि न विस्मरति । ततश्च निजपरमात्मानुभूतिबलेन निर्जरार्थं दृष्टश्रुतानुभूतभोगाकांक्षादिविभावपरिणाम-परित्यागरूपैः संवेगवैराग्यपरिणामैर्वर्तत इति । संवेगवैराग्यलक्षणं कथ्यते—“धम्मे य धम्मफलं हिसंणे य हरिसो य हुंति संवेगो । संसारदेहभोगेषु विरत्तभावो य वैरग्गं । १ ।” इति निर्जरानुप्रेक्षागता ॥ ९ ॥

अथ लोकानुप्रेक्षां प्रतिपादयति । तद्यथा—अनंतानंताकाशबहुमध्यप्रदेशे घनो-
दधिघनवाततनुवाताभिधानवायुत्रयवेष्टितानादिनिधनाकृत्रिमनिश्चलासंख्यातप्रदेशो लोको-
ऽस्ति । तस्याकारः कथ्यते—अधोमुखाद्भ्रुरजस्योपरि पूर्णं भ्रुरजे स्थापिते यादृशाकारो

करनेवाली, कर्मरूपी मलको पचानेवाली, शुद्ध ध्यानरूपी अग्निको प्रज्वलित करने-
वाली जिनवचनरूपी औषधि, उसका सेवन करता है और उससे कर्मरूपी मल गल
जाने पर निर्जरित हो जाने पर वह सुखी होता है । विशेष—जिस प्रकार कोई
बुद्धिमान मनुष्य अजीर्णके समय स्वयंको जो दुःख हुआ था उसे अजीर्ण मिट जाने
पर भी नहीं भूल जाता है और अजीर्ण उत्पन्न करनेवाले आहारका त्याग करता है
और उससे वह सदा सुखी रहता है, उसी प्रकार विवेकी जीव भी 'आर्ता नरा
धर्मपरा भवन्ति । (दुःखी मनुष्य धर्ममें तत्पर होते हैं)' इस वचनके अनुसार दुःख
उत्पन्न होनेके समय जो धर्मका परिणाम उत्पन्न होता है उसे, दुःख चला जाने पर
भी भूलता नहीं है, और इसलिये निज परमात्माके अनुभवके बलसे निर्जराके लिये
दृष्ट-श्रुत-अनुभूत भोगाकांक्षारूप विभावपरिणामके परित्यागरूप संवेग-वैराग्य
परिणामोमें वर्तता है ।

संवेग और वैराग्यका लक्षण कहते हैं । “धम्मे य धम्मफलं हिसंणे य हरिसो
य हुंति संवेगो । संसारदेहभोगेषु विरत्तभावो य वैरग्गं ॥” (धर्ममें, धर्मके फलमें
और दर्शनमें जो हर्ष होता है वह संवेग है; संसार, देह तथा भोगोंमें जो विरक्त-
भाव है वह वैराग्य है ।)—इस प्रकार निर्जरा अनुप्रेक्षा पूर्ण हुई ॥६॥

अब, लोक-अनुप्रेक्षाका प्रतिपादन करते हैं । वह इस प्रकार है—अनंतानत
आकाशके बिलकुल मध्यप्रदेशमें घनोदधि, घनवात और तनुवात नामक तीन
वायुओंसे वेष्टित (लिपटा हुआ), अनादिनिधन, अकृत्रिम, निश्चल, असंख्यातप्रदेशी

भवति तादृशाकारः, परं किन्तु सुरजो वृत्तो लोकस्तु चतुष्कोण इति विशेषः । अथवा प्रसारितपादस्य कट्टितटन्यस्तहस्तस्य चोर्ध्वस्थितपुरुषस्य यादृशाकारो भवति तादृशः । इदानीं तस्यैवोत्सेधायामविस्ताराः कथ्यन्ते—चतुर्दशरज्जुप्रमाणोत्सेधस्तथैव दक्षिणोत्तरेण सर्वत्र सप्तस्रज्जुप्रमाणायासो भवति । पूर्वपश्चिमेन पुनरधोविभागे सप्तस्रज्जु-विस्तारः । ततश्चाधोभागात् क्रमहानिरूपेण हीयते यावन्मध्यलोक एकरज्जुप्रमाणविस्तारो भवति । ततो मध्यलोकादूर्ध्वं क्रमवृद्ध्या वर्द्धते यावद् ब्रह्मलोकान्ते रज्जुपञ्चकविस्तारो भवति । ततश्चोर्ध्वं पुनरपि हीयते यावल्लोकांते रज्जुप्रमाणविस्तारो भवति । तस्यैव लोकस्य मध्ये पुनरुद्वलस्य मध्याधोभागे छिद्रे कृते सति निक्षिप्तवंशनालिकेव चतुष्कोणा त्रसनाडी भवति । सा चैकरज्जुविष्कम्भा चतुर्दशरज्जुत्सेधा विज्ञेया । तस्यास्त्वधोभागे सप्तस्रज्जुऽधोलोकसंबन्धिन्यः । ऊर्ध्वभागे मध्यलोकोत्सेधसंबन्धि-लक्षयोजनप्रमाणमेरूत्सेधः सप्तस्रज्जु ऊर्ध्वलोकसम्बन्धिन्यः ।

अतः परमधोलोकः कथ्यते । अधोभागे मेरोराधारभूता रत्नप्रभाख्या

लोक है । उसका आकार कहते हैं —नीचा मुख करके रखे हुए आधे मृदग पर सम्पूर्ण मृदग रखने पर जैसा आकार होता है, वैसा लोकका आकार है ; परंतु मृदग गोलाकार होता है और लोक चौरस (चौकोर) है, इतना अंतर है । अथवा पैर चौड़े करके, कटि पर हाथ रखकर खड़े हुए पुरुषका जैसा आकार होता है वैसा लोकका आकार है । अब उसकी ही ऊर्चाई-लंबाई-विस्तारका कथन करते हैं । चौदह राजू ऊचा, उत्तर-दक्षिण सब ओर (तरफ) सात राजू चौड़ा है । पूर्व-पश्चिममें नीचेके भागमें सात राजू चौड़ा है, उस अधोभागसे चौड़ाई क्रम-क्रमसे घटते-घटते जहां मध्यलोक है वहां एक राजू चौड़ाई रहती है । इसके पश्चात् मध्यलोकसे ऊपर क्रम-क्रमसे बढ़ती है और ब्रह्मलोकके अंतमें पांच राजू चौड़ाई हो जाती है, इसके पश्चात् फिर घटती है और लोकके अंतमें एक राजूकी चौड़ाई रहती है । उसी लोकके मध्य-भागमें, ऊखलके मध्यभागसे नीचेकी ओर छिद्र करके एक बासकी नली रखी हो वैसा आकार होता है उसके समान एक चौकोर त्रसनाड़ी है । वह एक राजू लंबी-चौड़ी और चौदह राजू ऊची है । उसके नीचेके भागमें सात राजू अधोलोक संबंधी है । ऊर्ध्वभागमें मध्यलोककी ऊर्चाई संबंधी एक लाख योजन प्रमाण सुमेरु पर्वतकी ऊर्चाई सहित सात राजू ऊर्ध्व लोक संबंधी है ।

। इसके पश्चात् अधोलोकका कथन करते हैं:—अधोभागमें सुमेरु पर्वतको आधारभूत रत्नप्रभा नामक प्रथम पृथ्वी है । उस रत्नप्रभा पृथ्वीके नीचे-नीचे एक-

प्रथम पृथिवी । तस्या अधोऽधः प्रत्येकमेकैकरज्जुप्रमाणामाकाशं गत्वा यथाक्रमेण शर्करा-
वालुकापङ्कधूमतमोमहातमः संज्ञा पद् भूमयो भवन्ति । तस्मादधोभागे रज्जुप्रमाणं क्षेत्रं
भूमिरहितं निगोदादिपञ्चस्थावरभृतं च तिष्ठति । रत्नप्रभादिपृथिवीनां प्रत्येकं घनो-
दधिघनवाततनुवातत्रयमाधारभृतं भवतीति विज्ञेयम् । कस्यां पृथिव्यां कति नरकविलानि
सन्तीति प्रश्ने यथाक्रमेण कथयति—तासु त्रिंशत्पञ्चविंशतिपञ्चदशदशत्रिपञ्चोन्नैकनरकशत-
सहस्राणि पञ्च चैव यथाक्रमम् ८४००००० । अथ रत्नप्रभादिपृथिवीनां क्रमेण पिण्डस्य
प्रमाणं कथयति । पिण्डस्य कोऽर्थः ? मन्द्रत्वस्य बाहुल्यस्येति । अशीतिसहस्राधिकैक-
लक्षं तथैव द्वात्रिंशदष्टाविंशतिचतुर्विंशतिविंशतिषोडशाष्टसहस्रप्रमितानि योजनानि
ज्ञातव्यानि । तिर्यग्विस्तारस्तु चतुर्दिग्विभागे यद्यपि त्रसनाद्यपेक्षयैकरज्जुप्रमाणस्तथापि
त्रसरहितवहिर्भागे लोकान्तप्रमाणमिति तथा चोक्तं 'शुवामन्ते स्पृशन्तीनां लोकान्तं
सर्वदिक्षु च' । अत्र विस्तारेण तिर्यग्विस्तारपर्यन्तमन्द्रत्वेन मंदरावगाहयोजनसहस्रबाहुल्या
मध्यलोके या चित्रा पृथिवी तिष्ठति तस्या अधोभागे षोडशसहस्रबाहुल्यः खरभाग-
एक राज् प्रमाण आकाशमे क्रम पूर्वक शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पकप्रभा, धूमप्रभा,
तमप्रभा और महातमप्रभा नामक छह भूमिया है । उनके नीचे एक राज् प्रमाण
भूमिरहित क्षेत्रमे निगोदादि पाच स्थावर भरे है । रत्नप्रभा आदि प्रत्येक पृथ्वीको
घनोदधि, घनवात और तनुवात ये तीन वायु आधारभूत हे ऐसा जानना । किस
पृथ्वीमे कितने नरकके विल (उत्पन्न होनेके स्थान) है उन्हे क्रमपूर्वक कहते है ।
पहली भूमिमे तीस लाख, दूसरीमे पचीस लाख, तीसरीमे पन्द्रह लाख, चौथीमे दस
लाख, पाचवीमें तीन लाख, छठीमे निन्यानवे हजार नवसौ पचाणवे और सातवीमे
पाच; इस प्रकार सब मिलकर चौरासी लाख विल हैं ।

अब रत्नप्रभा आदि पृथ्वीका क्रमपूर्वक पिण्डप्रमाण कितना है इसे कहते है ।
पिण्ड अर्थात् क्या ? गहराई अथवा मोटाई । प्रथम पृथ्वीका एक लाख अस्सी हजार,
दूसरीका वत्तीस हजार, तीसरीका अठार्डस हजार, चौथीका चौबीस हजार, पाचवीका
वीस हजार, छठवीका सोलह हजार और सातवीका आठ हजार योजन पिण्ड
जानना । उन पृथ्वीयोका तिर्यक् विस्तार चारो दिशाओमे यद्यपि त्रसनाडीकी
अपेक्षासे एक राज् प्रमाण है तो भी त्रसरहित त्रसनाडीके बाहरके भागमे लोकके
अंत तक है । वही कहा है—“अतको स्पर्श करती हुई पृथ्वीयोका प्रमाण सब
दिशाओंमे लोकके अत तक है ।” अब यहा विस्तारमे तिर्यक् लोक पर्यत, गहराई
(मोटाई)मे मेरुपर्वतकी अवगाहनाके समान एक हजार योजन मोटी चित्रा नामक
पृथ्वी मध्यलोकमे है, उस पृथ्वीके नीचे सोलह हजार योजन चौड़ा खरभाग है ।

स्तिष्ठति । तस्मादप्यधश्चतुरशीतियोजनसहस्रबाहुल्यः पङ्कभागः तिष्ठति । ततोऽप्यधोभागे अशीतिसहस्रबाहुल्यो अब्बहुलभागस्तिष्ठतीत्येवं रत्नप्रभा पृथिवी त्रिभेदा ज्ञातव्या । तत्र खरभागेऽसुरकुलं विहाय नवप्रकारभवनवासिदेवानां तथैव राक्षसकुलं विहाय सप्तप्रकारव्यन्तरदेवानां आवासा ज्ञातव्या इति । पङ्कभागे पुनरसुराणां राक्षसानां चेति । अब्बहुलभागे नारकास्तिष्ठन्ति ।

तत्र बहुभूमिकाप्रासादवदधोऽधः सर्वपृथिवीषु स्वकीयस्वकीयबाहुल्यात् सकाशादध उपरि चैकैकयोजनसहस्रं विहाय मध्यभागे भूमिक्रमेण पटलानि भवन्ति त्रयोदशैकादशनवसप्तपञ्चत्येकसंख्यानि, तान्येव सर्वसमुदायेन पुनरेकोनपञ्चाशत्प्रमितानि पटलानि । पटलानि कोऽर्थः ? प्रस्तारा इन्द्रका अन्तर्भूमयः इति । तत्र रत्नप्रभार्या सीमन्तसंज्ञे प्रथमपटलविस्तारे नृलोकवत् यत्संख्येययोजनविस्तारवत् मध्यविलं तस्येन्द्रक-संज्ञा । तस्यैव चतुर्दिग्विभागे प्रतिदिशं पंक्तिरूपेणासंख्येययोजनविस्ताराण्येकोन-पञ्चाशद्बिलानि । तथैव विदिकूचतुष्टये प्रतिदिशं पंक्तिरूपेण यान्यष्टचत्वारिंशद्-बिलानि तान्यप्यसंख्यातयोजनविस्ताराणि । तेषामपि श्रेणीबद्धसंज्ञा । दिग्विदिगष्ट-

उस खरभागके नीचे चौरासी हजार योजन चौड़ा पङ्कभाग है, उससे भी नीचे अस्सी हजार योजन चौड़ा अब्बहुल भाग है । इस प्रकार रत्नप्रभा पृथ्वी तीन भेद-वाली जानना । उस खरभागमें असुरकुलके अतिरिक्त नौ प्रकारके भवनवासी देवोंके और राक्षसकुलके अतिरिक्त सात प्रकारके व्यतर देवोंके आवास जानना । पङ्कभागमें असुरकुमारोंके और राक्षसोंके निवास है । अब्बहुल भागमें नारकी है ।

वहा अनेक भूमिकावाले (मंजिलोंवाले) महलकी भाँति नीचे-नीचे सर्व पृथ्वियोंमें अपनी-अपनी मोटाई प्रमाण नीचे और ऊपर एक-एक हजार योजन छोड़कर मध्यभागमें भूमिके क्रमसे पटल होते हैं । भूमिके क्रमसे वे पटल पहली नरक पृथ्वीमें तेरह, दूसरीमें ग्यारह, तीसरीमें नौ, चौथीमें सात, पाँचवीमें पाँच, छठीमें तीन और सातवीमें एक, इस प्रकार कुल उनपञ्चास पटल हैं । 'पटल' अर्थात् क्या ? 'पटल'का अर्थ प्रस्तार, इन्द्रक अथवा अन्तर्भूमि है । वहा रत्नप्रभा नामक प्रथम पृथ्वीके सीमन्त नामक प्रथम पटलमें मनुष्यलोक जितने संख्यात योजन (पैंतालीस लाख योजन) विस्तारवाला मध्यबिल है उसका नाम इन्द्रक है । उसकी (इन्द्रककी) चारों दिशाओमें असंख्यात योजन विस्तारवाले पंक्तिरूपसे उनपञ्चास बिल हैं, उसी प्रकार चारों दिशाओमेंसे प्रत्येक दिशामें पंक्तिरूपसे अड़तालीस-अड़तालीस बिल हैं वे भी असंख्यात योजन विस्तार वाले हैं । उनकी 'श्रेणीबद्ध'

कान्तरेषु पंक्तिरहितत्वेन पुष्पप्रकरवत्कानिचित्संख्येययोजनविस्ताराणि कानिचिदसंख्येय-
योजनविस्ताराणि यानि तिष्ठन्ति तेषां प्रकीर्णकसंज्ञा । इतीन्द्रकश्रेणीबद्धप्रकीर्णकरूपेण
त्रिधा नरका भवन्ति । इत्यनेन क्रमेण प्रथमपटलव्याख्यानं विज्ञेयम् । तथैव
पूर्वोक्तैकोनपञ्चाशत्पटलेष्वयमेव व्याख्यानक्रमः किन्त्वष्टकश्रेणिष्वेकैकपटलं प्रत्येकैकं
हीयते यावत् सप्तमपृथिव्यां चतुर्दिग्भागेष्वेकं बिलं तिष्ठति ।

रत्नप्रभादिनारकदेहोत्सेधः कथ्यते । प्रथमपटले हस्तत्रयं ततः क्रमवृद्धि-
वशात्त्रयोदशपटले सप्तचापानि हस्तत्रयमङ्गुलषट्कं चेति । ततो द्वितीयपृथिव्या-
दिषु चरमेन्द्रकेषु द्विगुणद्विगुणे क्रियमाणे सप्तमपृथिव्यां चापशतपञ्चकं भवति ।
उपरितने नरके य उत्कृष्टोत्सेधः सोऽधस्तने नरके विशेषाधिको जघन्यो भवति,
तथैव पटलेषु च ज्ञातव्यः । आयुःप्रमाणं कथ्यते । प्रथमपृथिव्यां प्रथमे पटले जघन्येन
दशवर्षसहस्राणि तत आगमोक्तक्रमवृद्धिवशादन्तपटले सर्वोत्कर्षणैकसागरोपमम् । ततः

संज्ञा है । चार दिशा और चार विदिशाओके बीच पक्ति रहित बिखरे हुए फूलोकी
भाति-कुछ सख्यात योजन और कुछ असख्यात योजन विस्तारवाले जो बिल है
उनकी 'प्रकीर्णक' संज्ञा है । इस प्रकार इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णकरूप तीन
प्रकारके नरक है । इस प्रकार प्रथम पटलका व्याख्यान जानना । उसी प्रकार पूर्वोक्त
उनपञ्चास पटलोमे बिलोके व्याख्यानका ऐसा ही क्रम है परंतु प्रत्येक पटलमे आठो
दिशाओमे श्रेणीबद्ध बिलोमे एक-एक बिल घटता जाता है अतः सातवी पृथ्वीमे
चारो दिशाओमे एक-एक बिल है ।

रत्नप्रभा आदि पृथ्वियोके नारकियोके शरीरकी ऊंचाईका कथन किया जाता
है । प्रथम पटलमे तीन हाथकी ऊंचाई है, इसके पश्चात् क्रम-क्रमसे बढ़ते-बढ़ते
तेरहवे पटलमे सात धनुष, तीन हाथ और छह अगुलकी ऊंचाई है । इसके पश्चात्
द्वितीय पृथ्वी आदिके अंतिम इन्द्रक बिलोमे दुगना-दुगना करनेसे सातवी पृथ्वीमे
पाच सौ धनुष्यकी ऊंचाई होती है । ऊपरके नरकोमे जो उत्कृष्ट ऊंचाई है उससे
कुछ अधिक नीचेके नरकोमे जघन्य ऊंचाई है, उसी प्रकार पटलोमे भी जानना ।
नारकी जीवोके आयुष्यका प्रमाण कहते है । प्रथम पृथ्वीके प्रथम पटलमें जघन्य
दस हजार वर्षका आयुष्य है । तत्पश्चात् आगमकथित क्रमिक वृद्धि अनुसार अंतिम
पटलमे एक सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयुष्य है । तत्पश्चात् द्वितीय आदि पृथ्वियोमे
क्रमपूर्वक तीन सागर, सात सागर, दस सागर, सत्तर सागर, बाईस सागर और

परं द्वितीयपृथिव्यादिषु क्रमेण त्रिसप्तदशसप्तदशद्वाविंशतित्रयस्त्रिंशत्सागरोपममुत्कृष्ट-जीवितम् । यच्च प्रथमपृथिव्यामुत्कृष्टं तद्द्वितीयायां समयाधिकं जघन्यं, तथैव पटलेषु च । एवं सप्तमपृथिवीपर्यन्तं ज्ञातव्यम् । स्वशुद्धात्मसंविच्छिन्ननिश्चयरत्नत्रयविलक्षणैस्तीव्रमिथ्यात्वदर्शनज्ञानचारित्रैः परिणतानामसंज्ञिपञ्चेन्द्रियसरटपक्षिसर्पसिंहस्त्रीणां क्रमेण रत्नप्रभादिषु षट्पृथिवीषु गमनशक्तिरस्ति सप्तम्यां तु कर्मभूमिजमनुष्याणां मत्स्यानामेव । किञ्च—यदि कोऽपि निरन्तरं नरके गच्छति तदा पृथिवीक्रमेणाष्टसप्तषट्पञ्चचतुस्त्रिद्विसंख्यवारानेव । किन्तु सप्तमनरकादागताः पुनरप्येकवारं तत्रान्यत्र वा नरके गच्छन्तीति नियमः । नरकादागता जीवा बलदेववासुदेवप्रतिवासुदेवचक्रवर्तिसंज्ञाः शलाकापुरुषाः न भवन्ति । चतुर्थपञ्चमषष्ठसप्तमनरकेभ्यः समागताः क्रमेण तीर्थकरचरमदेहभावसंयतश्रावका न भवन्ति । तर्हि किं भवन्ति ? “णिरयादो णिस्सरिदो णरतिरिण् कम्मसण्णिपज्जेत्ते । गब्भभवे उप्पज्जदि सत्तमणिरयादु तिरिण्णव ॥१॥”

तेतीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयुष्य प्रमाण है । पहली पृथ्वीमें जो उत्कृष्ट आयुष्य है उससे एक समय अधिक दूसरीमें जघन्य आयुष्य है, उसी प्रकार पहले पटलमें जो उत्कृष्ट आयुष्य है उससे एक समय अधिक दूसरे पटलमें जघन्य आयुष्य है । इसी प्रकार सातवी पृथ्वी तक जानना । स्वशुद्धात्मके सवेदनरूप निश्चयरत्नत्रयसे विलक्षण तीव्र मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्ररूपसे परिणमित असंज्ञी पचेन्द्रिय, 'गोह आदि, पक्षी, सर्प, सिंह और स्त्रियोको क्रमपूर्वक रत्नप्रभा आदि छह पृथ्वियो तक जानेकी शक्ति है । सातवी पृथ्वीमें कर्मभूमिमें उत्पन्न हुए मनुष्य और मत्स्योको ही जानेकी शक्ति है । विशेष—जो कोई जीव लगातार नरकमें जाये तो प्रथम पृथ्वी में आठ बार, द्वितीयमें सात बार, तीसरीमें छह बार, चौथीमें पाच बार, पाचवीमें चार बार, छठीमें तीन बार और सातवीमें दो बार ही जा सकता है । परतु सातवे नरकमें से निकला हुआ जीव पुन एक बार उसी अथवा दूसरे किसी नरकमें जाता है ऐसा नियम है । नरकमेंसे निकला हुआ जीव बलदेव, वासुदेव, प्रतिवासुदेव और चक्रवर्ती नामक शलाका पुरुष नहीं होता है । चौथे नरकमेंसे निकला हुआ जीव तीर्थकर, पाचवेमेंसे निकला हुआ जीव चरम शरीरी, छठेमेंसे निकला हुआ जीव भावलिगी मुनि और सातवेमेंसे निकला हुआ जीव श्रावक नहीं होता है । तो क्या होता है ? “नरकमेंसे निकला हुआ जीव कर्मभूमिमें संज्ञी पर्याप्त तथा गर्भज मनुष्य अथवा तिर्यच होता है । सातवे नरकमेंसे निकला हुआ जीव तिर्यच ही होता है ।”

इदानीं नारकदुःखानि कथ्यन्ते । तद्यथा—विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावनिज-परमात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानभावनोत्पन्ननिर्विकारपरमानन्दैकलक्षणसुखामृतरसा-स्वादरहितैः पञ्चेन्द्रियविषयसुखास्वादलम्पटैर्मिथ्यादृष्टिजीवैर्यदुपार्जितं नरकायुर्नरकगत्या-दिपापकर्म तदुदयेन नरके समुत्पद्य पृथिवीचतुष्टये तीव्रोष्णदुःखं, पञ्चम्यां पुनरुपरितन-त्रिभागे तीव्रोष्णदुःखमधोभागे तीव्रशीतदुःखं, पृष्ठीसप्तम्योरतिशीतोत्पन्नदुःखमनु-भवन्ति । तथैव छेदनभेदनक्रकचविदारणयंत्रपीडनशूलारोहणादितीव्रदुःखं सहन्ते तथा-चोक्तं—“अच्छिणिप्रीलणमेत्तं गत्थि सुहं दुःखमेव अणुबद्धं । गिरये शेरयियाणं अहोणिसं पञ्चमाणणं ॥ १ ॥” प्रथमपृथिवीत्रयपर्यंतमसुरोदीरितं चेति । एवं ज्ञात्वा, नारकदुःखविनाशार्थं भेदाभेदरत्नत्रयभावना कर्तव्या । संक्षेपेणाधोलोकव्याख्यानं ज्ञातव्यम् ।

अतः परं तिर्यक्लोकः कथ्यते—जम्बूद्वीपादिशुभनामानो द्वीपः लवणो

अब नारकियोके दुःखका कथन करते हैं । वह इस प्रकार है—विशुद्ध ज्ञान-दर्शन जिसका स्वभाव है ऐसे निज परमात्मतत्त्वके सम्यक्श्रद्धान-ज्ञान-अनुष्ठानकी भावनासे उत्पन्न निर्विकार परमानन्द जिसका एक लक्षण है ऐसे सुखामृतके रसा-स्वादरहित और पाच इन्द्रियके विषय सुखके आस्वादमे लपट ऐसे मिथ्यादृष्टि जीवोके द्वारा उपार्जित नरक-आयु और नरक-गति आदि पापकर्मके उदयसे वे नरकमे उत्पन्न होकर चार पृथ्वियोमे तीव्र उष्णताका दुःख, पाचवी पृथ्वीके ऊपरके तीन चौथाई भागमे तीव्र उष्णताका दुःख और नीचेके एक चतुर्थांश भागमे तीव्र शीतका दुःख तथा छट्टी और सातवी पृथ्वीमें अत्यन्त शीतसे उत्पन्न दुःखका अनु-भव करते हैं, और छेदन, भेदन, करवत (तलवार)से विदारण, घानीमे पेलनेका, शूली पर चढाने आदिका तीव्र दुःख सहन करते हैं । कहा है कि.—“नरकमे नारकियोको रात और दिवस दुःखरूपी अग्निमे जलते हुए आंखके टिमकारे जितना भी सुख नहीं है, परन्तु सदा दुःख ही लगा रहता है ॥१॥” पहली तीन पृथ्वियो तक असुरकुमार देवोकी उदीरणा द्वारा उत्पन्न दुःख भी भोगते हैं—इस प्रकार जानकर नरकके दुःखका विनाश करनेके लिये भेदाभेद रत्नत्रयकी भावना करना । इस प्रकार सक्षेपमे अधोलोकका व्याख्यान जानना ।

इसके पश्चात् मध्यलोकका वर्णन करते हैं—गोल आकारवाले जम्बूद्वीप आदि

दादिशुभनामानः समुद्राश्च द्विगुणद्विगुणविस्तारेण पूर्वं पूर्वं परिवेष्ट्य वृत्ताकाराः स्वयम्भूरमणपर्यन्तास्तिर्यग्विस्तारेण विस्तीर्णास्तिष्ठन्ति यतस्तेन कारणेन तिर्यग् लोको भण्यते, मध्यलोकाश्च । तद्यथा—तेषु सार्द्धतृतीयोद्धारसागरोपमलोमच्छेदप्रमितेष्व-संख्यातद्वीपसमुद्रेषु मध्ये जम्बूद्वीपस्तिष्ठति । स च जम्बूवृक्षोपलक्षितो मध्यभागस्थित-मेरुपर्वतसहितो वृत्ताकारलक्षयोजनप्रमाणस्तद्द्विगुणविष्कम्भेण योजनलक्षद्वयप्रमाणेन वृत्ताकारेण बहिर्भागे लवणसमुद्रेण वेष्टितः । सोऽपि लवणसमुद्रस्तद्द्विगुणविस्तारेण योजनलक्षचतुष्टयप्रमाणेन वृत्ताकारेण बहिर्भागे धातकीखण्डद्वीपेन वेष्टितः । सोऽपि धातकीखण्डद्वीपस्तद्द्विगुणविस्तारेण योजनाष्टलक्षप्रमाणेन वृत्ताकारेण बहिर्भागे कालोदक-समुद्रेण वेष्टितः । सोऽपि कालोदकसमुद्रस्तद्द्विगुणविस्तारेण षोडशयोजनलक्षप्रमाणेन वृत्ताकारेण बहिर्भागे पुष्करद्वीपेन वेष्टितः । इत्यादिद्विगुणद्विगुणविष्कम्भः स्वयम्भूरमण-द्वीपस्वयम्भूरमणसमुद्रपर्यन्तो ज्ञातव्यः । यथा जम्बूद्वीपलवणसमुद्रविष्कम्भद्वयसमुद्रयाद्यो-

शुभ नामवाले द्वीप और लवणादि शुभ नामवाले समुद्र दुगने-दुगने विस्तारसे पहले-पहलेके द्वीपको समुद्र और समुद्रको द्वीप—इस क्रमसे घेरे हुए और स्वयम्भूरमण समुद्र तक तिर्यक् विस्तारमे फैले हुए है अतः उसे तिर्यक्लोक कहते हैं और मध्य-लोक भी कहते हैं । वह इस प्रकार—उन साढ़े तीन (३½) उद्धार सागरोपम लोम (बाल)के टुकड़ो जितने असंख्यात द्वीप और समुद्रोके मध्यमे जम्बूद्वीप है । वह जबूके वृक्षसे उपलक्षित (पहचानमे आता है) और मध्यभागमे स्थित मेरु पर्वत, सहित गोलाकार एक लाख योजनके विस्तारवाला है और वह दुगुने विस्तारवाले दो लाख योजन प्रमाण गोलाकार लवण समुद्र द्वारा बाहरके भागमे वेष्टित (घिरा हुआ) है । वह लवण समुद्र भी उससे दुगुने विस्तारवाले चार लाख योजन प्रमाण गोलाकार धातकीखड नामक द्वीपसे बाहरके भागमे घिरा हुआ है । वह धातकीखड द्वीप भी बाह्य भागमें अपनेसे दुगुने विस्तारवाले आठ लाख योजन-प्रमाण गोलाकार कालोदक समुद्रसे घिरा हुआ है । वह कालोदक समुद्र भी बाह्य भागमे अपनेसे दुगुने विस्तारवाले सोलह लाख योजन प्रमाण गोलाकार पुष्कर-द्वीपसे घिरा हुआ है । इस प्रकार दुगुना-दुगुना विस्तार स्वयम्भूरमण द्वीप और स्वयम्भूरमण समुद्र तक जानना । जिस प्रकार जबूद्वीप एक लाख योजन और लवण समुद्र दो लाख योजन चौड़ा है, इन दोनोंका जोड़ तीन लाख योजन है । उससे एक लाख योजन अधिक अर्थात् चार लाख योजन धातकीखड है । उसी प्रकार असंख्य द्वीप समुद्रोके विस्तारसे एक लाख योजन अधिक विस्तार स्वयम्भूरमण

जनलक्षत्रयप्रमितात्सकाशाद्वातकीखण्ड एकलक्ष्णेणाधिकस्तथैवासंख्येयद्वीपसमुद्रविष्कम्भेभ्यः स्वयम्भूरमणसमुद्रविष्कम्भ एकलक्ष्णेणाधिको ज्ञातव्यः । एवमुक्तलक्षणेष्वसंख्येयद्वीपसमुद्रेषु व्यन्तरदेवानां पर्वताद्युपरिगता आवासाः, अधोभूभागगतानि भवनानि तथैव द्वीपसमुद्रादिगतानि पुराणि च, परमागमोक्तभिन्नलक्षणानि । तथैव खरभागपङ्कभागस्थितप्रतरासंख्येयभागप्रमाणासंख्येयव्यन्तरदेवावासाः, तथैव द्वासप्ततिलक्षाधिककोटिसप्तप्रमितभवनवासिदेवसंबन्धिभवनानि अकृत्रिमजिनचैत्यालयसहितानि भवन्ति । एवमति-सक्षेपेण तिर्यग्लोको व्याख्यातः ।

अथ तिर्यग्लोकमध्यस्थितो मनुष्यलोको व्याख्यायते—तन्मध्यस्थितजम्बूद्वीपे सप्तक्षेत्राणि भण्यन्ते । दक्षिणदिग्विभागादारभ्य भरतहैमवतहरिविदेहरम्यकहैरण्यवतैरावतसंज्ञानि सप्तक्षेत्राणि भवन्ति । क्षेत्राणि कोऽर्थः ? वर्षा वंशा देशा जनपदा इत्यर्थः । तेषां क्षेत्राणां विभागकारकाः षट् कुलपर्वताः कथ्यन्ते—दक्षिणदिग्भागमादीकृत्य हिमवन्महाहिमवन्निषधनीलरुक्मिशिखरिसंज्ञा भरतादिसप्तक्षेत्राणामन्तरेषु पूर्वा-

समुद्रका जानना । ऐसे पूर्वोक्त लक्षणोवाले असख्य द्वीप-समुद्रोमे पर्वत आदिके ऊपर व्यन्तरदेवोंका आवास, नीचेकी पृथ्वीके भागमे भवन और द्वीप और समुद्र आदिमे पुर है । परमागममे कहे अनुसार उनके भिन्न-भिन्न लक्षण है । उसी प्रकार खर-भाग और पकभागमे स्थित प्रतरके असख्यातवे भाग प्रमाण असख्य व्यन्तरदेवोंके आवास है और सात करोड बहत्तर लाख भवनवासी देवोंके भवन अकृत्रिम जिन-चैत्यालय सहित है । इस प्रकार अत्यन्त सक्षेपमे मध्यलोकका व्याख्यान किया ।

अब, तिर्यग्लोकके बीचमे स्थित मनुष्यलोकका व्याख्यान करते है । उस मनुष्यलोकके बीचमे स्थित जम्बूद्वीपमे सात क्षेत्र कहे जाते है । दक्षिण दिशासे प्रारंभ करके भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत और ऐरावत नामक सात क्षेत्र है । क्षेत्रका क्या अर्थ है ? क्षेत्र शब्दका अर्थ वर्ष, वंश, देश अथवा जनपद है । उन क्षेत्रोंका विभाग करनेवाले छह कुलाचल है । दक्षिण दिशाकी ओरसे प्रारंभ करके उनके नाम हिमवत्, महा हिमवत्, निषध, नील, रुक्मि और शिखरि हैं । पूर्व-पश्चिम फैले हुए ये छह पर्वत भरतादि सात क्षेत्रोंके बीचमे (अन्तर भागमें) है । पर्वतका क्या अर्थ है ? पर्वतका अर्थ वर्षघर पर्वत अथवा सीमा पर्वत है । उन पर्वतों पर हृदोंका क्रमसे कथन करते है । पद्म, महापद्म, तिगिच्छ, केसरि, महा-पुंडरीक और पुंडरीक नामक अकृत्रिम छह हृद है । हृद अर्थात् क्या ? हृदका

परायताः षट् कुलपर्वताः भवन्ति । पर्वता इति कोऽर्थः ? वर्षधरपर्वताः सीमापर्वता इत्यर्थः । तेषां पर्वतानामुपरि क्रमेण हृदा कथ्यन्ते । पद्ममहापद्मतिगिञ्जकेसरिमहापुण्डरीक-पुण्डरीकसंज्ञा अकृत्रिमा षट् हृदा भवन्ति । हृदा इति कोऽर्थः ? सरोवराणीत्यर्थः । तेभ्यः पद्मादिषड्हृदेभ्यः सकाशादागमकथितक्रमेण निर्गता याश्चतुर्दशमहानद्यस्ताः कथ्यन्ते । तथाहि—हिमवत्पर्वतस्थपद्मनाममहाहृदादर्धक्रोशावगाहक्रोशाधिकषट् योजन^१ प्रमाणविस्तारपूर्वतोरणद्वारेण निर्गत्य तत्पर्वतस्यैवोपरि पूर्वदिग्विभागेन योजनशतपञ्चकम् गच्छति ततो गङ्गाकूटसमीपे दक्षिणेन व्यावृत्य भूमिस्थकुण्डे पतति तस्माद् दक्षिणद्वारेण निर्गत्य भरतक्षेत्रमध्यभागस्थितस्य दीर्घत्वेन पूर्वापरसमुद्रस्पर्शिनो विजयार्द्धस्य गुहाद्वारेण निर्गत्य, तत आर्यखण्डार्द्धभागे पूर्वेण व्यावृत्य प्रथमावगाहापेक्षया दशगुणेन गव्यूतिपञ्चकावगाहेन तथैव प्रथमविष्कम्भापेक्षया दशगुणेन योजनार्द्धसहितद्विषष्टियोजन-प्रमाणविस्तारेण च पूर्वसमुद्रे प्रविष्टा गङ्गा । तथा गङ्गावत्सिन्धुरपि तस्मादेव हिमवत्पर्वतस्थपद्महृदात्पर्वतस्यैवोपरि पश्चिमद्वारेण निर्गत्य पश्चाद्दक्षिणदिग्विभागेनागत्य विजयार्द्धगुहाद्वारेण निर्गत्यार्यखण्डार्द्धभागे पश्चिमेन व्यावृत्य पश्चिमसमुद्रे प्रविष्टेति ।

अर्थ सरोवर है । उन पद्मादि छह सरोवरोमेसे आगमकथित क्रम प्रमाणसे जो चौदह महा नदिया निकली है उनका कथन करते हैं । वह इस प्रकार—हिमवत् पर्वत पर स्थित पद्म नामक महाहृदके पूर्व तोरण द्वारसे आधा कोश गहरी और छह योजन एक कोश चौड़ी गंगा नदी निकलकर उसी पर्वतके ऊपर पूर्व दिशामे पाच सौ योजन तक जाती है, तत्पश्चात् वहासे गंगाकूटके समीप दक्षिणकी ओर मुड़कर भूमिमे स्थित कुंडमे पडती है । वहासे दक्षिण द्वारमेसे निकलकर भरतक्षेत्रके मध्यभागमे स्थित लंबाईमे पूर्व-पश्चिम समुद्रको स्पर्श करनेवाले विजयार्ध पर्वतकी गुफाके द्वारमेसे निकलकर आर्यखण्डके आधेभागमे पूर्वकी ओर मुड़कर प्रथम गहराईसे दशगुणी अर्थात् पाच कोश गहरी और प्रथम चौड़ाईसे दशगुणी अर्थात् साठे बासठ योजन चौड़ी गंगानदी पूर्व समुद्रमे प्रवेश करती है । इस गंगाकी भाति सिधुनदी भी उसी हिमवत् पर स्थित पद्महृदमेसे पर्वतके ऊपर ही पश्चिम द्वारमेसे निकलकर तत्पश्चात् दक्षिण दिशाकी ओर आकर विजयार्ध पर्वतकी गुफाके द्वारमेंसे निकलकर आर्यखण्डके आधे भागमे पश्चिमकी ओर मुड़कर पश्चिम समुद्रमे प्रवेश करती है । इस प्रकार दक्षिण दिशाकी ओर आई हुई गंगा और सिधु—दो नदियोसे

१—‘क्रोशाधिक षट् योजन’ इति पाठान्तर

एवं दक्षिणदिग्विभागसमागतगङ्गासिन्धुभ्यां पूर्वापरायतेन विजयार्द्धपर्वतेन च पट्टखण्डी-
कृतं भरतक्षेत्रम् ।

अथ महाहिमवत्पर्वतस्थमहापद्महृदादक्षिणदिग्विभागेन हैमवतक्षेत्रमध्ये समा-
गत्य तत्रस्थनाभिगिरिपर्वतं योजनार्द्धेनास्पृशन्ती तस्यैवार्धे प्रदक्षिणं कृत्वा रोहितपूर्व-
समुद्रम् गता । तथैव हिमवत्पर्वतस्थितपद्महृदादुत्तरेणागत्य तमेव नाभिगिरिं योजनार्द्धेना-
स्पृशन्ती तस्यैवार्द्धप्रदक्षिणं कृत्वा रोहितास्या पश्चिमसमुद्रं गता । इति रोहिद्रो-
हितास्यासंज्ञं नदीद्वन्द्वं हैमवतसंज्ञजघन्यभोगभूमिक्षेत्रे ज्ञातव्यम् । अथ निषधपर्वत-
स्थिततिगिच्छनामहृदादक्षिणेनागत्य नाभिगिरिपर्वतं योजनार्द्धेनास्पृशन्ती तस्यैवार्धप्रदक्षिणं
कृत्वा हरितपूर्वसमुद्रम् गता । तथैव महाहिमवत्पर्वतस्थमहापद्मनामहृदादुत्तरदिग्विभागेना-
गत्य तमेव नाभिगिरिं योजनार्द्धेनास्पृशन्ती तस्यैवार्धप्रदक्षिणं कृत्वा हरिकान्तानामनदी
पश्चिमसमुद्रम् गता । इति हरिद्वरिकांतासंज्ञं नदीद्वयं हरिसंज्ञमध्यमभोगभूमिक्षेत्रे
विज्ञेयम् । अथ नीलपर्वतस्थितकेसरिनामहृदादक्षिणेनागत्योत्तरकुरुसंज्ञोत्कृष्टभोगभूमि-

और पूर्व-पश्चिम विस्तरित विजयार्ध पर्वतसे भरतक्षेत्रके छह खड हुए ।

अब महाहिमवान पर्वत पर स्थित महापद्म सरोवरकी दक्षिण दिशामेसे हैम-
वत क्षेत्रके मध्यमेसे आकर वहा स्थित नाभिगिरि पर्वतसे आधे योजन दूर रहकर
उसी पर्वतकी आधी प्रदक्षिणा करके रोहित नामक नदी पूर्व समुद्रमे गई है । इसी
प्रकार हिमवत् पर्वत ऊपर स्थित पद्म सरोवरमेसे उत्तरकी ओर आकर उसी नाभि-
गिरि पर्वतसे आधे योजन दूर रहती हुई उसीकी आधी प्रदक्षिणा करके रोहितास्या
नामक नदी पश्चिम समुद्रमे गई है । इस प्रकार रोहित और रोहितास्या नामक दो
नदियां हैमवत नामक जघन्य भोगभूमिके क्षेत्रमें जानना । निषध पर्वत पर स्थित
तिगिच्छ नामक हृदमेसे दक्षिणकी ओर आकर नाभिगिरि पर्वतसे आधा योजन दूर
रहकर उसीकी आधी प्रदक्षिणा करके हरित नामक नदी पूर्व समुद्रमें गई है । उसी
प्रकार महा हिमवान पर्वत पर स्थित महापद्म नामक हृदमेसे उत्तर दिशाकी ओर
आकर उसी नाभिगिरिसे आधा योजन दूर रहकर उसीकी आधी प्रदक्षिणा करके
हरिकान्ता नामक नदी पश्चिम समुद्रमें गई है । इस प्रकार हरित और हरिकान्ता
नामक दो नदिया हरि नामक मध्यम भोगभूमि क्षेत्रमे जानना । नील पर्वतस्थित
केसरि नामक सरोवरमेसे दक्षिणकी ओर आकर उत्तरकुरु नामक उत्कृष्ट भोगभूमिके
क्षेत्रके मध्यमे जाकर मेरुके पास गजदत्त पर्वतको भेदकर, मेरुकी प्रदक्षिणासे आधा

क्षेत्रे मध्येन गत्वा मेरुसमीपे गजदन्तपर्वतं भित्वा च प्रदक्षिणेन योजनार्धेन मेरुं विहाय पूर्वभद्रशालवनस्य मध्येन पूर्वविदेहस्य च मध्येन शीतानामनदी पूर्वसमुद्रं गता । तथैव निषधपर्वतस्थिततिगिच्छहृदादुत्तरदिग्भिभागेनागत्य देवकुरुसंज्ञोत्तमभोगभूमिक्षेत्र-मध्येन गत्वा मेरुसमीपे गजदन्तपर्वतं भित्वा च प्रदक्षिणेन योजनार्धेन मेरुं विहाय पश्चिमभद्रशालवनस्य मध्येन पश्चिमविदेहस्य च मध्येन शीतोदा पश्चिमसमुद्रं गता । एवं शीताशीतोदासंज्ञं नदीद्वयं विदेहाभिधाने कर्मभूमिक्षेत्रे ज्ञातव्यम् । यत्पूर्वं गङ्गा-सिन्धुनदीद्वयस्य विस्तारावगाहप्रमाणं भणितं तदेव क्षेत्रे क्षेत्रे नदीयुगलं प्रति विदेहपर्यन्तं द्विगुणं द्विगुणं ज्ञातव्यम् । अथ गङ्गा चतुर्दशसहस्रपरिवारनदीसहिता, सिन्धुरपि तथा, तद्द्विगुणसंख्यानं रोहिद्रोहितास्याद्वयम्, ततोऽपि द्विगुणसंख्यानं हरिद्वरिकान्ताद्वयम्, तद्द्विगुणं शीताशीतोदाद्वयमिति । तथा षड्विंशत्यधिकयोजनशतपञ्चकमेकोनविंशति भागीकृतैकयोजनस्य भागषट्कं च यदक्षिणोत्तरेण कर्मभूमिसंज्ञभरतक्षेत्रस्य विष्कम्भ-प्रमाणं, तद्द्विगुणं हिमवत्पर्वते, तस्माद्द्विगुणं हैमवतक्षेत्रे, इत्यादि द्विगुणं द्विगुणं विदेहपर्यन्तं ज्ञातव्यम् । तथा पञ्चहृदो योजनसहस्रायामस्तद्विष्कम्भो दशयोजना-

योजन दूर रहकर पूर्व भद्रशाल वन और पूर्व विदेहके मध्यमे होकर शीता नामक नदी पूर्व समुद्रमें गई है । उसी प्रकार निषध पर्वत पर स्थित तिगिच्छ नामक सरो-वरमेंसे उत्तरकी ओर आकर देवकुरु नामक उत्तम भोगभूमि-क्षेत्रके मध्य होकर मेरुके समीप गजदन्त पर्वतको भेदकर और मेरुकी प्रदक्षिणासे आधा योजन दूर रह-कर, पश्चिम भद्रशाल वन और पश्चिम विदेहके मध्यमें होकर शीतोदा नामक नदी पश्चिम समुद्रमें गई है । उसी प्रकार शीता और शीतोदा नामक दो नदिया विदेह नामक कर्मभूमिके क्षेत्रमें जानना । पहले गंगा और सिन्धु इन दो नदियोंका जो विस्तार और अवगाहका प्रमाण कहा है उससे दुगुने-दुगुने विस्तार आदि प्रत्येक क्षेत्रमें दो-दो नदियोंके विदेह क्षेत्र पर्यन्त जानना । गंगा नदी चौदह हजार परिवार नदियों सहित है, सिन्धु भी इतनी ही नदियों सहित है, उससे दुगुनी संख्याके परि-वारवाली रोहित और रोहितास्या ये दो नदिया है, हरित् और हरिकान्ताका इनसे भी दुगुना विस्तार है, उनसे दुगुना विस्तार शीता और शीतोदाका है । दक्षिणसे उत्तर पांच सौ छब्बीस और एक योजनके उन्नीस भागोंमेंसे छह भाग सहित कर्म-भूमि भरत क्षेत्रका विस्तार है, उससे दुगुना हिमवत् पर्वतका, हिमवत् पर्वतसे दुगुना हैमवत क्षेत्रका, इसी प्रकार दुगुना-दुगुना विस्तार विदेह क्षेत्र पर्यन्त जानना ।

वगाहो योजनैकप्रमाणपद्मविष्कम्भस्तस्मान्महापद्मे द्विगुणस्तस्मादपि तिगिच्छे द्विगुण इति ।

अथ यथा भरते हिमवत्पर्वतान्निर्गतं गङ्गासिन्धुद्वयं, तथोत्तरे कर्मभूमि-संज्ञैरावतक्षेत्रे शिखरिपर्वतान्निर्गतं रक्तारक्तोदानदीद्वयम् । यथा च हैमवतसंज्ञे जघन्य-भोगभूमिक्षेत्रे महाहिमवद्धिमवन्नामपर्वतद्वयात्क्रमेण निर्गतं रोहितरोहितास्यानदीद्वयं, तथोत्तरे हैरण्यवतसंज्ञजघन्यभोगभूमिक्षेत्रे शिखरिरुक्मिसंज्ञपर्वतद्वयात्क्रमेण निर्गतं सुवर्णकूलारूप्यकूलानदीद्वयम् । तथैव यथा हरिसंज्ञमध्यमभोगभूमिक्षेत्रे निषधमहाहिम-वन्नामपर्वतद्वयात्क्रमेण निर्गतं हरिद्वरिकान्तानदीद्वयं, तथोत्तरे रम्यकसंज्ञमध्यम-भोगभूमिक्षेत्रे रुक्मिनीलनामपर्वतद्वयात्क्रमेण निर्गतं नारीनरकान्तानदीद्वयमिति विज्ञेयम् । सुषमसुषमादिषट्कालसंबन्धिपरमागमोक्तायुरुत्सेधादिसहिता दशसागरोपम-कोटिप्रमितावसर्पिणी तथोत्सर्पिणी च यथा भरते वर्त्तते तथैवैरावते च । अयन्तु

पद्म हृद एक हजार योजन लम्बा, उससे आधा चौड़ा और दश योजन गहरा है, उसमें एक योजनका कमल है, उससे दुगुना महापद्ममे और उससे दुगुना तिगिच्छ सरोवर मे है ।

जिसप्रकार भरतक्षेत्रमे हिमवान पर्वतमेसे गगा और सिन्धु—ये दो नदिया निकलती है, उसी प्रकार उत्तर दिशामे ऐरावत क्षेत्र नामक कर्मभूमिके शिखरि पर्वतमेसे रक्ता और रक्तोदा नामक दो नदिया निकलती है । जिस प्रकार हैमवत नामक जघन्य भोगभूमिके क्षेत्रमे महा हिमवत् और हिमवत् नामक दो पर्वतोंमेसे क्रमशः निकलती रोहित और रोहितास्या ये दो नदियां है, उसी प्रकार उत्तरमे हैरण्यवत् नामक जघन्य भोगभूमि क्षेत्रमे शिखरि और रुक्मि नामक पर्वतोंमेसे क्रमपूर्वक निकलती सुवर्ण-कूला और रूप्यकूला—ये दो नदिया है । जिस प्रकार हरि नामक मध्यम भोगभूमि क्षेत्रमे निषध और महा हिमवान नामक दो पर्वतोंमेसे क्रमशः निकलती हरित और हरिकाता नामक दो नदिया हैं, उसी प्रकार उत्तरमे रम्यक् नामक मध्यम भोगभूमिके क्षेत्रमे रुक्मि और नील नामक दो पर्वतोंमेसे क्रमपूर्वक निकलती नारी और नरकांता—दो नदियां जानना । सुषम सुषमादि छह काल सबधी परमागममें कहे अनुसार आयुष्य शरीरकी ऊचाई आदि सहित दस कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण अवसर्पिणी—उत्सर्पिणी काल जैसा भरतमें वर्त्तता है वैसा ही ऐरावत क्षेत्रमे वर्त्तता है । इतना विशेष है कि भरत और ऐरावतके म्लेच्छखडोंमे और विजयार्ध पर्वतमें चौथे कालके

विशेषः, भरतैरावतम्लेच्छखण्डेषु विजयार्धनगेषु च चतुर्थकालसमयाद्यन्ततुल्यकालोऽस्ति नापरः । किं बहुना, यथा खट्वाया एकभागे ज्ञाते द्वितीयभागस्तथैव ज्ञायते तथैव जम्बूद्वीपस्य क्षेत्रपर्वतनदीहृदादीनां यदेव दक्षिणविभागे व्याख्यानं तदुत्तरेऽपि विज्ञेयम् ।

अथ देहममत्वमूलभूतमिथ्यात्वरगादिविभावरहिते केवलज्ञानदर्शनसुखाद्य-
नन्तगुणसहिते च निजपरमात्मद्रव्ये यथा सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रभावनया कृत्वा विगत-
देहा देहरहिताः सन्तो मुनयः प्राचुर्येण यत्र मोक्षं गच्छन्ति स विदेहो भण्यते ।
तस्य जम्बूद्वीपस्य मध्यवर्तिनः किमपि विवरणं क्रियते । तद्यथा—नवनवतिसहस्र-
योजनोत्सेध एकसहस्रावगाह आदौ भूमितले दशयोजनसहस्रवृत्तविस्तार उपर्युपरि
पुनरेकादशांशहानिक्रमेण हीयमानत्वे सति मस्तके योजनसहस्रविस्तार आगमोक्ता-
कृत्रिमचैत्यालयदेववनदेवावासाद्यागमकथितानेकाश्चर्यसहितो विदेहक्षेत्रमध्ये महामेरुर्नाम
पर्वतोऽस्ति । स च गजो जातस्तस्मान्मेरुगजात्सकाशादुत्तरमुखे दन्तद्वयाकारेण यन्निर्गतं

आदि और अत जैसा काल वर्तता है, अन्य काल नहीं होता है । विशेष क्या कहना ? जिस प्रकार खाटका एक भाग जान लेने पर उसका दूसरा भाग वैसा ही होता है इस प्रकार जान लिया जाता है उसी प्रकार जम्बूद्वीपके क्षेत्र, पर्वत, नदी, सरोवर आदिका जो दक्षिण दिशा सबधी व्याख्यान है वही उत्तर दिशा सबधी भी जानना ।

अब शरीरके ममत्वके कारणरूप मिथ्यात्व और रागादि विभावोंसे रहित और केवलज्ञान, केवलदर्शन, सुखादि अनन्तगुण सहित निज परमात्मद्रव्यमें सम्यग्-
दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप भावना करके मुनि जहासे विगतदेह अर्थात् देहरहित होकर
प्रचुररूपसे (अधिक सख्यामे) मोक्ष प्राप्त करते हैं उसे विदेहक्षेत्र कहते हैं । उस
जम्बूद्वीपके मध्यमे स्थित विदेहक्षेत्रका कुछ वर्णन करते हैं । वह इस प्रकार है—
निन्यानवे हजार योजन ऊंचा, एक हजार योजन गहरा और प्रारभमे भूमितल
ऊपर दस हजार योजन गोल विस्तारवाला तथा ऊपर-ऊपर ग्यारहवे भागकी
हानिक्रमसे घटते-घटते शिखर ऊपर एक हजार योजनके विस्तारवाला आगम-
कथित अकृत्रिम चैत्यालय, देववन तथा देवोके आवास आदि शास्त्रमें कहे हुए अनेक
आश्चर्य सहित महामेरु नामक पर्वत विदेहके मध्यमे है । वह मानो हाथी हो इस
प्रकार उस मेरुपर्वतरूपी हाथीमेसे उत्तर दिशामें दो दांतके आकारवाले दो पर्वत
निकले हैं, उनका नाम 'दो-गजदंत' है, वे उत्तर भागमे जो नीलपर्वत है उसमे

पर्वतद्वयं तस्य गजदन्तद्वयमन्वेति. तथोत्तरे भागे नीलपर्वते लग्नं तिष्ठति । तयोर्मध्ये यत्र त्रिकोणाकारत्वेन मुत्तमभोगभूमिरूपं तस्योत्तरकुलमंशाः । तस्य च मध्ये मेगोरीशान-
दिग्दिग्भागे शीताननीलपर्वतयोर्मध्ये परमागमवर्णितानाथकृत्रिमपार्थिवो जम्बूद्वीपस्तिष्ठति ।
तस्या एव शीताननीलपर्वतयोर्मध्ये यमरुगिरिमंजं पर्वतद्वयं विशेषम् । तस्मान्पर्वतद्वया-
दक्षिणभागे किञ्चन भूध्वानं सन्ना शीताननीलपर्वतयोर्मध्ये अन्तरान्तरेण पत्रादिहृदपञ्चकमस्ति ।
तेषां हृदानामृत्तपपादयोः प्रत्येकं सुवर्णरत्नमयजिनगृहमण्डिता लोकानुयोगव्याख्यानै-
दग दम सुवर्णपर्वता भवन्ति । तत्रैव निश्चयव्यवहाररत्नत्रयाराधकोत्तमपात्रपरमभक्ति-
दत्ताहारदानफलैर्नोत्पन्नतां तिर्यग्मनुष्याणां स्वशुद्धान्भावनोत्पन्ननिर्विकारमदानन्दैक-
लक्षणसुखानुत्पन्नानाम्पादविलक्षणस्य चक्रवर्तिभोगसुखादस्यधिकस्य विविधपञ्चेन्द्रियभोग-
सुखस्य प्रदायका ज्योतिरगृहप्रदीपनृत्यभोजनवस्त्रमाल्यसज्जनभूषणसंगमदोत्पादकरसांग-
मजा दसप्रकारकल्पवृक्षाः भोगभूमित्वेन व्याप्य तिष्ठन्तीत्यादिपरमागमोक्तप्रकारेणा-
नेकाध्यायि ज्ञानव्याप्ति । तस्मादेव मेरुगजादक्षिणदिग्दिग्भागेन गजदन्तद्वयमध्ये

जुडे हण हे । उम दो-गजदन्त पर्वतके मध्य जो त्रिकोणाकार उत्तम भोगभूमिरूप
क्षेत्र हे उसका नाम 'उत्तरकुल' हे । उसके मध्यमे मेरु पर्वत जो ईशान दिशामे शीता
नदी और नील पर्वत के बीचमे परभागभमे वर्णित अनादि-अकृत्रिम, पृथ्वीकायिक
जम्बूद्वीप हे । उसी शीताननीलपर्वतके दोनो किनाराके ऊपर यमरुगिरि नामक दो पर्वत
जानता । उन दो पर्वतोंमे दक्षिण दिशामे थोड़ी दूर जाने पर शीता नदीके मध्य
थोड़े-थोड़े अंतरमे पत्र आदि पाच हृद हे । उन हृदोंके दोनो पाश्वर्कमे लोकानु-
योगके व्याख्यान अनुहार, सुवर्ण और रत्नमय जिन चैत्यालयोंमे शोभित दस-दम
सुवर्ण पर्वत ह । उसी प्रकार निश्चय-व्यवहार रत्नत्रयके आराधक उत्तम पात्रोंको
परम भक्तिमे दिये हण आहारदानके फलमे उत्पन्न तिर्यच और मनुष्योंको चक्रवर्तीके
भोगसुखमे भी अधिक ऐसा, विविध प्रकारका पञ्चेन्द्रियसवधी भोगोंका सुख—कि
जां (भागसुख) स्वशुद्धात्माकी भावनासे उत्पन्न, निर्विकार, सदा आनन्द जिसका
एक लक्षण हे ऐसे सुखामृतके रसास्वादसे विलक्षण हे ऐसा भोगसुख—देनेवाले
ज्योतिरग, गृहाग, दीपाग, तूरीग, भोजनाग, वस्त्राग, माल्याग, भाजनाग, भूषणाग
और राग तथा मद उत्पन्न करनेवाले रसाग नामक दस प्रकारके कल्पवृक्ष भोग-
भूमिके क्षेत्रमे स्थित हे । इत्यादि परमागम कथित प्रकारसे अनेक आश्चर्य जानता ।
उसी मेरुगजमेसे दक्षिण दिशामे जो 'दो-गजदन्त' है उसके बीचमे देवकुरु नामक

देवकुरुसंज्ञमुत्तमभोगभूमिक्षेत्रमुत्तरकुरुवद्विज्ञेयम् ।

तस्मादेव मेरुपर्वतात्पूर्वस्यां दिशि पूर्वापरेण द्वाविंशतिसहस्रयोजनविष्कम्भं सवेदिकं भद्रशालवनमस्ति । तस्मात्पूर्वदिग्भागे कर्मभूमिसंज्ञः पूर्वविदेहोऽस्ति । तत्र नीलकुलपर्वतादक्षिणभागे शीतानद्या उत्तरभागे मेरोः प्रदक्षिणेन यानि क्षेत्राणि तिष्ठन्ति तेषां विभागः कथ्यते । तथाहि—मेरोः पूर्वदिशाभागे या पूर्वभद्रशालवनवेदिका तिष्ठति तस्याः पूर्वदिग्भागे प्रथमं क्षेत्रं भवति, तदनन्तरं दक्षिणोत्तरायतो वक्षारनामा पर्वतो भवति, तदनन्तरं क्षेत्रं तिष्ठति, ततोऽप्यनन्तरं विभङ्गा नदी भवति, ततोऽपि क्षेत्रं, तस्मादपि वक्षारपर्वतस्तिष्ठति, ततश्च क्षेत्रं, ततोऽपि विभङ्गा नदी, तदनन्तरं क्षेत्रं, ततः परं वक्षारपर्वतोऽस्ति, तदनन्तरं क्षेत्रं, ततो विभङ्गा नदी, ततश्च क्षेत्रं, ततो वक्षारपर्वतस्ततः क्षेत्रं, तदनन्तरं पूर्वसमुद्रसमीपे यदेवारण्यं तस्य वेदिका चेति नव-भित्तिभिरष्टक्षेत्राणि ज्ञातव्यानि । तेषां क्रमेण नामानि कथ्यन्ते—कच्छा १, सुकच्छा २, महाकच्छा ३, कच्छावती ४, आवर्त्ता ५, लाङ्गलावर्त्ता ६, पुष्कला ७, पुष्कलावती ८ चेति । इदानीं क्षेत्रमध्यस्थितनगरीणां नामानि कथ्यन्ते—क्षेमा १, क्षेमपुरी २, रिष्टा ३, रिष्टपुरी ४, खड्गा ५, मञ्जूषा ६, औषधी ७, पुण्डरीकिणी ८ चेति ।

उत्तम भोगभूमिका क्षेत्र उत्तरकुरुकी भाति जानना ।

उसी मेरु पर्वतकी पूर्व दिशामे पूर्व-पश्चिम बाईस हजार योजनके विस्तार-वाला वेदीसहित भद्रशाल वन है । उससे पूर्व दिशामे कर्म-भूमि नामक पूर्व विदेह है । वहा नील नामक कुलाचलकी दक्षिण दिशामे और शीता नदीके उत्तरमें मेरुकी प्रदक्षिणामे जो क्षेत्र है उनके विभागोंका कथन किया जाता है । वह इस प्रकार है—मेरुकी पूर्व दिशामें जो पूर्व भद्रशाल वनकी वेदिका है उसकी पूर्व दिशामें प्रथम क्षेत्र है, तत्पश्चात् दक्षिण-उत्तर लंबा वक्षार नामक पर्वत है, तत्पश्चात् क्षेत्र है, तत्पश्चात् विभगा नदी है, उससे आगे क्षेत्र है, उससे आगे वक्षार पर्वत है, तत्पश्चात् क्षेत्र है, तत्पश्चात् भी विभंगा नदी है, तत्पश्चात् क्षेत्र है, तत्पश्चात् वक्षार पर्वत है, तत्पश्चात् क्षेत्र है, फिर विभगा नदी है, फिर क्षेत्र है, फिर वक्षार पर्वत है, फिर क्षेत्र है, तत्पश्चात् पूर्व समुद्रके समीप देवारण्य नामक वनकी वेदिका है, इस प्रकार नौ भित्तियोंके द्वारा आठ क्षेत्र जानना । उनके क्रमपूर्वक नाम कहे जाते हैं—कच्छा, सुकच्छा, महाकच्छा, कच्छावती, आवर्त्ता, लागलावर्त्ता, पुष्कला, पुष्कलावती ।

अब क्षेत्रोंके मध्यमें जो नगरियां हैं उनके नाम कहते हैं : क्षेमा, क्षेमपुरी, रिष्टा, रिष्टपुरी, खड्गा, मञ्जूषा, औषधी और पुण्डरीकिणी ।

अत ऊर्ध्वं शीताया दक्षिणविभागे निषधपर्वतादुत्तरविभागे यान्यष्टक्षेत्राणि नानि कथ्यन्ते । तद्यथा—पूर्वोक्ता या देवारण्यवेदिका तस्याः पश्चिमभागे क्षेत्रमस्ति, तदनन्तरं वक्षारपर्वतस्ततः परं क्षेत्रं, ततो विभङ्गा नदी, ततश्च क्षेत्रं, तस्माद्वक्षार-पर्वतस्ततश्च क्षेत्रं, ततो विभङ्गा नदी, ततः क्षेत्रं, ततो वक्षारपर्वतः, ततः क्षेत्रं, ततो विभङ्गा नदी, तदनन्तरं क्षेत्रं, ततो वक्षारपर्वतस्ततः क्षेत्रं, ततो मेरुदिग्भागे पूर्वभद्र-शालवनवेदिका भवतीति नवभित्तिमध्येऽष्टौ क्षेत्राणि ज्ञातव्यानि । इदानीं तेषां क्रमेण नामानि कथ्यन्ते—वच्छा १, सुवच्छा २, महावच्छा ३, वच्छावती ४, रम्या ५, रम्यका ६, रमणीया ७, मङ्गलावती ८ चेति । इदानीं तन्मध्यस्थितनगरीणां नामानि कथ्यन्ते—सुसीमा १, कुण्डला २, अपराजिता ३, प्रभाकरी ४, अङ्गा ५, पद्मा ६, शुभा ७, रत्नसंचया ८ चेति, इति पूर्वविदेहक्षेत्रविभागव्याख्यानं समाप्तम् ।

अथ मेरोः पश्चिमदिग्भागे पूर्वापरद्वाविंशतिसहस्रयोजनविष्कम्भो पश्चिमभद्र-शालवनानन्तरं पश्चिमविदेहस्तिष्ठति । तत्र निषधपर्वतादुत्तरविभागे शीतोदानद्या-

इसके पश्चात् शीता नदीकी दक्षिण दिशामे निषध पर्वतके उत्तरमे जो आठ क्षेत्र है उनका कथन करते हैं । वह इस प्रकार—पूर्वोक्त जो देवारण्यकी वेदिका है उसके पश्चिममें क्षेत्र है, तत्पश्चात् वक्षार पर्वत है, तत्पश्चात् क्षेत्र है, तत्पश्चात् विभंगा नदी है, तत्पश्चात् क्षेत्र है, तत्पश्चात् वक्षार पर्वत है, तत्पश्चात् क्षेत्र है, तत्पश्चात् विभंगा नदी है, तत्पश्चात् क्षेत्र है, तत्पश्चात् वक्षार पर्वत है, तत्पश्चात् क्षेत्र है, तत्पश्चात् विभंगा नदी है, तत्पश्चात् क्षेत्र है, तत्पश्चात् वक्षार पर्वत है, तत्पश्चात् क्षेत्र है, तत्पश्चात् मेरुकी पूर्व दिशाके पूर्वभद्रशाल वनकी वेदी है । इस प्रकार नौ भित्तियोंके मध्य आठ क्षेत्र जानना ।

अब उनके नाम क्रमपूर्वक कहते हैं—वच्छा, सुवच्छा, महावच्छा, वच्छावती, रम्या, रम्यका, रमणीया और मंगलावती ।

अब उनके मध्यमें स्थित नगरियोंके नाम कहते हैं:—सुसीमा, कुंडला, अपराजिता, प्रभाकरी, अका, पद्मा, शुभा और रत्नसंचया । इस प्रकार पूर्वविदेहक्षेत्रके विभागोका व्याख्यान समाप्त हुआ ।

अब मेरु पर्वतकी पश्चिम दिशामे पूर्व-पश्चिम बाईस हजार योजन लंबे पश्चिम भद्रशाल वनके पश्चात् पश्चिम विदेहक्षेत्र है, वहां निषध पर्वतके उत्तरमे और शीतोदा नदीके दक्षिणमे जो क्षेत्र है उनके विभाग कहते हैं—मेरु पर्वतकी पश्चिम दिशामें

दक्षिणभागे यानि क्षेत्राणि तेषां विभाग उच्यते । तथाहि—मेरुदिग्भागे या पश्चिम-भद्रशालवनवेदिका तिष्ठति तस्याः पश्चिमभागे क्षेत्रं भवति, ततो दक्षिणोत्तरायतो वक्षारपर्वतस्तिष्ठति, तदनन्तरं क्षेत्रं, ततो विभङ्गा नदी, ततश्च क्षेत्रं, ततो वक्षारपर्वत-स्ततः परं क्षेत्रं, ततो विभङ्गा नदी, ततः क्षेत्रं, ततो वक्षारपर्वतस्ततः क्षेत्रं, ततः विभङ्गा नदी, ततः क्षेत्रं, ततः वक्षारपर्वतस्ततः क्षेत्रं, तदनन्तरं पश्चिमसमुद्रे समीपे यद्भूतारण्यवनं तिष्ठति तस्य वेदिका चेति नवभित्तिषु मध्येऽष्टौ क्षेत्राणि भवन्ति । तेषां नामानि कथयन्ते—पद्मा १, सुपद्मा २, महापद्मा ३, पद्मकावती ४, शंखा ५, नलिना ६, कुमुदा ७, सलिला ८ चेति । तन्मध्यस्थितनगरीणां नामानि कथयन्ति—अश्वपुरी १, सिंहपुरी २, महापुरी ३, विजयापुरी ४, अरजापुरी ५, विरजापुरी ६, अशोकापुरी ७, विशोकापुरी ८ चेति ।

अत ऊर्ध्वं शीतोदया उत्तरभागे नीलकुलपर्वतादक्षिणे भागे यानि क्षेत्राणि तिष्ठन्ति तेषां विभागभेदं कथयति । पूर्वभणिता या भूतारण्यवनवेदिका तस्याः पूर्व-भागे क्षेत्रं भवति । तदनन्तरं वक्षारपर्वतस्तदनन्तरं क्षेत्रं, ततो विभङ्गा नदी, ततः क्षेत्रं, ततो वक्षारपर्वतः, ततश्च क्षेत्रं, ततश्च विभङ्गा नदी, ततोऽपि क्षेत्रं, ततो वक्षार-

जो पश्चिम भद्रशाल वनकी वेदिका है उसके पश्चिममें क्षेत्र है, तत्पश्चात् दक्षिणसे उत्तर लबा वक्षार पर्वत है, तत्पश्चात् क्षेत्र है, तत्पश्चात् विभगा नदी है, तत्पश्चात् क्षेत्र है, तत्पश्चात् वक्षार पर्वत है, तत्पश्चात् क्षेत्र है, तत्पश्चात् विभगा नदी है, तत्पश्चात् क्षेत्र है, तत्पश्चात् वक्षार पर्वत है, तत्पश्चात् क्षेत्र है, तत्पश्चात् विभगा नदी है, तत्पश्चात् क्षेत्र है, तत्पश्चात् वक्षार पर्वत है, तत्पश्चात् क्षेत्र है, तत्पश्चात् पश्चिम समुद्रके समीप जो भूतारण्य नामक वन है उसकी वेदिका है । इस प्रकार नौ भित्तियोंके मध्य आठ क्षेत्र है । उनके नाम कहते हैं—पद्मा, सुपद्मा, महापद्मा, पद्मकावती, शंखा, नलिना, कुमुदा, सलिला । उनके मध्य स्थित नगरियोंके नाम कहते हैं—अश्वपुरी, सिंह-पुरी, महापुरी, विजयापुरी, अरजापुरी, विरजापुरी, अशोकापुरी और विशोकापुरी ।

अब शीतोदाके उत्तरमें और नीलकुलाचलके दक्षिणमें जो क्षेत्र है उनके विभाग भेदका कथन करते हैं । पूर्व कथित जो भूतारण्य वन-वेदिका है उसके पूर्वमें क्षेत्र है, तत्पश्चात् वक्षार पर्वत है, तत्पश्चात् क्षेत्र है, तत्पश्चात् विभगा नदी है, तत्पश्चात् क्षेत्र है, तत्पश्चात् वक्षार पर्वत है, तत्पश्चात् क्षेत्र है, तत्पश्चात् विभगा नदी है, तत्पश्चात् क्षेत्र है, तत्पश्चात् वक्षार पर्वत है, तत्पश्चात् क्षेत्र है, तत्पश्चात्

पर्वतस्ततः क्षेत्रं, ततो विभंगा नदी, ततः क्षेत्रं, ततश्च वक्षारपर्वतस्ततः क्षेत्रं, ततो मेरुदिशाभागे पश्चिमभद्रशालवनवेदिका चेति नवभित्तिषु मध्येऽष्टौ क्षेत्राणि भवन्ति । तेषां क्रमेण नामानि कथ्यन्ते—वप्रा १, सुवप्रा २, महावप्रा ३, वप्रकावती ४, गन्धा ५, सुगन्धा ६, गन्धिला ७, गन्धमालिनी ८ चेति । तन्मध्यस्थितनगरीणां नामानि कथ्यन्ते—विजया १, वैजयंती २, जयंती ३, अपराजिता ४, चक्रपुरी ५, खड्गपुरी ६, अयोध्या ७, अवध्या ८ चेति ।

अथ यथा—भरतक्षेत्रे गङ्गासिन्धुनदीद्वयेन विजयार्धपर्वतेन च म्लेच्छखण्डपञ्च-
कार्यखण्डं चेति षट् खण्डानि जातानि । तथैव तेषु द्वात्रिंशत्क्षेत्रेषु गङ्गासिन्धुसमान-
नदीद्वयेन विजयार्धपर्वतेन च प्रत्येकं षट् खण्डानि ज्ञातव्यानि । अयं तु विशेषः ।
एतेषु क्षेत्रेषु सर्वदैव चतुर्थकालादिसमानकालः । उत्कर्षेणं पूर्वकोटिजीवितं, पञ्चशत-
चापोत्सेधश्चेति विज्ञेयम् । पूर्वप्रमाणं कथ्यते । “पुव्वस्स हु परिमाणं सदरिं खलु
सदसहस्सकोडीओ । छप्पणं च सहस्सा बोधव्या वासगणनाओ ॥ १ ॥” इति
संक्षेपेण जम्बूद्वीपव्याख्यानं समाप्तम् ।

विभगा नदी है, तत्पश्चात् क्षेत्र है, तत्पश्चात् वक्षार पर्वत है, तत्पश्चात् क्षेत्र है, तत्पश्चात् मेरु पर्वतकी पश्चिम दिशामे पश्चिम भद्रशाल वनकी वेदिका है । इस प्रकार नौ भित्तियोंके मध्य आठ क्षेत्र है । उनके क्रमसे नाम कहते हैं—वप्रा, सुवप्रा, महावप्रा, वप्रकावती, गन्धा, सुगन्धा, गन्धिला, गन्धमालिनी । उनके मध्यमे स्थित नगरियोंके नाम कहते हैं—विजया, वैजयन्ती, जयन्ती, अपराजिता, चक्रपुरी, खड्गपुरी, अयोध्या और अवध्या ।

अब, जिस प्रकार भरतक्षेत्रमे गंगा और सिन्धु इन दो नदियोंसे तथा विजयार्ध पर्वतसे पाच म्लेच्छ खड और एक आर्य खड इस प्रकार छ खण्ड हुए उसी प्रकार पूर्वोक्त बत्तीस विदेह क्षेत्रोमे गंगा और सिन्धु जैसी दो नदियों और विजयार्ध पर्वतसे प्रत्येक क्षेत्रके छः खण्ड जानना । विशेष यह है कि इन सब क्षेत्रोमे सदा चौथेकालकी आदि जैसा काल रहता है । वहां उत्कृष्ट आयुष्य करोड़ पूर्व है और शरीरकी ऊचाई पाच सौ धनुष्य है । पूर्वका माप कहते हैं—“पूर्वका प्रमाण सत्तर लाख, छप्पन हजार करोड़ वर्ष जानना ।”

इस प्रकार संक्षेपमे जम्बूद्वीपका व्याख्यान समाप्त हुआ ।

तदनन्तरं यथा सर्वद्वीपेषु सर्वसमुद्रेषु च द्वीपसमुद्रमर्यादाकारिका योजना-
 ष्टकोत्सेधा वज्रवेदिकास्ति तथा जम्बूद्वीपेप्यस्तीति विज्ञेयम् । यद्बहिर्भागे योजन-
 लक्षद्वयवलयविष्कम्भ आगमकथितषोडशसहस्रयोजनजलोत्सेधाघनेकाश्चर्यं सहितो लवण-
 समुद्रोऽस्ति । तस्मादपि बहिर्भागे योजनलक्षचतुष्टयवलयविष्कम्भो-
 धातकीखण्ड-
 द्वीपोऽस्ति । तत्र च दक्षिणभागे लवणोदधिकालोदधिसमुद्रद्वयवेदिकास्पर्शी दक्षिणो-
 च्चरायामः सहस्रयोजनविष्कम्भः शतचतुष्टयोत्सेध इक्ष्वाकारनामपर्वतः अस्ति । तथोत्तर-
 विभागेऽपि । तेन पर्वतद्वयेन खण्डीकृतं पूर्वापरधातकीखण्डद्वयं ज्ञातव्यम् । तत्र
 पूर्वधातकीखण्डद्वीपमध्ये चतुरशीतिसहस्रयोजनोत्सेधः सहस्रयोजनावगाहः लुल्लक-
 मेरुरस्ति । तथा पश्चिमधातकीखण्डेऽपि । यथा जम्बूद्वीपमहामेरोः भरतादिक्षेत्रहिम-
 वदादिपर्वतगङ्गादिनदीपद्मादिहृदानां दक्षिणोत्तरेण व्याख्यानं कृतं तथात्र पूर्वधातकी-
 खण्डमेरौ पश्चिमधातकीखण्डमेरौ च ज्ञातव्यम् । अत एव जम्बूद्वीपापेक्षया संख्यां
 प्रति द्विगुणानि भवन्ति भरतक्षेत्राणि, न च विस्तारायामापेक्षया । कुलपर्वताः

जिस प्रकार सब द्वीप और समुद्रोमे, द्वीप और समुद्रकी मर्यादाकारक (हद
 बतानेवाली) आठ योजन ऊंची वज्रकी दिवाल होती है उसी प्रकार जंबूद्वीपमे भी
 है ऐसा जानना । उस वेदिकासे बाहर दो लाख योजन चौड़ा, गोलाकार आगममें
 कहे अनुसार सोलह हजार योजन जलकी गहराई आदि अनेक आश्चर्यों सहित
 लवणसमुद्र है । उससे बाहर चार लाख योजन गोल विस्तारयुक्त धातकीखड द्वीप
 है । वहा दक्षिण भागमें लवणोदधि और कालोदधि इन दो समुद्रोकी वेदिकाको
 स्पर्श करनेवाला दक्षिण-उत्तर लबा, एक हजार योजनके विस्तारवाला चार सौ
 योजन ऊंचा इक्ष्वाकार नामक पर्वत है, उसी प्रकार उत्तर भागमें भी एक इक्ष्वा-
 कार पर्वत है । उन दो पर्वतोसे विभाजित, पूर्व धातकीखड और पश्चिम धातकी-
 खड ऐसे दो भाग जानना । पूर्व धातकीखड द्वीपके मध्यमें चौरासी हजार योजन
 ऊंचा और एक हजार योजन गहरा छोटा मेरु है तथा पश्चिम धातकीखडमे भी
 ऐसा ही एक छोटा मेरु है । जिस प्रकार जंबूद्वीपके महामेरुका भरतादि क्षेत्र, हिम-
 वत् आदि पर्वत, गंगा आदि नदी और पद्म आदि सरोवरोका दक्षिण और उत्तर
 दिशा सबधी वर्णन किया है उसी प्रकार इस पूर्व धातकीखंडके और पश्चिम धातकी-
 खडके मेरु संबंधी भी जानना । अतः धातकीखंडमे जंबूद्वीपकी अपेक्षा सख्यामे भरत
 क्षेत्रादि दुगुने होते है, परन्तु लंबाई-चौड़ाईकी अपेक्षासे दुगुने नहीं है । कुलपर्वत
 विस्तारकी अपेक्षासे दुगुने है परंतु लंबाईकी अपेक्षासे दुगुने नहीं है । उस धातकीखंड

पुनर्विस्तारापेक्षयैव द्विगुणा, नत्वायामं प्रति । तत्र धातकीखण्डद्वीपे तथा चक्रस्या-
रास्त्रधाकाराः कुलपर्वता भवन्ति । यथा चाराणां विवराणि छिद्राणि मध्यान्वभ्यन्तरे
सद्वीर्णानि वहिर्भागे विस्तीर्णानि तथा क्षेत्राणि ज्ञातव्यानि ।

इन्धंभृतं धातकीखण्डद्वीपमष्टलक्षयोजनवलयविष्कम्भः कालोदकसमुद्रः
परिवेष्ट्य तिष्ठति । तस्माद्वहिर्भागे योजनलक्षाष्टकं गत्वा पुष्करवरद्वीपस्य अर्द्धे वलया-
कारेण चतुर्दिशाभागं मानुषोत्तरनामा पर्वतस्तिष्ठति । तत्र पुष्करार्धेऽपि धातकीखण्ड-
द्वीपवदक्षिणोत्तरेणैक्ष्वाकारनामपर्वतद्वयं पूर्वापरं लुल्लकमेरुद्वयं च । तथैव भरतादिक्षेत्र-
विभागश्च बोधव्यः । परं किन्तु जम्बूद्वीपभग्नादिसंख्यापेक्षया भरतक्षेत्रादिद्विगुणत्वं,
न च धातकीखण्डापेक्षया । कुलपर्वतानां तु धातकीखण्डकुलपर्वतापेक्षया द्विगुणो
विष्कम्भ आयासश्च । उत्संघप्रमाणं पुनः दक्षिणभागे विजयार्धपर्वते योजनानि पञ्च-
विंशतिः हिमवति पर्वते शतं, महाहिमवति द्विशतं, निषधे चतुःशतं, तथोत्तरभागे
च । मेरुसमीपगजदन्तेषु शतपञ्चकं, नील निषध पार्श्वे गजदन्तानि योजन चतुः

द्वीपमे जैसे चक्रके आरे होते हैं वैसे आकारके कुलाचल है । जिस प्रकार चक्रके
आरेमें छिद्र भीतरकी तरफ संकरे (सकीर्ण) होते हैं और बाहरकी तरफ चौड़े
होते हैं उस प्रकार क्षेत्रोका आकार जानना ।

इस प्रकारके धातकीखण्ड द्वीपको आठ लाख योजनके गोल विस्तारवाला
कालोदक समुद्र घेरे हुए है । उस कालोदक समुद्रसे बाहर आठ लाख योजन चलने
पर पुष्करवर द्वीपके आधे भागमें, गोलाकार, चारो दिशाओंमें मानुषोत्तर नामक
पर्वत है । उस पुष्करार्ध द्वीपमें भी धातकीखण्ड द्वीपके समान दक्षिण और उत्तर
दिशामें इक्ष्वाकार नामक दो पर्वत हैं और पूर्व तथा पश्चिम दिशामें दो छोटे मेरु
हैं । इसी प्रकार भरतादि क्षेत्रोका विभाग जानना । परंतु जबूद्वीपके भरतादिकी
संख्याकी अपेक्षासे यहा भरतादि क्षेत्र दुगुने है, धातकीखण्ड द्वीपके भरतादिकी
संख्याकी अपेक्षासे नहीं । कुलाचलोकी लम्बाई तथा चौड़ाई धातकीखण्डके कुला-
चलोकी अपेक्षासे दुगुनी है । दक्षिणमें विजयार्ध पर्वतकी ऊंचाईका प्रमाण पच्चीस
योजन, हिमवत् पर्वतकी ऊंचाई सौ योजन, महा हिमवत् पर्वतकी ऊंचाई दो सौ
योजन और निषध पर्वतकी ऊंचाई चार सौ योजन है । उत्तर भागमें भी पर्वतोकी
ऊंचाईका प्रमाण उसी प्रकार है । मेरुके समीपमें गजदंतोंकी ऊंचाई पाच सौ
योजन है और नील तथा निषध पर्वतोके समीप गजदंतोंकी ऊंचाई चार सौ योजन
है । वक्षार पर्वतोकी ऊंचाई नदीके समीपमें और अतमे नील निषधके समीपमें

शतानि । नदीसमीपे वक्षारेषु चान्त्यनिषधनीलसमीपे चतुःशतं च । शेषपर्वतानां च मेरुं त्यक्त्वा यदेव जम्बूद्वीपे भणितं तदेवार्धतृतीयद्वीपेषु च विज्ञेयम् । तथा नामानि च क्षेत्रपर्वतनदीदेशनगरादीनां तान्येव । तथैव क्रोशद्वयोत्सेधा पञ्चशतधनुर्विस्तारा पद्मरागरत्नमयी वनादीनां वेदिका सर्वत्र समानेति । अत्रापि चक्राकारवत्पर्वता आरविवरसंस्थानानि क्षेत्राणि ज्ञातव्यानि । मानुषोत्तरपर्वताद्भ्यन्तरभाग एव मनुष्यास्तिष्ठन्ति, न च बहिर्भागे । तेषां च जघन्यजीवितमन्तर्मुहूर्तप्रमाणम्, उत्कर्षेण पल्यत्रयं, मध्ये मध्यमविकल्पा बहवस्तथा तिरश्चां च । एवमसंख्येयद्वीपसमुद्रविस्तीर्ण-तिर्यग्लोकमध्येऽर्धतृतीयद्वीपप्रमाणः संक्षेपेण मनुष्यलोको व्याख्यातः ।

अथ मानुषोत्तरपर्वतसकाशाद्बहिर्भागे स्वयम्भूरमणद्वीपार्धं परिक्षिप्य योऽसौ नागेन्द्रनामा पर्वतस्तस्मात्पूर्वभागे ये संख्यातीता द्वीपसमुद्रास्तिष्ठन्ति तेषु यद्यपि 'व्यन्तरा निरन्तरा' इति वचनाद् व्यन्तरदेवावासास्तिष्ठन्ति तथापि पल्यप्रमाणायुषां तिरश्चां सम्बन्धिनी जघन्यभोगभूमिरिति ज्ञेयम् । नागेन्द्रपर्वताद्बहिर्भागे स्वयम्भूरमणद्वीपार्धे समुद्रे च पुनर्विदेहवत्सर्वदैव कर्मभूमिश्चतुर्थकालश्च । परं किन्तु मनुष्या न सन्ति ।

चार सौ योजन है । मेरु पर्वतके अतिरिक्त शेष पर्वतकी ऊर्चाई जितनी जबूद्वीपमे कही थी उतनी ही पुष्करार्ध तकके द्वीपमे जानना । तथा क्षेत्र, पर्वत, नदी, देश, नगरादिके नाम भी वे ही है । उसी प्रकार दो कोश ऊंची, पाच सौ धनुष चौड़ी, पद्मरागरत्नमय वनादिकी वेदिका भी सब समान है । इस पुष्करार्ध द्वीपमे भी चक्रके आरेके आकारके पर्वत और आरोके मध्य छिद्र समान क्षेत्र जानना । मानुषोत्तर पर्वतके भीतरी भागमे ही मनुष्य रहते है, बाहरके भागमे नही । उन मनुष्योका जघन्य आयुष्य अतर्मुहूर्तका, उत्कृष्ट आयुष्य तीन पल्यका और मध्यमे, मध्यम भेद अनेक है । तिर्यचोका आयुष्य भी मनुष्योके समान है । इस प्रकार असख्य द्वीप-समुद्रोमे विस्तृत तिर्यक्लोकके मध्यमे अढ़ाई द्वीप प्रमाण मनुष्यलोकका संक्षेपमे व्याख्यान किया ।

अब मानुषोत्तर पर्वतसे बाहरके भागमे स्वयम्भूरमण द्वीपके आधे भागको घेरकर जो नागेन्द्र नामक पर्वत है उसके पूर्वभागमे (पहले) जो असख्य द्वीप-समुद्र है उनमे यद्यपि 'व्यन्तरदेव निरन्तर रहते है' इस वचनके अनुसार व्यन्तर देवोका आवास है तो भी एक पल्य प्रमाण आयुष्यवाले तिर्यचोकी जघन्य भोग-भूमि भी है इस प्रकार जानना । नागेन्द्र पर्वतसे बाह्य स्वयम्भूरमण अर्धद्वीपमे और, स्वयम्भूरमण समुद्रमे विदेह क्षेत्रके समान सदैव कर्मभूमि और चौथा काल रहता

एवमुक्तलक्षणतिर्यङ्ग्लोकस्य तदभ्यन्तरं मध्यभागवर्त्तिनो मनुष्यलोकस्य च प्रतिपादनेन संक्षेपेण मध्यमलोकव्याख्यानं समाप्तम् । अथ मनुष्यलोके द्विहीनशतचतुष्टयं तिर्यङ्ग्लोके तु नन्दीश्वरकुण्डलरुचकाभिधानद्वीपत्रयेषु क्रमेण द्विपञ्चाशच्चतुष्टयचतुष्टयसंख्याश्चा-
कृत्रिमाः स्वतन्त्रजिनगृहा ज्ञातव्याः ।

अत ऊर्ध्वं ज्योतिर्लोकः कथ्यते । तद्यथा—चन्द्रादित्यग्रहनक्षत्राणि प्रकीर्ण-
तारकाश्चेति ज्योतिष्कदेवाः पञ्चविधा भवन्ति । तेषां मध्येऽस्माद्भूमितलादुपरि
नवत्यधिकसप्तशतयोजनान्याकाशे गत्वा तारकविमानाः सन्ति, ततोऽपि योजनदशकं
गत्वा सूर्यविमानाः, ततः परमशीतियोजनानि गत्वा चन्द्रविमानाः, ततोऽपि त्रैलोक्य-
सारकथितक्रमेण योजनचतुष्टयं गते अश्विन्यादिनक्षत्रविमानाः, ततः परं योजनचतुष्टयं
गत्वा बुधविमानाः, ततः परं योजनत्रयं गत्वा शुक्रविमानाः, ततः परं योजनत्रये
गते बृहस्पतिविमानाः, ततो योजनत्रयानन्तरं मंगलविमानाः, ततोऽपि योजन-
त्रयान्तरं शनिश्चरविमाना इति । तथा चोक्तं “णउदुत्तरसत्तसया दस सीदी चउदुगं

है, परन्तु वहा मनुष्य नहीं है । इस प्रकार तिर्यङ्ग्लोकके और उसके मध्य भागमे स्थित मनुष्यलोकके प्रतिपादन द्वारा संक्षेपमे मध्यम लोकका व्याख्यान समाप्त हुआ । मनुष्यलोकमें तीनसौ 'अठाणवे और तिर्यङ्ग्लोकमे नन्दीश्वर द्वीप, कुंडल-
द्वीप और रुचकद्वीपमे क्रमशः बावन, चार और चार अकृत्रिम स्वतन्त्र जिनगृह जानना ।

इसके पश्चात् ज्योतिष लोकका वर्णन करते हैं । वह इस प्रकार—चंद्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और प्रकीर्णक तारे; इस प्रकार ज्योतिषी देव पाँच प्रकारके हैं । उनमेंसे इस मध्यलोकके पृथ्वीतलसे सात सौ नब्बे योजन ऊपर आकाशमें तारोंके विमान है, उनसे दश योजन ऊपर सूर्यके विमान है, उनसे अस्सी योजन ऊपर चंद्रके विमान है, तत्पश्चात् त्रैलोक्यसारमे कथित क्रमके अनुसार चार योजन ऊपर अश्विनी आदि नक्षत्रोंके विमान है, तत्पश्चात् चार योजन ऊपर बुधके विमान है, तत्पश्चात् तीन योजन ऊपर शुक्रके विमान है, तत्पश्चात् तीन योजन ऊपर बृहस्पतिके विमान है, तत्पश्चात् तीन योजन ऊपर मंगलके विमान है, उससे भी तीन योजन ऊपर शनिश्चरके विमान है, 'वही कहा है—“सातसौ' नब्बे, दस, अस्सी, चार, चार, तीन, तीन, तीन और तीन योजन ऊपर क्रमपूर्वक तारे, सूर्य, चंद्र,

तु तिचउक्कं । तारारविससिरिक्खा बुहभग्गवअंगिरारसणी । १ ।” ते च ज्योतिष्क-
देवा अर्धतृतीयद्वीपेषु निरंतरं मेरोः प्रदक्षिणेन परिभ्रमणगतिं कुर्वन्ति । तत्र घटिका-
प्रहरदिवसादिरूपः स्थूलव्यवहारकालः समयनिमिषादिसूक्ष्मव्यवहारकालवत् यद्यप्यनादि-
निधनेन समयघटिकादिविवक्षितविकल्परहितेनकालाणुद्रव्यरूपेण निश्चयकालेनोपादान-
भूतेन जन्यते तथापि चन्द्रादित्यादिज्योतिष्कदेवविमानगमनागमनेन कुम्भकारेण
निमित्तभूतेन मृत्पिण्डोपादानजनितघट इव व्यज्यते प्रकटीक्रियते ज्ञायते तेन
कारणेनोपचारेण ज्योतिष्कदेवकृत इत्यभिधीयते । निश्चयकालस्तु तद्विमानगति-
परिणतेर्बहिरङ्गसहकारिकारणं भवति कुम्भकारचक्रभ्रमणस्याधस्तनशिलावदिति ।

इदानीमर्धतृतीयद्वीपेषु चन्द्रादित्यसंख्या कथ्यते । तथाहि—जम्बूद्वीपे
चन्द्रद्वयं सूर्यद्वयं च, लवणोदे चतुष्टयं, धातकीखण्डद्वीपे द्वादश चन्द्रादित्याश्च,
कालोदकसमुद्रे द्विचत्वारिंशच्चन्द्रादित्याश्च, पुष्करार्धे द्वीपे द्वासप्ततिचन्द्रादित्याः
चेति । ततः परं भरतैरावतस्थितजम्बूद्वीपचन्द्रसूर्ययोः किमपि विवरणं क्रियते ।

नक्षत्र, बुध, शुक्र, बृहस्पति, मंगल और शनिश्चरके विमान है ॥१॥” वे ज्योतिषी
देव अढाई द्वीपमे मेरुकी प्रदक्षिणा करके निरतर परिभ्रमण करते है । वहा घडी,
प्रहर, दिवसादिरूप स्थूल व्यवहार काल, समय निमिषादि सूक्ष्म व्यवहारकालकी
भाति यद्यपि समय, घडी आदि विवक्षित भेदोसे रहित, अनादि अनत कालाणु
द्रव्यमय निश्चयकालरूप उपादानसे उत्पन्न होता है तो भी निमित्तभूत कुम्हार
द्वारा उपादानरूपी मिट्टीके पिण्डमेसे बने हुए घड़ेकी भाति चन्द्र, सूर्य आदि
ज्योतिषी देवोके विमानोके गमन-आगमनसे यह व्यवहारकाल प्रगट होता है तथा
ज्ञात होता है, इस कारण उपचारसे वह ज्योतिषी देवोसे कृत है ऐसा कहा जाता
है । निश्चयकाल तो, कुम्हारके चाकके भ्रमणमे नीचेकी काली बहिरंग सहकारी
होती है, उसी प्रकार विमानोके गमनरूप परिणामका बहिरंग सहकारी कारण
होता है ।

अब अढाईद्वीपमें चंद्र और सूर्यकी संख्या कहते है । वह इस प्रकार—जबू-
द्वीपमें दो चंद्र और दो सूर्य है, लवणोदक समुद्रमें चार चंद्र और चार सूर्य हैं ।
धातकीखंड द्वीपमे बारह चंद्र और बारह सूर्य है, कालोदक समुद्रमे ब्यालीस चंद्र और
ब्यालीस सूर्य है । पुष्करार्ध द्वीपमें वहत्तर चन्द्र और वहत्तर सूर्य है ।

तत्पश्चात् भरत और ऐरावत क्षेत्रमे स्थित जबूद्वीपके चंद्र और सूर्यका
कुछ वर्णन किया जाता है । वह इस प्रकार—जबूद्वीपमे एकसौ अस्सी योजन और

तद्यथा—जम्बूद्वीपाभ्यन्तरे योजनानामशीतिशतं बहिर्भागे लवणसमुद्रसम्बन्धे त्रिंशदधिकशतत्रयमिति समुदायेन दशोत्तरयोजनशतपञ्चकं चारक्षेत्रं भण्यते, तत् चन्द्रादित्ययोरेकमेव । तत्र भरतेन (सह) बहिर्भागे तस्मिन्क्षेत्रे सूर्यस्य चतुरशीतिशतसंख्या मार्गा भवन्ति, चन्द्रस्य पञ्चदशैव । तत्र जम्बूद्वीपाभ्यन्तरे कर्कटसंक्रान्तिदिने दक्षिणायनप्रारम्भे निषधपर्वतस्योपरि प्रथममार्गं सूर्यः प्रथमोदयं करोति । यत्र सूर्यविमानस्थं निर्दोषपरमात्मनो जिनेश्वरस्याकृत्रिमं जिनविम्बम् प्रत्यक्षेण दृष्ट्वा अयोध्यानगरीस्थितो निर्मलसम्यक्त्वानुरागेण भरतचक्री पुष्पाञ्जलिमुत्क्षिप्यार्घ्यं ददातीति । तन्मार्गस्थितभरतक्षेत्रादित्यस्यैरावतादित्येन सह तथापि चन्द्रस्यान्यचन्द्रेण सह यदन्तरं भवति तद्विशेषेणागतो ज्ञातव्यम् ।

अथ “सदभिस भरणी अहा सादी असलेस्स जेट्टमवर वरा । रोहिणि विसाह पुणव्वसु तिउत्तरा मज्झिमा सेसा ।१।” इति गाथाकथितक्रमेण यानि जघन्योत्कृष्टमध्यमनक्षत्राणि तेषु मध्ये कस्मिन्नक्षत्रे कियन्ति दिनान्यादित्यस्तिष्ठतीति । “इन्दु-

बाहर अर्थात् लवण समुद्रमे तीन सौ तीस योजन, इस प्रकार कुल पांचसौ दस योजन प्रमाण गमन-क्षेत्र कहलाता है, वह चन्द्र और सूर्य दोनोका एक ही गमन क्षेत्र है । उसमे भरत क्षेत्र और बाहरके भागके गमन क्षेत्रमे सूर्यके मार्ग एकसौ चौरासी है और चन्द्रके मार्ग पंद्रह ही है । वहा जबूद्वीपमे कर्कट संक्रान्तिके दिवस, दक्षिणायनके प्रारंभमें, निषध पर्वत पर प्रथम मार्गमे सूर्यका प्रथम उदय होता है । तब सूर्य विमानमे स्थित निर्दोष परमात्म-जिनेश्वरके अकृत्रिम बिबको प्रत्यक्ष देखकर, अयोध्या नगरीमे स्थित भरत चक्रवर्ती निर्मल सम्यक्त्वके अनुरागसे पुष्पाञ्जलि देकर अर्घ्य देता है । उस मार्गमें स्थित भरतक्षेत्रके सूर्यका ऐरावत क्षेत्रके सूर्यके साथ और भरतक्षेत्रके चन्द्रका ऐरावतक्षेत्रके चन्द्रके साथ जो अतर रहता है वह विशेषरूपसे आगममेसे जान लेना ।

अब “शतभिषा,^१ भरणी, आर्द्रा, स्वाति, अश्लेषा और ज्येष्ठा—ये छह नक्षत्र जघन्य है, रोहिणी, विशाखा, पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा और उत्तराभाद्रपद ये छह नक्षत्र उत्तम है और बाकीके नक्षत्र मध्यम है ।” इस प्रकार गाथामें कथित क्रम अनुसार जो जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम नक्षत्र है, उनमेंसे किस नक्षत्रमे

रवीदो रिक्खा सत्तट्टि पंच गगणखंडहिया । अहियहिदरिक्खाखंडा रिक्खे इंदुरवी-
अत्थणमुहुत्ता । १।” इत्यनेन गाथासुत्रेणागमकथितक्रमेण पृथक् पृथगानीय मेलापके
कृते सति षडधिकषष्टियुतत्रिशतसंख्यदिनानि भवन्ति । तस्य दिनसमूहार्धस्य यदा
द्वीपाभ्यन्तरादक्षिणेन बहिर्भागेषु दिनकरो गच्छति तदा दक्षिणायनसंज्ञा; यदा पुनः
समुद्रात्सकाशादुत्तरेणाभ्यन्तरमार्गेषु समायाति तदोत्तरायणसंज्ञेति । तत्र यदा
द्वीपाभ्यन्तरे प्रथममार्गपरिधौ कर्कटसंक्रान्तिदिने दक्षिणायनप्रारम्भे तिष्ठत्यादित्यस्तदा
चतुर्णवतिसहस्रपञ्चविंशत्यधिकपञ्चयोजनशतप्रमाण उत्कर्षेणादित्यविमानस्य पूर्वापरेणातप-
विस्तारो ज्ञेयः । तत्र पुनरष्टादशमुहूर्तैर्दिवसो भवति द्वादशमुहूर्तै रान्त्रिरिति । ततः
क्रमेणातपहानौ सत्यां मुहूर्तद्वयस्यैकषष्टिभागीकृतस्यैको भागो दिवसमध्ये दिनं प्रति
हीयते यावल्लवणसमुद्रेऽवसानमार्गं माघमासे मकरसंक्रान्तावुत्तरायणदिवसे त्रिषष्टिसहस्रा-
धिकषोडशयोजनप्रमाणो जघन्येनादित्यविमानस्य पूर्वापरेणातपविस्तारो भवति । तथैव

कितने दिवस सूर्य रहता है वह कहते हैं। “एक^१ मुहूर्तमें चंद्र १७६८, सूर्य १८३०
और नक्षत्र १८३५ गगनखंडोंमें गमन करता है अतः ६७ और ५ (१८३५-
१७६८ = ६७; १८३५-१८३० = ५) अधिक भागोंसे नक्षत्रखंडको भाग देनेसे जो
मुहूर्त आवे वे मुहूर्त चंद्र और सूर्यके आसन्न मुहूर्त जानना अर्थात् एक नक्षत्र पर
इतने मुहूर्त तक चन्द्र और सूर्य की स्थिति जानना । इस प्रकार इस गाथा द्वारा
आगममें कथित क्रमसे भिन्न-भिन्न दिवसोंका योग करनेसे तीससौ छ्यासठ दिन
होते हैं । जब द्वीपके अदरसे दक्षिणदिशाके बाहर सूर्य गमन करता है तब एकसौ
तिरासी दिनोंको ‘दक्षिणायन’ नाम प्राप्त होता है और जब सूर्य समुद्रकी ओरसे
उत्तर दिशाके अदरके मार्गोंमें आता है तब शेष एकसौ तिरासी दिनोंको ‘उत्तरायण’
नाम है । उसमें जब द्वीपके भीतर कर्कट संक्रान्तिके दिन दक्षिणायनके प्रारम्भमें प्रथम
मार्गकी परिधिमें सूर्य होता है तब सूर्य विमानके आतपका पूर्व पश्चिम विस्तार
चौराणवे हजार पांचसौ पच्चीस योजन प्रमाण होता है ऐसा जानना । उस समय
अठारह मुहूर्तका दिन और बारह मुहूर्त की रात्रि होती है । तत्पश्चात् क्रम-क्रमसे
आतपकी हानि होनेपर दो मुहूर्त के इकसठ भागोंमेंसे एक भाग प्रमाण प्रत्येक दिन
घटता है और लवण समुद्रके अंतिम मार्गमें माघ मासमें मकर संक्रान्तिके उत्तरा-
यणके दिन सूर्य विमानके आतपका पूर्व पश्चिम विस्तार जघन्यरूपसे त्रेसठ हजार
सोलह योजन प्रमाण रहने तक घटता है । उसी प्रकार बारह मुहूर्तोंका दिन और

द्वादशमुहूर्तैर्दिवसो भवत्यष्टादशमुहूर्तै रान्त्रिश्चेति । शेषं विशेषव्याख्यानं लोकविभागादौ विज्ञेयम् ।

ये तु मनुष्यक्षेत्राद्बहिर्भागे ज्योतिष्कविमानास्तेषां चलनं नास्ति । ते च मानुषोत्तरपर्वताद्बहिर्भागे पञ्चाशत्सहस्राणि योजनानां गत्वा वलयाकारं पंक्तिक्रमेण पूर्वक्षेत्रं परिवेष्ट्य तिष्ठन्ति । तत्र प्रथमवलये चतुश्चत्वारिंशदधिकशतप्रमाणाश्चन्द्रास्तथा-दित्याश्चान्तरान्तरेण तिष्ठन्ति । ततः परं योजनलक्षे लक्षे गते तेनैव क्रमेण वलयं भवति । अयन्तु विशेषः—वलये वलये चन्द्रचतुष्टयं सूर्यचतुष्टयं च वर्धते यावत्पुष्करार्धबहिर्भागे वलयाष्टकमिति । ततः पुष्करसमुद्रप्रवेशे वेदिकायाः सकाशात्पञ्चाशत्सहस्रप्रमितयोजनानि जलमध्ये प्रविश्य यत्पूर्वं चतुश्चत्वारिंशदधिकशतप्रमाणं प्रथमवलयं व्याख्यातं तस्माद् द्विगुणसंख्यानं प्रथमवलयं भवति । तदनन्तरं पूर्ववद्योजनलक्षे गते वलयं भवति चन्द्रचतुष्टयस्य सूर्यचतुष्टयस्य च वृद्धिरित्यनेनैव क्रमेण स्वयम्भूरमणसमुद्र-बहिर्भागवेदिकापर्यन्तं ज्योतिष्कदेवानामवस्थानं बोधव्यम् । एते च प्रतरासंख्येयभाग-प्रमिता असंख्येया ज्योतिष्कविमाना अकृत्रिमसुवर्णमयरत्नमयजिनचैत्यालयमण्डिता

अठारह मुहूर्तोंकी रात्रि होती है । अन्य विशेष व्याख्यान लोकविभाग आदिमेसे जानना ।

मनुष्यक्षेत्रके बाहर जो ज्योतिषियोंके विमान है उनका गमन नहीं होता है । वे मानुषोत्तर पर्वतके बाहर पचास हजार योजन जाकर, गोलाकार पंक्तिके क्रमसे पूर्वक्षेत्रको वेष्टित करके (घेर कर) स्थित है । वहा प्रथम वलयमे एकसौ चवालीस चद्र और सूर्य परस्पर अन्तर पर (दूरी पर) रहते है (स्थित है) । तत्पश्चात् एक-एक लाख योजन जानेपर उसी क्रमसे एक-एक वलय होता है । विशेष यह है कि प्रत्येक वलयमे चार-चार चद्र और चार-चार सूर्योंकी वृद्धि पुष्करार्द्धके बाह्य भागमे आठवे वलय तक होती है । तत्पश्चात् पुष्कर समुद्रके प्रवेशमे स्थित वेदिकासे पचास हजार योजन प्रमाण जलभागमे जाकर प्रथम वलयमे एकसौ चवालीस चद्र और सूर्य का जो पहले व्याख्यान किया है उससे दुगुने चन्द्र और सूर्ययुक्त प्रथम वलय है । तत्पश्चात् पूर्वोक्त प्रकारसे एक-एक लाख योजन जानेपर एक-एक वलय है । प्रत्येक वलयमे चार चद्र और चार सूर्योंकी वृद्धि होती है । इसी क्रमसे स्वयम्भूरमण समुद्रके बाहरके भागकी वेदिका तक ज्योतिषी देवोका अवस्थान जानना । जगत्प्रतर के असंख्यातवे भाग प्रमाण ये असंख्य ज्योतिषी विमान अकृत्रिम सुवर्णमय और रत्नमय जिन-चैत्यालयोंसे शोभित जानना । इस प्रकार सक्षेपसे ज्योतिष्क लोकका कथन पूर्ण हुआ ।

ज्ञातव्याः । इति संक्षेपेण ज्योतिष्कलोकव्याख्यानं समाप्तम् ।

अथानन्तरमूर्ध्वलोकः कथ्यते । तथाहि—सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्म-
ब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्टशुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारानतप्राणतारणाच्युतसंज्ञाः षोडश स्वर्गाः
ततोऽपि नवग्रैवेयकसंज्ञास्ततश्च नवानुदिशसंज्ञं नवविमानसंख्यमेकपटलं ततोऽपि
पंचानुत्तरसंज्ञं पंचविमानसंख्यमेकपटलं चेत्युक्तक्रमेणोपर्युपरि वैमानिकदेवास्तिष्ठन्तीति
वार्तिकं सङ्ग्रहवाक्यं समुदायकथनमिति यावत् । आदिमध्यान्तेषु द्वादशाष्टचतुर्योजन-
वृत्तविष्कम्भा चत्वारिंशत्प्रमितयोजनोत्सेधा या मेरुचूलिका तिष्ठति तस्या उपरि
कुरुभूमिजमर्त्यवालाग्रान्तरितं पुनर्ऋजुविमानमस्ति । तदादिं कृत्वा चूलिकासहित-
लक्षयोजनप्रमाणं मेरुत्सेधमानमर्द्धाधिकैकरज्जुप्रमाणं यदाकाशक्षेत्रं तत्पर्यन्तं सौधर्मै-
शानसंज्ञं स्वर्गयुगलं तिष्ठति । ततः परमर्द्धाधिकैकरज्जुपर्यन्तं सानत्कुमारमाहेन्द्रसंज्ञं
स्वर्गयुगलं भवति, तस्मादर्द्धरज्जुप्रमाणाकाशपर्यन्तं ब्रह्मब्रह्मोत्तराभिधानं स्वर्गयुगलमस्ति,
ततोऽप्यर्द्धरज्जुपर्यन्तं लांतवकापिष्टनामस्वर्गयुगलमस्ति, ततश्चार्द्धरज्जुपर्यन्तं शुक्रमहा-
शुक्राभिधानं स्वर्गद्वयं ज्ञातव्यम्, तदनंतरमर्द्धरज्जुपर्यन्तं शतारसहस्रारसंज्ञं स्वर्गयुगलं

इसके पश्चात् उर्ध्वलोकका कथन करते हैं । वह इस प्रकार है—सौधर्म, ईशान, सानत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लांतव, कापिष्ठ, शुक्र, महाशुक्र, शतार, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत नामक सोलह स्वर्ग हैं । उनसे ऊपर नवग्रैवेयक विमान है । उनसे ऊपर नव अनुदिश नामक नौ विमानोका एक पटल है, उनसे भी ऊपर पांच अनुत्तर नामक पांच विमानोका एक पटल है । इस प्रकार उक्त क्रमसे ऊपर-ऊपर वैमानिक देव रहते हैं । यह वार्तिक अर्थात् संग्रह वाक्य अथवा समुदायकथन है । आदिमे बारह, मध्यमें आठ और अतमें चार योजन प्रमाण गोल व्यास वाली, चालीस योजन ऊंची जो मेरु पर्वतकी चूलिका है उसके ऊपर देवकुरु अथवा उत्तरकुरु नामक उत्तम भोगभूमिके मनुष्यके बालके अग्रभाग जितने अतरसे ऋजु विमान है । चूलिका सहित मेरु पर्वतकी ऊंचाईका प्रमाण एक लाख योजन है । उस ऊंचाईसे प्रारंभ करके डेढ़ (११) राजू प्रमाण आकाश क्षेत्र पर्यंत सौधर्म और ईशान नामक दो स्वर्ग हैं । उनसे ऊपर डेढ़ राजू पर्यंत सानत्कुमार और माहेन्द्र नामक दो स्वर्ग हैं, उनसे ऊपर अर्द्ध राजू पर्यंत ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर नामक दो स्वर्ग हैं, उनसे भी ऊपर अर्द्ध राजू पर्यंत लांतव और कापिष्ठ नामक दो स्वर्ग हैं । उनसे ऊपर अर्द्ध राजू पर्यंत शुक्र और महाशुक्र नामक दो स्वर्ग जानना । तत्पश्चात् अर्द्ध राजू पर्यंत शतार और सहस्रार नामक दो स्वर्ग हैं, तत्पश्चात् अर्द्ध राजू पर्यंत आनत

भवति, ततोऽप्यर्द्धरज्जुपर्यन्तमानतप्राणतनाम स्वर्गयुगलं, ततः परमर्द्धरज्जुपर्यन्तमाकाशं यावदारणाच्युताभिधानं स्वर्गद्वयं ज्ञातव्यमिति । तत्र प्रथमयुगलद्वये स्वकीयस्वकीय-स्वर्गनामानश्चत्वार इन्द्रा विज्ञेयाः, मध्ययुगलचतुष्टये पुनः स्वकीयस्वकीयप्रथमस्वर्गाभिधान एकैक एवेन्द्रो भवति, उपरिननयुगलद्वयेऽपि स्वकीयस्वकीयस्वर्गनामानश्चत्वार इन्द्रा भवन्ति; इति समुदायेन षोडशस्वर्गेषु द्वादशेन्द्रा ज्ञातव्याः । षोडशस्वर्गादूर्ध्वमेकरज्जुमध्ये नवग्रैवेयकनवानुदिशपञ्चानुत्तरविमानवासिदेवास्तिष्ठन्ति । ततः परं तत्रैव द्वादशयोजनेषु गतेष्वष्टयोजनवाहुल्या मनुष्यलोकवत्पञ्चाधिकचत्वारिंशल्लक्षयोजनविस्तारा मोक्षशिला भवति । तस्या उपरि घनोदधिघनवाततनुवातत्रयमस्ति । तत्र तनुवातमध्ये लोकान्ते केवलज्ञानाद्यनन्तगुणसहिताः सिद्धाः तिष्ठन्ति ।

इदानीं स्वर्गपटलसंख्या कथ्यते—सौधर्मैशानयोरेकत्रिंशत्, सनत्कुमार-माहेन्द्रयोः सप्त, ब्रह्मब्रह्मोत्तरयोश्चत्वारि, लान्तवकापिष्टयोर्द्वयम्, शुक्रमहाशुक्रयोः पटलमेकम्, शतारसहस्रारयोरेकम्, आनतप्राणतयोस्त्रयम्, आरणाच्युतयोस्त्रयमिति । नवसु ग्रैवेयकेषु नवकं, नवानुदिशेषु पुनरेकं, पञ्चानुत्तरेषु चैकमिति समुदायेनोपर्युपरि

और प्राणत नामक दो स्वर्ग है, तत्पश्चात् अर्द्ध राजू पर्यंत आकाशमे आरण और अच्युत नामक दो स्वर्ग है । वहा प्रथमके दो युगलोमे अपने-अपने स्वर्गके नामवाले चार इन्द्र जानना । मध्यवर्ती चार युगलोमे अपने-अपने प्रथम स्वर्गके नाम वाले चार इन्द्र है । ऊपरके अतिम दो युगलोमेंभी अपने-अपने स्वर्गके नाम वाले चार इन्द्र है । इस प्रकार समूह रूपसे सोलह स्वर्गोंमे बारह इन्द्र जानना । सोलह स्वर्गोंसे ऊपर एक राजूमे नवग्रैवेयक, नव अनुदिश और पाच अनुत्तर विमानवासी देव है । तत्पश्चात् बारह योजन ऊपर जानेपर आठ योजन मोटी और मनुष्य लोक (अढाई-द्वीप) के समान पैतालीस लाख योजनके विस्तारयुक्त मोक्षशिला है । उससे ऊपर घनोदधि, घनवात और तनुवात नामक तीन वायु है । वहा तनुवात वलयके मध्यमे और लोकके अतमे केवल ज्ञानादि अनन्त गुणसहित सिद्ध है ।

अब स्वर्गके पटलोकी संख्या कहते हैं—सौधर्म और ईशान स्वर्गमे इकतीस, सानत्कुमार और माहेन्द्र स्वर्गमे सात, ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर स्वर्गमें चार, लातव और कापिष्ट स्वर्गमें दो, शुक्र और महाशुक्र स्वर्गमे एक, शतार और सहस्रार स्वर्गमे एक, आनत और प्राणत स्वर्गमे तीन तथा आरण और अच्युत स्वर्गमे तीन पटल है । नवग्रैवेयकोमें नौ, नव अनुदिशोमे एक और पाच अनुत्तरोमे एक पटल है ।

त्रिषष्टिपटलानि ज्ञातव्यानि । तथा चोक्तम्—“इगत्तीससत्तचत्तारिदोणिणएक्केक्कळक्क-
चदुकप्पे । तिच्चियएक्केकिंदियणामा उडु आदि तेसट्टी ।”

अतः परं प्रथमपटलव्याख्यानं क्रियते । ऋजु विमानं यदुक्तं पूर्वं मेरुचूलि-
काया उपरि तस्य मनुष्यक्षेत्रप्रमाणविस्तारस्येन्द्रकसंज्ञा । तस्य चतुर्दिग्भागेष्वसंख्येय-
योजनविस्ताराणि पंक्तिरूपेण सर्वद्वीपसमुद्रेषूपरि प्रतिदिशं यानि त्रिषष्टिविमानानि
तिष्ठन्ति तेषां श्रेणीबद्धसंज्ञा । यानि च पंक्तिरहितपुष्पप्रकरवद्विदिक्चतुष्टये तिष्ठन्ति
तेषां संख्येयासंख्येययोजनविस्ताराणां प्रकीर्णकसंज्ञा । इति समुदायेन प्रथमपटललक्षणं
ज्ञातव्यम् । तत्र पूर्वापरदक्षिणश्रेणित्रयविमानानि, तन्मध्ये विदिग्द्वयविमानानि च
सौधर्मसम्बन्धीनि भवन्ति, शेषविदिग्द्वयविमानानि तथोत्तरश्रेणिविमानानि च पुनरी-
शानसम्बन्धीनि । अस्मात्पटलादुपरि जिनदृष्टमानेन संख्येयान्यसंख्येयानि योजनानि
गत्वा तेनैव क्रमेण द्वितीयादिपटलानि भवन्ति । अयं च विशेषः—श्रेणीचतुष्टये

इस प्रकार समूहमे ऊपर-ऊपर त्रेसठ पटल जानना । वही कहा है कि—“सौधर्म
युगलमे इक्कीस, सानत्कुमार युगलमे सात, ब्रह्म युगलमे चार, लांतव युगलमे दो,
शुक्र युगलमे एक, शतार युगलमे एक, आनत आदि चार स्वर्गोंमें छह, प्रत्येक तीन
श्रैवेयकोमे तीन-तीन, नवअनुदिशोमे एक, पाच अनुत्तरोमे एक—इस प्रकार समूह-
रूपसे त्रेसठ इन्द्रक होते हैं ।”

इसके पश्चात् प्रथम पटलका व्याख्यान करते हैं । मेरु पर्वतकी चूलिकाके
ऊपर मनुष्य क्षेत्र जितने विस्तार वाले पूर्वोक्त ऋजु विमानकी इन्द्रक संज्ञा है ।
उसकी चारो दिशाओंमें पंक्तिरूपसे सर्वद्वीप और समुद्रोके ऊपर प्रत्येक दिशामे जो
असंख्य योजन विस्तारवाले त्रेसठ विमान हैं उनकी ‘श्रेणीबद्ध’ संज्ञा है । पंक्ति-
रहित पुष्पोंकी भांति चारों विदिशाओंमें जो सख्यात और असंख्यात योजन विस्तार
वाले विमान हैं उनकी “प्रकीर्णक” संज्ञा है । इस प्रकार समूहमें प्रथम पटलका
लक्षण जानना । उसमे पूर्व, पश्चिम और दक्षिण इन तीन श्रेणियोंके विमान, उन तीन
दिशाओके मध्य दो विदिशाओके विमान सौधर्म (नामक प्रथम स्वर्ग) सबधी है ।
शेष दो विदिशाओके विमान और उत्तर श्रेणीके विमान ईशान स्वर्ग सबधी है ।
जिन भगवानके द्वारा देखे गये अनुसार इस पटलसे ऊपर सख्यात और असख्यात
योजन ऊपर जानेपर उसी क्रमसे द्वितीय आदि पटल हैं ।

पटले पटले प्रतिदिशमेकैकविमानं हीयते यावत् पञ्चानुत्तरपटले चतुर्दिक्ष्वैकैकविमानं तिष्ठति । एते सौधर्मादिविमानाश्चतुरशीतिलक्षसप्तनवतिसहस्रत्रयोविंशतिप्रमिता अकृत्रिम-सुवर्णमयजिनगृहमण्डिता ज्ञातव्या इति ।

अथ देवानामायुःप्रमाणं कथ्यते । भवनवासिषु जघन्येन दशवर्षसहस्राणि, उत्कर्षेण पुनरसुरकुमारेषु सागरोपमं, नागकुमारेषु पल्यत्रयं, सुपर्णे सार्धद्वयं, द्वीपकुमारे द्वयं, शेषकुलषट्के सार्धपल्यमिति । व्यन्तरे जघन्येन दशवर्षसहस्राणि, उत्कर्षेण पल्य-मधिकमिति । ज्योतिष्कदेवे जघन्येन पल्याष्टमविभागः, उत्कर्षेण चन्द्रे लक्षवर्षाधिकं पल्यम्, सूर्ये सहस्राधिकं पल्यं, शेषज्योतिष्कदेवानामागमानुसारेणेति । अथ सौधर्म-शानयोर्जघन्येन साधिकपल्यं, उत्कर्षेण साधिकसागरोपमद्वयं, सानत्कुमार माहेन्द्रयोः साधिकसागरोपमसप्तकं, ब्रह्मब्रह्मोत्तरयोः साधिकसागरोपमदशकं, लान्तवकापिष्टयोः साधिकानि चतुर्दशसागरोपमानि, शुक्रमहाशुक्रयोः षोडश साधिकानि, शतारसहस्रार-

विशेष यह है कि—चारो श्रेणियोमे प्रत्येक पटलमें प्रत्येक दिशामें एक-एक विमान कम होता है जब तक कि पाच अनुत्तर पटलमें चारों दिशाओमे एक-एक विमान रहता है । ये सौधर्म आदि विमान चौरासी लाख, सत्ताणवे हजार, तेईस अकृत्रिम सुवर्णमय जिनगृहोसे शोभित है ऐसा जानना ।

अब देवोके आयुष्यका प्रमाण कहते हैं । भवनवासी देवोमे जघन्य आयु दस हजार वर्ष है । असुरकुमार नामक देवोकी उत्कृष्ट आयु एक सागर, नागकुमारोकी तीन पल्य, सुपर्णकुमारोकी अढाई पल्य, द्वीपकुमारोकी दो पल्य, और शेष छह प्रकारके भवनवासी देवोकी उत्कृष्ट आयु डेढ पल्य है । व्यतरदेवोमे जघन्य आयु दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट आयु एक पल्यसे कुछ अधिक है । ज्योतिषी देवोमें जघन्य आयु एक पल्यके आठवे भाग प्रमाण है । चद्रकी उत्कृष्ट आयु एक पल्य और एक लाख वर्ष है तथा सूर्यकी उत्कृष्ट आयु एक पल्य और एक हजार वर्ष है, शेष ज्योतिषी देवोकी उत्कृष्ट आयु आगम अनुसार जानना । सौधर्म और ईशान स्वर्गके देवोकी जघन्य आयु एक पल्यसे कुछ अधिक और उत्कृष्ट आयु दो सागरसे कुछ अधिक है । सानत्कुमार और माहेन्द्र स्वर्गके देवोकी आयु सात सागरसे कुछ अधिक, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तरमें दस सागरसे कुछ अधिक, लांतव कापिष्ठमें चौदह सागरसे कुछ अधिक, शुक्र-महाशुक्रमे सोलह सागर से कुछ अधिक, शतार-सहस्रारमें अठा-

योरष्टादशसाधिकानि, आनतप्राणतयोर्विंशतिरेव, आरणाच्युतयोर्द्वाविंशतिरिति । अतः परमच्युतादूर्ध्वं कल्पातीतनवग्रैवेयकेषु द्वाविंशतिसागरोपमप्रमाणादूर्ध्वमेकैकसागरोपमे वर्धमाने सत्येकत्रिंशत्सागरोपमान्यवसानग्रैवेयके भवन्ति । नवानुदिशपटले द्वात्रिंशत्, पश्चानुत्तरपटले त्रयस्त्रिंशत्, उत्कृष्टायुः प्रमाणं ज्ञातव्यम् । तदायुः सौधर्मादिषु स्वर्गेषु यदुत्कृष्टं तत्परस्मिन् परस्मिन् स्वर्गे सर्वार्थसिद्धिं विहाय जघन्यं चेति । शेषं विशेषव्याख्यानं त्रिलोकसारादौ बोद्धव्यम् ।

किञ्च—आदिमध्यान्तमुक्ते शुद्धबुद्धैकस्वभावे परमात्मनि सकलविमलकेवल-ज्ञानलोचनेनादर्शं विम्बानीव शुद्धात्मादिपदार्था लोच्यन्ते दृश्यन्ते ज्ञायन्ते परिच्छिद्यन्ते । यतस्तेन कारणेन स एव निश्चयलोकस्तस्मिन्निश्चयलोकाख्ये स्वकीयशुद्धपरमात्मनि अवलोकनं वा स निश्चयलोकः । “सण्णाओ य तिलेस्सा इंदियवसदाय अत्तरुहाणि । णाणं च दुप्पउत्तं मोहो पावप्पदा होंति ।१।” इति गाथोदितविभावपरिणाममादिं

रह सागरसे कुछ अधिक, आनत-प्राणतमे बीस सागर ही और आरण-अच्युतमे बाईस सागरकी उत्कृष्ट आयु है ।

इसके पश्चात् अच्युत स्वर्गसे ऊपर कल्पातीत नवग्रैवेयकोमे प्रत्येकमे क्रमशः बाईस सागर प्रमाणसे एक-एक सागर अधिक-अधिक है और इस प्रकार अंतिम नवमे ग्रैवेयकमें इकतीस सागरकी उत्कृष्ट आयु है । नव अनुदिश पटलमे बत्तीस सागर और पांच अनुत्तर पटलमे तेतीस सागर उत्कृष्ट आयुका प्रमाण जानना ।

सौधर्म आदि स्वर्गमे जो उत्कृष्ट आयु है वह आयु सर्वार्थसिद्धिके अतिरिक्त ऊपर-ऊपरके स्वर्गमे जघन्य आयु है । शेषका विशेष व्याख्यान त्रिलोकसार आदि मे से जानना ।

विशेषः—आदि-मध्य-अत रहित, शुद्ध-बुद्ध एक स्वभाव परमात्मामे सकल निर्मल केवलज्ञानरूप नेत्र द्वारा दर्पणमे प्रतिबिंबोके समान, शुद्धात्मा आदि पदार्थ आलोकित होते हैं—दिखलाई देते हैं—ज्ञानः होते हैं—परिच्छिन्न होते हैं अतः इस कारण वही (शुद्धात्मा ही) निश्चयलोक है अथवा उस निश्चयलोक नामक अपने शुद्ध परमात्मामे अवलोकन वह निश्चयलोक है । “सण्णाओ य तिलेस्सा इंदियवसदाय अत्तरुहाणि । णाणं च दुप्पउत्तं मोहो पावप्पदा होंति ॥ (श्री पचास्ति-काय गाथा १४०)

[अर्थः—संज्ञा, तीन लेश्या, इन्द्रियोके वशमे होना, आर्त और रौद्रध्यान, दुष्प्रयुक्त (खोटे कार्यमे जुड़ा हुआ) ज्ञान और मोह—ये सब पाप देने वाले हैं ।]”

कृत्वा समस्तशुभाशुभसंकल्पविकल्पत्यागेन निजशुद्धात्मभावनोत्पन्नपरमाह्लादैकसुखामृत-
रसास्वादानुभवनेन च या भावना सैव निश्चयलोकानुप्रेक्षा । शेषा पुनर्व्यवहारेणेत्येवं
संक्षेपेण लोकानुप्रेक्षाव्याख्यानं समाप्तम् ॥१०॥

अथ बोधिदुर्लभानुप्रेक्षां कथयति । तथाहि एकेन्द्रियविकलेन्द्रियपंचेन्द्रियसंज्ञि-
पर्याप्तमनुष्यदेशकुलरूपेन्द्रियपटुत्वनिर्व्याध्यायुष्करबुद्धिसद्धर्मश्रवणग्रहणधारणश्रद्धानसंयम-
विषयसुखव्यावर्त्तनक्रोधादिकषायनिवर्त्तनेषु परं परं दुर्लभेषु कथंचित् काकतालीयन्यायेन
लब्धेष्वपि तल्लब्धिरूपबोधेः फलभूतस्वशुद्धात्मसंवित्यात्मकनिर्मलधर्मध्यानशुक्लध्यान-

इस गाथामे कथित विभावपरिणामसे प्रारभ करके समस्त शुभाशुभ संकल्प-विकल्प
त्यागकर, निज शुद्धात्मभावनासे उत्पन्न परम आह्लादरूप एक सुखामृतके रसास्वादके
अनुभवसे जो भावना हो, वही निश्चय लोकानुप्रेक्षा है, शेष व्यवहारसे है ।

इस प्रकार सक्षेपसे लोक-अनुप्रेक्षाका व्याख्यान समाप्त हुआ ॥१०॥

अब, बोधिदुर्लभ^१ अनुप्रेक्षा कहते हैं—एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, पचेन्द्रिय,
सज्ञी, पर्याप्त, मनुष्य, उत्तमदेश, उत्तमकुल, सुन्दररूप, इन्द्रियोकी पूर्णता, निरोगपना,
लबी आयु, उत्तमबुद्धि, सत्धर्मका श्रवण, ग्रहण, धारण तथा श्रद्धान, संयम, विषय
सुखसे छूटना और क्रोधादि कषायोकी निवृत्ति—ये सब उत्तरोत्तर दुर्लभ है ।
कदाचित् काकतालीय न्यायसे ये सब प्राप्त होने पर भी उनकी प्राप्तिरूप 'बोधि'
के फलभूत ऐसी स्वशुद्धात्माके सवेदनात्मक^२ निर्मल धर्मध्यान-शुक्लध्यानरूप परम
समाधि दुर्लभ है ।

१ बोधि दुर्लभ अनुप्रेक्षाके सबधमे श्री जयचदजी पंडित कृत 'वारह भावना' ग्रन्थमे कहा है कि-
बोधि आपका भाव है निश्चय दुर्लभ नाहि ।

भवमे प्राप्ति कठिन है यह व्यवहार कहाहि ॥ (बोधि दुर्लभ)

अर्थ—बोधि (ज्ञान) आत्माका स्वभाव है, अतः वह निश्चयसे दुर्लभ नहीं है । ससारमे
आत्मज्ञान (बोधि) को दुर्लभ तो व्यवहारनयसे कहा गया है । (देखो, वीतराग विज्ञान
पाठमाला भाग १ पृ० ३६ श्री टोडरमल स्मारक भवन, जयपुरसे प्रसिद्ध-प्रकाशित)

२ श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव द्वादशानुप्रेक्षा गाथा ८४ मे कहते हैं :—“कर्मोदयसे उत्पन्न पर्यायिके
कारण क्षायोपशमिक ज्ञान हेय है तथा निज आत्मद्रव्य उपादेय है ऐसा निश्चय होना वह
सम्यग्ज्ञान है ।”

तथा गाथा ८६ मे कहते हैं कि :—“इस प्रकारसे स्वद्रव्य तथा परद्रव्यका चितवन
करनेसे हेय उपादेयका ज्ञान होता है, परन्तु निश्चयनयमे हेय-उपादेयका विकल्प नहीं है ।
मुनियोको ससारका विराम करनेके लिये बोधिका चितवन करना चाहिये ।” (बोधि दुर्लभ
भावना)

रूपः परमसमाधिदुर्लभः । कस्मादिति चेत्तत्प्रतिबन्धकमिथ्यात्वविषयकपायनिदानबन्धादि-
विभावपरिणामानां प्रबलत्वादिति । तस्मात् स एव निरन्तरं भावनीयः । तद्भावना-
रहितानां पुनरपि संसारे पतनमिति । तथा चोक्तम्—“इत्यनिदुर्लभरूपां बोधिं लब्ध्वा
यदि प्रमादी स्यात् । संसृतिभीमारण्ये भ्रमति वराको नरः सुचिरम् ।१।” पुनश्चोक्तं
मनुष्यभवदुर्लभत्वम्—“अशुभपरिणामबहुलता लोकस्य विपुलता, महामहती । योनि-
विपुलता च कुरुते सुदुर्लभां मानुषीं योनिम् । १ ।” बोधिसमाधिलक्षणं कथ्यते—
सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणामप्राप्तप्रापणं बोधिस्तेषामेव निर्विघ्नेन भवान्तरप्रापणं समाधि-
रिति । एवं संक्षेपेण दुर्लभानुप्रेक्षा समाप्ता ॥ ११ ॥

अथ धर्मानुप्रेक्षां कथयति । तद्यथा—संसारे पतन्तं जीवमुद्धृत्य नागेन्द्र-
नरेन्द्रदेवेन्द्रादिवन्द्ये अव्याबाधानंतसुखाद्यनंतगुणलक्षणे मोक्षपदे धरतीति धर्मः । तस्य

प्रश्न—परमसमाधि दुर्लभ किस प्रकार है ?

समाधान—उसे (परमसमाधिको) रोकनेवाले मिथ्यात्व, विषय, कषाय,
निदानबध आदि विभाव परिणामोंका (जीवमें) प्रबलपना है अतः (परमसमाधि
दुर्लभ है ।) अतः वह (परमसमाधि) ही निरन्तर भावना करने योग्य है । उस
भावनासे रहित जीवोंका पुनः पुनः संसारमे पतन होता है । कहा है :—“जो मनुष्य
अत्यन्त दुर्लभ ऐसी ‘बोधि’ को प्राप्तकर भी प्रमादी होता है तो वह बेचारा
संसाररूपी भयकर वनमें लम्बे समय तक भ्रमण करता है ।”

तथा मनुष्यभवकी दुर्लभताके विषयमे कहा है—^२“अशुभ परिणामोकी
बहुलता, संसारकी विशालता, योनियोकी अत्यन्त विपुलता—यह सब मनुष्य
योनिको बहु दुर्लभ करते है ॥१॥”

अब बोधि और समाधिका लक्षण कहते है । प्राप्त नही किये हुए
सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्रकी प्राप्ति करना वह बोधि है और उनको
(सम्यग्दर्शनादिको) ही निर्विघ्नरूपसे अन्य भवमे साथ ले जाना वह समाधि
है । इस प्रकार संक्षेपमें (बोधि) दुर्लभ अनुप्रेक्षा समाप्त हुई ॥११॥

अब धर्म अनुप्रेक्षा कहते है । वह इस प्रकार है—संसारमें गिरते हुए
जीवका उद्धार करके नागेन्द्र, चक्रवर्ती, देवेन्द्र आदिसे पूज्य, अव्याबाध अनंत

१. परमात्मप्रकाश गाथा ६ टीका

२ अज्ञात शास्त्र

च भेदाः कथ्यन्ते—अहिंसालक्षणः सागारानगारलक्षणो वा उत्तमक्षमादिलक्षणो वा निश्चयव्यवहाररत्नत्रयात्मको वा शुद्धात्मसंवित्यात्मकमोहक्षोभरहितात्मपरिणामो वा धर्मः । अस्य धर्मस्यालाभेऽतीतानन्तकाले “णिच्चिदरधाउसत्त य तरुदस वियलेंदियेसु छच्चेव । सुरणिरयतिरियचउरो चउदस मणुयेसु सदसहस्सा ।१।” इति गाथाकथित-चतुरशीतियोनिलक्षेषु मध्ये परमस्वास्थ्यभावनोत्पन्ननिर्व्याकुलपारमार्थिकसुखविलक्षणानि पञ्चेन्द्रियसुखाभिलाषजनितव्याकुलत्वोत्पादकानि दुःखानि सहमानः सन् भ्रमितोऽयं जीवः । यदा पुनरेवंगुणविशिष्टस्य धर्मस्य लाभो भवति तदा राजाधिराजार्द्धमाण्डलिक-महामाण्डलिकबलदेववासुदेवकामदेवसकलचक्रवर्तिदेवेन्द्रगणधरदेवतीर्थकरपरमदेव प्रथम-कल्याणत्रयपर्यन्तं विविधाभ्युदयसुखं प्राप्य पश्चाद्भेदरत्नत्रयभावनावलेनाक्षयानतसुखादि-

सुखादि अनन्त गुणोरूप लक्षणवाले मोक्षपदमे जो धरता है वह धर्म है । उस धर्मके भेद कहे जाते हैं । अहिंसा लक्षणयुक्त, गृहस्थ^१ और मुनिरूप लक्षणयुक्त, उत्तमक्षमादि लक्षणयुक्त, निश्चय-व्यवहार रत्नत्रयात्मक अथवा शुद्धात्माके सवेदनरूप मोह-क्षोभ रहित आत्माका परिणाम धर्म है । इस धर्मकी प्राप्ति नहीं होनेसे अनन्त भूतकालमें “णिच्चिदरधाउसत्त य तरुदस वियलेंदियेसु छच्चेव । सुरणिरयतिरियचउरो चउदस मणुयेसु सदसहस्सा ॥ [अर्थः—वनस्पतिमे सात लाख, नित्य तथा इतर निगोद वनस्पतिमे सात-सात लाख, पृथ्वीकायमे सात लाख, जलकायमें सात लाख, तेजकायमे सात लाख, वायुकायमे सात लाख, प्रत्येक वनस्पतिमे दस लाख, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रियमे दो-दो लाख, देव-नारकी और तिर्यंचमें चार-चार लाख तथा मनुष्योमे चौदह लाख]”—इस प्रकार इस गाथामें^२ कहे अनुसार चौरासी लाख योनियो मे, परम स्वास्थ्यभावनासे उत्पन्न निर्व्याकुल पारमार्थिकसुखसे विपरीत पचेन्द्रिय सुखकी अभिलाषासे उत्पन्न व्याकुलताको उत्पन्न करने वाले दु खोंको सहन करते हुए इस जीवने भ्रमण किया है । जब जीवको इस प्रकारके विशिष्ट गुण वाले धर्मकी प्राप्ति होती है तब राजाधिराज, अर्धमांडलिक, महामांडलिक, बलदेव, वासुदेव, कामदेव, चक्रवर्ती, देवेन्द्र, गणधर देव और तीर्थकर परमदेवके पद तथा तीर्थकरके प्रथम तीन कल्याणकों (गर्भ,

१ श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव धर्म अनुप्रेक्षा गाथा ८२ मे कहते हैं :—“निश्चयनयसे जीव गृहस्थ-धर्म और मुनिधर्मसे भिन्न है, अतः दोनो धर्मोमे मध्यस्थ भावना रखकर निरन्तर शुद्ध आत्माका चितवन करना ।”

२. श्री गोम्मटसार जीवकांड गाथा—८६

गुणास्पदमर्हत्पदं सिद्धपदं च लभते । तेन कारणेन धर्म एव परमरसरसायनं निधिनिधानं कल्पवृक्षः कामधेनुश्चिन्तामणिरिति । किं बहुना, ये जिनेश्वरप्रणीतं धर्मं प्राप्य दृढमतयो जातास्त एव धन्याः । तथा चोक्तम् “धन्या ये प्रतिबुद्धा धर्मे खलु जिनवरैः समुपदिष्टे । ये प्रतिपन्ना धर्मं स्वभावनोपस्थितमनीषाः ॥१॥” इति संक्षेपेण धर्मानुप्रेक्षा समाप्ता ॥१२॥

इत्युक्तलक्षणा अनित्याशरणसंसारैकत्वान्यत्वाशुचित्वास्रवसंवरनिर्जरालोकबोधिदुर्लभधर्मतत्त्वानुचिन्तनसंज्ञा निरास्रवशुद्धात्मतत्त्वपरिणतिरूपस्य संवरस्य कारणभूता द्वादशानुप्रेक्षाः समाप्ताः ।

अथ परीषहजयः कथ्यते—क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशमशकनाग्न्यारतिस्वीचर्यानिषद्याशय्याऽऽक्रोशवधयाचनालाभरोगतृणस्पर्शमलसत्कारपुरस्कारप्रज्ञाऽज्ञानादर्शनानीति

जन्म और तप) तकके विविध प्रकारके वैभवके सुख प्राप्त कर, तत्पश्चात् अभेद रत्नत्रयकी भावनाके बलसे अक्षय अनंत सुखादि गुणोंके स्थानभूत अर्हत्पद और सिद्धपदको प्राप्त करता है । इस कारण धर्म ही परम रसका रसायन, निधियोंका निधान, कल्पवृक्ष, कामधेनु और चिन्तामणि है । विशेष क्या कहना ? जो जिनेन्द्रदेव द्वारा कथित धर्मको प्राप्त कर दृढ श्रद्धावान् (सम्यक्दृष्टि) हुए है वे ही धन्य है । कहा भी है कि “धन्या ये प्रतिबुद्धा धर्मे खलु जिनवरैः समुपदिष्टे । ये प्रतिपन्ना धर्मं स्वभावनोपस्थितमनीषाः ॥” [अर्थः—जिनवरो द्वारा सम्यक् प्रकारसे उपदेशित धर्मसे जिन्होंने प्रतिबोध प्राप्त किया है वे वास्तवमे धन्य है और जिन्होंने स्वभावनामे अपनी बुद्धि जोडकर (लगाकर) धर्म प्राप्त किया है उनको धन्य है ।]”

इस प्रकार संक्षेपमे धर्म-अनुप्रेक्षा समाप्त हुई ॥१२॥

इस प्रकार पूर्वोक्त लक्षणवाली अनित्य, अशरण, ससार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचित्व, आस्रव, सवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ और धर्मतत्त्वके चितनरूप सज्ञावाली, आस्रव रहित शुद्धात्मतत्त्वमे परिणतिरूप सवरके कारणभूत बारह अनुप्रेक्षाये समाप्त हुई ।

अब परीषह जयका कथन करते हैं—क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण, दश-मशक, नग्नपना, अरति, स्त्री, गमन, आसन, शय्या, आक्रोश, वध, याचना, अलाभ, रोग, तृणस्पर्श, मल, सत्कार-पुरस्कार, प्रज्ञा, अज्ञान और अदर्शन—ये बाईस परीषह

द्वाविंशतिपरीषहा विज्ञेयाः । तेषां क्षुधादिवेदनानां तीव्रोदयेऽपि सुखदुःखजीवितमरण-
लाभालाभनिंदाप्रशंसादिसमतारूपपरमसामायिकेन नवतरशुभाशुभकर्मसंवरणचिरंतनशुभा-
शुभकर्मनिर्जरणसमर्थेनायं निजपरमात्मभावनासंजातनिर्विकारनित्यानंदलक्षणसुखामृत-
संविचोरचलनं स परीषहजय इति ।

अथ चारित्र कथयति ! शुद्धोपयोगलक्षणनिश्चयरत्नत्रयपरिणते स्वशुद्धात्म-
स्वरूपे चरणमवस्थानं चारित्रम् । तच्च तारतम्यभेदेन पञ्चविधम् । तथाहि—सर्वे
जीवाः केवलज्ञानमया इति भावनारूपेण समतालक्षणं सामायिकम्, अथवा परम-
स्वास्थ्यबलेन युगपत्समस्तशुभाशुभसकल्पविकल्पत्यागरूपसमाधिलक्षणं वा, निर्विकार-
स्वसंवित्तिबलेन रागद्वेषपरिहाररूपं वा, स्वशुद्धात्मानुभूतिबलेनार्तारौद्रपरित्यागरूपं वा,
समस्तसुखदुःखादिमध्यस्थरूपं चेति । अथ छेदोपस्थापनं कथयति—यदा युगपत्समस्त-
विकल्पत्यागरूपे परमसामायिके स्थातुमशक्तोऽयं जीवस्तदा समस्तहिंसानृतस्तेया-
ब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्ब्रतमित्यनेन पञ्चप्रकारविकल्पभेदेन व्रतच्छेदेन रागादिविकल्प-

जानना । उन क्षुधादि वेदनाओका तीव्र उदय होने पर भी, सुख-दुःख, जीवन-मरण,
लाभ-अलाभ, निंदा-प्रशंसा आदिमे समतारूप परम सामायिक द्वारा—कि जो
(परम-सामायिक) नये शुभाशुभ कर्मोंका सवर करनेमे और पूर्व शुभाशुभ
कर्मोंकी निर्जरा करनेमे समर्थ है उसके द्वारा—निज परमात्मभावनासे उत्पन्न
निर्विकार, नित्यानंदलक्षण सुखामृतके अनुभवमेसे चलित न होना वह परीषहजय है ।

अब, चारित्रका कथन करते हैं—शुद्धोपयोगलक्षण निश्चयरत्नत्रयमयी
परिणतिरूप निजशुद्धात्मस्वरूपमे जो चरना-स्थिति करना वह चारित्र है । वह
तारतम्यभेदसे पाच प्रकारका है । वह इस प्रकार—सर्व जीव केवलज्ञानमय है
ऐसी भावनासे जो समतारूप परिणाम वह सामायिक है अथवा परम स्वास्थ्यके
बलसे युगपत् समस्त शुभाशुभ सकल्प-विकल्पोंके त्यागरूप समाधि जिसका लक्षण
है वह सामायिक है अथवा निर्विकार स्वसवेदनके बलसे रागद्वेषके परिहाररूप
सामायिक है अथवा निजशुद्धात्माके अनुभवके बलसे आर्त और रौद्रध्यानके
परित्यागरूप सामायिक है अथवा समस्त सुख-दुःखादिमें मध्यस्थभावरूप
सामायिक है ।

अब, छेदोपस्थापनका कथन करते हैं : जब एक साथ समस्त विकल्पोंके
त्यागरूप परम सामायिकमें स्थित होनेमे यह जीव अशक्त होता है, तब 'समस्त
हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्म और परिग्रह से विरति वह व्रत है'—इसप्रकार इस
पाच प्रकारके विकल्पभेद द्वारा-व्रतरूप छेद द्वारा रागादि विकल्परूप सावद्योसे

रूपसावद्येभ्यो निवर्त्य निजशुद्धात्मन्यात्मानमुपस्थापयतीति' छेदोपस्थापनम् । अथवा छेदे व्रतखण्डे सति निर्विकारस्वसंविच्चिरूपनिश्चयप्रायश्चित्तेन तत्साधकबहिरंग-व्यवहारप्रायश्चित्तेन वा स्वात्मन्युपस्थापनं छेदोपस्थापनमिति । अथ परिहारविशुद्धिं कथयति—“तीसं वासो जम्मे वासपुहचं खु तित्थयरमूले । पच्चक्खाणं पढिदो संज्भूण दुगाउ य विहारो ॥१॥” इति गाथाकथितक्रमेण मिथ्यात्वरागादिविकल्पमलानां प्रत्याख्यानेन परिहारेण विशेषेण स्वात्मनः शुद्धिनैर्मल्यं परिहारविशुद्धिचारित्रमिति । अथ सूक्ष्मसाम्परायचारित्रं कथयति । सूक्ष्मातीन्द्रियनिजशुद्धात्मसंविच्चिवलेन सूक्ष्मलोभा-भिधानसाम्परायस्य कषायस्य यत्र निरवशेषोपशमनं क्षपणं वा तत्सूक्ष्मसाम्पराय-चारित्रमिति । अथ यथाख्यातचारित्रं कथयति—यथा सहजशुद्धस्वभावत्वेन निष्कम्प-त्वेन निष्कषायमात्मस्वरूपं तथैवाख्यातं कथितं यथाख्यातचारित्रमिति ।

इदानीं सामायिकादिचारित्रपञ्चकस्य गुणस्थानस्वामित्वं कथयति । प्रमत्ता-

अपनेको निवृत्त करके निजशुद्धात्मामे स्वयको स्थापित करता है वह छेदोपस्थापन है अथवा छेद अर्थात् व्रतका भग होनेपर निर्विकार स्वसवेदनरूप निश्चय-प्रायश्चित्तसे अथवा उसके साधक बहिरंग व्यवहार-प्रायश्चित्तसे अपने आत्मामे स्थित होना वह छेदोपस्थापन है । अब, परिहारविशुद्धिका कथन करते हैं : “तीसं वासो जम्मे वासपुहचं खु तित्थयरमूले । पच्चक्खाणं पढिदो संज्भूण दुगाउ य विहारो ॥’ [अर्थः—जो जन्मसे तीस वर्ष सुखमे व्यतीत करके, वर्ष पृथक्त्व (आठ वर्ष) तक तीर्थकरके चरणोमे प्रत्याख्यान नामक नवम् पूर्व पढकर, तीनों संध्याकालके अतिरिक्त समयमें प्रतिदिन दो कोस गमन करता है]”—इस गाथामे कथित क्रम अनुसार मिथ्यात्व, राग आदि विकल्पमलोके प्रत्याख्यानसे—‘परिहारसे’ अपने आत्माकी जो विशेषरूपसे ‘शुद्धि’ अर्थात् निर्मलता है वह परिहारविशुद्धि चारित्र है ।

अब, सूक्ष्मसापराय चारित्रका कथन करते हैं.—सूक्ष्म अतीन्द्रिय निज-शुद्धात्मसवेदनके बलसे सूक्ष्मलोभ नामक सापरायका-कषायका जहाँ पूर्णरूपसे उपशम अथवा क्षय होता है वह सूक्ष्मसापराय चारित्र है ।

अब, यथाख्यात चारित्रका कथन करते हैं—‘यथा’ अर्थात् जैसा, सहज शुद्धस्वभावपनेके कारण, निष्कपपनेके कारण, निष्कषाय (कषाय रहित) आत्माका स्वरूप है वैसाही जो ‘आख्यात’ अर्थात् कहा गया है वह यथाख्यात चारित्र है ।

अब, सामायिकादि पाच प्रकारके चारित्रका गुणस्थान स्वामित्व कहते हैं—

प्रमत्तापूर्वानिवृत्तिसंज्ञगुणस्थानचतुष्टये सामायिकचारित्रं भवति छेदोपस्थापनं च, परिहार-विशुद्धिस्तुप्रमत्ताप्रमत्तगुणस्थानद्वये, सूक्ष्मसांपरायचारित्रं पुनरेकस्मिन्नेव सूक्ष्मसाम्पराय-गुणस्थाने, यथाख्यातचारित्रमुपशान्तकषायक्षीणकषायसयोगिजिनायोगिजिनाभिधान-गुणस्थानचतुष्टये भवतीति । अथ संयमप्रतिपक्षं कथयति—संयमासंयमसंज्ञं दार्शनिकाद्यैका-दशभेदभिन्नं देशचारित्रमेकस्मिन्नेव पञ्चमगुणस्थाने ज्ञातव्यम् । असंयमस्तु मिथ्या-दृष्टिसासादनमिश्राविरतसम्यग्दृष्टिसंज्ञगुणस्थानचतुष्टये भवति । इति चारित्रव्याख्यानं समाप्तम् ।

एवं व्रतसमितिगुप्तिधर्मद्वादशानुप्रेक्षापरीपहजयचारित्राणां भावसंवरकारण-भूतानां यद्व्याख्यानं कृतं, तत्र निश्चयरत्नत्रयसाधकव्यवहाररत्नत्रयरूपस्य शुभोप-योगस्य प्रतिपादकानि यानि वाक्यानि तानि पापास्रवसंवरणानि ज्ञातव्यानि । यानि तु व्यवहाररत्नत्रयसाध्यस्य शुद्धोपयोगलक्षणनिश्चयरत्नत्रयस्य प्रतिपादकानि तानि

प्रमत्त, अप्रमत्त, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण नामक चार गुणस्थानोंमें सामायिकचारित्र और छेदोपस्थापन चारित्र होता है । परिहारविशुद्धि चारित्र प्रमत्त और अप्रमत्त—इन दो गुणस्थानोंमें होता है । सूक्ष्मसांपराय चारित्र एक सूक्ष्मसांपराय (दसवे) गुणस्थानमेंही होता है । यथाख्यात चारित्र उपशान्त-कषाय, क्षीणकषाय, सयोगीजिन और अयोगीजिन नामक चार गुणस्थानोंमें होता है ।

अब, संयमके प्रतिपक्षका कथन करते हैं । दार्शनिक आदि ग्यारह प्रतिमाओंके भेदयुक्त, संयमासंयम नामक देशचारित्र—पाचवे गुणस्थानमें ही जानना । मिथ्या-दृष्टि, सासादन, मिश्र और अविरत सम्यग्दृष्टि नामक चार गुणस्थानोंमें असंयम होता है । इस प्रकार चारित्रका व्याख्यान समाप्त हुआ ।

इसप्रकार व्रत, समिति, गुप्ति, धर्म, वारह अनुप्रेक्षा, परिपहजय और चारित्ररूप भावसंवरके कारणोंका जो व्याख्यान किया उसमें निश्चयरत्नत्रयके साधक व्यवहार-रत्नत्रयरूप शुभोपयोगके प्रतिपादन करनेवाले जो वाक्य हैं उन्हें पापास्रवके संवरके कारण जानना और जो व्यवहार-रत्नत्रयसे साध्य शुद्धोपयोग

१. व्यवहार कारण हैं । निश्चयनयसे त्रिकाल शुद्ध आत्माके आश्रयसे उत्पन्न शुद्धता पापके संवररूप है । (देखो, श्री पचास्तिकाय गाथा १८१ टीका)

पुण्यपापद्वयसंवरकारणानि भवन्तीति ज्ञातव्यम् । अत्राह सोमनामराजश्रेष्ठी—भगवन्नेतेषु व्रतादिसंवरकारणेषु मध्ये संवरानुप्रेक्षैव सारभूता, सा चैव संवरं करिष्यति किं विशेषप्रपञ्चेनेति । भगवानाह—त्रिगुप्तिलक्षणनिर्विकल्पसमाधिस्थानां यतीनां तयैव पूर्यते तत्रासमर्थानां पुनर्बहुप्रकारेण संवरप्रतिपक्षभूतो मोहो विजृम्भते, तेन कारणेन व्रतादि-विस्तरं कथयन्त्याचार्याः “असिदिसदं किरियाणं अक्किरियाणं तु होइ चुलसीदी । सत्तट्टी अण्णाणीणं वेणइयाणं हुंति वत्तीसं ।१। जोगा पयडिपदेसा ठिदिअणुभागा कसायदो हुंति । अपरिणदुच्छिण्णोसु य बंधो ठिदिकारणं णत्थि ।२।” ॥३५॥ एवं संवरतत्त्वव्याख्याने सूत्रद्वयेन तृतीयं स्थलं गतम् ।

लक्षण वाले निश्चयरत्नत्रयका प्रतिपादन करने वाले वाक्य है उन्हें पुण्य-पाप इन दोनोके सवरके कारण जानना^१ ।

यहा सोम नामक राजश्रेष्ठी कहता है कि हे भगवान् ! इन व्रतादि संवरके कारणोमे सवर-अनुप्रेक्षा ही सारभूत है, वही सवर करेगी, तो फिर विशेष विस्तारसे क्या लाभ ? भगवान् नेमिचन्द्र आचार्य कहते हैं—त्रिगुप्तिलक्षणयुक्त निर्विकल्प समाधिमे स्थित मुनियोंको उससे ही (सवर अनुप्रेक्षासे ही) संवर हो जाता है परन्तु उसमे असमर्थ जीवोको अनेक प्रकारसे सवरका प्रतिपक्षी ऐसा मोह उत्पन्न होता है इस कारण आचार्य व्रतादिका विस्तार-कथन करते हैं । “असिदिसदं किरियाणं अक्किरियाणं तु होइ चुलसीदी । सत्तट्टी अण्णाणीणं वेणइयाणं हुंति वत्तीसं ॥^२ [अर्थः—क्रियावादियोंके एकसौ अस्सी, अक्रियावादियोंके चौरासी, अज्ञानियोंके सड़सठ और वैनयिकोंके बत्तीस, इसप्रकार पाखंडियोंके कुल तीनसौ तरेसेठ भेद है ।]” “जोगा पयडिपदेसा ठिदि अणुभागा कसायदो हुंति । अपरिणदुच्छिण्णोसु य बंधो ठिदिकारणं णत्थि ॥^३ [अर्थः—योगसे प्रकृति और प्रदेश तथा कषायसे स्थिति और अनुभागबध होता है, जिनको कषायका उदय नहीं है तथा कषायोका क्षय हुआ है उनको (उपशान्तकषाय, क्षीणकषाय और सयोगी-केवलीको) तत्कालबध (एकसमयका बध) स्थितिका कारण नहीं है ।]” ॥३५॥

इसप्रकार सवरतत्त्वके व्याख्यानमे दो सूत्रों द्वारा तृतीय स्थल पूर्ण हुआ ।

१ देखो, श्री पचास्तिकाय गाथा १४२ टीका

२. श्री गोम्मटसार कर्मकांड गाथा ८७६

३. श्री गोम्मटसार कर्मकांड गाथा २५७

अथ सम्यग्दृष्टिजीवस्य संवरपूर्वकं निर्जरातत्त्वं कथयतिः—

जह कालेण तवेण य भुत्तरसं कम्मपुग्गलं जेण ।

भावेण सडदि शेया तस्सडणं चेदि णिज्जरा दुविहा ॥३६॥

यथाकालेन तपसा च भुत्तरसं कम्मपुद्गलं येन ।

भावेन सडति शेया तत्सडनं चेति निर्जरा द्विविधा ॥३६॥

व्याख्या :—“शेया” इत्यादिव्याख्यानं क्रियते—“शेया” ज्ञातव्या । का ? “णिज्जरा” भाव निर्जरा । सा का ? निर्विकारपरमचैतन्यचित्त्वमत्कारानुभूतिसञ्जात-सहजानन्दस्वभावसुखामृतरसास्वादरूपो भाव इत्यध्याहारः । “जेण भावेण” येन भावेन जीवपरिणामेन । किं भवति “सडदि” विशीर्यते पतति गलति विनश्यति । किं

अब, सम्यग्दृष्टि जीवको संवर पूर्वक निर्जरातत्त्व कहते हैं—

गाथा-३६

गाथार्थः—(आत्माके) जिस भावसे यथासमय अथवा तप द्वारा फल देकर कर्म पुद्गल नष्ट होते हैं उसे निर्जरा (भावनिर्जरा) जानना तथा कर्म पुद्गलोका नष्ट होना उसे निर्जरा (द्रव्यनिर्जरा) जानना । इसप्रकार निर्जरा दो प्रकारकी है ।

टीकाः—“शेया” आदि सूत्रका व्याख्यान करते हैं . “शेया”—जानना । क्या ? “णिज्जरा”—भाव निर्जरा । वह कौनसी ? निर्विकार परम चैतन्यरूप चित्त्वमत्कारके अनुभवसे उत्पन्न सहजानन्द जिसका स्वभाव है ऐसे सुखामृत रसके आस्वादरूप भाव—वह भावनिर्जरा है । “जेण भावेण”—जिस भावसे—जीवके परिणामसे । क्या होता है ? “सडदि” जीर्ण होता है—गिर जाता है—गल जाता है—नष्ट होता है । कौन (नष्ट होता है) ? “कम्मपुग्गलं” कर्मरूपी शत्रुओको नष्ट करने वाले

१ चौथे गुणस्थानसे भावनिर्जरा प्रारम्भ होती है अतः उस गुणस्थानसे निर्विकार चैतन्यरूप चित्त्वमत्कारके अनुभवसे उत्पन्न सहजानन्दमय सुखामृत होता है ऐसा समझना । श्री जयसेनाचार्य श्री पचास्तिकाय गाथा १६३ की टीकामें कहते हैं कि ‘उस अनत सुखको भव्य जीव जानता है, उपादेयरूपसे श्रद्धा करता है और अपने-अपने गुणस्थान अनुसार अनुभव करता है ।’ (देखो, गुजराती पचास्तिकाय पृ० २३६)

जथा काल अर तप-परभाव, कर्म निर्जरै रस दे जाय ।

जिनि भावनितै होय सुभाव, कर्म झडै, इम दोय गिनाव ॥३६॥

कर्तृ ? “कम्मपुग्गलं” कर्मारिविध्वंसकस्वकीयशुद्धात्मनो विलक्षणं कर्मपुद्गलद्रव्यं । कथंभूतं ? “भुत्तरसं” स्वोदयकालं प्राप्य सांसारिकसुखदुःखरूपेण भुत्तरसं दत्तफलं । केन कारणभूतेन गलति ? “जहकालेण” स्वकालपच्यमानाम्रफलवत्सविपाकनिर्जरापेक्षया, अभ्यन्तरे निजशुद्धात्मसंवित्तिपरिणामस्य बहिरंगसहकारिकारणभूतेन काललब्धिसंज्ञेन यथाकालेन, न केवलं यथाकालेन “तवेण य” अकालपच्यमानानाम्रादिफलवदविपाकनिर्जरापेक्षया, अभ्यन्तरेण समस्तपरद्रव्येच्छानिरोधलक्षणेन बहिरंगेणान्तस्तत्त्वसंवित्तिसाधकसंभूतेनानशनादिद्वादशविधेन तपसा चेति । “तस्सडणं” कर्मणो गलनं यच्च सा द्रव्यनिर्जरा । ननु पूर्वं यदुक्तं “सडदि” तेनैव द्रव्यनिर्जरा लब्धा, पुनरपि, “सडणं” किमर्थं भणितम् ? तत्रोत्तरम्—तेन सडदिशब्देन निर्मलात्मानुभूतिग्रहणभावनिर्जराभिधानपरिणामस्य सामर्थ्यमुक्तं, न च द्रव्यनिर्जरेति । “इदि दुविहा” इति द्रव्यभावरूपेण निर्जरा द्विविधा भवति ।

अत्राह शिष्यः—सविपाकनिर्जरा नरकादिगतिष्वज्ञानिनामपि दृश्यते संज्ञा-

अपने शुद्धात्मासे विपरीत कर्मरूपी पुद्गल द्रव्य । कैसा होकर ? “भुत्तरसं” अपने उदयका काल प्राप्त होने पर जीवको सासारिक सुख अथवा दुःखरूप फल देकर । किस कारणसे गलता है ? “जहकालेण” अपने समय पर पकनेवाले आमकी भांति सविपाक निर्जराकी अपेक्षासे अतरगमे निज शुद्धात्माके अनुभवरूप परिणामके बहिरंग सहकारी कारणभूत काललब्धिरूप यथासमय पर (निर्जरित होता है) । मात्र यथासमय पर ही नहीं निर्जरित होता किन्तु “तवेण य” अकालमे पकने वाले आमकी भांति अविपाक निर्जराकी अपेक्षासे तपसे भी निर्जरित होता है—कि जो तप समस्त परद्रव्योकी इच्छाके निरोधरूप अभ्यन्तर होता है और अंतःतत्त्वके, सवेदनके साधनभूत अनशन आदि बारह प्रकारका बहिरंग होता है । “तस्सडणं” कर्मका जो गलना वह द्रव्य-निर्जरा है ।

शंकाः—पहले जो “सडदि” कहा था उसीसे द्रव्य-निर्जराका कथन हो गया, तो फिर पुन “सडणं” शब्द किसलिये कहा है ?

समाधानः—पहले जो “सडदि” शब्द कहा था उसके द्वारा निर्मल आत्माके अनुभवका ग्रहण करनेवाले भावनिर्जरा नामक परिणामके सामर्थ्यका कथन किया था, द्रव्य-निर्जराका नहीं । “इदि दुविहा” इसप्रकार द्रव्य और भावरूप निर्जरा दो प्रकार है ।

यहा शिष्य पूछता है—सविपाकनिर्जरा नरकादि गतियोंमें अज्ञानियोको

निनामेवेति नियमो नास्ति । तत्रोत्तरम्—अत्रैवमोक्षकारणं या संवरपूर्विका निर्जरा सैव ग्राह्या । या पुनरज्ञानिनां निर्जरा सा गजस्नानवन्निष्फला । यतः स्तोकं कर्म निर्जरयति बहुतरं बध्नाति, तेन कारणेन सा न ग्राह्या । या तु सरागसद्दृष्टीनां निर्जरा सा यद्यप्यशुभकर्मविनाशं करोति तथापि संसारस्थितिं स्तोकां कुरुते । तद्भवे तीर्थकर-प्रकृत्यादिविशिष्टपुण्यबन्धकारणं भवति पारम्पर्येण मुक्तिकारणं चेति । वीतरागसद्दृष्टीनां पुनः पुण्यपापद्वयविनाशे तद्भवेऽपि मुक्तिकारणमिति । उक्तं च श्री कुन्दकुन्दाचार्य-देवैः “जं अण्णाणी कम्मं खवेदि भवसदसहस्सकोडीहिं । तं णाणी तिहिं गुत्तो खवेदि उस्सासमेत्तेण ।१।” कश्चिदाह—सद्दृष्टीनां वीतरागविशेषणं किमर्थं, “रागा-दयो हेयो, मदीया न भवन्ति” इति भेदविज्ञाने जाते सति रागानुभवेऽपि ज्ञान-मात्रेण मोक्षो भवतीति । तत्र परिहारः । अन्धकारे पुरुषद्वयम् एकः प्रदीपहस्त-

भी देखी जाती है । वह सम्यग्ज्ञानियोको ही हो ऐसा नियम नहीं है । उसका उत्तर—यहां जो संवरपूर्वककी मोक्षके कारणरूप निर्जरा है वही ग्रहण करना । जो अज्ञानियोकी निर्जरा है वह तो गजस्नानवत् निष्फल है क्योंकि अल्प कर्म खिरता है और वह बहुत अधिक बाधता है इस कारण वह ग्रहण करने योग्य नहीं है । सराग सम्यग्दृष्टियोंकी^१ जो निर्जरा है वह यद्यपि अशुभ कर्मोंका विनाश करती है तो भी संसारकी स्थिति घटाती है, उस भवमें तीर्थकर प्रकृति आदि विशिष्ट प्रकारके पुण्यबन्धका कारण होती है और परम्परासे मोक्षका कारण होती है । वीतराग सम्यग्दृष्टियोंके पुण्य और पाप दोनोंका नाश होनेपर उस भवमे भी मुक्तिका कारण होती है । श्री कुन्दकुन्दाचार्य देवने वही कहा है “अज्ञानी जो कर्म लाख करोड़ भवोंमे नाश करता है वे कर्म, ज्ञानी त्रिगुप्तिमे गुप्त होकर उच्छ्वासमात्रमे नाश करता है ।”^१

कोई कहता है कि सम्यग्दृष्टियोंको^२ ‘वीतराग’ विशेषणका क्या प्रयोजन है ? ‘रागादि हेय है, ये भाव मेरे नहीं हैं’ इसप्रकार भेदविज्ञान होनेपर, उनको रागका अनुभव होने पर भी, ज्ञानमात्रसे मोक्ष हो जाता है । (तो फिर ‘वीतराग’

१. श्री प्रवचनसार गाथा २३८ ।

२. यहां जो सरागसम्यग्दृष्टि कहे हैं उन जीवोंको सम्यग्दर्शन तो यथार्थ ही प्रगट हुआ है परन्तु चारित्र अपेक्षासे उन्हें मुख्यरूपसे रागका अस्तित्व होनेसे उन्हें ‘सराग सम्यग्दृष्टि’ कहा है तथा उनके जो शुभ अनुष्ठान हैं वह मात्र उपचारसे ही ‘निश्चय साधक (निश्चयका साधनभूत) कहा गया है ऐसा समझना । (देखो ‘श्री पचास्तिकाय संग्रह’ पृष्ठ २५७-२५८ फुटनोट)

स्तिष्ठति, अन्यः पुनरेकः प्रदीपरहितस्तिष्ठति । स च कूपे पतनं सर्पादिकं वा न जानाति, तस्य विनाशे दोषो नास्ति । यस्तु प्रदीपहस्तस्तस्य कूपपतनादिविनाशे प्रदीपफलं नास्ति । यस्तु कूपपतनादिकं त्यजति तस्य प्रदीपफलमस्ति । तथा कोऽपि रागादयो हेया मदीया न भवन्तीति भेदविज्ञानं न जानाति स कर्मणा बध्यते तावत्, अन्यः कोऽपि रागादिभेदविज्ञाने जातेऽपि यावतांशेन रागादिकमनुभवति तावतांशेन सोऽपि बध्यते एव, तस्यापि रागादिभेदविज्ञानफलं नास्ति । यस्तु रागादिभेदविज्ञाने जाते सति रागादिकं त्यजति तस्य भेदविज्ञानफलमस्तीति ज्ञातव्यम् । तथा चोक्तं—“चक्खुस्स दंसणस्स य सारो सप्पादिदोसपरिहार । चक्खू होइ गिरत्थं दट्टूण विले पडंतस्स” ॥३६॥ एवं निर्जराव्याख्याने सूत्रेणैकेन चतुर्थस्थलं गतम् ।

अथ मोक्षतत्त्वमावेदयतिः—

सव्वस्स कम्मणो जो खयहेदू अप्पणो हु परिणामो ।

णोयो स भावमुक्खो दव्वविमुक्खो य कम्मपुहभावो ॥३७॥

विशेषणका क्या प्रयोजन है ?)

समाधानः—अधकारमे दो मनुष्य है, एकके हाथमें दीपक है और दूसरा दीपक रहित है, उस (दीपक रहित) मनुष्यको कुएमे गिरने अथवा सर्पादिका ज्ञान नहीं है अतः उसका विनाश हो तो उसमे उसका दोष नहीं है । परन्तु जिसके हाथमे दीपक है वह कुएमे गिरने आदिसे विनाशको प्राप्त हो तो उसे दीपकका फल प्राप्त नहीं हुआ । जो कुए मे गिरने आदिसे बचता है उसे दीपक रखनेका फल है । उसीप्रकार कोई भी जीव ‘रागादि हेय है, मेरे भाव नहीं है’ इसप्रकार भेदविज्ञान नहीं जानता है तबतक तो वह कर्मसे बंधता है और अन्य कोई जीव रागादिसे भेदविज्ञान होने पर भी जितने अशमे रागादिका अनुभव करता है उतने अशमे वह भी बंधता ही है, उसे भी रागादिके भेदविज्ञानका फल नहीं है । जो रागादिसे भेदविज्ञान होने पर रागादिका त्याग करता है उसे भेदविज्ञानका फल है ऐसा जानना । वही कहा है—‘चक्षुसे देखनेका फल सर्पादि दोषका त्याग है, देखने पर भी सर्पके बिलमे पड़नेवालेके नेत्र निरर्थक है ।’

इस प्रकार निर्जरातत्त्वके व्याख्यानमे एक सूत्रसे चौथा स्थल पूर्ण हुआ ॥३६॥ अब मोक्षतत्त्वका कथन करते हैं :—

१. श्री भगवती आराधना गाथा १२

सर्व कर्मका क्षयकर भाव, चेतनके हैं मोक्षसुभाव ।

कर्म जीव न्यारे जो होय, द्रव्य-विमोक्ष कहावै सोय ॥३७॥

सर्वस्य कर्मणः यः क्षयहेतुः आत्मनः हि परिणामः ।

ज्ञेयः सः भावमोक्षः द्रव्यविमोक्षः च कर्मपृथग्भावः ॥३७॥

व्याख्या—यद्यपि सामान्येन निश्चयेन निराकृतकर्ममलकलंकस्याशरीरस्यात्मन आत्यन्तिकस्वाभाविकाचिन्त्याद्भुतानुपमसकलविमलकेवलज्ञानाद्यनन्तगुणास्पदमवस्थान्तरं मोक्षो भव्यते तथापि विशेषेण भावद्रव्यरूपेण द्विधा भवतीति वार्तिकम् । तद्यथा—“शेयो न भावमुक्त्वो” शेयो ज्ञातव्यः स भावमोक्षः । स कः ? “अप्पणो हु परिणामो” निश्चय रत्नत्रयात्मककारणसमयसाररूपो “हु” स्फुटमात्मनः परिणामः । कथंभूतः ? “सव्वस्स कम्मणो जो खयहेद्” सर्वस्य द्रव्यभावरूपमोहनीयादिघातिचतुष्टयकर्मणो यः क्षयहेतुरिति । द्रव्यमोक्षं कथयति । “द्रव्यविमुक्त्वो” अयोगिचरमसमये द्रव्यविमोक्षो भवति । कोऽसौ ? “कम्मपुहभावो” टकोत्कीर्णशुद्धबुद्धैकस्वभावपरमात्मन आयुरादिशेषा-घातिकर्मणामपि य आत्यन्तिकपृथग्भावो विश्लेषो विघटनमिति ।

तस्य मुक्तात्मनः सुखं कथ्यते । “आत्मोपादानसिद्धं स्वयमतिशयवद्वीतत्राधं

गाथा-३७

गाथार्थः—जो सर्व कर्मोंके नाशका कारण है ऐसा आत्माका परिणाम उसे भावमोक्ष जानना; कर्मोंका आत्मासे सर्वथा पृथक् होना वह द्रव्यमोक्ष है ।

टीकाः—यद्यपि सामान्यरूपसे संपूर्ण कर्ममल-कलकरहित, शरीररहित आत्माकी आत्यन्तिक, स्वाभाविक, अचिन्त्य, अद्भुत, अनुपम, संपूर्ण-निर्मल केवलज्ञानादि अनन्त गुणोंके स्थानरूप जो अवस्थान्तर (—ऐसी जो विशिष्ट अवस्था) वही मोक्ष कहलाती है, तो भी विशेषरूपसे भाव और द्रव्यके भेदसे वह (मोक्ष) दो प्रकारका है—ऐसा वार्तिक है । वह इसप्रकार है—“शेयो स भावमुक्त्वो” उसे भावमोक्ष जानना । वह कौनसा ? “अप्पणो हु परिणामो” निश्चय रत्नत्रयात्मक कारण समयसाररूप “हु” प्रगट आत्माके परिणाम । कैसा परिणाम ? “सव्वस्स कम्मणो जो खयहेद्”—सर्व द्रव्य-भावरूप मोहनीय आदि चार घातिकर्मोंके नाशका जो कारण है वह ।

द्रव्यमोक्षका कथन करते हैं “द्रव्य विमुक्त्वो” अयोगी गुणस्थानके अतिम समयमे द्रव्यमोक्ष है । वह (द्रव्यमोक्ष) कैसा है ? “कम्मपुहभावो” टकोत्कीर्ण शुद्ध-बुद्ध जिसका एक स्वभाव है ऐसे परमात्मासे, आयु आदि शेष चार अघाति-कर्मोंका भी अत्यन्तरूपसे पृथक् होना—भिन्न होना—छूट जाना वह द्रव्यमोक्ष है ।

उस मुक्तात्माके सुखका वर्णन किया जाता हैः—“आत्माके उपादानसे सिद्ध,

विशालं वृद्धिहासव्यपेतं विषयविरहितं निःप्रतिद्वन्द्वभावम् । अन्यद्रव्यानपेक्षं निरुपमम-
मितं शाश्वतं सर्वकालमुत्कृष्टानंतसारं परमसुखमतस्तस्य सिद्धस्य जातं । १।” कश्चिदाह—
इन्द्रियसुखमेव सुखं, मुक्तात्मनामिन्द्रियशरीराभावे पूर्वोक्तमतीन्द्रियसुखं कथं घटत
इति ? तत्रोत्तरं दीयते—सांसारिकसुखं तावत् स्त्रीसेवनादिपञ्चेन्द्रियविषयप्रभवमेव, यत्पुनः
पञ्चेन्द्रियविषयव्यापाररहितानां निर्व्याकुलचित्तानां पुरुषाणां सुखं तदतीन्द्रियसुखमत्रैव
‘दृश्यते । पञ्चेन्द्रियमनोजनितविकल्पजालरहितानां निर्विकल्पसमाधिस्थानां परमयोगिनां
रागादिरहितत्वेन स्वसंवेद्यमात्मसुखं तद्विशेषेणातीन्द्रियम् । यच्च भावकर्म-द्रव्यकर्म-नोकर्म-
रहितानां सर्वप्रदेशाह्लादैकपारमार्थिकपरमानन्दपरिणतानां मुक्तात्मनामतीन्द्रियसुखं तदत्यन्त-
विशेषेण ज्ञातव्यम् । अत्राह शिष्यः—संसारिणां निरन्तरं कर्मबन्धोस्ति, तथैवोदयो-
ऽप्यस्ति, शुद्धात्मभावनाप्रस्तावो नास्ति, कथं मोक्षो भवतीति ? तत्र प्रत्युत्तरं—यथा
शत्रोः क्षीणावस्थां दृष्ट्वा कोऽपि धीमान् पर्यालोचयत्ययं मम हनने प्रस्तावस्ततः

स्वय अतिशयतायुक्त, बाधारहित, विशाल, वृद्धि और ह्राससे रहित, विषयोसे रहित, प्रतिपक्षभाव रहित, अन्य द्रव्योसे निरपेक्ष, निरुपम, अपार, शाश्वत, सर्वदा उत्कृष्ट तथा अनत-सारभूत परमसुख सिद्धोको होता है ।”

शंकाः—इन्द्रियसुख ही सुख है, सिद्ध जीवोको इन्द्रिय और शरीरका अभाव होनेसे पूर्वोक्त अतीन्द्रिय सुख किस प्रकार हो सकता है ? उसका उत्तर दिया जाता है—सासारिक सुख तो स्त्री सेवनादि पांच इन्द्रियोके विषयोसे ही उत्पन्न होता है, परन्तु पांच इन्द्रियोके विषयोके व्यापार रहित, अव्याकुल चित्तवाले मनुष्योको जो सुख है वह अतीन्द्रिय सुख है, वह यहाँ भी देखा जाता है । पांच इन्द्रिय और मनसे उत्पन्न हुए विकल्पोके जाल रहित, निर्विकल्प समाधिमें स्थित परम योगियोको रागादिका अभाव होनेसे जो स्वसंवेद्य आत्मसुख है वह विशेषरूपसे अतीन्द्रिय सुख है; और जो भावकर्म-द्रव्यकर्म-नोकर्म रहित, आत्माके सर्वप्रदेशोमें आह्लादारूप ऐसे एक पारमार्थिक परमानन्द परिणत मुक्त जीवोको जो अतीन्द्रिय सुख है वह अत्यंत विशेषरूपसे अतीन्द्रिय सुख जानना ।

यहाँ शिष्य कहता है—संसारी जीवोको निरन्तर कर्मोका बध होता है उसी प्रकार कर्मोका उदय भी होता है, शुद्धात्मभावनाका प्रसंग नहीं है; तो मोक्ष किस प्रकार हो ? उसका उत्तर—जिस प्रकार कोई बुद्धिमान मनुष्य शत्रुकी निर्बल अवस्था देखकर विचार करता है कि ‘यह मेरा मारनेका अवसर है,’ तत्पश्चात् पुरुषार्थ करके शत्रुको नष्ट करता है, उसी प्रकार कर्मोकी भी एकरूप अवस्था

पौरुषं कृत्वा शत्रुं हन्ति । तथा कर्मणामप्येकरूपावस्था नास्ति. हीयमानस्थित्यनुभाग-
त्वेन कृत्वा यदा लघुत्वं क्षीणत्वं भवति तदा धीमान् भव्य आगमभाषया 'खयउव-
समिय विसोही देसण पाउग्ग करणलद्धी य । चत्तारि वि सामण्णा करणं पुण
होइ सम्मत्ते ।१।' इति गाथाकथितलब्धिपञ्चकसंज्ञेनाध्यात्मभाषया निजशुद्धात्मा-
भिमुखपरिणामसंज्ञेन च निर्मलभावनाविशेषखड्गेन पौरुषं कृत्वा कर्मशत्रुं हन्तीति ।
यत्पुनरन्तः कोटाकोटीप्रमितकर्मस्थितिरूपेण तथैव लतादारुस्थानीयानुभागरूपेण च
कर्मलघुत्वे जाते अपि मत्पयं जीव आगमभाषया अधःप्रवृत्तिकरणापूर्वकरणानिवृत्ति-
करणसंज्ञामध्यात्मभाषया स्वशुद्धात्माभिमुखपरिणतिरूपां कर्महननबुद्धिं कापि काले न
करिष्यतीति तदभ्यत्वगुणस्यैव लक्षणं ज्ञातव्यमिति । अन्यदपि दृष्टान्तनवकं मोक्ष-
विषये ज्ञातव्यम्—“रयण दीव दिणयर दहिउ दुद्धउ घीव पहाणु । सुण्णुरुप्पफलिहउ
अगणि, णव दिडुंता जाणि ।१।” नन्वनादिकाले मोक्षं गच्छतां जीवानां जगच्छून्यं

नहीं रहती है, जब कर्मकी स्थिति और अनुभाग हीन होने पर वह लघु और क्षीण
होता है तब बुद्धिमान भव्य जीव आगमभाषासे' "खयउवसमियविसोही देसण
पाउग्ग करणलद्धी य । चत्तारि वि सामण्णा करणं पुण होदि सम्मत्ते ॥
[अर्थः—क्षयोपशम, विशुद्धि, देशना, प्रायोग्य और करणलब्धि; इनमेंसे चार तो
सामान्य हैं और करणलब्धि सम्यक्त्व होनेके समय होती है ।]"—इस गाथामे
कथित पाच लब्धि नामक (निर्मलभावनाविशेषरूप खड्गसे) और अध्यात्म-
भाषासे निजशुद्धात्माभिमुख परिणाम नामक विशेष प्रकारकी निर्मलभावनारूप
खड्गसे पुरुषार्थ करके कर्मशत्रुको नष्ट करता है । अतः कोटाकोटी (—सागर)
प्रमाण कर्मकी स्थितिरूप तथा लता और काष्ठस्थानीय अनुभागरूप^१, कर्मका
लघुत्व होने पर भी यह जीव आगमभाषासे अधःकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्ति-
करण नामक और अध्यात्मभाषासे स्वशुद्धात्माभिमुख परिणतिरूप ऐसी कर्महननबुद्धि
किसी भी कालमे नहीं करे तो वह अभ्यत्व गुणका, लक्षण जानना ।

अन्य भी, नौ दृष्टान्त मोक्षके विषयमें जानना ।, "रयण दीव दिणयर दहिउ,
दुद्धउ घीव पहाणु । सुण्णुरुप्पफलिहउ अगणि, णव दिडुंता जाणि^२ ॥ [अर्थः—रत्न,

१. श्री गोम्मटसार जीवकांड गाथा ६५० । सम्यग्दर्शन सबधी इस शास्त्रकी गाथा ४१ की
फूटनोटमे करणलब्धिका वर्णन लिखा है उसे पढना चाहिए ।

२. श्री योगसार गाथा-५७

भविष्यतीति ? तत्र परिहारः—यथा भाविकालसमयानां क्रमेण गच्छतां यद्यपि भाविकालसमयराशेः स्तोक्तत्वं भवति तथाप्यवसानं नास्ति । तथा मुक्तिं गच्छतां जीवानां यद्यपि जीवराशेः स्तोक्तत्वं भवति तथाप्यवसानं नास्ति । इति चेत्तर्हि पूर्वकाले बहवोऽपि जीवा मोक्षं गता इदानीं जगतः शून्यत्वं किं न दृश्यते ? किञ्चा-भव्यानामभव्यसमानभव्यानां च मोक्षो नास्ति कथं शून्यत्वं भविष्यतीति ॥३७॥ एवं संक्षेपेण मोक्षतत्त्वव्याख्यानेनैकसूत्रेण पञ्चमं स्थलं गतम् ।

अतः ऊर्ध्वं षष्ठस्थले गाथापूर्वार्धेन पुण्यपापपदार्थद्वयस्वरूपमुत्तरार्धेन च पुण्यपापप्रकृतिसंख्यां कथयामीत्यभिप्रायं मनसि धृत्वा भगवान् सूत्रमिदम् प्रतिपादयतिः—

सुहृत्सुहृभावजुत्ता पुण्यं पावं हवन्ति खलु जीवा ।

सादं सुहाउ णामं गोदं पुण्यं पराणि पावं च ॥३८॥

दीपक, सूर्य, दूध, दही, घी, पत्थर, सोना, चांदी, स्फटिकमणि और अग्नि—इसप्रकार नौ दृष्टात जानना ।]”

शंकाः—अनादिकालसे जीव मोक्ष प्राप्त करते है अतः यह जगत कभी शून्य हो जायेगा ?

समाधानः—जिस प्रकार भविष्यकालके समय क्रम-क्रमसे व्यतीत होनेसे यद्यपि भविष्यकालकी समयराशिमे कमी होती है तो भी उसका कभी भी अंत नहीं होता है । उसी प्रकार जीव मोक्षमे जाने पर यद्यपि जीवोकी राशिमे कमी होती है तो भी उसका अंत नहीं होता है । यदि जीव मोक्षमें जाने पर ससारमें जीवकी शून्यता होती हो तो भूतकालमें बहुत जीव मोक्ष गये है तो भी अभी जगतमें जीवोकी शून्यता क्यों नहीं दिखाई देती है ? तथा अभव्य जीवों और अभव्य समान भव्य जीवोका मोक्ष नहीं है तो फिर जगतमे जीवोकी शून्यता किस प्रकार होगी ? ॥३७॥

इसप्रकार संक्षेपमे मोक्षतत्त्वके व्याख्यानरूप एक सूत्र द्वारा पाचवां स्थल समाप्त हुआ ।

इसके पश्चात् छठे स्थलमें “गाथाके पूर्वार्धसे पुण्य-पापरूप दो पदार्थोंका

शुभ अरु अशुभ भावजुत जीव, भाव पुण्य अरु पाप सदीव ।

साता शुभ गोत्तर अरु नाम, आयु पुण्य, पर पाप नकाम ॥३८॥

शुभाशुभभावयुक्ताः पुण्यं पापं भवन्ति खलु जीवाः ।

सातं शुभायुः नाम गोत्रं पुण्यं पराणि पापं च ॥३८॥

व्याख्या—“पुण्यं पापं हवंति खलु जीवा” चिदानन्दैकसहजशुद्धस्व-
भावत्वेन पुण्यपापबन्धमोक्षादिपर्यायरूपविकल्परहिता अपि सन्तानागतानादिकर्मबन्ध-
पर्यायेण पुण्यं पापं च भवन्ति खलु स्फुटं जीवाः । कथंभूताः सन्तः ? “सुहृदसुह-
भावजुत्ता” “उद्धममिथ्यात्वविषं भावय दृष्टिं च कुरु परां भक्तिम् । भावनमस्काररतो
ज्ञाने युक्तो भव सदापि ।१। पञ्चमहाव्रतरक्षां कोपचतुष्कस्य निग्रहं परमम् ।
दुर्दान्तेन्द्रियविजयं तपःसिद्धिविधौ कुरुद्योगम् ।२।” इत्यार्याद्वयकथितलक्षणेन
शुभोपयोगभावेन परिणामेन तद्विलक्षणेनाशुभोपयोगपरिणामेन च युक्ताः परिणताः ।
इदानीं पुण्यपापभेदान् कथयति “सादं सुहाउ गामं गोदं पुण्यं” सद्बुद्धेशुभायुर्नाम-
स्वरूप और उत्तरार्धसे पुण्य और पाप प्रकृतियोंकी सख्या मै कहता हूँ” ऐसा
अभिप्राय मनमे रखकर भगवान इस सूत्रका प्रतिपादन करते है ।

गाथा-३८

गाथार्थः—शुभ और अशुभ परिणामोसे युक्त जीव वास्तवमे पुण्य-पापरूप
होते है; शातावेदनीय, शुभ आयु, शुभ नाम तथा उच्चगोत्र ये पुण्य प्रकृतिया है,
शेष सब पाप प्रकृतिया है ।

टीकाः—“पुण्यं पापं हवंति खलु जीवा” चिदानन्द एक सहज शुद्ध-स्वभावसे
जीव पुण्य, पाप, बध, मोक्ष आदि पर्यायरूप विकल्पोसे रहित होने पर भी
परपरासे आगत अनादिकर्मबधरूप पर्यायसे यथार्थमे स्पष्टरूपसे पुण्य और पापरूप
होते है । किस प्रकारके होते हुए ? “सुहृदसुहभावजुत्ता” “उद्धममिथ्यात्वविषं
भावय दृष्टिं च कुरु परां भक्तिम् । भावनमस्काररतो ज्ञाने युक्तो भव सदापि ।१। पञ्च
महाव्रतरक्षां कोपचतुष्कस्य निग्रहं परमम् । दुर्दान्तेन्द्रियविजयं तपःसिद्धिविधौ
कुरुद्योगम् ॥” [अर्थः—मिथ्यात्वरूपी विषका वमन करो, सम्यग्दर्शनकी भावना
करो, उत्कृष्ट भक्ति करो और भावनमस्कारमे तत्पर होकर सदा ज्ञानमें युक्त
रहो । पांच महाव्रतोंकी रक्षा करो, क्रोधादि चार कषायोका पूर्ण निग्रह करो, प्रबल
इन्द्रियोका विजय करो और तपको सिद्ध करनेकी विधिका उद्यम करो ।] इस
प्रकार ऊपरकी दो आयामें कथित लक्षणयुक्त शुभोपयोगरूप परिणामसे और
उससे विपरीत अशुभोपयोगरूप परिणामसे युक्त-परिणत जीव पुण्य-पाप रूप होते
है । अब, पुण्य और पापके भेद कहते है । “सादं सुहाउ गामं गोदं पुण्यं” शातावेदनीय,

गोत्राणि पुण्यं भवति “पराणि पावं च” तस्मादपराणि कर्माणि पापं चेति । तद्यथा—सद्ब्रह्ममेकं, तिर्यग्मनुष्यदेवायुस्त्रयं, सुभगयशःकीर्त्तितीर्थकरत्वादिनामप्रकृतीनां सप्तत्रिंशत्, तथोच्चैर्गोत्रमिति समुदायेन द्विचत्वारिंशत्संख्याः पुण्यप्रकृतयो विज्ञेयाः । शेषा द्वयशीतिपापमिति । तत्र ‘दर्शनविशुद्धिर्विनयसंपन्नता शीलव्रतैष्वनतिचारोऽभीक्षण-ज्ञानोपयोगसंवेगौ शक्तितस्त्यागतपसीसाधुसमाधिर्वैयावृत्यकरणमर्हदाचार्यबहुश्रुतप्रवचन-भक्तिरावश्यकपरिहाणिमार्गप्रभावनाप्रवचनवत्सलत्वमिति तीर्थकरत्वस्य’ इत्युक्तलक्षण-षोडशभावनोत्पन्नतीर्थकरनामकर्मैव विशिष्टं पुण्यम् । षोडशभावनासु मध्ये परमागम-भाषया “मूढत्रयं मदाश्चाष्टौ तथानायतनानि षट् । अष्टौ शंकादयश्चेति दृग्दोषाः पञ्चविंशतिः ॥१॥” इति श्लोककथितपञ्चविंशतिमलरहिता तथाध्यात्मभाषया निज-शुद्धात्मोपादेयरुचिरूपा सम्यक्त्वभावनैव मुख्येति विज्ञेयम् । ‘सम्यग्दृष्टेर्जीवस्य पुण्यपापद्वयमपि हेयम्,’ कथं पुण्यं करोतीति ? तत्र युक्तिमाह । यथा कोऽपि

शुभ आयु, शुभ नाम और उच्च गोत्र—ये कर्म तो पुण्यरूप है । “पराणि पावं च” उनसे अन्य कर्म पाप है । वे इस प्रकार है—शातावेदनीय एक, तिर्यच, मनुष्य और देव—ये तीन आयुष्य, सुभग, यश कीर्त्ति, तीर्थकरपना आदि नामकर्मकी सैतीस और उच्च गोत्र एक—इसप्रकार कुल ब्यालीस पुण्य प्रकृतिया जानना । शेष ब्यासी पाप प्रकृतिया है । ‘दर्शनविशुद्धि, विनयसपन्नता, शील और व्रतोमें अतिचाररहित आचरण, निरन्तरज्ञानोपयोग, सवेग, शक्तिअनुसार त्याग, शक्ति-अनुसार तप, साधुसमाधि, वैयावृत्य करना, अर्हतभक्ति, आचार्यभक्ति, बहुश्रुतभक्ति, प्रवचनभक्ति, आवश्यकोमे हानि न करना, मार्ग-प्रभावना और प्रवचनवात्सल्य—ये तीर्थकर प्रकृतिके बधके कारण है ।’ इन उपरोक्त लक्षणयुक्त सोलह भावनाओसे उत्पन्न तीर्थकर नामकर्म विशिष्ट पुण्य है । सोलह भावनाओमे परमागमकी भाषासे “मूढत्रयं मदाश्चाष्टौ तथानायतनानि षट् । अष्टौ शंकादयश्चेति दृग्दोषाः पञ्चविंशतिः ॥ [अर्थः—तीन मूढता, आठ मद, छह अनायतन और आठ शकादि दोष—ये पच्चीस सम्यग्दर्शनके दोष है ।]” इस श्लोकमे कथित पच्चीस मलरहित (सम्यक्त्वभावना) और अध्यात्मभाषासे निजशुद्धात्मा उपादेय है ऐसी रुचिरूप सम्यक्त्वकी भावना ही मुख्य है ऐसा जानना ।

शंकाः—सम्यग्दृष्टि जीवको तो पुण्य-पाप दोनो हेय है, तो वह पुण्य क्यों करता है ?

देशान्तरस्थमनोहरस्त्रीसमीपादागतपुरुषाणां तदर्थं दानसन्मानादिकं करोति तथा सम्यग्दृष्टिः अप्युपादेयरूपेण स्वशुद्धात्मानमेव भावयति चारित्रमोहोदयात्त्रासमर्थः सन् निर्दोषपरमात्मस्वरूपाणामर्हत्सिद्धानां तदाराधकाचार्योपाध्यायसाधूनां च परमात्म-पदप्राप्त्यर्थं विषयकषायवञ्चनार्थं च दानपूजादिना गुणस्तवनादिना वा परमभक्तिं करोति तेन भोगाकाङ्क्षादिनिदानरहितपरिणामेन कुटुम्बिनां (कृषकानां) पलालमिव अनीहितवृत्त्या विशिष्टपुण्यमास्रवति तेन च स्वर्गे देवेन्द्रलोकान्तिकादिविभूतिं प्राप्य विमानपरिवारादिसंपदं जीर्णतृणमिव गणयन् पञ्चमहाविदेहेषु गत्वा पश्यति । किं पश्यतीति चेत्—तदिदं ममवसरणं, त एते वीतरागसर्वज्ञाः, त एते भेदाभेदरत्न-त्रयाराधका गणधरदेवादयो ये पूर्वं श्रूयन्ते त इदानीं प्रत्यक्षेण दृष्टा इति मत्वा विशेषेण दृढधर्ममतिर्भूत्वा चतुर्थगुणस्थानयोग्यामात्मनो भावनामपरित्यजन् भोगानु-भवेऽपि सति धर्मध्यानेन कालं नीत्वा स्वर्गादागत्य तीर्थकरादिपदे प्राप्तेऽपि पूर्व-भवभावितविशिष्टभेदज्ञानवासनावलेन मोहं न करोति ततो जिनदीक्षां गृहीत्वा

वहा युक्ति सहित समाधान करते हैं —जिसप्रकार कोई मनुष्य अन्य देशमें स्थित (अपनी) मनोहर स्त्रीके पाससे आये हुए मनुष्यको उसके लिये दान देता है और सन्मान आदि करता है, उसीप्रकार सम्यग्दृष्टि भी उपादेयरूपसे निज-शुद्धात्माकी ही भावना करता है और जब चारित्रमोहके उदयसे उसमें (शुद्धात्माकी भावना करनेमें) असमर्थ होता है तब निर्दोष परमात्मस्वरूप अर्हत और सिद्धोकी तथा उनके आराधक आचार्य, उपाध्याय और साधुओकी, परमात्मपदकी प्राप्तिके लिये और विषयकषायसे बचनेके लिये, दान-पूजा आदिसे अथवा गुणोकी स्तुतिसे परमभक्ति करता है । उस भोगाकाक्षादि निदानरहित परिणामसे तथा निस्पृह-वृत्तिसे विशिष्ट पुण्यका आस्रव होता है, जिस प्रकार धानकी खेती करते हुए किसानको घास, छिलका आदि मिलता ही है । उसीप्रकार उस पुण्यसे जीव स्वर्गमें देवेन्द्र, लोकान्तिकदेव आदिकी विभूति प्राप्तकर विमान, परिवार आदि सपदाओको जीर्ण तृणसमान गिनता हुआ पाच महाविदेहोमें जाकर देखता है । क्या देखता है ? 'वह यह समवशरण है, वह यह वीतराग सर्वज्ञ भगवान है, वे इस भेदाभेद रत्नत्रयके आराधक गणधरदेवादि हैं; जो पहले सुने थे उन्हें आज प्रत्यक्ष देखा'—ऐसा समझकर धर्ममें बुद्धि विशेष दृढ करके चौथे गुणस्थानके योग्य आत्मभावनाको नहीं छोड़ता हुआ, भोग भोगता हुआ भी धर्मध्यानमें काल बिताकर स्वर्गमेंसे आकर तीर्थकरादि पदको प्राप्त करता है तो भी पूर्वभवमें भावित विशिष्ट भेद-

पुण्यपापरहितनिजपरमात्मध्यानेन मोक्षं गच्छतीति । मिथ्यादृष्टिस्तु तीव्रनिदानबन्ध
पुण्येन भोगं प्राप्य पश्चाद्ब्रह्मचक्रवर्तिरावणादिवन्नरकं गच्छतीति । एवमुक्तलक्षणपुण्य-
पापपदार्थद्वयेन सह पूर्वोक्तानि सप्ततत्त्वान्येव नव पदार्था भवन्तीति ज्ञातव्यम् ।

इति श्रीनेमिचन्द्रसैद्धान्तिकदेवविरचिते द्रव्यसंग्रहग्रन्थे “आसवबंधण” इत्यादि
एका सूत्रगाथा तदनन्तरं गाथादशकेन स्थलषट्कं चेति समुदायेनैकादशसूत्रैः
सप्ततत्त्वनवपदार्थप्रतिपादकनामा द्वितीयोमहाधिकारः समाप्तः ॥२॥

ज्ञानकी वासनाके बलसे मोह नही करता है । तत्पश्चात् जिनदीक्षा लेकर पुण्य
और पापसे रहित निज परमात्माके ध्यान द्वारा मोक्ष जाता है । मिथ्यादृष्टि तो
तीव्र निदानबन्धवाले पुण्यसे भोग प्राप्त करके फिर अर्ध चक्रवर्ती रावण आदिकी
भाति नरकमे जाता है ।

इसप्रकार उपरोक्त लक्षणयुक्त पुण्य-पापरूप दो पदार्थोंके साथ पूर्वोक्त
सात तत्त्व ही नौ पदार्थ है ऐसा जानना ॥३८॥

इसप्रकार श्री नेमिचन्द्रसैद्धान्तिकदेवविरचित द्रव्यसंग्रह नामक ग्रंथमे
“आसव बंधण” आदि एक सूत्र गाथा, तत्पश्चात् दस गाथाओं द्वारा छह स्थल—
इस प्रकार कुल ग्यारह सूत्रों द्वारा सात तत्त्व और नौ पदार्थोंका प्रतिपादन करने
वाला द्वितीय महाधिकार समाप्त हुआ ॥२॥





अतः ऊर्ध्वं विंशतिगाथापर्यन्तं मोक्षमार्गं कथयति । तत्रादौ “सम्महंसण” इत्याद्यष्टगाथाभिर्निश्चयमोक्षमार्गव्यवहारमोक्षमार्गप्रतिपादकमुख्यत्वेन प्रथमः अन्तराधिकारस्ततः परम् “दुविहं पि मुक्खहेउं” इति प्रभृतिद्वादशसूत्रैर्ध्यानध्यातु-
ध्येयध्यानफलकथनमुख्यत्वेन द्वितीयोऽन्तराधिकारः । इति तृतीयाधिकारे समुदायेन पातनिका ।

। अथ प्रथमतः सूत्रपूर्वार्धेन व्यवहारमोक्षमार्गमुत्तरार्धेन च निश्चयमोक्षमार्गं निरूपयति :—

सम्महंसणणाणां चरणं मोक्खस्स कारणं जाणे ।

ववहारा णिच्छयदो तत्तियमइओ णिओ अप्पा ॥३६॥

इसके पश्चात् बीस गाथाओं तक मोक्षमार्गका कथन करते हैं । वहा प्रारभमें “सम्महंसण” इत्यादि आठ गाथाओं द्वारा निश्चयमोक्षमार्ग और व्यवहारमोक्षमार्गके प्रतिपादनकी मुख्यतासे प्रथम अन्तराधिकार है, तत्पश्चात् “दुविहं पि मुक्खहेउं” आदि बारह सूत्रों द्वारा ध्यान, ध्याता, ध्येय और ध्यानफलके कथनकी मुख्यतासे द्वितीय अन्तराधिकार है । इसप्रकार तीसरे अधिकारमें समूहरूपसे भूमिका है ।

अब प्रथम ही सूत्रके पूर्वार्धसे व्यवहारमोक्षमार्ग और उत्तरार्धसे निश्चय-मोक्षमार्ग कहते हैं —

अब सुनि दर्शन ज्ञान सुसार, चारित, शिव-कारन व्यवहार ।

निश्चय एक आतमा जानि, तीनोंमयी मोक्षमग मानि ॥३९॥

सम्यग्दर्शनं ज्ञानं चरणं मोक्षस्य कारणं जानीहि ।

व्यवहारात् निश्चयतः तत्त्रिकमयः निजः आत्मा ॥३९॥

व्याख्या—“सम्महंसणणाणं चरणं मोक्खस्स कारणं जाणे ववहारा”
सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र्यं मोक्षस्य कारणं, हे शिष्य ! जानीहि व्यवहारनयात् ।
“णिच्छयदो तत्तियमइओ णिओ अप्पा” निश्चयतस्तत्त्रितयमयो निजात्मेति । तथाहि
वीतरागसर्वज्ञप्रणीतषड्द्रव्यपञ्चास्तिकायसप्ततत्त्वनवपदार्थसम्यक्श्रद्धानज्ञानव्रताद्यनुष्ठान-
विकल्परूपो व्यवहारमोक्षमार्गः । निजनिरञ्जनशुद्धात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणैकाग्र-

गाथा-३९

गाथार्थः—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रको व्यवहारनयसे मोक्षका कारण जानो ॥ सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रमय निज आत्माको निश्चयसे मोक्षका कारण जानो ।

टीकाः—“सम्महंसणणाणं चरणं मोक्खस्स कारणं जाणे ववहारा”—हे शिष्य ! सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र—इन तीनोंको व्यवहारनयसे मोक्षका कारण जानो । “णिच्छयदो तत्तियमइओ णिओ अप्पा” निश्चयसे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र—इन तीनोंमय निजात्मा ही मोक्षका कारण है । उसे समझाते हैंः—वीतरागसर्वज्ञप्रणीत छह द्रव्य, पचास्तिकाय, सात तत्त्व और नौ पदार्थोंके सम्यक्श्रद्धान, ज्ञान और व्रतादिके आचरणके विकल्परूप^१ व्यवहार मोक्षमार्ग है; निज निरञ्जन शुद्धात्मतत्त्वके सम्यक्श्रद्धान-ज्ञान-आचरणकी

१. “जैन शास्त्रोका परमार्थसे वीतरागपना ही तात्पर्य है । इस वीतरागपनेको व्यवहार-निश्चयके अविरोध द्वारा ही अनुसरण किया जाय तो इष्ट सिद्धि होती है परन्तु अन्यथा नहीं ।” [देखो, श्री पचास्तिकाय गाथा १७२ टीका पृष्ठ २५२] “छट्टे गुणस्थानमे मुनियोग्य शुद्ध परिणति निरतर होना तथा महाव्रतादि सबधी शुभभाव यथायोग्यरूपसे होना वह निश्चय-व्यवहारके अविरोधका उदाहरण है । पांचवे गुणस्थानमे उस गुणस्थानके योग्य शुद्ध परिणति निरतर होना तथा देशव्रतादि सबधी शुभभाव यथायोग्य-रूपसे होना वह निश्चय-व्यवहारके अविरोधका उदाहरण है ।” [देखो, श्री पचास्तिकाय गाथा-१७२, पृष्ठ २५२ फूटनोट ४]

२. विकल्प है वह राग है और उसका प्रत्येक समयमे आशिकरूपसे अभाव होता जाता है अर्थात् कथञ्चित् भिन्न साध्य-साधन भावका अभाव होता जाता है अतः उसे व्यवहारमोक्षमार्ग कहते हैं । [देखो, पचास्तिकाय पृष्ठ २३३]

परिणतिरूपो निश्चयमोक्षमार्गः । अथवा स्वशुद्धात्मभावनासाधकवहिर्द्रव्याश्रितो व्यवहार-
मोक्षमार्गः । केवलस्वसंविचितिसमुत्पन्नरागादिविकल्पोपाधिरहितसुखानुभूतिरूपोनिश्चय-
मोक्षमार्गः । अथवा धातुपापाणोऽग्नित्साधको व्यवहारमोक्षमार्गः, सुवर्णस्थानीय-
निर्विकारस्वोपलब्धिसाध्यरूपो निश्चयमोक्षमार्गः । एवं संक्षेपेण व्यवहारनिश्चयमोक्ष-
मार्गलक्षणं ज्ञातव्यमिति ॥३९॥

अथाभेदेन सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि स्वशुद्धात्मैव तेन कारणेन निश्चये-
नात्मैव निश्चयमोक्षमार्ग इत्याख्याति । अथवा पूर्वोक्तमैव निश्चयमोक्षमार्ग प्रकारान्तरेण
दृढयतिः—

रयणत्तयं ण वट्टइ अप्पाणं मुइत्तु अरणदवियहि ।

तह्मा तत्तियमइउ होदि हु मुखस्स कारणं आदा ॥४०॥

एकाग्रपरिणतिरूप निश्चयमोक्षमार्ग है । अथवा स्वशुद्धात्मभावनाका साधक,^१ बाह्य-
पदार्थाश्रित व्यवहारमोक्षमार्ग है; मात्र स्वसवेदनसे उत्पन्न, रागादि विकल्पकी
उपाधिसे रहित—ऐसे सुखकी अनुभूतिरूप निश्चयमोक्षमार्ग है । अथवा धातु-
पापाणमे अग्निसमान^२ साधक वह व्यवहारमोक्षमार्ग है और सुवर्णसमान निर्विकार
निजात्माकी उपलब्धिरूप साध्य वह निश्चयमोक्षमार्ग है । इसप्रकार संक्षेपसे
व्यवहार और निश्चयमोक्षमार्गका लक्षण जानना ॥३९॥

अब, अभेदरूपसे सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र वे शुद्धात्मा ही है, इसकारण
निश्चयसे आत्माही निश्चयमोक्षमार्ग है ऐसा कहते हैं । अथवा पूर्वोक्त निश्चय-
मोक्षमार्ग दूसरे प्रकारसे दृढ करते हैं:—

१. जिनको वह अनुष्ठान है उसको मात्र उपचारसे ही स्वशुद्धात्माकी भावनाका साधक कहा
गया है ऐसा समझना । (पचास्तिकाय संग्रह, पृष्ठ २५८ फूटनोट)

२. देखो, श्री पचास्तिकाय गाथा १६० टीका, पृष्ठ २३२-२३३ दोनो आचार्योंकी टीका ।
अग्नि तो निमित्तमात्र है उसी प्रकार व्यवहार निमित्तमात्र है । यह क्रियाकांड परिणति
है वह तो राग है । धर्मी जीवको उसका माहात्म्य किस प्रकार हो सकता है ? देखो, श्री
पचास्तिकाय गाथा १७२ टीका पृ० २६१ ।

दर्शन बोध चारित्र जु तीन, आत्म-विन परमै न प्रवीन ।

तातै तीनोंमयी सु आप, कारन मोक्ष कइौ विन पाप ॥४०॥

रत्नत्रयं न वर्त्तते आत्मानं मुक्त्वा अन्यद्रव्ये ।

तस्मात् तत्त्रिकमयः भवति खलु मोक्षस्य कारणं आत्मा ॥४०॥

व्याख्याः—“रयणत्तयं ण वट्टइ अप्पाणं मुइत्तु अण्णदवियद्धि” रत्नत्रयं न वर्त्तते स्वकीयशुद्धात्मानं मुक्त्वा अन्याचेतने द्रव्ये । ‘तद्धा तत्तियमइउ होदि हु मुक्खस्स कारणं आदा’ तस्मात्त्रितयमय आत्मैव निश्चयेन मोक्षस्य कारणं भवतीति जानीहि । अथ विस्तरः—रागादिविकल्पोपाधिरहितचित्त्वमत्कारभावनोत्पन्नमधुररसास्वादसुखोऽहमिति निश्चयरुचिरूपं सम्यग्दर्शनं, तस्यैव सुखस्य समस्तविभावेभ्यः स्वसंवेदनज्ञानेन पृथक् परिच्छेदनं सम्यग्ज्ञानं, तथैव दृष्टश्रुतानुभूतभोगाकाङ्क्षाप्रभृति-समस्तापध्यानरूपमनोरथजनितसंकल्पविकल्पजालत्यागेन तत्रैव सुखे रतस्य सन्तुष्टस्य

गाथा-४०

गाथार्थः—आत्माके अतिरिक्त अन्य द्रव्यमें रत्नत्रय नहीं रहते है इसकारण रत्नत्रयमयी आत्मा ही मोक्षका कारण है ।

टीकाः—“रयणत्तयं ण वट्टइ अप्पाणं मुइत्तु अण्णदवियद्धि” निज शुद्धात्माको छोड़कर अन्य अचेतन द्रव्यमें रत्नत्रय नहीं वर्तते रहते है । “तद्धा तत्तियमइउ होदि हु मुक्खस्स कारणं आदा”—अतः वह रत्नत्रयमय आत्माही निश्चयसे मोक्षका कारण होता है ऐसा तू जान । अब विस्तार करते है.—‘रागादि-विकल्प-उपाधि-रहित, चित्त्वमत्कारकी भावनासे उत्पन्न मधुररसके आस्वादरूप सुख मैं हूँ’ ऐसी निश्चय रुचिरूप सम्यग्दर्शन है । उसी सुखको समस्त विभावोसे स्वसंवेदन ज्ञान द्वारा पृथक् जानना वह सम्यग्ज्ञान है । उसी प्रकार दृष्ट-श्रुत-अनुभूत भोगोकी आकांक्षा आदि समस्त दुर्ध्यानरूप मनोरथसे उत्पन्न सकल्प-विकल्पके जालके त्याग द्वारा उसी सुखमे लीन-संतुष्ट-तृप्त और एकाकार परम-समरसीभावसे भीगे

१. इस गाथामे स्वात्मतत्त्वरूप निज शुद्धात्माको ही—अर्थात् निश्चय रत्नत्रयमय शुद्धात्माको ही—मोक्षका कारण कहा है । इससे सिद्ध हुआ कि विकल्प-राग वास्तवमे मोक्षका कारण नहीं है, पर्याय-पर्यायमे रागका अभाव होता जाता है और शुद्धि बढ़ती जाती है । इस प्रकार सातवे गुणस्थानके सातिशय विभागमे निर्विकल्पता बढ़ने पर क्षपक श्रेणीमे आठवे, नवमे और दसवे गुणस्थानमे चढ़ने पर दसवेके अतमे संपूर्ण वीतराग होकर, बारहवे गुणस्थानमे संपूर्ण वीतरागरूपसे रहकर, उसके अतमे केवलज्ञानरूप भावमोक्ष प्रगट करता है ।

तृप्तस्यैकाकारपरमसमरसीभावेन द्रवीभूतचित्तस्य पुनः पुनः स्थिरीकरणं सम्यक्चारित्रम् । इत्युक्तलक्षणं निश्चयरत्नत्रयं शुद्धात्मानं विहायान्यत्र घटपटादिवहिर्द्रव्ये न वर्त्तते यतस्ततः कारणादभेदनयेनानेकद्रव्यात्मकैकपानकत्रत्तदेव सम्यग्दर्शनं, तदेव सम्यग्ज्ञानं, तदेव सम्यक्चारित्रं, तदेव स्वात्मतत्त्वमित्युक्तलक्षणं निजशुद्धात्मानमेव मुक्तिकारणं जानीहि ॥४०॥

एवं प्रथमस्थले सूत्रद्वयेन निश्चयव्यवहारमोक्षमार्गस्वरूपं संक्षेपेण व्याख्याय तदनन्तरं द्वितीयस्थले गाथाषट्कपर्यन्तं सम्यक्त्वादित्रयं क्रमेण विवृणोति । तत्रादौ सम्यक्त्वमाहः—

जीवादीसद्दृहणं सम्मत्तं रूवमप्पणो तं तु ।

दुरभिणिवेसविमुक्कं णाणं सम्मं खु होदि सदि जह्मि ॥४१॥

हुए चित्तको पुन. पुन. स्थिर करना वह सम्यक्चारित्र है । इसप्रकार कथित लक्षण निश्चयरत्नत्रय 'शुद्धात्माको छोड़कर अन्यत्र घट-पटादि बहिर्द्रव्योमें नहीं रहते हैं । इस कारण अभेदनयसे अनेक द्रव्यमय एक पानके समान वही सम्यग्दर्शन है, वही सम्यग्ज्ञान है, वही सम्यक्चारित्र है, वही स्वात्मतत्त्व है । इसप्रकार उक्त लक्षणवाले निज शुद्धात्माको ही मुक्तिका कारण तुम जानो ॥४०॥

इसप्रकार प्रथम स्थलमे दो गाथाओ द्वारा संक्षेपमे निश्चय और व्यवहार-मोक्षमार्गका स्वरूप कहकर उसके अनन्तर द्वितीय स्थलमें छह गाथाओमे सम्यक्त्व आदि तीनोंका क्रमपूर्वक वर्णन करते हैं । वहां प्रथम ही सम्यग्दर्शनका कथन करते हैंः—

१ यहा सुखकी मुख्यतासे निश्चय सम्यग्दर्शन, निश्चय सम्यग्ज्ञान और निश्चय चारित्र्यकी व्याख्या है । अतः सिद्ध होता है कि—चतुर्थ गुणस्थानमे जो शुद्ध सम्यग्दर्शन प्रगट होता है उसके साथ ही भूमिका अनुसार शुद्ध आत्मिक सुख प्रगट होता है ।

जीवादिक तत्त्वनिकी करै, श्रद्धा सो सम्यक्त्व हूँ वरै ।

याहीतैं सम्यक् हूँ ज्ञान, दुर आशय-विन आतम मान ॥४१॥

जीवादिश्रद्धानं सम्यक्त्वं रूपं आत्मनः तत् तु ।

दुरभिनिवेशविमुक्तं ज्ञानं सम्यक् खलु भवति सति यस्मिन् ॥४१॥

व्याख्या:—“जीवादीसद्दहणं सम्मत्तं” वीतरागसर्वज्ञप्रणीतशुद्धजीवादितत्त्वविषये चलमलिनागाढरहितत्वेन श्रद्धानं रुचिर्निश्चय इदमेवेत्थमेवेति निश्चयबुद्धिः सम्यग्दर्शनम् । “रूढमप्पणो तं तु” तच्चाभेदनयेन रूपं स्वरूपं तु; पुनः कस्य ? आत्मन आत्मपरिणाम इत्यर्थः । तस्य सामर्थ्यं माहात्म्यं दर्शयति । “दुरभिनिवेशविमुक्तं णाणं सम्मं खु होदि सदि जल्लि” यस्मिन् सम्यक्त्वे सति ज्ञानं सम्यग् भवति स्फुटं । कथम्भूतं सम्यग्भवति ? “दुरभिनिवेशविमुक्तं” चलितप्रतिपत्तिगच्छत्तृणस्पर्शशुक्तिकाशकलरजत-विज्ञानसदृशैः संशयविभ्रमविमोहैर्मुक्तं रहितमित्यर्थः ।

गाथा-४१

गाथार्थः—जीवादि पदार्थोका श्रद्धान करना वह सम्यक्त्व है । वह सम्यक्त्व आत्माका स्वरूप है । इस सम्यक्त्वके होनेपर दुरभिनिवेशरहित सम्यक्ज्ञान होता है ।

टीका:—“जीवादीसद्दहणं सम्मत्तं” वीतराग-सर्वज्ञप्रणीत शुद्ध जीवादि तत्त्वोमे चल, मल, अगाढ़ (दोष) रहित श्रद्धा-रुचि-निश्चय और ‘यही है, इसीप्रकार है’ ऐसी निश्चयबुद्धि वह सम्यग्दर्शन है । “रूढमप्पणो तं तु” और वह सम्यग्दर्शन अभेदनयसे स्वरूप है । किसका स्वरूप है ? आत्माका, वह आत्माका परिणाम^१ है ऐसा अर्थ है ।

उसका (सम्यग्दर्शनका) सामर्थ्य और माहात्म्य दिखलाते है, “दुरभिनिवेशविमुक्तं णाणं सम्मं खु होदि सदि जल्लि” जिस सम्यक्त्वके होने पर ज्ञान प्रगट-रूपसे सम्यक् हो जाता है । कैसा सम्यक् हो जाता है ? “दुरभिनिवेशविमुक्तं” चलायमान सशयज्ञान (अर्थात् ऐसा होगा अथवा ऐसा, इसप्रकारका) सशयसे, गमन करते हुए तृणस्पर्श होने पर ‘किसका स्पर्श हुआ’ उसके अनिश्चयरूप विभ्रमसे और ‘सीपके टुकड़ेमें चांदीका ज्ञान हो’ ऐसे विमोहसे—इन तीन दोषोसे रहित ज्ञान सम्यक् हो जाता है ।

१. वह आत्माका परिणाम होनेसे शुद्ध परिणाम है । सम्यग्दर्शन प्रगट होनेके समय “निष्क्रिय चिन्मात्रभावको प्राप्त करता है” ऐसा श्री प्रवचनसार गाथा ८० पृष्ठ १४३ मे कहा है वही निर्विकल्प दशा है । श्री जयसेनाचार्य कहते है कि “आगमकी भाषासे अध करण, अपूर्व-करण, अनिवृत्तिकरण नामक परिणामविशेषोके बलसे जो विशेषभाव दर्शनमोहका अभाव

इतो विस्तरः—सम्यक्त्वे सति ज्ञानं सम्यग्भवतीति यदुक्तं तस्य विवरणं क्रियते । तथाहि—गौतमाग्निभूतिवायुभूतिनामानो विप्राः पञ्चपञ्चशतब्राह्मणोपाध्याया वेदचतुष्टयं, ज्योतिष्कव्याकरणादिषडङ्गानि, मनुस्मृत्याद्यष्टादशस्मृतिशास्त्राणि तथा भारताद्यष्टादशपुराणानि मीमांसान्यायविस्तर इत्यादिलौकिकसर्वशास्त्राणि यद्यपि जानन्ति तथापि तेषां हि ज्ञानं सम्यक्त्वं विना मिथ्याज्ञानमेव । यदा पुनः प्रसिद्धकथान्यायेन श्रीवीरवर्द्धमानस्वामितीर्थकरपरमदेवसमवसरणे मानस्तम्भावलोकनमात्रादेवागमभाषया दर्शनचारित्रमोहनीयोपशमक्षयसंज्ञेनाध्यात्मभाषया स्वशुद्धात्माभिमुखपरिणामसंज्ञेन च

इसका विस्तार —‘सम्यग्दर्शन होने पर ज्ञान सम्यक् होता है’ इसप्रकार जो कहा है उसका विवरण करते हैं.—पाचसौ-पाचसौ ब्राह्मणोको पढाने वाले गौतम, अग्निभूति और वायुभूति नामक ब्राह्मण चार वेद, ज्योतिष-व्याकरण आदि छह अंग, मनुस्मृति आदि अठारह स्मृतिशास्त्र, महाभारतादि अठारह पुराण, मीमासा, न्याय-विस्तार आदि समस्त लौकिक शास्त्र जानते थे तो भी उनका ज्ञान सम्यक्त्व बिना मिथ्याज्ञान ही था । जब, प्रसिद्ध कथाके अनुसार, श्री महावीर वर्द्धमान तीर्थकर परमदेवके समवसरणमे मानस्तम्भको देखनेमात्रसे ही आगमभाषा अपेक्षासे दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीयकर्मके उपशम-क्षय नामक (कालादि-लब्धि विशेषसे) और अध्यात्मभाषाकी अपेक्षासे निज शुद्धात्माभिमुख परिणाम

करनेमे समर्थ है उसमे अपने आत्माको जोडता है । तत्पश्चात् निर्विकल्प स्वरूपकी प्राप्तिके लिये—जिसप्रकार पर्यायरूप मोती, गुणरूप सफेदी आदि अभेदनयसे एक हाररूप ही ज्ञात होते है उसीप्रकार—पूर्व कथित द्रव्य-गुण-पर्याय अभेदनयसे आत्मा ही है ऐसी भावना करते-करते दर्शनमोहका अधकार नष्ट हो जाता है ।” (श्री प्रवचनसार श्री जयसेनाचार्य टीका गाथा-८०, पृष्ठ १४३)

तथा श्री प्रवचनसार गाथा १६४ की टीकामे भी निम्न शब्दोमे उसी सिद्धातका प्रतिपादन किया है (पृष्ठ ३७५)

टीका:—“यथोक्त विधि द्वारा शुद्धात्माको जो ध्रुव जानता है, उसे उसीमे प्रवृत्ति द्वारा शुद्धात्मतत्त्व होता है अतः अनत शक्तिवाले चिन्मात्र परम आत्माका एकाग्र सचेतन-ध्यान होता है और उससे साकार उपयोगवालेको अथवा अनाकार-उपयोग-वालेको—दोनोंको अविशेषरूपसे एकाग्र सचेतनको प्रसिद्धि होनेसे अनादिसारसे बधी अतिदृढ मोहग्रन्थि (मोहको दुष्ट गाठ) टूट जाती है ।

इससे ऐसा कहा गया है कि—मोहग्रन्थिभेद (दर्शनमोहरूपी गांठका टूटना) वह शुद्धात्माकी उपलब्धिका फल है ।”

कालादिलब्धिविशेषेण मिथ्यात्वं विलयं गतं तदा तदेव मिथ्याज्ञानं सम्यग्ज्ञानं जातम् । ततश्च “जयति भगवान्” इत्यादि नमस्कारं कृत्वा जिनदीक्षां गृहीत्वा कचलोचानन्तरमेव चतुर्ज्ञानसप्तद्विसम्पन्नास्त्रयोऽपि गणधरदेवाः संजाताः गौतमस्वामी भव्योपकारार्थं द्वादशाङ्गश्रुतरचनां कृतवान्; पश्चान्निश्चयरत्नत्रयभावनाबलेन त्रयोऽपि मोक्षं गताः । शेषाः पञ्चदशशतप्रमितब्राह्मणा जिनदीक्षां गृहीत्वा यथासम्भवं स्वर्गं मोक्षं च गताः । अभव्यसेनः पुनरेकादशाङ्गधारकोऽपि सम्यक्त्वं विना मिथ्याज्ञानी सञ्जात इति । एवं सम्यक्त्वमाहात्म्येन ज्ञानतपश्चरणव्रतोपशमध्यानादिकं मिथ्यारूपमपि सम्यग्भवति । तदभावे विषयुक्तदुग्धमिव सर्वं वृथेति ज्ञातव्यम् ।

तच्च सम्यक्त्वं पञ्चविंशतिमलरहितं भवति तद्यथा—देवतामूढलोकमूढ-समयमूढभेदेन मूढत्रयं भवति । तत्र क्षुधाद्यष्टादशदोषरहितमनन्तज्ञानाद्यनन्तगुणसहितं

नामक कालादिलब्धि विशेषसे मिथ्यात्व नष्ट हुआ तब वही मिथ्याज्ञान सम्यग्ज्ञान हुआ । तत्पश्चात् ‘भगवानकी जय हो’ इत्यादि प्रकारसे नमस्कार करके जिनदीक्षा लेकर केशलोच करते ही चार ज्ञान (मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यय) और सप्त ऋद्विसपन्न होकर तीनों ही गणधरदेव हो गये । गौतमस्वामीने भव्य जीवोके उपकारके लिये बारह अग्ररूप श्रुतकी रचनाकी । तत्पश्चात् उन तीनोंने ही निश्चयरत्नत्रयकी^१ भावनाके बलसे मोक्ष प्राप्त किया । शेष पंद्रहसौ ब्राह्मणोंने जिनदीक्षा लेकर यथासभव स्वर्ग या मोक्ष प्राप्त किया । परन्तु अभव्यसेन ग्यारह अंगका पाठी होने पर भी सम्यक्त्व बिना मिथ्याज्ञानी रहा । इसप्रकार सम्यक्त्वके माहात्म्यसे ज्ञान, तपश्चरण^२, व्रत, उपशम, ध्यान आदि मिथ्यारूप हो वह भी सम्यक् हो जाता है और उसके (सम्यक्त्वके) बिना ये सब विषय सहित दूधकी भांति वृथा (व्यर्थ) है ऐसा जानना ।

और वह सम्यक्त्व पञ्चीस दोष रहित होता है । वह इसप्रकार—देवमूढता, लोकमूढता और समयमूढता—ये तीन मूढता है ।

क्षुधा आदि अठारह दोष रहित, अनन्तज्ञानादि, अनन्तगुणसहित, वीतरागसर्वज्ञ-

१. व्यवहार रत्नत्रयका क्रम-क्रमसे अभाव होने पर और शुद्धि क्रम-क्रमसे प्रत्येक समय वृद्धिगत होनेपर निश्चय रत्नत्रयकी पूर्णता कर मोक्ष प्राप्त किया ऐसा समझना ।
२. सम्यक्त्व प्राप्त किये बिना ज्ञान, तपश्चरण, व्रत, नियम, ध्यान आदि सर्व मिथ्या है ऐसा समझना । अतः सम्यग्दर्शन प्रगट करनेके लिये प्रथम प्रयत्न-पुरुषार्थ करना ऐसी भगवानकी आज्ञा समझना ।

वीतरागसर्वज्ञदेवतास्वरूपमजानन् ख्यातिपूजालाभरूपलावण्यसौभाग्यपुत्रकलत्रराज्यादि-
विभूतिनिमित्तं रागद्वेषोपहतार्त्तारौद्रपरिणतक्षेत्रपालचण्डिकादिमिथ्यादेवानां यदाराधनं
करोति जीवस्तद्देवतामूढत्वं भण्यते । न च ते देवाः किमपि फलं प्रयच्छन्ति ।
कथमिति चेत् ? रावणेन रामस्वामिलक्ष्मीधरविनाशार्थं बहुरूपिणी विद्या साधिता,
कौरवैस्तु पाण्डवनिर्मूलनार्थं कात्यायनी विद्या साधिता, कंसेन च नारायणविनाशार्थं
बह्व्योऽपि विद्याः समाराधितास्ताभिः कृतं न किमपि रामस्वामिपाण्डवनारायणानाम् ।
तैस्तु यद्यपि मिथ्यादेवता 'नानुकूलितास्तथापि निर्मलसम्यक्त्वोपार्जितेन पूर्वकृतपुण्येन
सर्वं निर्विघ्नं जातमिति । अथ लोकमूढत्वं कथयति । गङ्गादिनदीतीर्थस्नानसमुद्रस्नान-
प्रातःस्नानजलप्रवेशमरणग्निप्रवेशमरणगोग्रहणादिमरणभूम्यग्निवटवृक्षपूजादीनि पुण्य-
कारणानि भवन्तीति यद्वदन्ति तल्लोकमूढत्वं विज्ञेयम् । अन्यदपि लौकिकपारमार्थिक-
हेयोपादेयस्वपरज्ञानरहितानामज्ञानिजनानां प्रवाहेन यद्दर्मानुष्ठानं तदपि लोकमूढत्वं

देवका स्वरूप नहीं जानते हुए जो जीव ख्याति, पूजा, लाभ, रूप, लावण्य, सौभाग्य,
पुत्र, स्त्री, राज्य आदि वैभवके लिये, राग-द्वेषसे आहत, आर्त और रौद्र परिणाम-
वाले क्षेत्रपाल, चण्डिका आदि मिथ्यादेवोंका आराधन करते हैं उसे देवमूढता कहते
हैं । वे देव कुछ भी फल नहीं देते ।

प्रश्नः—(फल नहीं देते) वह किस प्रकार ?

उत्तरः—रावणने रामचद्र और लक्ष्मणका विनाश करनेके लिये बहुरूपिणी
विद्या सिद्ध की; कौरवोंने पाण्डवोंका नाश करनेके लिये कात्यायनी विद्या सिद्ध
की; कंसने नारायणका (कृष्णका) विनाश करनेके लिये बहुतसी विद्याये सिद्ध
की, परन्तु उन विद्याओ द्वारा रामचद्र, पाण्डवों और कृष्ण नारायणका कुछ भी
अनिष्ट नहीं हुआ । उन्होंने (राम आदिने) यद्यपि मिथ्यादेवोंकी आराधना नहीं
की तो भी निर्मल सम्यक्त्वसे उपार्जित^१ पहले किये हुए पुण्यसे उनके सर्व विघ्न
दूर हुए ।

अब, लोकमूढताका कथन करते हैं : 'गंगा आदि नदीरूप तीर्थोमें स्नान, समुद्रमें
स्नान, प्रातःकालमें स्नान, जलमें प्रवेश करके मरना, अग्निमें प्रवेश करके मरना,
गायकी पूंछ पकड़कर मरना, भूमि-अग्नि-वटवृक्षकी पूजा करना—ये सब पुण्यके
कारण हैं' ऐसा जो कहते हैं उनको लोकमूढता जानना । लौकिक-पारमार्थिक
हेय-उपादेय और स्व-परज्ञानरहित अज्ञानियोंका प्रवाहसे (कुल परपरासे) चला

१ 'आराधना न कृता' इति पाठान्तर

२. निर्मल सम्यक्त्वके साथ रहे हुए शुभरागसे उपार्जित पुण्य-ऐसा यहां समझना ।

विज्ञेयमिति । अथ समयमूढत्वमाह । अज्ञानिजनचिच्चमत्कारोत्पादकं ज्योतिष्कमन्त्र-
वादादिकं दृष्ट्वा वीतरागसर्वज्ञप्रणीतसमयं विहाय कुदेवागमलिङ्गिनां भयाशास्नेहलोभै-
र्धर्मार्थं प्रणामविनयपूजापुरस्कारादिकरणं समयमूढत्वमिति । एवमुक्तलक्षणं मूढत्रयं
सरागसम्यग्दृष्ट्यवस्थायां परिहरणीयमिति । त्रिगुप्तावस्थालक्षणवीतरागसम्यक्त्वप्रस्तावे
पुनर्निजनिरञ्जननिर्दोषपरमात्मैव देव इति निश्चयबुद्धिर्देवतामूढरहितत्वं विज्ञेयम् ।
तथैव च मिथ्यात्वरगादिमूढभावत्यागेन स्वशुद्धात्मन्येवावस्थानं लोकमूढरहितत्वं विज्ञे-
यम् । तथैव च समस्तशुभाशुभसंकल्पविकल्परूपपरभावत्यागेन निर्विकारतात्त्विकपरमा-

आया अन्य भी जो कोई धर्माचरण है वह भी लोकमूढता है ऐसा जानना ।

अब, समयमूढता कहते हैं:—अज्ञानियोके मनमे चमत्कार (आश्चर्य) उत्पन्न करनेवाले ज्योतिष, मन्त्रवाद आदि देखकर वीतराग-सर्वज्ञप्रणीत धर्मको छोड़कर कुदेव-शास्त्र और वेषधारियोंको भय, आशा, स्नेह और लोभसे धर्मके लिये प्रणाम, विनय, पूजा, सत्कार आदि करना वह समयमूढता है ।

ये उक्त लक्षणयुक्त तीनों मूढता सरागसम्यग्दृष्टिकी अवस्थामे त्यागने योग्य है ।

मन-वचन-कायाकी गुप्तिरूप अवस्था जिसका लक्षण है ऐसे वीतराग सम्यक्त्वके अवसरमें तो—‘अपना निरंजन, निर्दोष परमात्मा ही देव है’ ऐसी निश्चयबुद्धि ही देवमूढतासे रहितपना है ऐसा जानना; तथा मिथ्यात्व-रागादि मूढभावोंका त्यागकर जो अपने शुद्धआत्मामें ही स्थिति है वह लोकमूढतासे रहितपना है ऐसा जानना; उसीप्रकार समस्त शुभाशुभ सकल्प-विकल्परूप परभावका त्याग

१. सरागसम्यग्दृष्टिके अर्थके लिये देखो पृ० १७३ फूटनोट ।

२. जिन जीवोंको यथार्थ सम्यग्दर्शन तो चतुर्थ गुणस्थानमे प्रगट हुआ है और चारित्र्य अपेक्षासे जिनको वीतरागता प्रगट हुई है उनको वीतराग सम्यक्त्वी कहते हैं । अन्य सच्चे सम्यग्दृष्टिके साथ चारित्र्यदशामे चौथे, पाचवे और छठे गुणस्थानमे जो राग शेष है उसका ज्ञान करानेके लिये उसको सराग सम्यग्दृष्टि कहते हैं । छठे गुणस्थानधारी मुनिको निर्जरा अपेक्षासे वीतराग सम्यग्दृष्टि कहा है । (देखो, श्री समयसार, श्री जयसेनाचार्य टीका गाथा-२०१-२)..... तथा आसव अपेक्षासे उसको ही सरागसम्यग्दृष्टि कहा है । अतः सर्वत्र जिस अपेक्षासे कथन किया हो वह अपेक्षा यथार्थरूपसे समझना । (देखो, श्री समयसार गाथा-१७७-१७८ की श्री जयसेनाचार्य टीका ।)

नन्दैकलक्षणपरमसमरसीभावेन तस्मिन्नेव सम्यग्रूपेणायनं गमनं परिणमनं समयमूढ-
रहितत्वं बोद्धव्यम् । इति मूढत्रयं व्याख्यातम् ।

अथ मदाष्टस्वरूपं कथ्यते । विज्ञानैश्वर्यज्ञानतपःकुलबलजातिरूपसंज्ञं मदाष्टकं
सरागसम्यग्दृष्टिभिस्त्याज्यमिति । वीतरागसम्यग्दृष्टीनां पुनर्मानकपायादुत्पन्नमदमात्सर्यादि-
समस्तविकल्पजालपरिहारेण ममकाराहंकाररहिते स्वशुद्धात्मनि भावनैव मदाष्टकत्याग
इति । ममकाराहंकारलक्षणं कथयति । कर्मजनितदेहपुत्रकलत्रादौ ममेदमिति ममकारस्त-
त्रैवाभेदेन गौरस्थूलादिदेहोऽहं राजाहमित्यहंकारलक्षणमिति ।

अथानायतनपट्टकं कथयति । मिथ्यादेवो, मिथ्यादेवाराधका, मिथ्यातपो,
मिथ्यातपस्वी, मिथ्यागमो, मिथ्यागमधराः पुरुषाश्चेत्युक्तलक्षणमनायतनपट्टकं सराग-
सम्यग्दृष्टीनां त्याज्यं भवतीति । वीतरागसम्यग्दृष्टीनां पुनः समस्तदोषायतनभूतानां
मिथ्यात्वविषयकपायरूपायतनानां परिहारेण केवलज्ञानाद्यनन्तगुणायतनभूते स्वशुद्धात्मनि
निवास एवानायतनसेवापरिहार इति । अनायतनशब्दस्यार्थः कथ्यते । सम्यक्त्वादि-

कर, निर्विकार तात्त्विक परमानन्द जिसका एक लक्षण है ऐसे परम समरसीभावसे
उसीमे (शुद्धात्मामे ही) सम्यक् प्रकारसे अयन-गमन-परिणमन है वह समयमूढतासे
रहितपना है इसप्रकार जानना । इसप्रकार तीन मूढताओंका व्याख्यान किया ।

अब, आठ मदोका स्वरूप कहते हैं —विज्ञान, ऐश्वर्य, ज्ञान, तप, कुल, बल,
जाति और रूप—इन आठो मदोका त्याग सराग सम्यग्दृष्टियोंके द्वारा किया
जाना चाहिये । वीतराग सम्यग्दृष्टियोंको तो मानकपायसे उत्पन्न हुए मद, मात्सर्य
(ईर्ष्या) आदि समस्त विकल्पजालके त्याग द्वारा, ममकार—अहंकार रहित निज
शुद्धात्मामे भावना वही आठ मदोका त्याग है । ममकार और अहंकारका लक्षण
कहते हैं—कर्मजनित देह, पुत्र, स्त्री आदिमे 'यह मेरा है' इसप्रकारकी बुद्धि वह
ममकार है और उसमे ही अभेदरूपसे 'मै गोरा, मोटा आदि शरीर हूँ, मै राजा हूँ'
यह अहंकारका लक्षण है ।

अब, छह अनायतनोका कथन करते हैं —सम्यग्दृष्टियोंको मिथ्यादेव,
मिथ्यादेवोके आराधक, मिथ्या तप, मिथ्या तपस्वी, मिथ्या आगम, मिथ्याशास्त्रके
पंडित—इन उपरोक्त लक्षणयुक्त छह अनायतनोका त्याग सम्यग्दृष्टियोंको करना
चाहिये । वीतराग सम्यग्दृष्टियोंको तो समस्त दोषोके स्थानभूत मिथ्यात्व-विषय-
कपायरूप आयतनोके त्यागसे केवलज्ञानादि अनन्तगुणके स्थानभूत स्वशुद्धात्मामे
निवास करना वही अनायतनोंकी सेवाका त्याग है । अनायतन शब्दका अर्थ कहा

गुणानामायतनं गृहमावास आश्रय आधारकरणं निमित्तमायतनं भण्यते तद्विपक्ष-
भूतमनायतनमिति ।

अतः परं शंकाद्यष्टमलत्यागं कथयति । निःशंकाद्यष्टगुणप्रतिपालनमेव शङ्का-
द्यष्टमलत्यागो भण्यते । तद्यथा—रागादिदोषा अज्ञानं वाऽसत्यवचनकारणं तदुभयमपि
वीतरागसर्वज्ञानां नास्ति, ततः कारणात्त्प्रणीते हेयोपादेयतत्त्वे मोक्षे मोक्षमार्गं च
भव्यैः शंका संशयः सन्देहो न कर्तव्यः । तत्र शंकादिदोषपरिहारविषये पुनरञ्जन-
चौरकथा प्रसिद्धा । तत्रैव विभीषणकथा । तथाहि—सीताहरणप्रघट्टके रावणस्य राम-
लक्ष्मणाभ्यां सह संग्रामप्रस्तावे विभीषणेन विचारितं रामस्तावदष्टमवलदेवो लक्ष्मण-

जाता है । सम्यक्त्वादि गुणोंके आयतन-घर-आवास-आश्रय-आधारके निमित्तको
'आयतन' कहते हैं और उससे विपरीत वह 'अनायतन' है ।

तत्पश्चात्, शंका आदि आठ दोषोंके त्यागका कथन करते हैं—नि शकता
आदि आठ गुणोंका पालन करना वही शकादि आठ दोषोंका त्याग कहलाता है ।
वह इसप्रकार है—रागादि दोष अथवा अज्ञान असत्य वचनका कारण है और ये
दोनों (रागादि और अज्ञान) वीतराग-सर्वज्ञदेवमे नहीं है, इसकारण उनके द्वारा
कहे हुए हेय-उपादेय तत्त्वमे, मोक्षमे और मोक्षमार्गमे भव्योको शका-सशय-सदेह
करना योग्य नहीं है । वहा शका आदि दोषके त्यागके सबधमे अजनचोरकी' कथा
प्रसिद्ध है । उस सम्बन्धमें ही विभीषणकी' कथा भी (प्रसिद्ध) है । वह
इसप्रकार—सीता हरण प्रकरणमे रावणके राम-लक्ष्मणके साथ युद्ध करनेके प्रसंगमें
विभीषणने विचार किया कि राम तो आठवा 'बलदेव है और लक्ष्मण आठवा

१ इस कथाके सबधमे मोक्षमार्ग प्रकाशकमे निम्न प्रकार कहा है । पृ० २७३ "तथा प्रथमानु-
योगमे उपचाररूप कोई धर्मअग होनेपर वहा सम्पूर्ण धर्म हुआ कहते हैं । जिस प्रकार
जीवोको शका-काक्षादि न करनेसे उनको सम्यक्त्व हुआ कहते हैं, परन्तु किसी कार्यमे
शका-काक्षादि न करने मात्रसे सम्यक्त्व तो नहीं होता । सम्यक्त्व तो तत्त्व श्रद्धा होनेपर ही
होता है, परन्तु यहा निश्चयसम्यक्त्वका तो व्यवहारसम्यक्त्वमे उपचार किया तथा
व्यवहारसम्यक्त्वके किसी अगमे सपूर्ण व्यवहारसम्यक्त्वका उपचार किया; इसप्रकार
उनको उपचारसे सम्यक्त्व हुआ कहते हैं ।"

नोटः—उपचारसे सम्यग्ज्ञान तथा उपचारसे सम्यक्चारित्रका स्वरूप भी वहा कहा
है, उसे वहासे समझ लेना ।

श्वाष्टमो वासुदेवो रावणश्चाष्टमः प्रतिवासुदेव इति । तस्य च प्रतिवासुदेवस्य वासुदेव-हस्तेन मरणमिति जैनागमे कथितमास्ते, तन्मिथ्या न भवतीति निःशंको भूत्वा, त्रैलोक्यकण्टकं रावणं स्वकीयज्येष्ठभ्रातरं त्यक्त्वा, त्रिंशदक्षौहिणीप्रमितचतुरंगबलेन सह स रामस्वामिपार्श्वे गत इति । तथैव देवकीवसुदेवद्वयं निःशङ्कं ज्ञातव्यम् । तथाहि—यदा देवकीबालकस्य मारणनिमित्तं कंससेन प्रार्थना कृता तदा ताभ्यां पर्यालोचितं मदीयः पुत्रो नवमो वासुदेवो भविष्यति तस्य हस्तेन जरासिन्धुनाम्नो नवमप्रतिवासुदेवस्य कंसस्यापि मरणं भविष्यतीति जैनागमे भणितं तिष्ठतीति, तथैवातिमुक्तभट्टारकैरपि कथितमिति निश्चित्य कंसाय स्वकीयं बालकं दत्तम् । तथा शेषभव्यैरपि जिनागमे शंका न कर्तव्येति । इदं व्यवहारेण निःशंकितत्वं व्याख्यानम् । निश्चयेन पुनस्तस्यैव व्यवहारनिःशंकागुणस्य सहकारित्वेनेहलोकपरलोकात्राणागुप्तिमरणव्याधिवेदनाऽऽकस्मिक अभिधानभयसप्तकं मुक्त्वा घोरोपसर्गपरीषहप्रस्तावेऽपि शुद्धोपयोगलक्षणनिश्चयरत्नत्रय-भावनैव निःशंकगुणो ज्ञातव्य इति ॥ १ ॥

वासुदेव है तथा रावण आठवां प्रतिवासुदेव है । उस प्रतिवासुदेवका मरण वासुदेवके हाथसे होता है ऐसा जैन आगममे कहा है, वह मिथ्या नहीं हो सकता है, —इसप्रकार नि शक होकर अपने बड़े भाई, तीन लोकके कंटकरूप रावणको छोड़कर, (अपनी) तीस अक्षौहिणी चतुरंग सेना सहित वह रामचन्द्रके पास चला गया । उसीप्रकार देवकी और वसुदेव—इन दोनोंको भी नि शक जानना । वह इसप्रकार—जब देवकीके पुत्रको मारनेके लिये कसने प्रार्थनाकी तब उन दोनोंने (देवकी और वसुदेवने) विचार किया कि मेरा पुत्र नवमा वासुदेव होगा और उसके हाथसे जरासिन्धु नामक नववे प्रतिवासुदेवका और कंसका भी मरण होगा ऐसा जैन आगममें कहा है उसी प्रकार अतिमुक्त भट्टारकने भी कहा है; —इस प्रकार निश्चय करके कसको अपना बालक दे दिया । उसीप्रकार अन्य भव्य जीवोको भी जिनागममे शका नहीं करना चाहिये ।

यह व्यवहारनयसे^१ नि.शक्ति अंगका व्याख्यान किया । निश्चयसे तो, उसी व्यवहार-नि.शक्तिगुणके सहकारीपनेसे इहलोकभय, परलोकभय, अरक्षाभय, अगुप्तिभय, मरणभय, व्याधि-वेदनाभय और अकस्मात् भय—ये सात भय छोड़कर घोर उपसर्ग अथवा परीषह आने पर भी शुद्धोपयोगरूप निश्चयरत्नत्रयकी भावना वही नि शक्तिगुण जानना ॥१॥

१. जिसको निश्चयनिश्चितगुण प्रगट होता है उसे यह उपचार लागू होता है ऐसा समझना ।

अथ निष्कांक्षितागुणं कथयति । इहलोकपरलोकाशारूपभोगाकांक्षानिदान-
त्यागेन केवलज्ञानाद्यनन्तगुणव्यक्तिरूपमोक्षार्थं दानपूजातपश्चरणाद्यनुष्ठानकरणं निष्कांक्षा-
गुणो भण्यते । तथानन्तमतीकन्याकथा प्रसिद्धा । द्वितीया च सीतामहादेवीकथा ।
सा कथ्यते । सीता यदा लोकापवादपरिहारार्थं दिव्ये शुद्धा जाता तदा रामस्वामिना
दत्तं पट्टमहादेवीविभूतिपदं त्यक्त्वा सकलभूषणानगारकेवलिपादमूले कृतान्तवक्रादिराज-
भिस्तथा बहुराज्ञीभिश्च सह जिनदीक्षां गृहीत्वा शशिप्रभाधार्मिकासमुदायेन सह
ग्रामपुरखेटकादिविहारेण भेदाभेदरत्नत्रयभावनया द्विपष्टिवर्षाणि जिनसमयप्रभावनां
कृत्वा पश्चादवसाने त्रयस्त्रिंशद्विषसपर्यन्तं निर्विकारपरमात्मभावनासहितं संन्यासं
कृत्वाऽच्युताभिधानषोडशस्वर्गे प्रतीन्द्रतां याता । ततश्च निर्मलसम्यक्त्वफलं दृष्ट्वा धर्मानु-
रागेण नरके रावणलक्ष्मणयोः संबोधनं कृत्वेदानीं स्वर्गे तिष्ठति । अग्रे स्वर्गादागत्य
सकलचक्रवर्ती भविष्यति । तौ च रावणलक्ष्मीधरौ तस्य पुत्रौ भविष्यतः । ततश्च
तीर्थकरपादमूले पूर्वभवान्तरं दृष्ट्वा पुत्रद्वयेन सह परिवारेण च सह जिनदीक्षां गृहीत्वा

अब, निष्काक्षितगुणका कथन करते हैं — इस लोक और परलोककी
तृष्णारूप भोगाकाक्षानिदानके त्याग द्वारा केवलज्ञानादि अनन्त गुणोंकी प्रगट्ठारूप
मोक्षके लिये दान, पूजा, तपश्चरण आदि आचरण करना वह निष्काक्षित गुण
कहलाता है । इस गुणमें अनन्तमती कन्याकी कथा^१ प्रसिद्ध है । दूसरी सीता
महादेवीकी^१ कथा है । उसे कहते हैं — जब सीता लोगोकी निंदा दूर करनेके
लिये अग्निकुण्डमें प्रवेश कर शुद्ध (निर्दोष) हुई तब रामचन्द्र द्वारा दिये गये
पट्ट-महाराणी-विभूतिपद छोड़कर, सकलभूषण नामक केवलज्ञानीके पादमूलमें,
कृतान्तवक्र आदि राजाओ और बहुतसी रानियोंके साथ जिनदीक्षा लेकर,
शशिप्रभा आदि आर्यिकाओके समूहके साथमें ग्राम, पुर, खेटक आदिमें विहार
करती हुई, भेदाभेद रत्नत्रय भावनासे बासठ वर्ष तक जैनमतकी प्रभावना करके
अत समयमें तैतीस दिन तक निर्विकार परमात्माकी भावना सहित संन्यास करके
(—समाधिमरण करके) अच्युत नामक सोलहवे स्वर्गमें प्रतीन्द्र हुआ, तत्पश्चात्
निर्मल सम्यक्त्वका फल देखकर धर्मानुरागसे नरकमें रावण और लक्ष्मणको संबोधन
कर अब स्वर्गमें है । भविष्यमें स्वर्गसे आकर सीताका जीव सकल चक्रवर्ती होगा ;
रावण और लक्ष्मणके जीव उसके (सीताके जीवके) पुत्र होंगे । तत्पश्चात् तीर्थकर-

१. मोक्षमार्ग प्रकाशक अध्याय ८ पृष्ठ २७३ में उपचारका स्वरूप बताया है वह इन कथाओंको
लागू पड़ता है ।

भेदाभेदरत्नत्रयभावनया पञ्चानुत्तरविमाने त्रयोप्यहमिन्द्रा भविष्यन्ति । तस्मादागत्य रावणस्तीर्थकरो भविष्यति, सीता च गणधर इति, लक्ष्मीधरो धातकीखण्डद्वीपे तीर्थकरो भविष्यति । इति व्यवहारनिष्कांक्षितागुणो विज्ञातव्यः । निश्चयेन पुनस्तस्यैव व्यवहारनिष्कांक्षागुणस्य सहकारित्वेन दृष्टश्रुतानुभूतपञ्चेन्द्रियभोगत्यागेन निश्चयरत्नत्रयभावनोत्पन्नपारमार्थिकस्वात्मोत्थसुखामृतरसे चित्तसन्तोषः स एव निष्कांक्षागुण इति ॥ २ ॥

अथ निर्विचिकित्सागुणं कथयति । भेदाभेदरत्नत्रयाराधकभव्यजीवानां दुर्गन्धवीभत्सादिकं दृष्ट्वा धर्मबुद्ध्या कारुण्यभावेन वा यथायोग्यं विचिकित्सापरिहरणं द्रव्यनिर्विचिकित्सागुणो भण्यते । यत्पुनर्जैनसमये सर्वं समीचीनं परं किन्तु वस्त्रा-प्रावरणं जलस्नानादिकं च न कुर्वन्ति तदेव दूषणमित्यादिकुत्सितभावस्य विशिष्टविवेक-बलेन परिहरणं सा भाव निर्विचिकित्सा भण्यते । अस्य व्यवहारनिर्विचिकित्सागुणस्य विषय उदायनमहाराजकथा रुक्मिणीमहादेवीकथा चागमप्रसिद्धा ज्ञातव्येति । निश्चयेन

देवके पादमूलमे अपना पूर्वभव देखकर, परिवार सहित दोनो पुत्र तथा सीताका जीव जिनदीक्षा लेकर भेदाभेदरत्नत्रयकी भावनासे पच अनुत्तर विमानमे तीनो अहमिन्द्र होगे । वहासे आकर रावण तीर्थकर होगा, और सीता (उसका) गणधर होगी । लक्ष्मण धातकीखड द्वीपमे तीर्थकर होगा । इसप्रकार व्यवहार निष्काक्षित गुण जानना । निश्चयसे तो, उसी व्यवहार नि काक्षितगुणके सहकारीपनेसे^१, दृष्ट, श्रुत और अनुभूत पचेन्द्रियभोगोका त्याग कर, निश्चयरत्नत्रयकी भावनासे उत्पन्न पारमार्थिक निजात्मजनित सुखामृतके रसमे चित्तका सतोष वही निष्काक्षित गुण है ॥२॥

अब, निर्विचिकित्सागुण कहते है —भेदाभेद रत्नत्रयके आराधक भव्य जीवोंकी दुर्गन्ध, खराब आकृति आदि देखकर धर्मबुद्धिसे अथवा करुणाभावसे योग्यता प्रमाण ग्लानि छोड़ना उसे द्रव्य-निर्विचिकित्सा गुण कहते है । “जैनमतमे सब बाते अच्छी है किन्तु मुनिको वस्त्र-रहितपना तथा वे जलस्नानादि नहीं करते वही दोष है” —ऐसा कुत्सित भाव, विशिष्ट विवेकबल द्वारा छोड़ना वह भाव-निर्विचिकित्सा कहलाता है । इस व्यवहार-निर्विचिकित्सागुणके विषयमे उदायन महाराजाकी और रुक्मिणी महादेवीकी कथा आगम प्रसिद्ध जानना । निश्चयसे

१. सहकारीपनेसे=निमित्तपनेसे, निमित्त उपादानमें कोई विशिष्टता उत्पन्न नहीं करता परन्तु उसी प्रकारके उचित निमित्तकी सन्निधि होती है । (देखो, श्री प्रवचनसार गाथा-६५ टीका पृ० १७६ आवृत्ति दूसरी)

पुनस्तस्यैव व्यवहारनिर्विचिकित्सागुणस्य बलेन समस्तद्वेषादिविकल्परूपकल्लोलमाला-
त्यागेन निर्मलात्मानुभूतिलक्षणे निजशुद्धात्मनि व्यवस्थानं निर्विचिकित्सागुण
इति ॥ ३ ॥

इतः परं अमूढदृष्टिगुणं कथयति । वीतरागसर्वज्ञप्रणीतागमार्थाद्विहिर्भूतैः
कुदृष्टिभिर्यत्प्रणीतं धातुवादखन्यवादहरमेखलक्षुद्रविद्याव्यन्तरविकुर्वणादिकमज्ञानिजन-
चिच्चमत्कारोत्पादकं दृष्ट्वा श्रुत्वा च योऽसौ मूढभावेन धर्मबुद्ध्या तत्र रुचिं भक्तिं
न कुरुते स एव व्यवहारोऽमूढदृष्टिरुच्यते । तत्र चोत्तरमथुरायां उदुरुलिभट्टारकरेवती-
श्राविकाचन्द्रप्रभनामविद्याधरब्रह्मचारिसम्बन्धिनीकथा प्रसिद्धेति । निश्चयेन पुनस्तस्यैव
व्यवहारामूढदृष्टिगुणस्य प्रसादेनान्तस्तत्त्वबहिस्तत्त्वनिश्चये जाते सति समस्तमिथ्यात्व-
रागादिशुभाशुभसंकल्पविकल्पेष्टात्मबुद्धिमुपादेयबुद्धिं हितबुद्धिं ममत्वभावं त्यक्त्वा
त्रिगुप्तिरूपेण विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावे निजात्मनि यन्निश्चलावस्थानं तदेवामूढदृष्टित्व-
मिति । संकल्पविकल्पलक्षणं कथ्यते । पुत्रकलत्रादौ बहिर्द्रव्ये ममेदमिति कल्पना संकल्पः,

तो, उसी व्यवहार निर्विचिकित्सागुणके^१ बलसे समस्त द्वेषादि विकल्परूप तरगोका
त्याग कर निर्मल आत्मानुभूति जिसका लक्षण है ऐसी निज शुद्धात्मामे स्थिति
वही निर्विचिकित्सागुण है ॥३॥

इसके पश्चात्, अमूढदृष्टिगुणका कथन करते हैं—वीतराग-सर्वज्ञ-प्रणीत
आगमके अर्थसे विपरीत कुदृष्टियो द्वारा रचित जो रसायनशास्त्र, खनिजविद्या,
हरमेखल, क्षुद्रविद्या, व्यन्तर-विकुर्वण आदि अज्ञानियोके चित्तमे विस्मय उत्पन्न
करने वाले शास्त्र देखकर और सुनकर जो कोई जीव मूढतासे उनमें धर्मबुद्धि
द्वारा रुचि अथवा भक्ति नहीं करता है वही व्यवहार-अमूढदृष्टि कहलाता है ।
इस विषयमें उत्तर-मथुरामें उदुरुलि भट्टारक, रेवती श्राविका तथा चन्द्रप्रभ नामक
विद्याधर ब्रह्मचारीकी कथाये प्रसिद्ध है । निश्चयसे तो उसी व्यवहार-अमूढदृष्टि-
गुणके प्रसादसे^२ अत तत्त्व और बहि तत्त्वका निश्चय होनेपर समस्त मिथ्यात्व-
रागादि शुभाशुभ सकल्प-विकल्पोमे इष्टबुद्धि-आत्मबुद्धि-उपादेयबुद्धि-हितबुद्धि-
ममत्वभावका त्याग कर त्रिगुप्तिरूपसे विशुद्धज्ञान-दर्शनस्वभावी निजात्मामे जो
निश्चल स्थिति करना वही अमूढदृष्टिपना है । सकल्प और विकल्पका लक्षण
कहते हैं . पुत्र, स्त्री आदि बाह्य द्रव्योमे 'यह मेरा है' ऐसी कल्पना वह सकल्प है,

१. व्यवहार बल अर्थात् निमित्तकारण ।

२. व्यवहारके प्रसादसे अर्थात् जब स्वसन्मुखतारूप निश्चय प्रसाद हो तब निमित्तको व्यवहार-
नयसे प्रसाद कहा जाता है ।

अभ्यन्तरे मुख्यहं दुःख्यहमिति हर्षविपादकारणं विकल्प इति । अथवा वस्तुवृत्त्या संकल्प इति कोऽर्थो विकल्प इति तस्यैव पर्यायः ॥४॥

अथोपगूहनगुणं कथयति । भेदाभेदरत्नत्रयभावनारूपो मोक्षमार्गः स्वभावेन शुद्ध एव तावत्, तत्राज्ञानिजननिमित्तेन तथैवाशक्तजननिमित्तेन च धर्मस्य पैशुन्यं दूषणमपवादो दुष्प्रभावना यदा भवति तदागमाविरोधेन यथाशक्त्यऽर्थेन धर्मोपदेशेन वा यद्धर्मार्थं दोषस्य झम्पनं निवारणं क्रियते तद्व्यवहारनयेनोपगूहनं भण्यते । तत्र मायात्रज्ञचारिणा पार्श्वभङ्गाकप्रतिमालग्नरत्नहरणे कृते सत्युपगूहनविषये जिनदत्तश्रेष्ठिकथा प्रसिद्धेति । अथवा रुद्रजनन्या ज्येष्ठासंज्ञाया लोकापवादे जाते सति यदोपझम्पनं कृतं तत्र चेलिनीमहादेवीकथेति । तथैव निश्चयेन पुनस्तस्यैव व्यवहारोपगूहनगुणस्य सहकारित्वेन निजनिरजननिर्दोषपरमात्मनः प्रच्छादका ये मिथ्यात्वरगादिदोषास्तेषां तस्मिन्नेव परमात्मनि सम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपं यद्ध्यानं तेन प्रच्छादनं विनाशनं गोपनं झम्पनं तद्व्योपगूहनमिति ॥ ५ ॥

अतरगमे 'मैं मुखी हूं, मैं दु खी हूँ' ऐसा हर्ष-विपाद करना वह विकल्प है, अथवा वास्तविकरूपसे सकल्पका अर्थ क्या ? विकल्प । [सकल्प वही विकल्प] वह उसकी ही पर्याय है । (सकल्प, विकल्पकी ही पर्याय है ।) ॥४॥

अब उपगूहन गुण कहते हैं — भेदाभेद^१ रत्नत्रयकी भावनारूप मोक्षमार्ग स्वभावसे शुद्ध ही है । उसमें अज्ञानी मनुष्योंके निमित्तसे तथा अशक्त मनुष्योंके निमित्तसे धर्मकी निन्दा-दोष-अपवाद अथवा अप्रभावना जब होती है तब आगमके अविरोधरूपसे शक्ति अनुसार धनसे अथवा धर्मोपदेशसे धर्मके लिये जो दोषोंको ढका जाता है अथवा दूर किया जाता है वह व्यवहारनयसे उपगूहन कहलाता है । इस विषयमें मायाचारसे ब्रह्मचारीने पार्श्वनाथ भगवानकी प्रतिमामें जडित रत्नकी चोरी की तब जिनदत्त श्रेष्ठीने उपगूहन किया वह कथा प्रसिद्ध है । अथवा रुद्रकी ज्येष्ठा नामक माताकी लोकनिन्दा हुई तब उसका दोष ढकने वाली चेलिनी महाराणीकी कथा प्रसिद्ध है । निश्चयसे तो, उसी व्यवहार उपगूहनगुणके सहकारीपनेसे^२ निज निरजन निर्दोष परमात्माके आच्छादक मिथ्यात्व-रागादि दोषोंका, उसी परमात्माके सम्यक्श्रद्धान-ज्ञान-आचरणरूप ध्यानद्वारा प्रच्छादन-नाश-गोपण करना-ढकना वही उपगूहनगुण है ॥५॥

१. भेद रत्नत्रय व्यवहारनय से शुद्ध है और अभेद रत्नत्रय निश्चयनयसे शुद्ध है; दोनों साथ होते हैं।

२. सहकारी=निमित्त ।

अथ स्थितीकरणं कथयति । भेदाभेदरत्नत्रयधारकस्य चातुर्वर्णसङ्घस्य मध्ये यदा कोऽपि दर्शनचारित्रमोहोदयेन दर्शनं ज्ञानं चारित्रं वा परित्यक्तं वाञ्छति तदा-गमाविरोधेन यथाशक्त्या धर्मश्रवणेन वा अर्थेन वा सामर्थ्येन वा केनाप्युपायेन यद्धर्मं स्थिरत्वं क्रियते तद्व्यवहारेण स्थितीकरणमिति । तत्र च पुष्पडालतपोधनस्य स्थितीकरणप्रस्तावे वारिषेणकुमारकथाऽऽगमप्रसिद्धेति । निश्चयेन पुनस्तेनैव व्यवहारेण स्थितीकरणगुणेन धर्मदृढत्वे जाते सति दर्शनचारित्रमोहोदयजनितसमस्तमिथ्यात्वरागादिविकल्पजालत्यागेन निजपरमात्मस्वभावभावनोत्पन्नपरमानन्दैकलक्षणसुखामृतरसास्वादेन तल्लयतन्मयपरमसमरसीभावेन चित्तस्थितीकरणमेव स्थितीकरणमिति ॥६॥

अथ वात्सल्याभिधानं सप्तमाङ्गं प्रतिपादयति । बाह्याभ्यन्तररत्नत्रयाधारे चतुर्विधसंघे वत्से धेनुवत्पञ्चेन्द्रियविषयनिमित्तं पुत्रकलत्रसुवर्णादिस्नेहवद्वा यदकृत्रिम-

अब, स्थितिकरण गुणका कथन करते हैं:—भेदाभेद^१ रत्नत्रयके धारक (मुनि, अर्जिका, श्रावक, श्राविकारूप) चार प्रकारके संघमेसे कोई जब दर्शन और चारित्रमोहके उदयसे दर्शन, ज्ञान अथवा चारित्रका त्याग करनेकी इच्छा करता है तब आगमसे अविरोधरूपसे शक्ति प्रमाण धर्मश्रवणसे, धनसे, सामर्थ्यसे अथवा किसी भी उपायसे उसे धर्ममें स्थिर किया जाता है वह व्यवहारसे स्थितिकरण है । पुष्पडाल मुनिको धर्ममें स्थिर करनेके प्रसंगमें वारिषेणकुमारकी कथा आगम प्रसिद्ध है । निश्चयसे तो, उसी व्यवहार-स्थितिकरण^२ गुणसे धर्ममें दृढता होनेपर दर्शन और चारित्रमोहके उदयसे उत्पन्न समस्त मिथ्यात्व-रागादि विकल्प-जालका त्याग कर निज परमात्मस्वभावकी भावनासे उत्पन्न परमानन्द जिसका एक लक्षण है ऐसे सुखामृतके रसास्वाद द्वारा परमात्मामे तल्लीन-तन्मय परम समरसी-भावसे चित्तको स्थिर करना वही स्थितिकरणगुण है ॥६॥

अब, वात्सल्य नामक सातवां अंग कहते हैं —बाह्य और अभ्यन्तर रत्नत्रयके धारक ऐसे चतुर्विध संघके प्रति, गायको बछड़ेके प्रति होता है उसीप्रकार अथवा पाच इन्द्रियके विषयके निमित्तभूत पुत्र, स्त्री, सुवर्णादिके प्रति स्नेह होता है उसीप्रकार,

१. भेदाभेद रत्नत्रय एकसाथ पाचवे तथा छद्मे गुणस्थानमें होता है ऐसा यहां-बतलाया है ।

२. व्यवहार-स्थितिकरण गुणके निमित्तसे ।

स्नेहकरणं तद् व्यवहारेण वात्सल्यं भण्यते । तत्र च हस्तिनागपुराधिपतिपद्मराजसंबन्धिना वलिनामदुष्टमन्त्रिणा निश्चयव्यवहाररत्नत्रयाराधकाकम्पनाचार्यप्रभृतिसंश्रुतैर्यतीनिमुपसर्गं क्रियमाणे सति विष्णुकुमारनाम्ना निश्चयव्यवहारमोक्षमार्गाराधकपरमयतिना विकुर्वणद्वि-
प्रभावेण वामनरूपं कृत्वा वलिमन्त्रिपार्श्वं पादत्रयप्रमाणभूमिप्रार्थनं कृत्वा पश्चादेकः पादो मेरुमस्तके दत्तो द्वितीयो मानुषोत्तरपर्वते तृतीयपादस्यावकाशो नास्तीति वचनञ्जलेन मुनिवात्सल्यनिमित्तं वलिमन्त्री वद्व इत्येका तावदागमप्रसिद्धा कथा । द्वितीया च दशपुरनगराधिपतेर्वज्रकर्णनाम्नः उज्जयिनीनगराधिपतिना सिंहोदरमहाराजेन जैनोऽयं, मम नमस्कारं न करोतीति मत्वा दशपुरनगरं परिवेष्ट्य घोरोपसर्गं क्रियमाणे भेदाभेद-
रत्नत्रयभावनाप्रियेण रामस्वामिना वज्रकर्णवात्सल्यनिमित्तं सिंहोदरो वद्व इति रामायण-
मध्ये प्रसिद्धेयं वात्सल्यकथेति । निश्चयवात्सल्यं पुनस्तस्यैव व्यवहारवात्सल्यगुणस्य सहकारित्वेन धर्मं दृढत्वे जाते सति मिथ्यात्वरागादिसमस्तशुभाशुभवहिर्भावेषु प्रीतिं त्यक्त्वा रागादिविकल्पोपाधिरहितपरमस्वास्थ्यसंविचिसञ्जातसदानन्दैकलक्षणसुखामृत-

जो स्वाभाविक स्नेह होना उसे व्यवहारसे वात्सल्यगुण कहते हैं । उस संबंधमें हस्तिनागपुरके राजा पद्मराजके वलि नामक दुष्ट मन्त्रीने जब निश्चय-व्यवहार रत्नत्रयके आराधक श्री अकम्पनाचार्य आदि सातसौ मुनियोने उपसर्ग किया तब निश्चय-व्यवहार मोक्षमार्गके आराधक विष्णुकुमार नामक मुनिने विक्रिया ऋद्धिके प्रभावसे, वामनरूप धारण करके वलि नामक मन्त्रीके पास तीन डग भूमि मागकर, एक पैर मेरुपर्वतके शिखर पर रखा, दूसरा मानुषोत्तर पर्वत पर रखा और तीसरा पग रखनेका स्थान खाली नहीं है ऐसा कहकर वचनके छलसे मुनियोके वात्सल्यके निमित्त वलि नामक मन्त्रीको बाधा—ऐसी एक आगमप्रसिद्ध कथा है । दूसरी एक वात्सल्यकी कथा, दशपुर नगरके वज्रकर्ण नामक राजाकी, रामायणमें प्रसिद्ध है; उज्जयिनीके राजा सिंहोदरने 'यह वज्रकर्ण जैन है और मुझे नमस्कार नहीं करता है' ऐसा जानकर दशरथपुर नगरको घेरा डालकर घोर उपसर्ग किया । तब भेदाभेदरत्नत्रयकी भावना जिनको प्रिय थी ऐसे रामचद्रने वज्रकर्ण प्रतिके वात्सल्यके निमित्त सिंहोदरको बाधा । (—यह वात्सल्य कथा रामायणमें प्रसिद्ध है ।) निश्चय वात्सल्य तो, उसी व्यवहार वात्सल्यगुणके सहकारीपनेसे धर्ममें दृढता होनेपर, मिथ्यात्व-रागादि समस्त शुभाशुभ बहिर्भावोमे प्रीति छोड़कर रागादि विकल्पोपाधिरहित, परम स्वास्थ्यके सवेदनसे उत्पन्न सदानन्द (नित्य आनन्द) जिसका एक लक्षण है ऐसे सुखामृतके रसास्वादमे प्रीति करना ही है । इसप्रकार

रसास्वादं प्रति प्रीतिकरणमेवेति सप्तमाङ्गं व्याख्यातम् ॥ ७ ॥

अथाष्टमाङ्गं नाम प्रभावनागुणं कथयति । श्रावकेन दानपूजादिना तपोधनेन-
च तपःश्रुतादिना जैनशासनप्रभावना कर्तव्येति व्यवहारेण प्रभावनागुणो ज्ञातव्यः ।
तत्र पुनरुत्तरमथुरायां जिनसमयप्रभावनशीलाया उर्विल्लामहादेव्याः प्रभावननिमित्त-
मुपसर्गे जाते सति वज्रकुमारनाम्ना विद्याधरश्रमणेनाकाशे जैनरथभ्रमणेन प्रभावना
कृतेत्येका आगमप्रसिद्धा कथा । द्वितीया तु जिनसमयप्रभावनाशीलवप्रामहादेवीनाम-
स्वकीयजनन्या निमित्तं स्वस्य धर्मानुरागेण च हरिषेणनामदशमचक्रवर्तिना तद्भवमोक्ष-
गामिना जिनसमयप्रभावनार्थमुचुञ्जतोरणजिनचैत्यालयमण्डितं सर्वभूमितलं कृतमिति
रामायणे प्रसिद्धेयं कथा । निश्चयेन पुनस्तस्यैव व्यवहारप्रभावनागुणस्य बलेन मिथ्यात्व-
विषयकषायप्रभृतिसमस्तविभावपरिणामरूपपरसमयानां प्रभावं हत्वा शुद्धोपयोगलक्षण-
स्वसंवेदनज्ञानेन विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावनिजशुद्धात्मनः प्रकाशनमनुभवनमेव प्रभावनेति
॥ ८ ॥

सातवे अंगका व्याख्यान क्रिया ॥७॥

अब, प्रभावनागुण नामक आठवे अंगका कथन करते हैं—श्रावकको दान-
पूजा आदि द्वारा और मुनिको तप-श्रुत आदिसे जैन शासनकी प्रभावना करना—
इसे व्यवहारसे प्रभावनागुण जानना । इस विषयमे उत्तर मथुरामे जिनसमयकी
प्रभावना करनेके स्वभाववाली उर्विल्लामहादेवीको प्रभावनाके निमित्तसे उपसर्ग
होनेपर वज्रकुमार नामक विद्याधर श्रमणने आकाशमे जैनरथ भ्रमण कराकर
प्रभावना की थी—यह एक आगमप्रसिद्ध कथा है । तथा दूसरी कथा यह है—
तद्भव मोक्षगामी हरिषेण नामक दसवे चक्रवर्तिने, जिनसमयकी प्रभावनाशील
अपनी माता वप्रा महादेवीके निमित्तसे और अपने धर्मानुरागसे, जैनमतकी
प्रभावनाके लिये ऊँचे तोरणवाले जिनमदिरोसे समस्त पृथ्वीको विभूषित किया
था । यह कथा रामायणमे प्रसिद्ध है । निश्चयसे तो, उसी व्यवहार प्रभावना गुणके
बलसे^१ मिथ्यात्व-विषय-कषायादि समस्त विभाव परिणामरूप परसमयोका प्रभाव
नष्ट करके शुद्धोपयोगलक्षण स्वसंवेदन ज्ञान द्वारा विशुद्ध ज्ञानदर्शनस्वभावी निज
शुद्धात्माका प्रकाशन—अनुभवन करना वही प्रभावना है ॥८॥

१. बलसे=निमित्तसे

एवमुक्तप्रकारेण मूढत्रयमदाष्टकपडनायतनशङ्काधष्टमलरहितं शुद्धजीवादितत्त्वार्थ-
श्रद्धानलक्षणं सरागसम्यक्त्वाभिधानं व्यवहारसम्यक्त्वं विज्ञेयम् । तथैव तेनैव व्यवहार-
सम्यक्त्वेन पारम्पर्येण साध्यं शुद्धोपयोगलक्षणनिश्चयरत्नत्रयभावनोत्पन्नपरमाह्लादैकरूप-
सुखामृतरसास्वादनमेवोपादेयमिन्द्रियसुखादिकं च हेयमिति रुचिरूपं वीतरागचारित्रा-
विनाभूतं वीतरागसम्यक्त्वाभिधानं निश्चयसम्यक्त्वं च ज्ञातव्यमिति । अत्र व्यवहार-
सम्यक्त्वमध्ये निश्चयसम्यक्त्वं किमर्थं व्याख्यातमिति चेत् ? व्यवहारसम्यक्त्वेन
निश्चयसम्यक्त्वं साध्यत इति साध्यसाधकभावज्ञापनार्थमिति ।

इदानीं येषां जीवानां सम्यग्दर्शनग्रहणात्पूर्वमायुर्वन्धो नास्ति तेषां व्रता-
भावेऽपि नरनारकादिकुत्सितस्थानेषु जन्म न भवतीति कथयति । “सम्यग्दर्शनशुद्धा
नारकतिर्यङ्गनपुंसकस्त्रीत्वानि । दुष्कुलविकृताल्पायुर्दरिद्रतां च व्रजन्ति नाप्यत्रतिकाः
॥१॥” इतः परं मनुष्यगतिमुत्पन्नसम्यग्दृष्टेः प्रभावं कथयति । “ओजस्तेजोविद्या-

इसप्रकार उक्त प्रकारसे तीन मूढता, आठ मद, छह अनायतन और शका
आदि आठ दोष रहित शुद्ध जीवादितत्त्वार्थोंका श्रद्धान जिसका लक्षण है ऐसा
सरागसम्यक्त्व नामक व्यवहार^१-सम्यक्त्व जानना । उसीप्रकार उसी व्यवहार-
सम्यक्त्वसे परपरासे साध्य ऐसा, शुद्धोपयोगलक्षण निश्चयरत्नत्रयकी भावनासे
उत्पन्न परमाह्लाद जिसका एक रूप है ऐसे सुखामृतरसका आस्वाद ही उपादेय है
और इन्द्रियसुखादि हेय है ऐसी रुचिरूप, वीतरागचारित्रका अविनाभावी
वीतराग-सम्यक्त्व नामक निश्चय-सम्यक्त्व जानना ।

प्रश्नः—यहा व्यवहारसम्यक्त्वके कथनमे निश्चयसम्यक्त्वका कथन किसलिये
किया ?

उत्तरः—व्यवहार-सम्यक्त्वसे निश्चय-सम्यक्त्वकी सिद्धि होती है ऐसा साध्य-
साधकभावका ज्ञान करानेके लिये कथन किया है ।

अब, जिन जीवोको सम्यग्दर्शनके ग्रहण होनेसे पहले आयुष्यका बध न हुआ
हो उनको व्रत न हो तो भी निन्द्य नर-नारक आदिके स्थानमे जन्म नहीं होता है
ऐसा कहते है : “सम्यग्दर्शनशुद्धा नारकतिर्यङ्गनपुंसकस्त्रीत्वानि । दुष्कुलविकृताल्पायुर्द-
रिद्रतां च व्रजन्ति नाप्यत्रतिकाः ॥^२ [अर्थः—जिनको सम्यग्दर्शन शुद्ध है परन्तु
अव्रती है वे भी नरकगति, तिर्यचगति, नपुंसकपना, स्त्रीपना, नीचकुल, अगहीन
शरीर, अल्प आयु और दरिद्रपनेको प्राप्त नहीं होते है ।]” अब, मनुष्यगतिमे उत्पन्न

१. भूमिकायोग्य व्यवहार अर्थात् शुभरागके साथका अनुपचरित सम्यग्दर्शन ।

२ श्री रत्नकरड श्रावकाचार गाथा-३५

वीर्ययशोवृद्धिविजयविभवसनाथाः । महाकुला महार्था मानवतिलका भवन्ति दर्शनपूताः ॥१॥” अथ देवगतौ पुनः प्रकीर्णकदेववाहनदेवकिल्बिषदेवनीचदेवत्रयं विहायान्येषु महर्द्धिकदेवेषुत्पद्यते सम्यग्दृष्टिः । इदानीं सम्यक्त्वग्रहणात्पूर्वं देवायुष्कं विहाय ये बद्धायुष्कास्तान् प्रति सम्यक्त्वमाहात्म्यं कथयति । “हेट्टिमच्छप्पुढवीणं जोइसवण-भवनसव्वइत्थीणं । पुण्णिदरे ण हि सम्मो ण सासणो णारयापुण्णे ।” तमेवार्थं प्रकारान्तरेण कथयति । “ज्योतिर्भावनभौमेषु षट्स्वधः श्वभ्रभूमिषु । तिर्यञ्चु नृसुरस्त्रीषु सद्दृष्टिनैव जायते” ॥१॥ अथौपशमिकवेदकक्षायिकाभिधानसम्यक्त्वत्रयमध्ये कस्यां गतौ कस्य सम्यक्त्वस्य सम्भवोऽस्तीति कथयति—“^२सौधर्मादिष्वसंख्याब्दायुष्कतिर्यञ्चु

सम्यग्दृष्टि जीवोके प्रभावका कथन करते हैं—“ओजस्तेजोविद्यावीर्ययशोवृद्धिविजय-विभवसनाथाः । उत्तमकुला महार्था मानवतिलका भवन्तिदर्शनपूताः ॥ [अर्थः—जो दर्शनसे पवित्र है वे उत्साह, तेज, विद्या, वीर्य, यश, वृद्धि, विजय और वैभव सहित, उत्तम कुलयुक्त, प्रचुर धनवान और मनुष्योमे शिरोमणि होते हैं ।]”^३ तथा देवगतिमे प्रकीर्णक देव, वाहन देव, किल्बिष देव और तीनो नीच देवो (व्यन्तर-भवनवासी-ज्योतिषी) के अतिरिक्त महाऋद्धिधारक देवोमे सम्यग्दृष्टि उत्पन्न होते हैं ।

अब, सम्यक्त्वके ग्रहणके पूर्व जिन्होंने देव-आयुष्य बांधी हो उनके सबधमे सम्यक्त्वका माहात्म्य कहते हैं । “हेट्टिमच्छप्पुढवीणं जोइसवणभवनसव्वइत्थीणं । पुण्णिदरे ण हि सम्मो ण सासणो णारयापुण्णे ॥ [अर्थः—नीचेके छह नरकोमे, ज्योतिषी, व्यन्तर और भवनवासी देवोमे, सब स्त्रियोमे, लब्ध्यपर्याप्तकोमे सम्यग्दृष्टि उत्पन्न नहीं होता है, तथा सासादन सम्यग्दृष्टि अपर्याप्त नारकीरूपसे उत्पन्न नहीं होता है ।]”^४ वही अर्थ दूसरे प्रकारसे कहते हैं—“ज्योतिर्भावनभौमेषु षट्स्वधः श्वभ्रभूमिषु । तिर्यञ्चु नृसुरस्त्रीषु सद्दृष्टिनैव जायते ॥ [अर्थः—ज्योतिषी, भवन-वासी और व्यन्तरदेवोमे, नीचेकी छह नरकी पृथ्वियोमे, तिर्यचोमे, मनुष्य स्त्रियोमें और देवागनाओमे सम्यग्दृष्टि उत्पन्न^५ नहीं होते हैं ।]”

औपशमिक, वेदक और क्षायिक नामक तीन सम्यक्त्वोमेसे किस गतिमे कौनसा सम्यक्त्व सभव है उसका कथन करते हैं—“सौधर्म^६ आदि स्वर्गोमें, असंख्य

१. निकायत्रितये पूर्वे श्वभ्रभूमिषु षट्स्वध. वनितासु समस्तासु सम्यग्दृष्टिनं जायते ॥२६८॥

२. नृभोगभूमितिर्यक्षु सौधर्मादिषु नाकिषु । आद्यया श्वभ्रभूमौ च सम्यक्त्वत्रयमिष्यते ॥३००॥
[अमितगति (पचसग्रह)]

३. श्री रत्नकरड श्रावकाचार गाथा-३६

४. श्री गोम्मटसार जीवकाड गाथा-१२८

५. श्री सुभाषित रत्न सदोह गाथा-८२६

नृष्वपि । रत्नप्रभावर्णौ च स्यात्सम्यक्त्वत्रयमङ्गिनाम् ॥२॥” कर्मभूमिजपुरुषे च त्रयं सम्भवति त्रिदशायुष्के लब्धायुष्केऽपि । किन्त्वौपशमिकमपर्याप्तावस्थायां महर्द्धिकदेवेष्वेव । “शेषेषु देवतिर्यक्षु पट्स्वधः श्वभ्रभूमिषु । द्वौ वेदकोपशमकौ स्यातां पर्याप्तदेहिनाम् ॥३॥” इति निश्चयव्यवहाररत्नत्रयात्मकमोक्षमार्गावयविनः प्रथमावयवभूतस्य सम्यक्त्वस्य व्याख्यानानेन गाथा गता ॥ ४१ ॥

अथ रत्नत्रयात्मकमोक्षमार्गाद्वितीयावयवरूपस्य सम्यग्ज्ञानस्य स्वरूपं प्रतिपादयति—

संसयविमोहविभ्रमविवर्जितं अप्परसरूवस्स ।

गहणं सम्मरणाणं सायारमणोयभेयं तु ॥४२॥

वर्षके आयुष्यवाले, तिर्यचोमे, मनुष्योमे और रत्नप्रभा प्रथम नरकमे तीनों सम्यक्त्व होते हैं ॥२॥” जिन्होंने आयुष्य वाधा हो अथवा न बाधा हो वैसे कर्मभूमिके मनुष्योमे तीनों सम्यक्त्व होते हैं, परन्तु अपर्याप्त अवस्थामे औपशमिक सम्यक्त्व महर्द्धिक देवोमे ही होता है । “शेषेषु देवतिर्यक्षु पट्स्वधः श्वभ्रभूमिषु । द्वौ वेदकोपशमकौ स्यातां पर्याप्तदेहिनाम् ॥ [अर्थः—शेष देवो और तिर्यचोमें और नीचेकी छह नरक भूमियोमे पर्याप्त जीवोको वेदक और उपशम ये दो ही सम्यक्त्व होते हैं ।]”

इसप्रकार निश्चय-व्यवहार^१ रत्नत्रयात्मक मोक्षमार्ग जोकि अवयवी है उसके प्रथम अवयवरूप सम्यक्त्वका व्याख्यान करनेवाली गाथा पूर्ण हुई ॥४१॥

अब रत्नत्रयात्मक मोक्षमार्गके दूसरे अवयवरूप सम्यग्ज्ञानका स्वरूप प्रतिपादन करते हैं—

१. शेष त्रिदशतिर्यक्षु पट्स्वध. श्वभ्रभूमिषु । पर्याप्तेषु द्वय ज्ञेय क्षायिकेण विनागिषु ॥३०१॥
(अमितगति) पचसग्रह प्रथम परिच्छेद

१. निश्चय-व्यवहार रत्नत्रय एक साथ ही होता है । व्यवहारका प्रत्येक समय आशिक अभाव होकर निश्चय रत्नत्रय वृद्धिगत होता है ।

संसय विमोह विभ्रम दूरि, आपा परकूं गहै जरूरि ।

सो है सम्यक्ज्ञान, अनेक, भेद लीयें साकार अटेक ॥४२॥

संशयविमोहविभ्रमविवर्जित आत्मपरस्वरूपस्य ।
ग्रहणं सम्यक् ज्ञानं साकारं अनेकभेदं च ॥४२॥

व्याख्या:—“संशयविमोहविभ्रमविवर्जितं” “संशयः” शुद्धात्मतत्त्वादि-
प्रतिपादकमागमज्ञानं किं वीतरागसर्वज्ञप्रणीतं भविष्यति परसमयप्रणीतं वेति, संशयः ।
तत्र दृष्टान्तः—स्थाणुर्वा पुरुषो वेति । “विमोहः” परस्परसापेक्षनयद्वयेन द्रव्यगुण-
पर्यायादिपरिज्ञानाभावो विमोहः । तत्र दृष्टान्तः—गच्छत्तृणस्पर्शवद्दिग्मोहवद्वा । “विभ्रमः”
अनेकान्तात्मकवस्तुनो नित्यक्षणिकैकान्तादिरूपेण ग्रहणं विभ्रमः । तत्र दृष्टान्तः—
शुक्तिकायां रजतविज्ञानवत् । “विवर्जितं” इत्युक्तलक्षणसंशयविमोहविभ्रमैर्वर्जितं,
“अपपरसरूपस्स ग्रहणं” सहजशुद्धकेवलज्ञानदर्शनस्वभावस्वात्मरूपस्य ग्रहणं परिच्छेदनं
परिच्छित्तिस्तथा परद्रव्यस्य च भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्मरूपस्य जीवसम्बन्धिनस्तथैव

गाथा-४२

गाथार्थः—आत्मा और परपदार्थोंके स्वरूपको संशय, विमोह और विभ्रम-
रहित जानना वह सम्यक्ज्ञान है; वह साकार और अनेक भेदोवाला है ।

टीका:—“संशयविमोहविभ्रमविवर्जितं” संशय—शुद्ध आत्मतत्त्वादिका प्रति-
पादक शास्त्रज्ञान, क्या वीतरागसर्वज्ञ द्वारा कथित सत्य होगा या अन्यमत्तियों
द्वारा कथित सत्य होगा, यह संशय है । उसका दृष्टान्त—वृक्षका ठूठ है या मनुष्य
है ? विमोह—परस्पर सापेक्ष^१ द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक इन दोनों नयोंके
प्रमाणसे द्रव्य-गुण-पर्यायादिके ज्ञानका अभाव वह विमोह है । वहां दृष्टान्त—गमन
करनेवाले पुरुषको पैरमे तृण आदिका स्पर्श होनेपर स्पष्ट ज्ञान न हो कि किसका
स्पर्श हुआ अथवा दिशा भूल जाना । विभ्रम—अनेकान्तात्मक वस्तुको ‘यह नित्य
ही है,’ ‘यह क्षणिक ही है’ ऐसा एकान्तरूप जानना वह विभ्रम है । उसका
दृष्टान्त—सीपमे चादीका ज्ञान । “विवर्जितं” इन पूर्वोक्त लक्षणोवाले संशय,
विमोह और विभ्रमसे रहित, “अपपरसरूपस्स ग्रहणं” सहज शुद्ध केवलज्ञान-दर्शन-
स्वभावी निजात्मस्वरूपका ग्रहण-परिच्छेदन-परिच्छित्ति और परद्रव्यका स्वरूप
अर्थात् भावकर्म-द्रव्यकर्म-नोकर्मका स्वरूप, पुद्गल आदि पाच द्रव्योका स्वरूप

१. द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनय एक दूसरेकी अपेक्षा सहित होते हैं, निरपेक्ष नहीं होते ।
जैसे, द्रव्यका ज्ञान मुख्य हो तब पर्यायिका ज्ञान गौण होता है, सर्वथा अभावरूप नहीं
होता है—पर्यायिका सर्वथा अस्वीकार नहीं होता है ।

पुद्गलादिपञ्चद्रव्यरूपस्य परकीयजीवरूपस्य च परिच्छेदनं यत्तत् “सम्मण्णाणं” सम्यग्ज्ञानं भवति । तच्च कथंभूतं ? “सायारं” घटोऽयं पटोऽयमित्यादिग्रहण-व्यापाररूपेण साकारं सविकल्पं व्यवसायात्मकं निश्चयात्मकमित्यर्थः । पुनश्च किं विशिष्टं ? “अणेयभेयं तु” अनेकभेदं तु पुनरिति ।

तस्य भेदाः कथ्यन्ते । मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानभेदेन पञ्चधा । अथवा श्रुतज्ञानापेक्षया द्वादशाङ्गमङ्गबाह्यं चेति द्विभेदम् । द्वादशाङ्गानां नामानि कथ्यन्ते । आचारं, सूत्रकृतं, स्थानं, समवायनामधेयं, व्याख्याप्रज्ञप्तिः, ज्ञातृकथा, उपासकाध्ययनं, अन्तकृतदशं, अनुत्तरोपपादिकदशं, प्रश्नव्याकरणं, विपाकसूत्रं, दृष्टिवादश्चेति । दृष्टिवादस्य च परिकर्मसूत्रप्रथमानुयोगपूर्वगतचूलिकाभेदेन पञ्चभेदाः कथ्यन्ते । तत्र चन्द्रसूर्य-जम्बूद्वीपद्वीपसागरव्याख्याप्रज्ञप्तिभेदेन परिकर्म पञ्चविधं भवति । सूत्रमेकभेदमेव । प्रथमानुयोगोऽप्येकभेदः । पूर्वगतं पुनरुत्पादपूर्वं, अग्रायणीयं, वीर्यानुप्रवादं, अस्तिनास्ति-प्रवादं, ज्ञानप्रवादं, सत्यप्रवादं, आत्मप्रवादं, कर्मप्रवादं, प्रत्याख्यानं, विद्यानुवादं,

तथा अन्य जीवका स्वरूप जानना वह “सम्मण्णाणं” सम्यक्ज्ञान है । वह कैसा है ? “सायारं” यह घट है, यह वस्त्र है, इत्यादि जाननेके व्यापाररूपसे साकार है; सविकल्प-व्यवसायात्मक-निश्चयात्मक ऐसा (‘साकार’-का) अर्थ है । तथा कैसा है ? “अणेयभेयं तु” अनेक भेदोवाला है ।

सम्यग्ज्ञानके भेद कहते हैं:—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान और केवलज्ञान—इन भेदोसे सम्यग्ज्ञान पाच प्रकार है अथवा श्रुतज्ञानकी अपेक्षासे द्वादशाग और अगबाह्य—इस भाति दो प्रकार है । बारह अगके नाम कहते हैं:—आचाराग, सूत्रकृताग, स्थानाग, समवायाग, व्याख्याप्रज्ञप्तिअग, ज्ञातृकथाग, उपासकाध्ययनाग, अंतकृतदशाग, अनुत्तरोपपादिकदशाग, प्रश्न व्याकरणाग, विपाकसूत्राग और दृष्टिवाद—ये बारह अगोके नाम है । दृष्टिवाद नामक बारहवे अंगके परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्वगत और चूलिका—इन पाच भेदोका कथन करते हैं । चन्द्रप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, द्वीपसागरप्रज्ञप्ति और व्याख्या-प्रज्ञप्ति—इस प्रकार परिकर्मके पांच प्रकार है । सूत्र एक ही प्रकारका है । प्रथमानुयोगका भी एक भेद है । पूर्वगतके चौदह भेद है —उत्पादपूर्वं, अग्रायणीपूर्वं, वीर्यानुप्रवादपूर्वं, अस्ति-नास्तिप्रवादपूर्वं, ज्ञानप्रवादपूर्वं, सत्यप्रवादपूर्वं, आत्मप्रवाद-पूर्वं, कर्मप्रवादपूर्वं, प्रत्याख्यानपूर्वं, विद्यानुवादपूर्वं, कल्याणपूर्वं, प्राणानुवादपूर्वं,

कल्याणनामधेयं, प्राणानुवादं, क्रियाविशालं, लोकसंज्ञं, पूर्वं चेति चतुर्दशभेदम् । जलगतस्थलगताकाशगतहरमेखलादिमायास्वरूपशाकिन्यादिरूपपरावर्त्तनभेदेन चूलिका पञ्चविधा चेति संक्षेपेण द्वादशाङ्गव्याख्यानम् । अङ्गबाह्यं पुनः सामायिकं, चतुर्विंशति-स्तवं, वन्दना, प्रतिक्रमणं, वैनयिकं, कृतिकर्म, दशवैकालिकम्, उत्तराध्ययनं, कल्प-व्यवहारः, कल्पाकल्पं, महाकल्पं, पुण्डरीकं, महापुण्डरीकं, अशीतिकं चेति चतुर्दश-प्रकीर्णकसंज्ञं बोद्धव्यमिति ।

अथवा वृषभादिचतुर्विंशतितीर्थङ्करभरतादिद्वादशचक्रवर्त्तिविजयादिनवलदेव त्रिपृष्ठादिनववासुदेवसुग्रीवादिनवप्रतिवासुदेवसम्बन्धिषष्टिपुरुषपुराणभेदभिन्नः प्रथमानु-योगो भण्यते । उपासकाध्ययनादौ श्रावकधर्मम्, आचाराधनादौ यतिधर्मं च यत्र मुख्यत्वेन कथयति स चरणानुयोगो भण्यते । त्रिलोकसारे जिनान्तरलोकविभागादि-ग्रन्थव्याख्यानं करणानुयोगो विज्ञेयः । प्राभृततत्त्वार्थसिद्धान्तादौ यत्र शुद्धाशुद्धजीवादि-षड्द्रव्यादीनां मुख्यवृत्त्या व्याख्यानं क्रियते स द्रव्यानुयोगो भण्यते । इत्युक्तलक्षणा-

क्रियाविशालपूर्वं और लोकबिन्दुसारपूर्वं । जलगत चूलिका, स्थलगत चूलिका, आकाशगत चूलिका, हरमेखला आदि मायास्वरूप चूलिका और शाकिनी आदि रूप परिवर्तन चूलिका—इस भाति चूलिकाके पाच प्रकार है । इसप्रकार संक्षेपमें बारह अंगका व्याख्यान है और जो अगबाह्य श्रुतज्ञान है वह सामायिक, चतुर्विंशति-स्तव, वन्दना, प्रतिक्रमण, वैनयिक, कृतिकर्म, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, कल्प-व्यवहार, कल्पाकल्प, महाकल्प, पुंडरीक, महापुंडरीक और अशीतिक—इसप्रकार चौदह प्रकारका प्रकीर्णक जानना ।

अथवा श्री ऋषभनाथ आदि चौबीस तीर्थकर, भरतादि बारह चक्रवर्ती, विजय आदि नव बलदेव, त्रिपृष्ठ आदि नव नारायण और सुग्रीव आदि नव प्रति-नारायण सबधी त्रेसठ शलाका पुरुषोके पुराणभेदसे भेदवाले प्रथमानुयोग कहलाता है । उपासकाध्ययनादिमे श्रावकधर्मका और आचार आराधना आदिमे यतिधर्मका जहां मुख्यरूपसे कथन किया जाता है वह चरणानुयोग कहलाता है । त्रिलोकसारमे तीर्थकरोका अतरकाल और लोकविभाग आदिका व्याख्यान है—ऐसे ग्रन्थ करणानु-योगके जानना । प्राभृत और तत्त्वार्थसिद्धातादिमें जहा मुख्यरूपसे शुद्ध-अशुद्ध जीवादि छह द्रव्य आदिका व्याख्यान किया जाता है वह द्रव्यानुयोग कहलाता है । इसप्रकार उक्त लक्षणवाले चार अनुयोगरूपसे चार प्रकारका श्रुतज्ञान जानना ।

नियोगचतुष्टयरूपेण चतुर्विधं श्रुतज्ञानं ज्ञातव्यम् । अनुयोगोऽधिकारः परिच्छेदः प्रकरणमित्याद्येकोऽर्थः । अथवा षड्द्रव्यपञ्चास्तिकायसप्ततत्त्ववपदार्थेषु (मध्ये) निश्चयनयेन स्वकीय शुद्धात्मद्रव्यं, स्वशुद्धजीवास्तिकायो निजशुद्धात्मतत्त्वं निजशुद्धात्म-पदार्थ उपादेयः । शेषं च हेयमिति संक्षेपेण हेयोपादेय भेदेन द्विधा व्यवहारज्ञानमिति ।

इदानीं तेनैव विकल्परूपव्यवहारज्ञानेन साध्यं निश्चयज्ञानं कथ्यते । तथाहि— रागात् परकलत्रादिवाञ्छारूपं, द्वेषात् परवधवन्धच्छेदादिवाञ्छारूपं, च मदीयापध्यानं कोऽपि न जानातीति मत्वा स्वशुद्धात्मभावनासमुत्पन्नसदानन्दैकलक्षणसुखामृतरसनिर्मल-जलेन चित्तशुद्धिमकुर्वाणः सन्नयं जीवो बहिरङ्गवक्रवेषेण यत्नोकरञ्जनां करोति तन्मायाशल्यं भण्यते । निजनिरञ्जननिर्दोषपरमात्मैवोपादेय इति रुचिरूपसम्यक्त्वाद्वि-लक्षणं मिथ्याशल्यं भण्यते । निर्विकारपरमचैतन्यभावनोत्पन्नपरमाह्लादैकरूपसुखामृतरसास्वादमलभमानोऽयं जीवो दृष्टश्रुतानुभूतभोगेषु यन्नियतम् निरन्तरम् चित्तम् ददाति

अनुयोग, अधिकार, परिच्छेद और प्रकरण आदिका एक ही अर्थ है । अथवा छह द्रव्य, पाच अस्तिकाय, सात तत्त्व और नौ पदार्थोंमें निश्चयनयसे अपना शुद्धात्म-द्रव्य, स्वशुद्धजीवास्तिकाय, निज शुद्धात्मतत्त्व और निजशुद्धात्म पदार्थ उपादेय है और शेष हेय है—इसप्रकार सक्षेपमें हेय-उपादेयके भेदसे व्यवहारज्ञान दो प्रकारका है ।

अब, उसी विकल्परूप व्यवहारज्ञानसे साध्य निश्चयज्ञानका कथन करते हैं । वह इसप्रकार है—रागसे परस्त्री आदिकी वाञ्छारूप और द्वेषसे दूसरेको मारने, बांधने, छेदने आदिकी वाञ्छारूप मेरा दुर्ध्यान है, उसे कोई भी नहीं जानता है इसप्रकार विचारकर स्वशुद्धात्मभावनासे उत्पन्न सदानंद (नित्य आनंद) जिसका एक लक्षण है ऐसे सुखामृतरसरूपं निर्मल जलसे (अपने) चित्तकी शुद्धि न करता हुआ, यह जीव बाह्यमें बर्गुले जैसा वेष धारण करके लोगोंका रजन करता है वह मायाशल्य कहलाती है । 'निज निरजन' निर्दोष परमात्मा ही उपादेय है' ऐसी रुचिरूप सम्यक्त्वसे विलक्षण मिथ्याशल्य कहलाती है । निर्विकार परमचैतन्यकी भावनासे उत्पन्न परमाह्लाद जिसका एकरूप है ऐसे सुखामृतरसका स्वाद न लेते हुए यह जीव देखे हुए, सुने हुए और अनुभवं किये गये भोगोंमें जो निरन्तर चित्तको

१. सर्व प्रकारकी शुद्धि निज निरञ्जन निर्दोष परमात्माके ही आश्रयसे होती है, अन्य प्रकारसे नहीं—ऐसा ज्ञान कराने के लिये उसीको उपादेय कहा जाता है ।

तन्निदानशल्यमभिधीयते । इत्युक्तलक्षणशल्यत्रयविभावपरिणामप्रभृतिसमस्तशुभाशुभ-
सङ्कल्पविकल्परहितेन परमस्वास्थ्यसंविच्चिसमुत्पन्नतात्त्विकपरमानन्दैकलक्षणसुखामृततृप्तेन
स्वेनात्मना स्वस्य सम्यग्निर्विकल्परूपेण वेदनं परिज्ञानमनुभवनमिति निर्विकल्पस्वसंवेदन-
ज्ञानमेव निश्चयज्ञानं भण्यते ।

अत्राह शिष्यः । इत्युक्तप्रकारेण प्राभृतग्रन्थे यन्निर्विकल्पस्वसंवेदनज्ञानं
भण्यते, तन्न घटते । कस्मादितिचेत् ? तदुच्यते—सत्तावलोक्यरूपं चक्षुरादिदर्शनं यथा
जैनमते निर्विकल्पं कथ्यते, तथा बौद्धमते ज्ञानं निर्विकल्पकं भण्यते, परं किन्तु
तन्निर्विकल्पमपि विकल्पजनकं भवति । जैनमते तु विकल्पस्योत्पादकं भवत्येव न, किन्तु
स्वरूपेणैव सविकल्पमिति । तथैव स्वपरप्रकाशकं चेति । तत्र परिहारः । कथंचित्
सविकल्पकं निर्विकल्पकं च । तथाहि—यथा विषयानन्दरूपं स्वसंवेदनं रागसंविच्चि-
विकल्परूपेण सविकल्पमपि शेषानीहितसूक्ष्मविकल्पानां सद्भावेऽपि सति तेषां मुख्यत्वं
नास्ति तेन कारणेन निर्विकल्पमपि भण्यते । तथा स्वशुद्धात्मसंविच्चिरूपं वीतराग-

रोकता है उसे निदानशल्य कहते हैं । उपरोक्त लक्षणयुक्त तीन शल्य, विभाव-
परिणाम आदि समस्त शुभाशुभ सकल्प-विकल्परहित, परम स्वास्थ्यके सवेदनसे
उत्पन्न हुआ तात्त्विक परमानन्द जिसका एक लक्षण है ऐसे सुखामृतसे तृप्त अपने
आत्मा द्वारा अपना सम्यक् निर्विकल्परूपसे वेदन-परिज्ञान-अनुभवन ऐसा जो
निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान वही निश्चयज्ञान कहलाता है ।

यहां शिष्य शका करता है —उपरोक्त प्रकारसे प्राभृत ग्रन्थमे जो निर्विकल्प
स्वसंवेदन ज्ञान कहा गया है वह घटित नहीं होता है । 'किसलिये घटित नहीं होता
है ?' ऐसा कहा जाय तो कारण बतलाते हैं.—जिसप्रकार जैनमतमे सत्तावलोकन-
रूप चक्षु आदि दर्शन निर्विकल्प कहलाता है उसीप्रकार बौद्धमतमे ज्ञान निर्विकल्प
कहलाता है । परन्तु वह निर्विकल्प होने पर भी (वहा) विकल्पको उत्पन्न करने-
वाला कहलाता है । जैनमतमे तो ज्ञान विकल्पको उत्पन्न करनेवाला ही नहीं है
परन्तु स्वरूपसे ही सविकल्प है और उसी प्रकार स्वपरप्रकाशक है । शकाका
परिहारः—जैनसिद्धातमे ज्ञानको कथंचित्-सविकल्प और कथंचित् निर्विकल्प माना
जाता है । वह इस प्रकार है—जिसप्रकार विषयानन्दरूप जो सवेदन है वह राग
सवेदनके विकल्परूप होनेसे सविकल्प है तो भी शेष अनिच्छित सूक्ष्म विकल्पोका
सद्भाव होने पर भी उनका मुख्यपना नहीं है इस कारण निर्विकल्प भी कहलाता
है; उसीप्रकार स्वशुद्धात्माके सवेदनरूप वीतराग स्वसंवेदनज्ञान भी स्वसंवेदनके

स्वसंवेदनज्ञानमपि स्वसंवित्याकारैकविकल्पेन सविकल्पमपि बहिर्विषयानोहितसूक्ष्म-
विकल्पानां सद्भावेऽपि सति तेषां मुख्यत्वं नास्ति तेन कारणेन निर्विकल्पमपि
भण्यते । यत एवेहापूर्वस्वसंवित्याकारान्तर्मुखप्रतिभासेऽपि बहिर्विषयानीहितसूक्ष्मा-
विकल्पा अपि सन्ति तत एव कारणात् स्वपरप्रकाशकं च सिद्धम् । इदं तु सविकल्पक-
निर्विकल्पकस्य तथैव स्वपरप्रकाशकस्य ज्ञानस्य च व्याख्यानं यथागमाध्यात्मतर्क-
शास्त्रानुसारेण विशेषेण व्याख्यायते तदा महान् विस्तारो भवति । स चाध्यात्मशास्त्रत्वान्न
कृत इति ।

एवं रत्नत्रयात्मकमोक्षमार्गावयविनो द्वितीयावयवभूतस्य ज्ञानस्य व्याख्या-
नेन गाथा गता ॥४२॥

अथ निर्विकल्पसत्ताग्राहकं दर्शनं कथयतिः—

जं सामरणं ग्रहणं भावाणं एव कट्टुमायारं ।

अविसेसिदूणं अट्टे दसणमिदि भरणेण समए ॥४३॥

एक आकाररूप विकल्पमय होनेसे सविकल्प है तो भी बाह्यविषयोके अनिच्छित सूक्ष्म विकल्पोका सद्भाव होने पर भी उनका मुख्यपना न होने से निर्विकल्प भी कहलाता है । यहा अपूर्व स्वसंवेदनके आकाररूप अंतर्मुख प्रतिभास होने पर भी बाह्य-विषयोके अनिच्छित सूक्ष्म विकल्प भी है, इसीकारण ज्ञान स्वपरप्रकाशक भी सिद्ध होता है । यदि यह सविकल्प-निर्विकल्प और स्व-परप्रकाशक ज्ञानका व्याख्यान आगम, अध्यात्म और तर्कशास्त्रका अनुसरण करके विशेषरूपसे किया जाय तो बहुत विस्तार हो जाये । परन्तु यह (द्रव्यसग्रह) अध्यात्मशास्त्र होनेसे उतना विस्तार नहीं किया है ।

इसप्रकार रत्नत्रयात्मक मोक्षमार्ग जो अवयवी है उसके दूसरे अवयवरूप ज्ञानके व्याख्यान द्वारा गाथा समाप्त हुई ॥४२॥

अब विकल्परहित सत्ताका ग्रहण करनेवाले दर्शनका कथन करते हैंः—

१. श्री समयसार मोक्षअधिकार गाथा २६२ की श्री जयसेनाचार्य कृत टीका पृ० ३८३-३८४
(श्री राजचन्द्र जैन शास्त्रमाला)

दर्शन अवलोकन, सो जुदा, गहै वस्तु सामान्यहि तदा ।

बिन आकार विशेषनि हीन, जिनमत भायै यों परवीन ॥४३॥

यत् सामान्यं ग्रहणं भावानां नैव कृत्वा आकारम् ।

अविशेषयित्वा अर्थान् दर्शनं इति भण्यते समये ॥४३॥

व्याख्या—“जं सामण्यं ग्रहणं भावाणं” यत् सामान्येन सत्तावलोकनेन ग्रहणं परिच्छेदनं, केषां ? भावानां पदार्थानां; किं कृत्वा ? “शेव कट्टुमायारं” नैव कृत्वा, कं ? आकारं विकल्पं, तदपि किं कृत्वा ? “अविसेसिदूण अट्टे” अविशेष्याविभेद्यार्थान्; केन रूपेण ? शुक्लोऽयं, कृष्णोऽयं, दीर्घोऽयं, ह्रस्वोऽयं, घटोऽयं, पटोऽयमित्यादि । “दंसणमिदि भण्णए समए” तत्सत्तावलोकं दर्शनमिति भण्यते समये परमागमे । नेदमेव तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षणं सम्यग्दर्शनं वक्तव्यम् । कस्मादिति-चेत् ? तत्र श्रद्धानं विकल्परूपमिदं तु निर्विकल्पं यतः । अयमत्र भावः—यदा कोऽपि किमप्यवलोकयति पश्यति, तदा यावत् विकल्पं न करोति तावत् सत्तामात्रग्रहणं दर्शनं भण्यते, पश्चाच्छुक्लादिविकल्पे जाते ज्ञानमिति ॥४३॥

गार्था—४३

गार्थार्थः—पदार्थोमें विशेषपना किये बिना (भेद किये बिना), आकार अर्थात् विकल्प किये बिना, पदार्थोका जो सामान्यरूपसे (सत्तावलोकनरूप) ग्रहण उसे परमागममें दर्शन कहा जाता है ।

टीकाः—“जं सामण्यं ग्रहणं भावाणं” जो सामान्यरूपसे अर्थात् सत्तावलोकन-रूपसे ग्रहण करना—परिच्छेदन करना, किसका ग्रहण करना ? पदार्थोका-भावोका ग्रहण करना; किस प्रकार ? “शेव कट्टुमायारं” नही करके, क्या नही करके ? आकार अथवा विकल्प; वह भी क्या करके ? “अविसेसिदूण अट्टे” पदार्थोका विशेष (भेद) न करके; किस रूपसे ? यह सफेद है, यह काला है, यह दीर्घ है, यह ह्रस्व है, यह घट है, यह पट है इत्यादिरूपसे; “दंसणमिदि भण्णए समए” वह परमागममे सत्तावलोकनरूप दर्शन कहलाता है । इस दर्शनको ही तत्त्वार्थश्रद्धान लक्षणयुक्त सम्यग्दर्शन नही कहना । किसलिये नही कहना ? क्योंकि वह श्रद्धान तो विकल्परूप^१ है और यह दर्शन विकल्परहित है । यहा तात्पर्य यह है : जब कोई भी कुछ भी अवलोकन करता है—देखता है, तब, जब तक वह विकल्प नही करता तब तक सत्तामात्रके ग्रहणरूप दर्शन कहलाता है, तत्पश्चात् शुक्ल आदि विकल्प^२ होने पर ज्ञान कहलाता है ॥४३॥

१. वह श्रद्धा तो विकल्परूप है—वह श्रद्धा सब पदार्थोंसे भिन्न निज शुद्ध परमात्मद्रव्यको विषय करती है ।

२. अर्थोके आकारोका अर्थभासन वह विकल्प ।

अथ छद्मस्थानां ज्ञानं सत्तावलोकनदर्शनपूर्वकं भवति, मुक्तात्मनां युगपदिति प्रतिपादयति:—

दंसणपुर्वं णाणं छदमत्थाणं ण दोणिण उवउग्गा ।

जुगवं जह्वा केवलिणाहे जुगवं तु ते दो वि ॥४४॥

दर्शनपूर्व ज्ञानं छद्मस्थानां न द्वौ उपयोगौ ।

युगपत् यस्मात् केवलिनाथे युगपत् तु तौ द्वौ अपि ॥४४॥

व्याख्या—“दंसणपुर्वं णाणं छदमत्थाणं” सत्तावलोकनदर्शनपूर्वकं ज्ञानं भवति छद्मस्थानां संसारिणां । कस्मात् ? “ण दोणिण उवउग्गा जुगवं जह्वा” ज्ञान-दर्शनोपयोगद्वयं युगपन्न भवति यस्मात् । “केवलिणाहे जुगवं तु ते दो वि” केवलिनाथे तु युगपत्तौ ज्ञानदर्शनोपयोगौ द्वौ भवत इति ।

अथ विस्तरः—चक्षुरादीन्द्रियाणां स्वकीयस्वकीयक्षयोपशमानुसारेण तद्योग्य-देशस्थितरूपादिविषयाणां ग्रहणमेव सन्निपातः सम्बन्धः सन्निकर्षो भण्यते । न च

अव छद्मस्थोको ज्ञान, सत्तावलोकनरूप दर्शनपूर्वक होता है और मुक्त जीवोको दर्शन और ज्ञान एक साथ ही होता है—ऐसा प्रतिपादन करते हैं—

गाथा-४४

गार्थः—छद्मस्थ जीवोको दर्शनपूर्वक ज्ञान होता है क्योंकि छद्मस्थोको ज्ञान और दर्शन ये दोनो उपयोग एक साथ नहीं होते हैं । केवली भगवानको ज्ञान और दर्शन ये दोनों उपयोग एक साथ ही होते हैं ।

टीकाः—“दंसणपुर्वं णाणं छदमत्थाणं” छद्मस्थ-ससारी जीवोके सत्तावलोकन-रूप दर्शनपूर्वक ज्ञान होता है । क्यो ? “ण दोणिण उवउग्गा जुगवं जह्वा” क्योंकि छद्मस्थोके ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग—ये दोनो एक साथ नहीं होते । “केवलिणाहे जुगवं तु ते दो वि” केवलीभगवानके ज्ञान और दर्शन उपयोग दोनों एक ही साथ होते हैं ।

उसका विस्तार :—चक्षु आदि इन्द्रियोके अपने-अपने क्षयोपशम प्रमाण अपने योग्य स्थानमे स्थित रूपादि विषयोका ग्रहण करना वही सन्निपात सबध

छद्मस्थोके क्रमते जान, पहलै दर्शन पीछे ज्ञान ।

दो उपयोग न एकै काल, केवलज्ञानी युगपत भाल ॥४४॥

नैयायिकमतवच्चक्षुरादीन्द्रियाणां रूपादिस्वकीयस्वकीयविषयपार्श्वे गमनं इति सन्निकर्षो वक्तव्यः । स एव सम्बन्धो लक्षणं यस्य तल्लक्षणं यन्निर्विकल्पं सत्तावलोकनदर्शनं तत्पूर्वं शुक्लमिदमित्याद्यवग्रहादिविकल्परूपमिन्द्रियानिन्द्रियजनितं मतिज्ञानं भवति । इत्युक्तलक्षणमतिज्ञानपूर्वकं तु धूमादग्निविज्ञानवदर्थार्थान्तरग्रहणरूपं लिङ्गजं, तथैव घटादिशब्दश्रवणरूपं शब्दजं चेति द्विविधं श्रुतज्ञानं भवति । अथावधिज्ञानं पुनरवधि-दर्शनपूर्वकमिति । ईहामतिज्ञानपूर्वकं तु मनःपर्ययज्ञानं भवति ।

अत्र श्रुतज्ञानमनःपर्ययज्ञानजनकं यदवग्रहेहादिरूपं मतिज्ञानं भणितम्, तदपि दर्शनपूर्वकत्वादुपचारेण दर्शनं भण्यते, यतस्तेन कारणेन श्रुतज्ञानमनःपर्ययज्ञानद्वयमपि दर्शनपूर्वकं ज्ञातव्यमिति । एवं छद्मस्थानां सावरणक्षायोपशमिकज्ञानसहितत्वात् दर्शन-पूर्वकं ज्ञानं भवति । केवलानां तु भगवतां निर्विकारस्वसंवेदनसमुत्पन्ननिरावरणक्षायिक-ज्ञानसहितत्वान्निर्मेधादित्ये युगपदातपप्रकाशवदर्शनं ज्ञानं च युगपदेवेति विज्ञेयम् । छद्मस्था इति कोऽर्थः ? छद्मशब्देन ज्ञानदर्शनावरणद्वयं भण्यते, तत्र तिष्ठन्तीति

अथवा सन्निकर्ष कहलाता है । परन्तु नैयायिकमतकी भांति चक्षु आदि इन्द्रियोंका जो रूपादि अपने-अपने विषयोंके पास जाना उसे सन्निकर्ष न कहना । ऐसा संबंध जिसका लक्षण है ऐसे लक्षणमुक्त निर्विकल्प सत्तावलोकनरूप दर्शन है; उस दर्शन-पूर्वक 'यह सफेद है' इत्यादि अवग्रहादि विकल्परूप, इन्द्रिय और मनसे उत्पन्न होनेवाला मतिज्ञान है । उक्त लक्षण वाले मतिज्ञानपूर्वक, धुएँसे अग्निका ज्ञान होता है उसीप्रकार, एक पदार्थसे दूसरे पदार्थके ग्रहणरूप 'लिगज' (चिह्नसे उत्पन्न होनेवाला) और घटादि शब्दोंके श्रवणरूप 'शब्दज' (शब्दसे उत्पन्न होने-वाला) —ऐसा दो प्रकारका श्रुतज्ञान है । अवधिज्ञान, अवधिदर्शनपूर्वक होता है । ईहा (नामक) मतिज्ञानपूर्वक मनःपर्ययज्ञान होता है ।

यहा श्रुतज्ञान और मनःपर्ययज्ञानको उत्पन्न करनेवाला, अवग्रह—ईहा आदि-रूप जो मतिज्ञान कहा है वह मतिज्ञान भी दर्शनपूर्वक उत्पन्न होनेसे उपचारसे दर्शन कहलाता है; इस कारण श्रुतज्ञान और मनःपर्ययज्ञान—ये दोनों भी दर्शन-पूर्वक जानना । इसप्रकार छद्मस्थोको आवरणवाला क्षायोपशमिक ज्ञान होनेसे दर्शनपूर्वक ज्ञान होता है । केवलीभगवानको निर्विकार स्वसंवेदनसे उत्पन्न निरावरण क्षायिकज्ञान होनेसे, मेघरहित सूर्यके युगपद् आतप और प्रकाशकी भांति, दर्शन और ज्ञान (दोनों) युगपद् ही होते हैं ऐसा जानना ।

प्रश्नः—छद्मस्थ शब्दका अर्थ क्या है ?

छद्मस्थाः । एवं तर्काभिप्रायेण सत्तावलोकनदर्शनं व्याख्यातम् ।

अत ऊर्ध्वं सिद्धान्ताभिप्रायेण कथ्यते । तथाहि—उत्तरज्ञानोत्पत्तिनिमित्तं यत् प्रयत्नं तद्रूपं यत् स्वस्यात्मनः परिच्छेदनमवलोकनं तद्दर्शनं भण्यते । तदनन्तरं यद्बहिर्विषये विकल्परूपेण पदार्थग्रहणं तद्ज्ञानमिति वार्तिकम् । यथा कोऽपि पुरुषो घटविषयविकल्पं कुर्वन्नास्ते, पश्चात् पटपरिज्ञानार्थं चित्ते जाते सति घटविकल्पाद्-व्यावर्त्य यत् स्वरूपे प्रयत्नमवलोकनं परिच्छेदनं करोति तद्दर्शनमिति । तदनन्तरं पटोऽयमिति निश्चयं यद्बहिर्विषयरूपेण पदार्थग्रहणविकल्पं करोति तद् ज्ञानं भण्यते ।

अत्राह शिष्यः—यद्यात्मग्राहकं दर्शनं, परग्राहकं ज्ञानं भण्यते, तर्हि यथा नैयायिकमते ज्ञानमात्मानं न जानाति; तथा जैनमतेऽपि ज्ञानमात्मानं न जानातीति दूषणं प्राप्नोति । अत्र परिहारः । नैयायिकमते ज्ञानं पृथग्दर्शनं पृथगिति गुणद्वयं नास्ति; तेन कारणेन तेषामात्मपरिज्ञानाभावदूषणं प्राप्नोति । जैनमते पुनर्ज्ञानगुणेन परद्रव्यं जानाति दर्शनगुणेनात्मानं च जानातीत्यात्मपरिज्ञानाभावदूषणं न प्राप्नोति ।

उत्तरः—‘छद्म’ शब्दसे ज्ञानावरण और दर्शनावरण—ये दो कहे जाते हैं; उस छद्ममे जो रहता है वह छद्मस्थ है । इसप्रकार तर्कके अभिप्रायसे सत्तावलोकनरूप दर्शनका व्याख्यान किया ।

अब, आगे सिद्धातके अभिप्रायसे कथन किया जाता है । वह इसप्रकारः— उत्तर (आगेके) ज्ञानकी उत्पत्तिके लिये जो प्रयत्न, उस रूप जो अपने आत्माका परिच्छेदन-अवलोकन वह दर्शन कहलाता है । तत्पश्चात् बाह्य विषयमे विकल्परूपसे जो पदार्थका ग्रहण है वह ज्ञान है; यह वार्तिक है । जैसे कोई मनुष्य पहले घट सबधी विकल्प करता है; तत्पश्चात् पटका ज्ञान करनेकी इच्छा होनेपर वह घटके विकल्पसे हटकर (निवृत्त होकर) जो स्वरूपमें प्रयत्न-अवलोकन-परिच्छेदन करता है वह दर्शन है । तत्पश्चात् ‘यह पट है’ ऐसा निश्चय अथवा बाह्य विषयरूपसे पदार्थके ग्रहणरूप जो विकल्प करता है वह ज्ञान कहलाता है ।

यहां शिष्य पूछता है—जो आत्मग्राहक (अपना ग्रहण करनेवाला) वह दर्शन और परग्राहक (परको जाननेवाला) वह ज्ञान कहा जाये तो जिसप्रकार नैयायिकमतमे ज्ञान आत्माको नहीं जानता है उसीप्रकार जैनमतमे भी ज्ञान आत्माको नहीं जानता है ऐसा दूषण प्राप्त होता है । उसका समाधान—नैयायिक-मतमें ज्ञान भिन्न और दर्शन भिन्न इसप्रकार दो गुण नहीं हैं । इसकारण उनको (नैयायिकोको) आत्माके ज्ञानके अभावरूप दोष प्राप्त होता है । परन्तु जैनमतमे तो (आत्मा) ज्ञानगुणसे परद्रव्यको जानता है और दर्शनगुणसे आत्माको जानता

कस्मादिति चेत ? यथैकोऽप्यग्निर्दाहतीति दाहकः, पचतीति पाचकः, विषयभेदेन द्विधा भिद्यते । तथैवाभेदनयेनैकमपि चैतन्यं भेदनयविवक्षायां यदात्मग्राहकत्वेन प्रवृत्तं तदा तस्य दर्शनमिति सज्ञा, पश्चात् यच्च परद्रव्यग्राहकत्वेन प्रवृत्तं तस्य ज्ञान-सज्ञेति विषयभेदेन द्विधा भिद्यते । किं च, यदि सामान्यग्राहकं दर्शनं विशेषग्राहकं ज्ञानं भण्यते, तदा ज्ञानस्य प्रमाणत्वं न प्राप्नोति । कस्मादिति चेत ? वस्तुग्राहकं प्रमाणं; वस्तु च सामान्यविशेषात्मकं; ज्ञानेन पुनर्वस्तुकेदेशो विशेष एव गृहीतो; न च वस्तु । सिद्धान्तेन पुनर्निश्चयेन गुणगुणिनोरभिन्नत्वात् संशयविमोहविभ्रमरहितवस्तु-ज्ञानस्वरूपात्मैव प्रमाणम् । स च प्रदीपवत् स्वपरगतं सामान्यं विशेषं च जानाति । तेन कारणेनाभेदेन तस्यैव प्रमाणत्वमिति ।

अथ मत—यदि दर्शनं बहिर्विषये न प्रवर्त्तते तदान्धवत् सर्वजनानामन्ध-त्वं प्राप्नोतीति ? नैव वक्तव्यम् । बहिर्विषये दर्शनाभावेऽपि ज्ञानेन विशेषेण सर्वं परिच्छिनत्तीति । अयं तु विशेषः—दर्शनेनात्मनि गृहीते सत्यात्माविनाभूतं ज्ञानमपि

है—इसप्रकार आत्माके ज्ञानके अभावरूप दोष प्राप्त नहीं होता है । यह दोष क्यों नहीं प्राप्त होता है ? जिसप्रकार एक ही अग्नि जलाती है अतः वह दाहक है और पकाती है अतः वह पाचक है; विषयके भेदसे अग्नि (दाहक और पाचक) ऐसे दो प्रकारके भेदरूप होती है; उसीप्रकार अभेदनयसे चैतन्य एक ही होनेपर भी भेदनयकी विवक्षामे जब आत्माका ग्रहण करनेमे प्रवृत्त होता है तब उसको 'दर्शन' ऐसा नाम मिलता है और तत्पश्चात् जब परपदार्थका ग्रहण करनेमे प्रवृत्त होता है तब उसको 'ज्ञान' नाम मिलता है—इसप्रकार विषयके भेदसे चैतन्यके दो भेद होते हैं । विशेष यह है कि यदि दर्शनको सामान्यका ग्राहक और ज्ञानको विशेषका ग्राहक कहा जाये तो ज्ञानको प्रमाणपना प्राप्त नहीं होता है ।

प्रश्न :—किस प्रकार ?

उत्तर :—वस्तुको ग्रहण करता है वह प्रमाण है । वस्तु सामान्य-विशेषात्मक है । ज्ञानने वस्तुके एकदेशका-विशेषका ही ग्रहण किया, वस्तुका ग्रहण नहीं किया । सिद्धातसे तो निश्चयनयकी अपेक्षासे गुण और गुणी अभिन्न है अतः संशय, विमोह और विभ्रम रहित वस्तुका जो ज्ञान वह ज्ञानस्वरूप आत्मा ही प्रमाण है; वह दीपककी भांति स्व और परके सामान्य और विशेषको जानता है इसकारण अभेदरूपसे उसीको (उस आत्माको ही) प्रमाणपना है ।

शंका :—यदि दर्शनं बाह्यविषयका ग्रहण नहीं करता तो अंधेकी भांति सब मनुष्योंको अधपनेका प्रसंग आता है ।

गृहीतं भवति; ज्ञाने च गृहीते सति ज्ञानविषयभूतं बहिर्वस्त्वपि गृहीतं भवति इति । अथोक्तं भवता यद्यात्मग्राहकं दर्शनं भण्यते, तर्हि “जं सामण्यं ग्रहणं भावाणं तद्दर्शनम्” इति गाथार्थः कथं घटते ? तत्रोत्तरं—सामान्यग्रहणमात्मग्रहणं तद्दर्शनम् । कस्मादिति चेत् ? आत्मा वस्तुपरिच्छिन्ति कुर्वन्निदं जानामीदं न जानामीति विशेषपक्षपातं न करोति; किन्तु सामान्येन वस्तु परिच्छिन्नत्वि तेन कारणेन सामान्यशब्देनात्मा भण्यत इति गाथार्थः ।

किं बहुना, यदि कोऽपि तर्कार्थं सिद्धान्तार्थं च ज्ञात्वैकान्तदुराग्रहत्यागेन नयविभागेन मध्यस्थवृत्त्या व्याख्यानं करोति, तदा द्वयमपि घटत इति । कथमिति चेत् ? तर्कं मुख्यवृत्त्या परसमयव्याख्यानं, तत्र यदा कोऽपि परसमयी पृच्छति—जैनागमे दर्शनं ज्ञानं चेति गुणद्वयं जीवस्य कथ्यते, तत्कथं घटत इति ? तदा तेषामात्मग्राहकं दर्शनमिति कथिते सति ते न जानन्ति । पश्चादाचार्यैस्तेषां

उत्तरः—ऐसा नहीं कहना चाहिये; क्योंकि बाह्य विषयमे दर्शनका अभाव होने पर भी (अर्थात् उसमे दर्शन प्रवृत्त नहीं होने पर भी) आत्मा ज्ञान द्वारा विशेषरूप सब पदार्थोंको जानता है तथा यह विशेष है:—जब दर्शन द्वारा आत्माका ग्रहण होता है तब आत्माके साथ अविनाभूत ज्ञानका भी (दर्शन द्वारा) ग्रहण हो जाता है और ज्ञानका ग्रहण होने पर ज्ञानके विषयभूत बाह्य वस्तुका भी ग्रहण हो जाता है ।

प्रश्न :—जो आत्माको ग्रहण करता है उसे आप यदि दर्शन कहते हो, तो ‘जो पदार्थोंका सामान्य ग्रहण वह दर्शन है,’ इस गाथाका अर्थ आपके कथनमें किस प्रकार घटित हो सकता है ?

उत्तर :—‘सामान्य ग्रहण’ अर्थात् ‘आत्माका ग्रहण’; वह दर्शन है ।

प्रश्न :—‘सामान्य’ का अर्थ ‘आत्मा’ किस प्रकार है ?

उत्तर :—आत्मा वस्तुका ज्ञान करते हुए, ‘मैं इसको जानूँ’ और ‘इसको न जानूँ’ ऐसा विशेष-पक्षपात नहीं करता है परन्तु सामान्यरूपसे वस्तुको जानता है, इस कारण ‘सामान्य’ शब्द द्वारा ‘आत्मा’ कहा जाता है । इसप्रकार गाथाका अर्थ है । अधिक कहनेसे क्या ? जो कोई भी तर्क और सिद्धातका अर्थ जानकर, एकान्त दुराग्रहका त्याग कर, नयविभाग द्वारा मध्यस्थ वृत्ति रखकर व्याख्यान करता है तो दोनोंही अर्थ (तर्कके और सिद्धातके) सिद्ध होते हैं । किस प्रकारसे सिद्ध होते हैं ? तर्कमें मुख्यतासे अन्यमतका व्याख्यान है; वहाँ जब कोई अन्यमती पूछता है कि जैन सिद्धातमें जीवके दर्शन और ज्ञान ये दो गुण कहे हैं वे किस

प्रतीत्यर्थं स्थूलव्याख्यानेन बहिर्विषये यत् सामान्यपरिच्छेदनं तस्य सत्तावलोकन-दर्शनसंज्ञा स्थापिता, यच्च शुक्लमिदमित्यादिविशेषपरिच्छेदनं तस्य ज्ञानसंज्ञा स्थापितेति दोषो नास्ति । सिद्धान्ते पुनः स्वसमयव्याख्यानं मुख्यवृत्त्या । तत्र सूक्ष्म-व्याख्याने क्रियमाणे सत्याचार्यैरात्मग्राहकं दर्शनं व्याख्यातमित्यत्रापि दोषो नास्ति ।

अत्राह शिष्यः—सत्तावलोकनदर्शनस्य ज्ञानेन सह भेदो ज्ञातस्तावदिदानीं यत्तत्त्वार्थश्रद्धानरूपं सम्यग्दर्शनं वस्तुविचाररूपं सम्यग्ज्ञानं तयोर्विशेषो न ज्ञायते । कस्मादिति चेत् ? सम्यग्दर्शने पदार्थनिश्चयोऽस्ति, तथैव सम्यग्ज्ञाने च, को विशेष इति ? अत्र परिहारः—अर्थग्रहणपरिच्छित्तिरूपः क्षयोपशमविशेषो ज्ञानं भण्यते, तत्रैव भेदनयेन वीतरागसर्वज्ञप्रणीतशुद्धात्मादितत्त्वेष्विदमेवेत्यमेवेति निश्चयसम्यक्त्वमिति । अविकल्प-रूपेणाभेदनयेन पुनर्यदेव सम्यग्ज्ञानं तदेव सम्यक्त्वमिति । कस्मादिति चेत् ? अतत्त्वे तत्त्वबुद्धिरदेवे देवबुद्धिरधर्मे धर्मबुद्धिरित्यादिविपरीताभिनिवेशरहितस्य ज्ञानस्यैव सम्यग्विशेषणवाच्योऽवस्थाविशेषः सम्यक्त्वं भण्यते यतः कारणात् ।

प्रकार घटित होते है ? तब उसे कहते हैः—‘जो आत्माको ग्रहण करता है वह दर्शन है’ तो वे समझ नहीं सकते है । अतः आचार्योंने उन्हे प्रतीति करानेके लिये स्थूल व्याख्यानसे बाह्य विषयमे जो सामान्यका ग्रहण है उसका नाम सत्तावलोकन-रूप दर्शन स्थापित किया । और जो ‘यह सफेद है’ इत्यादि विशेष परिच्छेदन हुआ उसे ज्ञान संज्ञासे स्थापित किया । इसप्रकार दोष नहीं है । सिद्धान्तमें मुख्य-रूपसे स्वसमयका व्याख्यान होता है; वहा सूक्ष्म व्याख्यान करते हुए आचार्योंने ‘जो आत्माको ग्रहण करता है वह दर्शन है’ इसप्रकार व्याख्यान किया । इसप्रकारसे इसमें भी दोष नहीं है ।

यहां शिष्य शंका करता हैः—सत्तावलोकनरूप दर्शनका ज्ञानके साथ भेद ज्ञात होता है परन्तु तत्त्वार्थश्रद्धानरूप सम्यग्दर्शन और वस्तुविचाररूप सम्यग्ज्ञान—इन दो में भेद ज्ञात नहीं होता है । यदि कहते हो कि ‘क्यों नहीं ज्ञात होता है ?’ तो कहते है कि सम्यग्दर्शनमें पदार्थका निश्चय है, उसीप्रकार सम्यग्ज्ञानमें भी है; तो उनमे क्या अंतर है ?

समाधान :—पदार्थके ग्रहणमें जाननेरूप क्षयोपशम-विशेष ‘ज्ञान’ कहलाता है और उस ज्ञानमे ही भेदनयसे, वीतराग सर्वज्ञ द्वारा कथित शुद्धात्म आदि तत्त्वोमें ‘यही है, इसप्रकार ही है’ ऐसा निश्चय वह सम्यक्त्व है । निर्विकल्प अभेदनयसे तो जो सम्यग्ज्ञान है वही सम्यग्दर्शन है ।

शंका :—ऐसा किस प्रकार है ?

यदि भेदो नास्ति तर्हि कथमावरणद्वयमिति चेत् ? तत्रोत्तरम्—येन कर्मणार्थ-परिच्छित्तिरूपः क्षयोपशमः प्रच्छाद्यते तस्य ज्ञानावरणसंज्ञा, तस्यैव क्षयोपशम-विशेषस्य यत् कर्म पूर्वोक्तलक्षणं विपरीताभिनिवेशमुत्पादयति तस्य मिथ्यात्वसंज्ञेति भेदनयेनावरणभेदः । निश्चयनयेन पुनरभेदविवक्षायां कर्मत्वं प्रत्यावरणद्वयमप्येकमेव विज्ञातव्यम् । एवं दर्शनपूर्वकं ज्ञानं भवतीति व्याख्यानरूपेण गाथा गता ॥४४॥

अथ सम्यग्दर्शनज्ञानपूर्वकं रत्नत्रयात्मकमोक्षमार्गतृतीयावयवभूतं स्वशुद्धात्मानुभूति-रूपशुद्धोपयोगलक्षणवीतरागचारित्रस्य पारम्पर्येण साधकं सरागचारित्रं प्रतिपादयतिः—

असुहादो विणिविती सुहे पविती य जाण चारित्तं ।

वदसमिदिगुत्तिरूवं ववहारणयादु जिणभणियम् ॥४५॥

समाधान :—‘अतत्त्वमे तत्त्वबुद्धि, अदेवमे देवबुद्धि, अधर्ममें धर्मबुद्धि’ इत्यादि विपरीत अभिनिवेशरहित ज्ञानकी ही ‘सम्यक्’ विशेषणसे वाच्य (कहने योग्य) अवस्था विशेषको सम्यग्दर्शन कहा जाता है ।

शंका :—यदि (सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानमें) भेद नहीं है तो दो गुणोंके घातक ज्ञानावरण और मिथ्यात्व—दो कर्म कैसे कहे है ?

समाधान :—जिस कर्मसे पदार्थको जाननेरूप क्षयोपशम ढका जाता है उसका नाम ‘ज्ञानावरण’ है और उस क्षयोपशम विशेषमें जो कर्म पूर्वोक्त लक्षणयुक्त विपरीत अभिनिवेशको उत्पन्न करता है उसका नाम ‘मिथ्यात्व’ है । इसप्रकार भेदनयसे आवरणमें भेद है । निश्चयनयसे तो अभेद विवक्षामें कर्मपनेकी अपेक्षासे तो दो आवरणोंको भी एक ही जानना चाहिये ।

इसप्रकार दर्शनपूर्वक ज्ञान होता है इस कथन रूपसे गाथा पूर्ण हुई ॥४४॥

अब, सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानपूर्वक रत्नत्रयात्मक मोक्षमार्गके तीसरे अवयवरूप और स्वशुद्धात्माके अनुभवरूप शुद्धोपयोगरूप लक्षणवाले वीतराग-चारित्रके परंपरासे^१ साधक ऐसे सरागचारित्रका प्रतिपादन करते हैं:—

१. सरागचारित्रमे अवशेष रागका क्रम-क्रमसे अभाव होने पर वीतरागचारित्र प्रगट होता है अतः सरागचारित्रको परंपरासे वीतरागचारित्रका साधक व्यवहारनयसे कहा जाता है । निश्चयनयसे साधक वीतरागचारित्र पूर्वमे (पहले) जो शुद्धि थी वही है । देखो, यह शास्त्र गाथा १३ की टीका का अंतिम भाग । श्री नियमसार गाथा—६० नीचेका फूटनोट ३ पृष्ठ ११७ तथा श्री पचास्तिकाय गाथा—१५६ की फूटनोट न० ५ तथा ३ पृष्ठ २३०—२३१—२३२ तथा गाथा—१६१ फूटनोट पृष्ठ २३६, गाथा—१७० फूटनोट पृ० २४६, गाथा—१७२ फूटनोट १ पृ० २५३ ।

शुभकूं गहै अशुभतैं दूरि, चारित सो व्यवहारे पूरि ।

व्रत अरु समितिगुप्ति जामाहि, मुनि धारै अति यतन कराहि ॥४५॥

अशुभात् विनिवृत्तिः शुभे प्रवृत्तिः च जानीहि चारित्रम् ।

व्रतसमितिगुप्तिरूपं व्यवहारनयात् तु जिनभणितम् ॥४५॥

व्याख्या—अस्यैव सरागचारित्रस्यैकदेशावयवभूतं देशचारित्रं तावत्कथ्यते ।
तद्यथा—मिथ्यात्वादिसप्तप्रकृत्युपशमक्षयोपशमक्षये सति, अध्यात्मभाषया निज-
शुद्धात्माभिमुखपरिणामे वा सति शुद्धात्मभावनोत्पन्ननिर्विकारवास्तवसुखामृतमुपादेयं
कृत्वा संसारशरीरभोगेषु योऽसौ हेयबुद्धिः सम्यग्दर्शनशुद्धः स चतुर्थगुणस्थानवर्ती
व्रतरहितो दार्शनिको भण्यते । यश्चाप्रत्याख्यानावरणसंज्ञद्वितीयकषायक्षयोपशमे जाते
सति पृथिव्यादिपञ्चस्थावरवधे प्रवृत्तोऽपि यथाशक्त्या त्रसवधे निवृत्तः स पञ्चमगुण-
स्थानवर्ती श्रावको भण्यते ।

तस्यैकादशभेदाः कथ्यन्ते । तथाहि—सम्यक्त्वपूर्वकत्वेन मद्यमांसमधुत्यागो-
दुम्बरपञ्चकपरिहाररूपाष्टमूलगुणसहितः सन् संग्रामादिप्रवृत्तोऽपि पापद्वर्चादिभि-
निष्प्रयोजनजीवघादादौ निवृत्तः प्रथमो दार्शनिकश्रावको भण्यते । स एव सर्वथा त्रसवधे

गाथा-४५

गाथार्थः—अशुभकार्यकी निवृत्ति और शुभकार्यमे प्रवृत्ति-उसे (व्यवहार)
चारित्र जानो । व्रत-समिति-गुप्तिरूप ऐसा वह (चारित्र) व्यवहारनयसे जिनेन्द्र-
देवने कहा है ।

टीका :—इसी सरागचारित्रके एकदेश अवयवरूप देशचारित्रका प्रथम
कथन करते हैं । वह इसप्रकार है—मिथ्यात्वादि सात प्रकृतियोंके उपशम,
क्षयोपशम अथवा क्षय होनेपर अथवा अध्यात्मभाषासे निजशुद्धात्माभिमुख परिणाम
होनेपर शुद्धात्मभावनासे उत्पन्न, निर्विकार, वास्तविक सुखामृतको उपादेय करके,
संसार-शरीर और भोगोंमें जो हेयबुद्धियुक्त, सम्यग्दर्शनसे शुद्ध है, वह चतुर्थ
गुणस्थानवर्ती, व्रतरहित दार्शनिक कहलाता है । जो, अप्रत्याख्यानावरण नामक
द्वितीय कषायका क्षयोपशम होनेपर पृथ्वी आदि (-पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और
वनस्पतिरूप) पाच स्थावरोके वधमें प्रवृत्त होने पर भी यथाशक्ति त्रसके वधसे
निवृत्त होता है वह पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावक कहलाता है ।

उस श्रावकके ग्यारह भेद कहे जाते हैं—सम्यग्दर्शनपूर्वक मद्य, मांस, मधु
और पांच उदुम्बर फलोके त्यागरूप आठ मूलगुणोंका पालन करता हुआ जो जीव,
युद्धादिमें प्रवृत्त होनेपर भी पापकी वृद्धि करने वाले शिकार आदिके समान बिना
प्रयोजन जीवघातसे निवृत्त हुआ है वह प्रथम दार्शनिक श्रावक कहलाता है । वही

निवृत्तः सन् पञ्चाणुव्रतत्रयगुणव्रतशिक्षाव्रतचतुष्टयसहितो द्वितीयव्रतिकसंज्ञो भवति । स एव त्रिकालसामायिके प्रवृत्तः तृतीयः, प्रोषधोपवासे प्रवृत्तश्चतुर्थः, सचित्तपरिहारेण पञ्चमः, दिवा ब्रह्मचर्येण षष्ठः, सर्वथा ब्रह्मचर्येण सप्तमः, आरम्भादिसमस्तव्यापार-निवृत्तोऽष्टमः, वस्त्रप्रावरणं विहायान्यसर्वपरिग्रहनिवृत्तोनवमः, गृहव्यापारादिसर्वसावधानु-मतनिवृत्तो दशमः, उद्दिष्टाहारनिवृत्त एकादशम इति । एतेष्वेकादशश्रावकेषु मध्ये प्रथमपटुकं तारतम्येन जघन्यम्, ततश्च त्रयं मध्यमम्, ततो द्वयमुत्तममिति संक्षेपेण-दार्शनिकश्रावकाद्येकादशभेदाः ज्ञातव्याः ।

अथैकदेशचारित्रव्याख्यानानन्तरं सकलचारित्रमुपदिशति । “असुहादो विणिविची सुहे पविची य जाण चारित्तं” अशुभान्निवृत्तिः शुभे प्रवृत्तिश्चापि

दार्शनिक श्रावक जब त्रस जीवोकी हिंसासे सर्वथा निवृत्त होकर पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत सहित होता है तब 'व्रती' नामक दूसरा श्रावक होता है । वही जब तीनोकाल सामायिक करता है तब तीसरी प्रतिमाधारक, प्रौपध-उपवास करता है तब चौथी प्रतिमाधारक, सचित्तके त्यागसे पाचवी प्रतिमाधारक, दिवसमे ब्रह्मचर्य पालन करनेसे छठी प्रतिमाधारक, सर्वथा ब्रह्मचर्य पालन करनेसे सातवी प्रतिमाधारक, आरम्भ आदि सपूर्ण व्यापारके त्यागसे आठवी प्रतिमाधारक, पहिनने-ओढनेके वस्त्रोके अतिरिक्त अन्य सर्व परिग्रहोके त्यागसे नवमी प्रतिमाधारक, घर-व्यापार आदि सबधी समस्त पापमयकार्योमें सम्मति (सलाह) देनेका त्याग करनेसे दशवी प्रतिमाधारक और उद्दिष्ट आहारके त्यागसे ग्यारहवी प्रतिमाका धारक श्रावक होता है । इन ग्यारह प्रकारके श्रावकोमें पहली छह प्रतिमाधारक तारतम्यरूपसे जघन्य श्रावक है, उसके पश्चात्की तीन प्रतिमाधारक मध्यम श्रावक और अतिम दो प्रतिमाधारक उत्तम श्रावक है—इसप्रकार-सक्षेपमे देशचारित्रके^१ दार्शनिक श्रावक आदि ग्यारह भेद जानना ।

अब, एकदेश चारित्रके व्याख्यानके पश्चात् सकल चारित्रका उपदेश करते हैं—“असुहादो विणिविची सुहे पविची य जाण चारित्तं” हे शिष्य ! अशुभ कार्योसे निवृत्ति और शुभ कार्योमें प्रवृत्तिको तू चारित्र जान । वह कैसा है ? “वदसमिदि-

१. देशचारित्र पाचवे गुणस्थानमे अतरगमे मिथ्यात्वके तथा प्रथमके दो कपायके अभावरूप होता है ।

जानीहि चारित्रम् । तच्च कथम्भूतं ? “वदसमिदिगुचिरुवं व्यवहारणयादु जिणभणियं”
 व्रतसमितिगुप्तिरूपं व्यवहारनयाजिनैरुक्तमिति । तथाहि प्रत्याख्यानावरणसंज्ञतृतीय-
 कषायक्षयोपशमे सति “विसयकसाओगाढो दुस्सुदिदुच्चित्तदुडुगोड्विजुदो । उग्गो
 उम्मग्गपरो उवओगो जस्स सो असुहो ॥१॥” इति गाथाकथितलक्षणादशुभो-
 पयोगान्निवृत्तिस्तद्विलक्षणे शुभोपयोगे प्रवृत्तिश्च हे शिष्य ! चारित्रं जानीहि ।
 तच्चाचाराराधनादिचरणशास्त्रोक्तप्रकारेण पञ्चमहाव्रतपञ्चसमितित्रिगुप्तिरूपमप्यपहृत-
 संयमाख्यं शुभोपयोगलक्षणं सरागचारित्राभिधानं भवति । तत्र योऽसौ बहिर्विषये
 पञ्चेन्द्रियविषयादिपरित्यागः स उपचरितासद्भूतव्यवहारेण यश्चाभ्यन्तरे रागादि-
 परिहारः स पुनरशुद्धनिश्चयेनेति नयविभागो ज्ञातव्यः । एवं निश्चयचारित्रसाधकं
 व्यवहारचारित्रं व्याख्यातमिति ॥४५॥

गुचिरुवं व्यवहारणयादु जिणभणियं” व्रत, समिति और गुप्तिरूप है और व्यवहार-
 नयसे श्री जिनेद्र भगवतो द्वारा कथित है । वह इसप्रकार है:—प्रत्याख्यानावरण^१
 नामक तीसरे कषायका क्षयोपशम होनेपर, “विषयकषाओगाढो दुस्सुदिदुच्चित्त दुडु-
 गोड्विजुदो । उग्गो उम्मग्गपरो उवओगो जस्स सो असुहो ॥” [अर्थ:—जिसका उपयोग
 विषय-कषायोमें मग्न है, दुःश्रुति (विकथा), दुष्टचित्त और दुष्ट गोष्ठी (खराब
 सगति) सहित है, जो उग्र है और उन्मार्गमें तत्पर है, उसे वह अशुभ उपयोग^२
 है ।]—इस गाथामें कथित लक्षणोंयुक्त अशुभोपयोगसे निवृत्ति और उससे
 विपरीत शुभोपयोगमें प्रवृत्ति, उसे हे शिष्य ! तू चारित्र जान । आचार-आराधना
 आदि चरणानुयोगके शास्त्रोमे कहे अनुसार वह चारित्र पांच महाव्रत, पांच समिति
 और तीन गुप्तिरूप है, तो भी अपहृतसंयम नामक शुभोपयोगलक्षणयुक्त सराग-
 चारित्र है । वहां, जो बाह्यमें पांच इन्द्रियोके विषय आदिका त्याग है वह उपचरित-
 असद्भूतव्यवहारनयसे चारित्र है और अंतरंगमें जो रागादिका त्याग है वह अशुद्ध
 निश्चयनयसे चारित्र है:—इसप्रकार नयविभाग जानना । इसप्रकार निश्चय-
 चारित्रके साधक व्यवहारचारित्रका व्याख्यान किया ॥४५॥

१ छट्टे गुणस्थानमे अतरगमे मिथ्यात्वका त्याग तथा प्रथमके तीन कषायोका अभाव होता है ।

२. श्री प्रवचनसार गाथा-१५८

अथ तेनैव व्यवहारचारित्रेण साध्यं निश्चयचारित्रं निरूपयतिः—

बहिरब्भंतरकिरियारोहो भवकारणप्पणासट्टं ।
णाणिस्स जं जिणुत्तं तं परमं सम्मचारित्तं ॥४६॥

बहिरभ्यन्तरक्रियारोधः भवकारणप्रणाशार्थम् ।
ज्ञानिनः यत् जिनोक्तम् तत् परमं सम्यक्चारित्रम् ॥४६॥

व्याख्या—“तं” तत् “परमं” परमोपेक्षालक्षणं निर्विकारस्वसंवित्यात्मक-
शुद्धोपयोगाविनाभूतं परमं “सम्मचारित्तं” सम्यक्चारित्रं ज्ञातव्यम् । तर्कि—
“बहिरब्भंतरकिरियारोहो” निष्क्रियनित्यनिरञ्जनविशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावस्य निजात्मनः
प्रतिपक्षभूतस्य बहिर्विषये शुभाशुभवचनकायव्यापाररूपस्य तथैवाभ्यन्तरे शुभा-
शुभमनोविकल्परूपस्य च क्रियाव्यापारस्य योऽसौ निरोधस्त्यागः, स च किमर्थं ?
“भवकारणप्पणासट्टं” पञ्चप्रकारभवातीतनिर्दोषपरमात्मनो विलक्षणस्य भवस्य—

अब उसी व्यवहारचारित्रसे साध्य^१ निश्चयचारित्रका निरूपण करते हैंः—

गाथा-४६

गाथार्थः :—संसारके कारणोंका नाश करनेके लिये ज्ञानीको जो बाह्य और
अंतरंग क्रियाओंका निरोध है; श्री जिनेन्द्र द्वारा कथित वह परम सम्यक् चारित्र है ।

टीकाः—“तं” वह “परमं” परम-उपेक्षालक्षणयुक्त, निर्विकार स्वसंवेदनरूप
शुद्धोपयोगका अविनाभूत, परम “सम्मचारित्तं” सम्यक्चारित्र जानना । वह क्या ?
“बहिरब्भंतरकिरियारोहो” निष्क्रिय, नित्यनिरंजन, विशुद्ध ज्ञान-दर्शनस्वभावी
निजात्मासे प्रतिपक्षभूत क्रियाव्यापारका—जो (क्रियाव्यापार) बाह्यमें वचन और
कायाके शुभाशुभ व्यापाररूप है और अंतरगमे मनके शुभाशुभ विकल्परूप है
उसका—निरोध अर्थात् त्याग (वह परम सम्यक्चारित्र है ।) वह निरोध किस-
लिये है ? “भवकारणप्पणासट्टं” पाच प्रकारके संसारसे रहित, निर्दोष परमात्मासे

१. इसका स्पष्टीकरण गाथा-४५ की फूटनोट में किया गया है ।

बाह्याभ्यन्तर किरिया रोकि, आतम शुद्ध गहै अवलोकि ।
आस्रव बंध अभाव निमित्त, ज्ञानी धहै परम चारित्त ॥४६॥

संसारस्य व्यापारकारणभूतो योऽसौ शुभाशुभकर्मास्रवस्तस्य प्रणाशार्थं विना-
शार्थमिति । इत्युभयक्रियानिरोधलक्षणचारित्रं कस्य भवति ? “णाणिस्स”
निश्चयरत्नत्रयात्मकाभेदज्ञानिनः । पुनरपि किं विशिष्टं ? “जं जिणुत्तं” यज्जिनेन
वीतरागसर्वज्ञेनोक्तमिति । एवं वीतरागसम्यक्त्वज्ञानाविनाभूतं निश्चयरत्नत्रयात्मक-
निश्चयमोक्षमार्गः तृतीयावयवरूपं वीतरागचारित्रं व्याख्यातम् ॥४६॥

इति द्वितीयस्थले गाथाष्टकं गतम् ।

एवं मोक्षमार्गप्रतिपादकतृतीयाधिकारमध्ये निश्चयव्यवहारमोक्षमार्गसंक्षेप-
कथनेन सूत्रद्वयम्, तदनन्तरं तस्यैव मोक्षमार्गस्यावयवभूतानां सम्यग्दर्शनज्ञान-
चारित्राणां विशेषविवरणरूपेण सूत्रषट्कं चेति स्थलद्वयसमुदायेनाष्टगाथाभिः प्रथमोऽ-
न्तराधिकारः समाप्तः ।

अतः परं ध्यानध्यातृध्येयध्यानफलकथनमुख्यत्वेन प्रथमस्थले गाथात्रयं, ततः
परं पञ्चपरमेष्ठिव्याख्यानरूपेण द्वितीयस्थले गाथापञ्चकं, ततश्च तस्यैव ध्यानस्योप-

विलक्षण जो संसार उस संसारके व्यापारके कारणभूत जो शुभाशुभ कर्म-आस्रव
उनके विनाशके लिये है । ऐसा बाह्य और अंतरग क्रियाओके निरोधरूप चारित्र
किसको होता है ? “णाणिस्स” निश्चयरत्नत्रयस्वरूप अभेदज्ञानीको ऐसा चारित्र
होता है । तथा वह चारित्र कैसा है ? “जं जिणुत्तं” वह चारित्र जिनेन्द्रदेव, वीतराग
सर्वज्ञ द्वारा कथित है । इसप्रकार वीतराग सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानके अविनाभूत
तथा निश्चयरत्नत्रयस्वरूप निश्चयमोक्षमार्गके तीसरे अवयवरूप वीतरागचारित्रका
व्याख्यान किया ॥४६॥

इसप्रकार द्वितीय स्थलमें आठ गाथाये पूर्ण हुई ।

इसप्रकार मोक्षमार्गके प्रतिपादक तीसरे अधिकारमें निश्चय-व्यवहाररूप
मोक्षमार्गके संक्षेपकथनसे दो गाथाये, तत्पश्चात् उसी मोक्षमार्गके अवयवरूप
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रके विशेष व्याख्यानरूपसे छः गाथाये—इसप्रकार दो स्थलोके
समुदायरूप आठ गाथाओं द्वारा प्रथम अंतराधिकार समाप्त हुआ ।

इसके पश्चात् ध्यान, ध्याता, ध्येय और ध्यानफलके (ध्यानके फलके) कथनकी
मुख्यतासे प्रथम स्थलमें तीन गाथाये, तत्पश्चात् पञ्चपरमेष्ठियोंके व्याख्यानरूपसे
दूसरे स्थलमें पांच गाथाये और तत्पश्चात् उसी ध्यानके उपसंहाररूप विशेष

सहारूपविशेषव्याख्यानेन तृतीयस्थले सन्नचतुष्टयमिति स्थलत्रयसमुदायेन द्वादशसूत्रेषु द्वितीयान्तराधिकारे समुदायपातनिका ।

तथाहि—निश्चयव्यवहारमोक्षमार्गसाधकध्यानाभ्यासं कुरुत यूयमित्युपदिशतिः—

दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा ।

तह्मा पयत्तचित्ता जूयं झाणं समब्भसह ॥ ४७ ॥

द्विविध अपि मोक्षहेतु ध्यानेन प्राप्नोति यत् मुनिः नियमात् ।

तस्मात् प्रयत्नचित्ताः यूय ध्यान समभ्यसत ॥ ४७ ॥

व्याख्या—“दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा”
द्विविधमपि मोक्षहेतु ध्यानेन प्राप्नोति यस्मात् मुनिर्नियमात् । तद्यथा—निश्चय-
रत्नत्रयात्मक निश्चयमोक्षहेतुं निश्चयमोक्षमार्गं तथैव व्यवहाररत्नत्रयात्मकं व्यवहार-
मोक्षहेतुं व्यवहारमोक्षमार्गं च य साध्यसाधकभावेन कथितवान् पूर्वं, तद् द्विविधमपि

व्याख्यान द्वारा तीसरे स्थलमे चार गाथाये है, इसप्रकार तीनो स्थलोके समुदाय द्वारा वारह गाथाओ सम्बन्धी दूसरे अतराधिकारकी समुदायरूप भूमिका है ।

अब, निश्चय और व्यवहारमोक्षमार्गका जो ध्यान उसका अभ्यास करो इसप्रकार उपदेश देते हैं—

गाथा-४७

गाथार्थः—ध्यान करनेसे मुनि नियमसे निश्चय और व्यवहाररूप मोक्षमार्गको प्राप्त करते हैं । अतः तुम चित्तको एकाग्र करके ध्यानका सम्यक् प्रकारसे अभ्यास करो ।

टीकाः—“दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा” क्योकि मुनि नियमसे ध्यान द्वारा दोनो प्रकारके मोक्षके कारणोको प्राप्त करते हैं । विशेष — क्योकि निश्चयरत्नत्रयस्वरूप निश्चय-मोक्ष हेतु अर्थात् निश्चय मोक्षमार्ग और व्यवहार-रत्नत्रयात्मक व्यवहार-मोक्ष हेतु अर्थात् व्यवहार मोक्षमार्ग जिनका 'साध्य-साधकभावरूपसे पहले कथन किया है उन दोनो प्रकारके मोक्षमार्गोको

१ दोनो साथ रहते हैं अतः सहचारी, सहकारी, निमित्त, साधन कहा जाता है, परन्तु वह

इम दो विध चारित मुनिराज, ध्यान योग पावै सु समाज ।

जातै यत्न धारि यह धरो । नियमरूप भाषै मुनिवरो ॥४७॥

निर्विकारस्वसवित्त्वात्मकपरमध्यानेन मुनिः प्राप्नोति यस्मात्कारणात् “तद्धा पयत्त-
चित्ता जूय ज्ञाण समब्भसह” तस्मात् प्रयत्नचित्ताः सन्तो हे भव्या यूयं ध्यानं
सम्यग्भ्यसत । तथाहि—तस्मात्कारणात् दृष्टश्रुतानुभूतनानामनोरथरूपसमस्तशुभाशुभ-
रागादिविकल्पजालं त्यक्त्वा, परमस्वास्थ्यसमुत्पन्नसहजानन्दैकलक्षणसुखामृतरसास्वादानु-
भवे स्थित्वा च ध्यानाभ्यासं कुरुत यूयमिति ॥४७॥

अथ ध्यातृ-पुरुषलक्षणं कथयति :—

मा मुज्झह मा रज्जह मा दूसह इट्ठणिट्ठञ्चट्ठेसु ।
थिरमिच्छहि जइ चित्तं विचित्तभाणप्पसिद्धीए ॥४८॥

मा मुद्वत मा रज्यत मा द्विष्यत इष्टानिष्टार्थेषु ।
स्थिरं इच्छत यदि चित्तं विचित्रध्यानप्रसिद्ध्यै ॥४८॥

निर्विकार स्वसवेदनरूप परमध्यान द्वारा मुनि प्राप्त करते हैं “तद्धा पयत्तचित्ता
जूयं ज्ञाणं समब्भसह” इसलिये एकाग्रचित्त होकर हे भव्यजनो ! तुम ध्यानका
सम्यक् प्रकारसे अभ्यास करो, अथवा इसी कारण देखे हुए, सुने हुए और पूर्वमे
अनुभव किये हुए अनेक मनोरथरूप समस्त शुभाशुभ रागादि विकल्पजालका
त्याग करके, परम स्वास्थ्यसे उत्पन्न सहजानन्द जिसका एक लक्षण है ऐसे सुखामृतके
रसास्वादके अनुभवमे स्थिर होकर, तुम ध्यानका अभ्यास करो ॥४७॥

अब ध्याता-पुरुषका (ध्यान करनेवाले पुरुषका) लक्षण कहते हैं.—

गाथा-४८

गाथार्थः—यदि तुम विचित्र (अनेक प्रकारके) अथवा विचित्त (विकल्प-
जाल रहित) ध्यानकी सिद्धिके लिये चित्तको स्थिर करना चाहते हो, तो इष्ट
और अनिष्ट इन्द्रिय विषयोमे मोह, राग और द्वेष न करो ।

निश्चय साधन नहीं है । वह तो शुभाशुभ-बधका कारण है, परिहरने योग्य है, माहात्म्यमे
से वारने योग्य (निवारण करने योग्य) है । श्री पचास्तिकाय गाथा-१६६ से १७२ ।

इष्ट-अनिष्ट वस्तुकूँ देखि, राग-द्वेष अरु मोह न पेखि ।
जो चित्तकूँ थिर करना होय, ऐसैं किये ध्यान सिधि होय ॥४८॥

व्याख्या—“मा मुञ्जह मा रज्जह मा दूसह” समस्तमोहरागद्वेषजनित-विकल्पजालरहितनिजपरमात्मतत्त्वभावनासमुत्पन्नपरमानन्दैकलक्षणसुखामृतरसात्सकाशादुद्-गता संजाता तत्रैव परमात्मसुखास्वादे लीना तन्मया या तु परमकला परमसंवित्ति-स्तत्र स्थित्वा हे भव्या मोहरागद्वेषात्मा कुरुत । केषु विषयेषु ? “इड्डणिड्डअड्डेसु” स्रग्बनिताचन्दनताम्बूलादय इष्टेन्द्रियार्थाः, अहिविषकण्टक शत्रुव्याधिप्रभृतयः पुनरनिष्टे-न्द्रियार्थास्तेषु । यदि किम् ? “थिरमिच्छहि जइ चित्तं” तत्रैव परमात्मानुभवे स्थिरं निश्चल चित्तं यदीच्छत यूयं । किमर्थम् ? “विचित्तज्ञाणप्पसिद्धीए” विचित्रं नानाप्रकारं यद्ध्यानं तत्प्रसिद्धयै निमित्तं । अथवा विगतं चित्तं चित्तोद्भवशुभाशुभ-विकल्पजालं यत्र तद्विचित्तं ध्यानम् तदर्थमिति ।

इदानीं तस्यैव ध्यानस्य ताददागमभाषया विचित्रभेदाः कथ्यन्ते । तथाहि—
इष्टवियोगानिष्टसंयोगव्याधिप्रतीकारभोगनिदानेषु वाञ्छारूपं चतुर्विधमार्त्तध्यानम् ।
तच्च तारतम्येन मिथ्यादृष्ट्यादिषट्गुणस्थानवर्तिजीवसम्भवम् । यद्यपि मिथ्या-

टीका :—“मा मुञ्जह मा रज्जह मा दूसह” समस्त मोह-राग-द्वेषजनित विकल्पजालसे रहित निज परमात्मतत्त्वकी भावनासे उत्पन्न परमानन्द जिसका एक लक्षण है ऐसे सुखामृतके रससे उत्पन्न हुए और उसी परमात्मसुखके आस्वादमे लीन-तन्मयरूप जो परमकला अर्थात् परम सवित्ति, उसमे स्थिर होकर हे भव्य जीवो ! मोह, राग और द्वेष न करो । किन विषयोमें ? “इड्डणिड्डअड्डेसु” माला, स्त्री, चन्दन, ताबूल आदि इष्ट इन्द्रिय विषयोमे और सर्प, विष, कटक, शत्रु, रोग आदि अनिष्ट इन्द्रियविषयो मे । क्या चाहते हो तो राग-द्वेष न करना ? “थिरमिच्छहि जइ चित्तं” यदि उसी परमात्माके अनुभवमे तुम स्थिर-निश्चल चित्त चाहते हो तो । किसलिये स्थिर चित्त चाहते हो ? “विचित्त-ज्ञाणप्पसिद्धीए” ‘विचित्र’ अर्थात् अनेक प्रकारके ध्यानकी प्रसिद्धिके लिये, अथवा जिस ध्यानमेसे चित्त विगत (नष्ट) हो गया हो अर्थात् चित्तमे उत्पन्न होते हुए शुभाशुभ विकल्पजाल नष्ट हो गये हो, वह ‘विचित्त’ ध्यान है, ऐसे ‘विचित्त ध्यान’ की सिद्धिके लिये ।

अब प्रथम ही आगमभाषासे उसी ध्यानके अनेक प्रकारके भेदोका कथन किया जाता है । वह इसप्रकार है:—इष्टवियोग, अनिष्टसंयोग और रोग—इन तीनोंको दूर करनेमे और भोगोके कारणोमे वाञ्छारूप—इस भाति चार प्रकारका आर्त्तध्यान है । वह आर्त्तध्यान तारतम्यतासे मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर छट्ठे गुणस्थान तकके जीवोको सभव है । वह आर्त्तध्यान यद्यपि मिथ्यादृष्टि जीवोको तिर्यचगतिके बधका कारण होता है तो भी जिस जीवको सम्यक्त्व प्राप्त होनेसे

दृष्टीनां तिर्यग्गतिकारणं भवति तथापि बद्धायुष्कं विहाय सम्यग्दृष्टीनां न भवति । कस्मादिति चेत् ? स्वशुद्धात्मैवोपादेय इति विशिष्टभावनाबलेन तत्कारण-भूतसंकलेशाभावादिति ।

अथ रौद्रध्यानं कथ्यते—हिंसानन्दमृषानन्दस्तेयानन्दविषयसंरक्षणानन्दप्रभवं रौद्रं चतुर्विधम् । तारतम्येन मिथ्यादृष्ट्यादिपञ्चमगुणस्थानवर्त्तिजीवसम्भवम् । तच्च मिथ्या-दृष्टीनां नरकगतिकारणमपि बद्धायुष्कं विहाय सम्यग्दृष्टीनां तत्कारणं न भवति । तदपि कस्मादिति चेत् ? निजशुद्धात्मतत्त्वमेवोपादेयमिति विशिष्टभेदज्ञानबलेन तत्कारणभूततीव्रसंकलेशाभावादिति ।

अतः परम् आर्त्तरौद्रपरित्यागलक्षणमाज्ञापायविपाकसस्थानविचयसंज्ञचतुर्भेदभिन्नं, तारतम्यवृद्धिक्रमेणासंयतसम्यग्दृष्टि देशविरतप्रमत्तसयताप्रमत्ताभिधान चतुर्गुणस्थानवर्त्ति-जीवसम्भवं, मुख्यवृत्त्या पुण्यबन्धकारणमपि परम्परया मुक्तिकारणं चेति धर्मध्यानं पहले तिर्यच आयु बंध गई हो उसके अतिरिक्त अन्य सम्यग्दृष्टिको वह आर्त्तध्यान तिर्यचगतिका कारण नहीं होता है ।

प्रश्नः—कारण कैसे नहीं होता है ?

उत्तरः—‘स्व शुद्धात्मा ही उपादेय है’ ऐसी विशिष्ट भावनाके बलसे तिर्यच गतिके कारणभूत संकलेश भावका उसको अभाव होनेसे ।

अब, रौद्रध्यानका कथन करते हैं—हिंसामें आनद, भूठ बोलनेमें आनद, चोरीमें आनद और विषयोका संरक्षण करनेमें आनदसे उत्पन्न चार प्रकारका रौद्रध्यान है । वह रौद्रध्यान तारतम्यतासे मिथ्यादृष्टिसे लेकर पाचवे गुणस्थान तकके जीवोके संभव है । वह रौद्रध्यान मिथ्यादृष्टि जीवोको नरकगतिका कारण है तो भी जिस जीवको सम्यक्त्व प्राप्त करनेसे पहले नरककी आयु बंधी हो उसके अतिरिक्त अन्य सम्यग्दृष्टि जीवोको वह नरकगतिका कारण नहीं होता है ।

प्रश्नः—किस कारणसे नहीं होता है ?

उत्तरः—‘निज शुद्धात्मतत्त्व ही उपादेय है’ ऐसे विशिष्ट भेदज्ञानके बलसे नरकगतिके कारणभूत तीव्र संकलेशभावका उनको अभाव होनेसे ।

अब, आगे आर्त्तध्यान और रौद्रध्यानके परित्यागरूप आज्ञाविचय, अपाय-विचय, विपाकविचय और सस्थानविचय नामक चार भेदसयुक्त, तारतम्यवृद्धिक्रमसे असंयत सम्यग्दृष्टि, देशविरत, प्रमत्तसयत और अप्रमत्तसयत—इन चार गुणस्थानवर्ती जीवोंको संभव, मुख्यरूपसे पुण्यबन्धका कारण होनेपर भी परम्परासे मोक्षका कारणभूत धर्मध्यान अब कहा जाता है । वह इसप्रकार हैः—स्वयं मदवृद्धि हो और

कथ्यते । तथाहि—स्वयं मन्दबुद्धित्वेऽपि विशिष्टोपाध्यायाभावे अपि शुद्धजीवादि-
पदार्थानां सूक्ष्मत्वेऽपि सति “सूक्ष्मं जिनोदितं वाक्यं हेतुभिर्यन्न हन्यते ।
-आज्ञासिद्धं तु तद्ग्राह्यं नान्यथावादिनो जिनाः ॥ १ ॥” इति श्लोककथितक्रमेण
पदार्थनिश्चयकरणमाज्ञाविचयध्यानं भण्यते । तथैव भेदाभेदरत्नत्रयभावनावलेनास्माकं
परेषां वा कदा कर्मणामपायो विनाशो भविष्यतीति चिन्तनमपायविचयं ज्ञातव्यम् ।
शुद्धनिश्चयेन शुभाशुभकर्मविपाकरहितोऽप्ययं जीवः पश्चादनादिकर्मबन्धवशेन पापस्यो-
दयेन नारकादिदुःखविपाकफलमनुभवति, पुण्योदयेन देवादिसुखविपाकमनुभवतीति
विचारणं विपाकविचयं विज्ञेयम् । पूर्वोक्तलोकानुप्रेक्षाचिन्तनं संस्थानविचयम् । इति
चतुर्विध धर्मध्यानं भवति ।

अथ पृथक्त्ववितर्कवीचारं एकत्ववितर्कवीचारं सूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिसंज्ञं व्युप-
रतक्रियानिवृत्तिसंज्ञं चेति भेदेन चतुर्विधं शुक्लध्यानं कथयति । तद्यथा—पृथक्त्व-

विशिष्ट ज्ञानी गुरुकी प्राप्ति न हो तब शुद्ध जीवादि पदार्थ सूक्ष्म होनेसे, “सूक्ष्मं
जिनोदितं वाक्यं हेतुभिर्यन्न हन्यते । आज्ञासिद्धं तु तद्ग्राह्यं नान्यथावादिनो जिनाः ॥”
[अर्थः—श्री जिनेन्द्रका कहा हुआ जो सूक्ष्मतत्त्व है वह हेतुओसे खडित नही होता
है, अतः जो सूक्ष्म तत्त्व है उसे जिनेन्द्रदेवकी आज्ञानुसार ग्रहण करना चाहिये
क्योकि श्री जिनेन्द्रदेव अन्यथावादी नही होते है ।]—इस श्लोकमे कहे अनुसार
पदार्थका निश्चय करना वह ‘आज्ञाविचय’ नामक प्रथम धर्मध्यान कहलाता है ।
उसीप्रकार भेदाभेद रत्नत्रयकी भावनाके बलसे हमारे अथवा अन्य जीवोके कर्मोका
नाश कब होगा इसप्रकारका चितन उसे ‘अपायविचय’ नामक दूसरा धर्मध्यान
जानना । शुद्ध निश्चयनयसे यह जीव शुभाशुभ कर्मोके उदयसे रहित है, तो भी
अनादि कर्मबन्धके वशसे पापके उदयसे नारक आदिके दुःखरूप फलका अनुभव
करता है और पुण्यके उदयसे देवादिके सुखरूप फलको भोगता है ऐसी विचारणाको
‘विपाकविचय’ नामक तीसरा धर्मध्यान जानना । पहले कही हुई लोक-अनुप्रेक्षाके
चितनको ‘संस्थानविचय’ नामक चौथा धर्मध्यान कहते है ।

अब, पृथक्त्ववितर्कवीचार, एकत्ववितर्कवीचार, सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति और
व्युपरतक्रियानिवृत्ति नामक चार प्रकारके शुक्लध्यानका कथन करते है । वह
इसप्रकार हैः—प्रथम पृथक्त्ववितर्कवीचार नामक शुक्लध्यानका कथन करते है ।

वितर्कवीचारं तावत्कथ्यते । द्रव्यगुणपर्यायाणां भिन्नत्वं पृथक्त्वं भण्यते, स्वशुद्धात्मानुभूतिलक्षणं भावश्रुतं तद्वाचकमन्तर्जल्पवचनं वा वितर्कं भण्यते, अनीहितवृत्त्यार्थान्तरपरिणमनम् वचनाद्वचनान्तरपरिणमनम् मनोवचनकाययोगेषु योगाद्योगान्तरपरिणमनं वीचारो भण्यते । अयमत्रार्थः—यद्यपि ध्याता पुरुषः स्वशुद्धात्मसंवेदनं विहाय बहिश्चिन्तां न करोति तथापि यावतांशेन स्वरूपे स्थिरत्वं नास्ति तावतांशेनानीहितवृत्त्या विकल्पाः स्फुरन्ति, तेन कारणेन पृथक्त्ववितर्कवीचारं ध्यानं भण्यते । तच्चोपशमश्रेणिविवक्षायामपूर्वोपशमकानिवृत्त्युपशमकसूक्ष्मसाम्परायोपशमकोपशान्तकषायपर्यन्तगुणस्थानचतुष्टये भवति । क्षपकश्रेण्यां पुनरपूर्वकरणक्षपकानिवृत्तिकरणक्षपकसूक्ष्मसाम्परायक्षपकाभिधानगुणस्थानत्रये चेति प्रथमं शुक्लध्यानं व्याख्यातम् ।

निजशुद्धात्मद्रव्ये वा निर्विकारात्मसुखसंविच्छिपर्याये वा निरुपाधिस्वसंवेदनगुणे वा यत्रैकस्मिन् प्रवृत्तं तत्रैव वितर्कसंज्ञेन स्वसंविच्छिलक्षणभावश्रुतवलेन

द्रव्य, गुण और पर्यायिके भिन्नपनेको 'पृथक्त्व' कहते हैं । स्व शुद्धात्माकी अनुभूति जिसका लक्षण है ऐसे भावश्रुतको और उसके (स्वशुद्धात्माके) वाचक अंतर्जल्परूप वचनको 'वितर्क' कहते हैं । इच्छाके बिना एक अर्थसे दूसरे अर्थमें, एक वचनसे दूसरे वचनमें, मन-वचन-काय इन तीन योगोंमेंसे किसी एक योगसे दूसरे योगमें जो परिणमन (पलटना) होता है उसे 'वीचार' कहते हैं । इसका अर्थ इसप्रकार है—यद्यपि ध्यान करनेवाला पुरुष निज शुद्धात्माका संवेदन छोड़कर बाह्य पदार्थोंका चिन्तन नहीं करता है, तो भी उसे जितने अंशमें स्वरूपमें स्थिरता नहीं है उतने अंशमें इच्छाके बिना विकल्प उत्पन्न होते हैं इस कारण इस ध्यानको 'पृथक्त्ववितर्कवीचार' कहते हैं । यह प्रथम शुक्लध्यान उपशम श्रेणीकी विवक्षामें अपूर्वकरण-उपशमक, अनिवृत्तिकरण-उपशमक, सूक्ष्मसांपराय-उपशमक और उपशान्त कषाय—इन चार गुणस्थानोंमें होता है, और क्षपक श्रेणीकी विवक्षामें अपूर्वकरण-क्षपक, अनिवृत्तिकरण-क्षपक और सूक्ष्मसांपराय-क्षपक—इन तीन गुणस्थानोंमें होता है । इसप्रकार प्रथम शुक्लध्यानका व्याख्यान हुआ ।

निज शुद्धात्मद्रव्यमें अथवा विकार रहित आत्मसुखके अनुभवरूप पर्यायमें अथवा उपाधिरहित स्वसंवेदन गुणमें—इन तीनोंमेंसे जिस एकमें (द्रव्य, गुण अथवा पर्यायमें) प्रवृत्त हो उसमें ही वितर्क नामक स्वसंवेदन लक्षणयुक्त भावश्रुतके बलसे

स्थिरीभूयावीचारं गुणद्रव्यपर्यायपरावर्त्तनं न करोति यत्तदेकत्ववितर्कावीचारसंज्ञं क्षीण-
कषायगुणस्थानसम्भवं द्वितीयं शुक्लध्यानं भण्यते । तेनैव केवलज्ञानोत्पत्तिः इति ।
अथ सूक्ष्मकायक्रियाव्यापाररूपं च तदप्रतिपाति च सूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिसंज्ञं तृतीयं
शुक्लध्यानम् । तच्चोपचारेण सयोगिकेवलजिने भवतीति । विशेषेणोपरता निवृत्ता
क्रिया यत्र तद् व्युपरतक्रियं च तदनिवृत्ति चानिवर्तकं च तद्व्युपरतक्रियानिवृत्ति-
संज्ञं चतुर्थं शुक्लध्यानं । तच्चोपचारेणायोगिकेवलजिने भवतीति । इति संक्षेपेणा-
गमभाषया विचित्रध्यानं व्याख्यातम् ।

अध्यात्मभाषया पुनः सहजशुद्धपरमचैतन्यशालिनि निर्भरानन्दमालिनि भगवति
निजात्मन्युपादेयबुद्धिं कृत्वा पश्चादनन्तज्ञानोऽहमनन्तसुखोऽहमित्यादिभावनारूपमभ्यन्तर-
धर्मध्यानमुच्यते । पञ्चपरमेष्ठिभक्त्यादितदनुकूलशुभानुष्ठानं पुनर्बहिरङ्गधर्मध्यानं भवति ।

स्थिर होकर अवीचाररूप होता है अर्थात् द्रव्य, गुण अथवा पर्यायमे परावर्तन नहीं
करता है वह क्षीणकषाय गुणस्थानमे सभव 'एकत्ववितर्कअवीचार' नामक दूसरा
शुक्लध्यान कहलाता है । इस दूसरे शुक्लध्यानसे ही केवलज्ञानकी उत्पत्ति होती है ।

अब, सूक्ष्मकायकी क्रियाके व्यापाररूप और अप्रतिपाति (जिससे गिरना नहीं
हो) ऐसा "सूक्ष्म क्रिया प्रतिपाति" नामक तीसरा शुक्लध्यान है । वह उपचारसे
'सयोगिकेवली जिन' गुणस्थानमे होता है ।

जिसमेसे क्रिया विशेषरूपसे उपरत अर्थात् निवृत्त हुई है वह 'व्युपरतक्रिय'
है । व्युपरतक्रिय हो (सर्व क्रियाकी निवृत्ति हुई हो) और अनिवृत्ति हो अर्थात् मुक्ति
न हुई हो वह 'व्युपरतक्रियानिवृत्ति' नामक चौथा शुक्लध्यान है । वह उपचारसे
'अयोगिकेवलीजिन' गुणस्थानमे होता है । इसप्रकार संक्षेपमे आगमभाषासे भिन्न-
भिन्न प्रकारके ध्यानोका व्याख्यान किया ।

अध्यात्मभाषासे सहज-शुद्ध-परम-चैतन्यशाली, परिपूर्ण आनन्दके धारक
भगवान निजात्मामे उपादेयबुद्धि करनेके पश्चात् 'मै अनन्त ज्ञानमय हूँ, मै अनन्त
सुखरूप हूँ' इत्यादि भावनारूप अंतरग धर्मध्यान कहलाता है । पञ्च परमेष्ठियोंकी
शक्ति आदि उसके अनुकूल (अंतरग धर्मध्यानको व्यवहारसे अनुकूल) शुभ अनुष्ठान
वह बहिरग धर्मध्यान है । उसीप्रकार निज शुद्धात्मामे विकल्परहित समाधिरूप

तथैव स्वशुद्धात्मनि निर्विकल्पसमाधिलक्षणं शुक्लध्यानम् इति । अथवा “पदस्थं मन्त्रवाक्यस्थं पिण्डस्थं स्वात्मचिन्तनम् । रूपस्थं सर्वचिद्रूपं रूपातीतं निरञ्जनम् ॥१॥” इति श्लोककथितक्रमेण विचित्रध्यानं ज्ञातव्यमिति ।

अथ ध्यानप्रतिबन्धकानां मोहरागद्वेषाणां स्वरूपं कथ्यते । शुद्धात्मादितत्त्वेषु विपरीताभिनिवेशजनको मोहो दर्शनमोहो मिथ्यात्वमिति यावत् । निर्विकार-स्वसंवित्तिलक्षणवीतरागचारित्रप्रच्छादकचारित्रमोहो रागद्वेषौ भण्येते । चारित्रमोहो शब्देन रागद्वेषौ कथं भण्येते ? इति चेत्—कषायमध्ये क्रोधमानद्वयं द्वेषाङ्गम्, मायालोभद्वयं च रागाङ्गम्, नोकषायमध्ये तु स्त्रीपुंनपुंसकवेदत्रय हास्यरतिद्वयं च रागाङ्गम्, अरति-शोकद्वयं भयजुगुप्साद्वयं च द्वेषाङ्गमिति ज्ञातव्यम् । अत्राह शिष्यः—रागद्वेषादयः किं कर्मजनिताः किं जीवजनिता इति ? तत्रोत्तरम्—स्त्रीपुरुषसंयोगोत्पन्नपुत्र इव सुधाहरिद्रासंयोगोत्पन्नवर्णविशेष इवोभयसंयोगजनिता इति । पश्चान्नयविवक्षा

शुक्लध्यान है । अथवा “पदस्थं मन्त्रवाक्यस्थं पिण्डस्थं स्वात्मचिन्तनम् । रूपस्थं सर्वचिद्रूपं रूपातीतं निरञ्जनम् ॥” [अर्थः—मन्त्रवाक्योमे स्थित ‘पदस्थध्यान’ है, निज आत्माका चित्तन वह ‘पिण्डस्थ’ ध्यान है, सर्वचिद्रूपका चिन्तन वह ‘रूपस्थ ध्यान’ है और निरंजनका ध्यान ‘रूपातीत’ ध्यान है ।] इस श्लोकमे कहे अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकारका ध्यान जानना ।

अब, ध्यानके प्रतिबन्धक मोह, राग और द्वेषका स्वरूप कहते हैं । शुद्धात्मा आदि तत्त्वोमें विपरीत अभिप्राय उत्पन्न करने वाला वह मोह, दर्शनमोह अथवा मिथ्यात्व है । निर्विकार स्वसवेदन जिसका लक्षण है ऐसे वीतराग चारित्रको आवरण करनेवाला चारित्रमोह वह राग-द्वेष कहलाता है ।

प्रश्नः—चारित्रमोह शब्दसे राग-द्वेष किसप्रकार कहा जाता है ?

उत्तरः—कषायोमे क्रोध-मान ये दो द्वेषके अंश है और माया-लोभ ये दो रागके अंश है । नोकषायोमे स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद ये—तीन वेद तथा हास्य और रति—ये दो (—ये पांच नोकषाय) रागके अंश है । अरति और शोक—ये दो तथा भय और जुगुप्सा—ये दो (—ये चार नोकषाय) द्वेषके अंश है इसप्रकार जानना ।

यहां शिष्य पूछता है.—राग, द्वेष आदि कर्मजनित है अथवा जीवजनित है ? उसका उत्तरः—स्त्री और पुरुष इन दोनोंके संयोगसे उत्पन्न हुए पुत्रकी भांति, चूने और हल्दीके मिश्रणसे उत्पन्न हुए वर्णविशेषकी भांति, राग-द्वेष आदि

१. श्री परमात्मप्रकाश गाथा-१ की टीकामे आधाररूप लिया है ।

वशेन विवक्षितैकदेशशुद्धनिश्चयेन कर्मजनिता भण्यन्ते । तथैवाशुद्धनिश्चयेन जीव-
जनिता इति । स चाशुद्धनिश्चयः शुद्धनिश्चयापेक्षया व्यवहार एव । अथ मतम्—
साक्षाच्छुद्धनिश्चयनयेन कस्येति पृच्छामो वयम् । तत्रोत्तरम्—साक्षाच्छुद्धनिश्चयेन
स्त्रीपुरुषसंयोगरहितपुत्रस्यैव, सुधाहरिद्रासंयोगरहितरङ्गविशेषस्यैव तेषामुत्पत्तिरेव नास्ति
कथमुत्तरं प्रयच्छाम इति । एवं ध्यातृव्याख्यानमुख्यत्वेन तद्व्याजेन विचित्रध्यान-
कथनेन च सूत्रं गतम् ॥४८॥

अतः ऊर्ध्वं पदस्थं ध्यानं मन्त्रवाक्यस्थं यदुक्तं तस्य विवरणं कथयतिः—

पण्तीससोल्लक्षणचतुर्गमेगं च जवह उक्ताएह ।

परमेष्टिवाचयाणं अरणं च गुरुवएसेण ॥ ४९ ॥

जीव और कर्म इन दोनोंके 'सयोगजनित' है । नयकी विवक्षाके अनुसार, विवक्षित
एक देश शुद्ध निश्चयनयसे राग-द्वेष कर्मजनित कहलाते है और अशुद्ध निश्चयनयसे
जीव जनित कहलाते है । यह अशुद्ध निश्चयनय, शुद्ध निश्चयनयकी अपेक्षासे
व्यवहार ही है ।

प्रश्नः—साक्षात् शुद्ध निश्चयनयसे ये राग-द्वेष किसके है ? ऐसा हम
पूछते है ।

उत्तरः—साक्षात् शुद्ध निश्चयसे, स्त्री और पुरुषके सयोगरहित पुत्रकी भाति,
चूना और हल्दीके सयोगरहित रंग विशेषकी भाति, उनकी (राग-द्वेषादिकी)
उत्पत्ति ही नहीं है; तो कैसे उत्तर दे ?

इसप्रकार ध्याताके व्याख्यानकी मुख्यतासे, उसके आश्रयसे, विचित्र ध्यानके
कथन द्वारा यह गाथा पूर्ण हुई ॥४८॥

अब, 'मन्त्रवाक्यमे स्थित पदस्थ' ध्यान कहा था उसका विवरण करते है.—

१. दो द्रव्य इकट्ठे मिलकर कभी भी कोई कार्य नहीं कर सकते है । परन्तु जीवके क्षणिक
अशुद्ध उपादान ने परनिमित्त ऐसे कर्मका आश्रय लिया है अतः वह पराश्रित भाव है
इसप्रकार यहा बतलाया है । उसका आशय पराश्रित भाव छोडकर आत्माश्रितभाव
प्रगट करानेका है ।

परमेष्टी-वाचक पैंतीस, वर्ण सोल छह पण चतुश्च ।

दोय एक पुनि ध्यावो जपो, और बताये गुरुके लपो ॥४९॥

पञ्चत्रिंशत् षोडश षट् पञ्च चत्वारि द्विकं एकं च जपत ध्यायत ।
परमेष्ठिवाचकानां अन्यत् च गुरुपदेशेन ॥ ४९ ॥

व्याख्या—“पणतीस” ‘णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं’ एतानि पञ्चत्रिंशदक्षराणि सर्वपदानि भण्यन्ते । “सोल” ‘अरिहंत-सिद्ध-आइरिय-उवज्झाय-साहू’ एतानि षोडशाक्षराणि नामपदानि भण्यन्ते । “छ” ‘अरिहन्तसिद्ध’ एतानि षडक्षराणि अर्हत्सिद्धयोर्नाम-पदे द्वे भण्येते । “पण” ‘अ सि आ उ सा’ एतानि पञ्चाक्षराणि आदिपदानि भण्यन्ते । “चउ” ‘अरिहंत’ इदमक्षरचतुष्टयमर्हतो नामपदम् । “दुगं” ‘सिद्ध’ इत्यक्षरद्वयं सिद्धस्य नामपदम् । “एगं च” ‘अ’ इत्येकाक्षरमर्हत आदिपदम् । अथवा ‘ओ’ एकाक्षरं पञ्चपरमेष्ठिनामादिपदम् । तत्कथमिति चेत् ? “अरिहंता असरीरा आइरिया तह उवज्झाया । मुणिणो पढमक्खरणिप्पणो ओंकारो पंच

गाथा-४९

गाथार्थः—पंच परमेष्ठीके वाचक पैतीस, सोलह, छह, पाच, चार, दो और एक अक्षररूप मन्त्रपदोका जाप करो, ध्यान करो; उनके अतिरिक्त अन्यका भी, गुरुके उपदेश अनुसार जाप और ध्यान करो ।

टीकाः—“पणतीस” ‘णमो अरिहताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं’ ये पैतीस अक्षर ‘सर्वपद’ कहलाते हैं । “सोल” ‘अरिहन्त-सिद्ध-आइरिय-उवज्झाय-साहू’ ये सोलह अक्षर ‘नामपद’ कहलाते हैं । “छ” ‘अरिहन्त-सिद्ध’ ये छह अक्षर अरिहन्त-सिद्ध इन दो परमेष्ठियोंके ‘नामपद’ कहलाते हैं । “पण” ‘अ, सि, आ, उ, सा’ ये पाच अक्षर पंच परमेष्ठीके ‘आदिपद’ कहलाते हैं । “चउ” ‘अरिहन्त’ ये चार अक्षर अरिहन्त परमेष्ठीके ‘नामपद’ हैं । “दुगं” ‘सिद्ध’ ये दो अक्षर सिद्ध परमेष्ठीके ‘नामपद’ हैं । “एगं च” ‘अ’ यह एक अक्षर अरिहन्त परमेष्ठीका ‘आदिपद’ है, अथवा ‘ओ’ यह एक अक्षर पाचो परमेष्ठियोंका ‘आदिपद’ है ।

प्रश्नः—‘ओ’ यह पाचों परमेष्ठियोंका आदिपद किसप्रकार है ?

उत्तरः—“अरिहंता असरीरा आइरिया तह उवज्झाया । मुणिणो पढमक्खर-णिप्पणो ओंकारो पंच परमेष्ठी ॥ [अर्थ —अरिहन्तका प्रथम अक्षर ‘अ’, असरीर

परमेष्ठी । १ ।” इति गाथाकथितप्रथमाक्षराणां ‘समानः सवर्णे दीर्घो भवति’ ‘परश्च लोपम्’ ‘उवर्णे ओ’ इति स्वरसन्धिविधानेन ‘ओं’ शब्दो निष्पद्यते । कस्मादिति ? ‘जवह ज्झाएह’ एतेषां पदानां सर्वमंत्रवादपदेषु मध्ये सारभूतानां इहलोकपरलोकेष्ट-फलप्रदानामर्थं ज्ञात्वा पश्चादनन्तज्ञानादिगुणस्मरणरूपेण वचनोच्चारणेन च जापं कुरुत । तथैव शुभोपयोगरूपत्रिगुप्तावस्थायां मौनेन ध्यायत । पुनरपि कथम्भू-तानां ? ‘परमेष्ठीवाचयाणं’ ‘अरिहंत’ इति पदवाचकमनन्तज्ञानादिगुणयुक्तोऽर्हद्वा-च्योऽभिधेय इत्यादिरूपेण पञ्चपरमेष्ठीवाचकानां । ‘अण्णं च गुरुवएसेण’ अन्य-दपि द्वादशसहस्रप्रमितपञ्चनमस्कारग्रन्थकथितक्रमेण लघुसिद्धचक्रं, बृहत्सिद्धचक्र-

(सिद्ध) का प्रथम अक्षर ‘अ’, आचार्यका प्रथम अक्षर ‘आ’, उपाध्यायका प्रथम अक्षर ‘उ’ मुनिका प्रथम अक्षर ‘म्’,—इसप्रकार पाचों परमेष्ठियोके प्रथम अक्षरोसे बना हुआ ‘ओकार’ है, वही पच परमेष्ठियोके नामका आदिपद है ।]” —इस गाथामे कथित जो प्रथम अक्षर है, उसमें पहले “समानः सवर्णे दीर्घो भवति” इस सूत्रसे ‘अ, अ, आ,’ मिलाकर दीर्घ ‘आ’ बनाकर “परश्च लोपम्” इस सूत्रसे पश्चात्के ‘आ’ का लोप करके, अ अ आ इन तीनोंका ‘आ’ सिद्ध किया । पश्चात् “उवर्णे ओ” इस सूत्रसे आ+उ के स्थानमे ‘ओ’ बनाया, इसप्रकार स्वरसन्धि करनेसे ‘ओम्’ यह शब्द निष्पन्न हुआ । “जवह ज्झाएह” मंत्रशास्त्रके सर्वपदोमे सारभूत, इस लोकमे और परलोकमे इष्ट फल देने वाले इन पदोका अर्थ जानकर पश्चात् अनन्तज्ञानादि गुणोके स्मरणरूपसे और वचनके उच्चारणरूपसे जापकरो उसीप्रकार शुभोपयोगरूप त्रिगुप्त अवस्थामे मौनपूर्वक ध्यान करो । तथा वे पद कैसे है ? “परमेष्ठीवाचयाणं” ‘अरिहत’ पद वाचक है और अनन्तज्ञानादि गुणोसे युक्त श्रीअरिहत इस पदका वाच्य अर्थात् अभिधेय (कहने योग्य) है । इत्यादि प्रकारसे पच परमेष्ठीके वाचक है । “अण्णं च गुरुवएसेण” पूर्वोक्त पदोके अतिरिक्त अन्यका भी बारह हजार श्लोकप्रमाण पचनमस्कारमाहात्म्य नामक ग्रन्थमे कहे अनुसार लघु सिद्धचक्र, बृहत् सिद्धचक्र इत्यादि देवपूजनके विधानका—^२भेदाभेद रत्नत्रयके

१. यह शुभोपयोगरूपी भाव हेयबुद्धिसे सम्यग्दृष्टि जीवोको ४-५-६ गुणस्थानमें आए विना नहीं रहता, अज्ञानी उसको उपादेय मानता है ।

२. भेदाभेद रत्नत्रय एकसाथ मुनिओको यथाख्यातचारित्र होनेसे पहले होता है और वह एक साथ प्रथम ध्यानमे प्रगट होता है । देखो इस शास्त्रकी गाथा-४७ ।

मित्यादिदेवार्चनविधानं भेदाभेदरत्नत्रयाराधकगुरुप्रसादेन ज्ञात्वा ध्यातव्यम् । इति पदस्थध्यानस्वरूपं व्याख्यातम् ॥ ४९ ॥

एवमनेन प्रकारेण “गुप्तेन्द्रियमना ध्याता ध्येयं वस्तु यथास्थितम् । एकाग्र-चिन्तनं ध्यानं फलं संवरनिर्जरौ ॥१॥” इति श्लोककथितलक्षणानां ध्यातृध्येय-ध्यानफलानां संक्षेपव्याख्यानरूपेण गाथात्रयेण द्वितीयान्तराधिकारे प्रथमं स्थलं गतम् ।

अतः परं रागादिविकल्पोपाधिरहितनिजपरमात्मपदार्थभावनोत्पन्नसदानन्दैक-लक्षणसुखामृतरसास्वादतृप्तिरूपस्य निश्चयध्यानस्य परम्परया कारणभूतम् यच्छु-भोपयोगलक्षणं व्यवहारध्यानं तद्ध्येयभूतानां पंचपरमेष्ठिनां मध्ये तावदर्हतस्वरूपं कथयामीत्येका पातनिका । द्वितीया तु पूर्वसूत्रोदितसर्वपदनामपदादिपदानां वाचकभूतानां वाच्या ये पञ्चपरमेष्ठिनस्तद्व्याख्याने क्रियमाणे प्रथमतस्तावज्जिन-स्वरूपं निरूपयामि । अथवा तृतीया पातनिका पदस्थपिण्डस्थरूपस्थध्यानत्रयस्य

आराधक गुरुके प्रसादसे जानकर, ध्यान करना । इसप्रकार पदस्थ ध्यानका स्वरूप कहा ॥ ४९ ॥

इसप्रकार “गुप्तेन्द्रियमना ध्याता ध्येयं वस्तु यथास्थितम् । एकाग्रचिन्तनं ध्यानं फल संवर निर्जरौ ॥ [अर्थः—इन्द्रिय और मनको रोकनेवाला ध्याता है, यथास्थित पदार्थ ध्येय है, एकाग्रचिन्तन ध्यान है, संवर^१ और निर्जरा—यह ध्यानका फल है ।]”^२—इस श्लोकमे कथित लक्षणयुक्त ध्याता, ध्येय, ध्यान और फलका संक्षेपमे व्याख्यान कर तीन गाथाओ द्वारा द्वितीय अन्तराधिकारमे प्रथम स्थल समाप्त हुआ ।

अब, रागादि विकल्परूप उपाधिसे रहित निज परमात्मपदार्थकी भावनासे उत्पन्न सदानन्द (नित्यआनन्द) जिसका एक लक्षण है ऐसे सुखामृतके रसास्वादसे तृप्तिरूप निश्चयध्यानका परम्परासे कारणभूत जो शुभोपयोग लक्षणयुक्त व्यवहार-ध्यान है उसके ध्येयभूत पांच परमेष्ठियोमेसे प्रथम अरिहत परमेष्ठीका स्वरूप मैं कहता हूँ—यह एक पातनिका है । पूर्वगाथामें कथित सर्वपद-नामपद-आदिपदरूप वाचकोके वाच्य जो पंच परमेष्ठी है उनका व्याख्यान करते हुए प्रथम ही मैं

१. भूमिका प्रमाणमे शुद्धिके अनुसार संवर-निर्जरा होती है ।

२ श्री तत्त्वानुशासन गाथा—३८

ध्येयभूतमहत्सर्वज्ञस्वरूपं दर्शयामीति पातनिकात्रयं मनसि धृत्वा भगवान् सूत्रमिदं प्रतिपादयति :—

णट्टुचदुघाङ्कम्मो दंसणसुहणाणवीरियमईओ ।
सुहदेहत्थो अप्पा सुद्धो अरिहो विचिंतिज्जो ॥५०॥

नष्टचतुर्घातिकर्मा दर्शनसुखज्ञानवीर्यमयः ।
शुभदेहस्थः आत्मा शुद्धः अर्हन् विचिन्तनीयः ॥५०॥

व्याख्या—“णट्टुचदुघाङ्कम्मो” निश्चयरत्नत्रयात्मकशुद्धोपयोगध्यानेन पूर्वं घातिकर्ममुख्यभूतमोहनीयस्य विनाशनात्तदनन्तरं ज्ञानदर्शनावरणान्तरायसंज्ञयुगपद्-घातित्रयविनाशकत्वाच्च प्रणष्टचतुर्घातिकर्मा । “दंसणसुहणाणवीरियमईओ,” तेनैव घातिकर्माभावेन लब्धानन्तचतुष्टयत्वात् सहजशुद्धाविनश्वरदर्शनज्ञानसुखवीर्य-

श्रीजिनेन्द्रका स्वरूप निरूपण करता हू—यह द्वितीय पातनिका है; अथवा पदस्थ, पिण्डस्थ और रूपस्थ—इन तीन ध्यानोके ध्येयभूत श्रीअरिहत-सर्वज्ञका स्वरूप मैं दर्शाता हूँ—यह तीसरी पातनिका है । इन तीन पातनिकाओको मनमें धारण कर श्रीनेमिचन्द्रआचार्यदेव अब आगे की गाथाका प्रतिपादन करते हैं:—

गाथा—५०

गाथार्थः—जिन्होंने चार घातियाकर्म नष्ट किये हैं, जो (अनंत) दर्शन-सुख-ज्ञान-वीर्यमय है, जो उत्तम देहमें विराजमान है और जो शुद्ध (अठारह दोष रहित) है—ऐसे आत्मा अर्हत है, उनका ध्यान करने योग्य है ।

टीकाः—“णट्टुचदुघाङ्कम्मो” निश्चयरत्नत्रयात्मक, शुद्धोपयोगी ध्यान द्वारा पहले घातीकर्मोंमें मुख्य मोहनीयका नाशकर, तदनन्तर ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय—इन तीन घातीकर्मोंका एक साथ नाश कर, जो चार घातीकर्मोंके नष्ट करने वाले हुए हैं । “दंसणसुहणाणवीरियमईओ” उन घातीकर्मोंके नाशसे अनन्त चतुष्टय (अनन्त ज्ञान-दर्शन-सुख और वीर्य) को प्राप्त किया होनेसे सहज शुद्ध,

व्यारि घातिया कर्म नशाय, दर्शन ज्ञान सुख वीरजि पाय ।
परमदेहमें तिष्ठै संत, सो आत्म चित्तो अरहंत ॥५०॥

मयः । “सुहृदेहत्थो” निश्चयेनाशरीरोऽपि व्यवहारेण सप्तधातुरहितदिवाकर-
सहस्रभासुरपरमौदारिकशरीरत्वात् शुभदेहस्थः । “सुद्धो” “क्षुधा तृषा भयं द्वेषो
रागो मोहश्च चिन्तनम् । जरा रुजा च मृत्युश्च खेदः स्वेदो मदोऽरतिः ॥ १ ॥
विस्मयो जननं निद्रा विषादोऽष्टादश स्मृताः । एतैर्दोषैर्विनिर्मुक्तः सो
अयमाप्तो निरञ्जनः ॥ २ ॥” इति श्लोकद्वयकथिताष्टादशदोषरहितत्वात् शुद्धः ।
“अप्पा” एवं गुणविशिष्ट आत्मा । “अरिहो” अरिशब्दवाच्यमोहनीयस्य, रजः-
शब्दवाच्यज्ञानदर्शनावरणद्वयस्य, रहस्यशब्दवाच्यान्तरायस्य च हननाद्विनाशात् सकाशात्
इन्द्रादिविनिर्मितां गर्भावतरणजन्माभिषेकनिःक्रमणकेवलज्ञानोत्पत्तिनिर्वाणाभिधानपञ्च-
महाकल्याणरूपां पूजामर्हति योग्यो भवति तेन कारणेन अर्हन् भण्यते ।
“विचिन्तिज्जो” इत्युक्तविशेषणैर्विशिष्टमाप्तागमप्रभृतिग्रन्थकथितवीतरागसर्वज्ञाद्यष्टो-
त्तरसहस्रनामानमर्हंतं जिनभट्टारकं पदस्थपिंडस्थरूपस्थध्याने स्थित्वा विशेषेण चिन्तयत

अविनाशी दर्शन-ज्ञान-सुख और वोर्यमय है । “सुहृदेहत्थो” निश्चयसे शरीर रहित
है तो भी व्यवहारनयसे सात धातुओसे रहित, हजारो सूर्य समान देदीप्यमान ऐसे
परम औदारिक शरीर युक्त होनेसे शुभदेहमें विराजमान है । “सुद्धो”—“क्षुधा
तृषा भयं द्वेषो रागो मोहश्च चिन्तनम् । जरा रुजा च मृत्युश्च खेदः स्वेदो मदोऽरतिः ॥
विस्मयो जननं निद्रा विषादोऽष्टादश स्मृताः । एतैर्दोषैर्विनिर्मुक्तः सोऽयमाप्तो निरञ्जनः ॥”
[अर्थः—क्षुधा, तृषा, भय, द्वेष, राग, मोह, चिन्ता, वृद्धावस्था, रोग, मृत्यु, खेद,
स्वेद (पसीना), मद, अरति, विस्मय, जन्म, निद्रा और विषाद—इन अठारह
दोषोसे रहित निरजन परमात्मा वह आप्त है ।]—इन दो श्लोकोमे कहे हुए
अठारह दोषोसे रहित होनेके कारण ‘शुद्ध’ है । “अप्पा” ऐसे विशिष्ट गुणोयुक्त
आत्मा है । “अरिहो”—‘अरि’ शब्दसे वाच्य मोहनीय कर्मका, “रज” शब्दसे वाच्य
ज्ञानावरण और दर्शनावरण—इन दो कर्मोका और “रहस्य” शब्दसे वाच्य
अन्तरायकर्मका—इसप्रकार चारों कर्मोका नाश करनेके कारण इन्द्र आदि द्वारा
रचित गर्भावतार, जन्माभिषेक, तप, केवलज्ञानकी उत्पत्ति और निर्वाण नामक
पांच महाकल्याणकरूप पूजाके योग्य है इस कारण ‘अर्हन्’ कहलाते है । “विचिन्तिज्जो”
हे भव्यो ! तुम उपरोक्त विशेषणोसे विशिष्ट, आप्तकथित आगम आदि ग्रन्थोमें
कहे हुए वीतराग, सर्वज्ञ आदि एक हजार आठ नामवाले अर्हत् जिन
भट्टारकका पदस्थ, पिंडस्थ, रूपस्थ ध्यानमें स्थित होकर, विशेषरूपसे

ध्यायत हे भव्या यूयमिति ।

अत्रावसरे भट्टचार्याक्रमतं गृहीत्वा शिष्यः पूर्वपक्षं करोति । नास्ति सर्वज्ञोऽनुपलब्धेः । खरविपाणवन् ? तत्र प्रत्युत्तरम्—किमत्र देशेऽत्र काले अनुपलब्धिः, सर्वदेशे काले वा । यदत्र देशेऽत्र काले नास्ति तदा सम्मत एव । अथ सर्वदेशकाले नास्तीति भण्यते तज्जगत्त्रयं कालत्रयं सर्वज्ञरहितं कथं ज्ञातं भवता । ज्ञातं चेत्तर्हि भवानेव सर्वज्ञः । अथ न ज्ञातं तर्हि निषेधः कथं क्रियते ? तत्र दृष्टान्तः—यथा कोऽपि निषेधको घटस्याधारभूतं घटरहितं भूतलं चक्षुषा दृष्ट्वा पश्चाद्बदत्यत्र भूतले घटो नास्तीति युक्तम्; यस्तु चक्षुः रहितस्तस्य पुनरिदं वचनमयुक्तम् । 'तथैव यस्तु जगत्त्रयं कालत्रयं सर्वज्ञरहितं जानानि तस्य जगत्त्रये कालत्रयेऽपि सर्वज्ञो नास्तीति वक्तुं युक्तं भवति, यस्तु जगत्त्रयं कालत्रयं चितवन करो, ध्यान करो ।

यहां भट्ट ओर चार्वाक मतका आश्रय लेकर शिष्य पूर्वपक्ष करता है कि— 'सर्वज्ञ नहीं है क्योंकि उसकी अनुपलब्धि (अप्राप्ति) है (अर्थात् जाननेमें नहीं आता है), गधेके सींगकी भांति ।' उसका प्रत्युत्तर—सर्वज्ञकी प्राप्ति क्या इस देश और इस कालमें नहीं है कि सर्वदेश और सर्वकालमें नहीं है ? यदि इस देश और इस कालमें नहीं है ऐसा कहो तो हम भी उसे मानते ही हैं । यदि तुम ऐसा कहते हो कि 'सर्वदेश और सर्वकालमें सर्वज्ञकी प्राप्ति नहीं है' तो तीनलोक और तीनकालमें तुमने सर्वज्ञके बिना किस प्रकार जाना ? यदि तुम कहते हो कि हमने जाना है तो तुम ही सर्वज्ञ हुए ओर यदि तुमने नहीं जाना है तो फिर निषेध कैसे करते हो ? वहा दृष्टांत है—जिस प्रकार कोई निषेध करनेवाला मनुष्य, घटके आधारभूत पृथ्वीको आंखोंसे घटरहित देखकर फिर कहता है कि इस पृथ्वीपर घट नहीं है तो उसका कथनयुक्त (-ठीक) है; परन्तु जिसके आंखे नहीं हैं उसका ऐसा कहना अयोग्य ही है; 'उसीप्रकार जो तीन लोक और तीन कालको सर्वज्ञ रहित जानता है उसका ऐसा कहना कि 'तीनलोक और तीनकालमें सर्वज्ञ नहीं है' योग्य है । परन्तु जो तीन लोक और तीनकालको जानता वह सर्वज्ञका निषेध किसीभी प्रकारसे नहीं करता है । कैसे नहीं करता है ? तीनलोक और

१ तथा थोसो जगत्त्रय कालत्रय सर्वज्ञरहित प्रत्येक्षण जानाति स एव सर्वज्ञनिषेधे समर्थो, न चान्योन्ध इव, यस्तु जगत्त्रय कालत्रय जानाति स सर्वज्ञनिषेध कथमपि न करोति । कस्मात् ? जगत्त्रयकालत्रयविषयपरिज्ञान सहितत्वेन स्वमेव सर्वज्ञत्वादिति । (पचास्ति-काय तात्पर्यवृत्ति-गाथा-२६)

‘जानाति स सर्वज्ञनिषेधं कथमपि न करोति । कस्मादिति चेत् ? ’जगत्त्रयकाल-
त्रयपरिज्ञानेन स्वयमेव सर्वज्ञत्वादिति ।

अथोक्तमनुपलब्धेरिति हेतुवचनं तदप्ययुक्तम् । कस्मादिति चेत्—किं
भवतामनुपलब्धिः, किं जगत्त्रयकालत्रयवर्तिपुरुषाणां वा ? यदि भवतामनुप-
लब्धिस्तावता सर्वज्ञाभावो न सिध्यति, भवद्भिरनुपलभ्यमानानां परकीयचित्त-
वृत्तिपरमाप्वादिसूक्ष्मपदार्थानामिव । अथवा जगत्त्रयकालत्रयवर्तिपुरुषाणामनुपलब्धि-
स्तत्कथं ज्ञातं भवद्भिः । ज्ञातं चेत्तर्हि भवन्त एव सर्वज्ञा इति पूर्वमेव भणितं
तिष्ठति । इत्यादिहेतुदूषणं ज्ञातव्यम् । यथोक्तं खरविषाणवदिति दृष्टान्तवचनम्
तदप्यनुचितम् । खरे विषाणं नास्ति गवादौ तिष्ठतीत्यत्यन्ताभावो नास्ति यथा
तथा सर्वज्ञस्यापि नियतदेशकालादिष्वभावेऽपि सर्वथा नास्तित्वं न भवति इति
दृष्टान्तदूषणं गतम् ।

अथ मतं—सर्वज्ञविषये बाधकप्रमाणं निराकृतं भवद्भिस्तर्हि सर्वज्ञसद्भावसाधकं

तीनकालको जाननेसे वह स्वयं सर्वज्ञ हुआ, अतः वह सर्वज्ञका निषेध नहीं करता है ।

सर्वज्ञके निषेधमे ‘सर्वज्ञकी अनुपलब्धि’ ऐसा जो हेतुवाक्य है वह भी योग्य नहीं है । योग्य कैसे नहीं है ? क्या आपको सर्वज्ञकी अनुपलब्धि (अप्राप्ति) है कि तीनलोक और तीनकालके पुरुषोको अनुपलब्धि है ? यदि आपको ही सर्वज्ञकी अनुपलब्धि हो तो इतने मात्रसे ही सर्वज्ञका अभाव सिद्ध नहीं होता है, क्योंकि जिस प्रकार परके मनके विचार तथा परमाणु आदि सूक्ष्म पदार्थोंकी आपको अनुपलब्धि है तो भी उनका अभाव सिद्ध नहीं होता है । अथवा यदि तीनों लोक और तीनों कालके पुरुषोको सर्वज्ञकी अनुपलब्धि है तो आपने ऐसा किस प्रकार जाना ? यदि आप कहते हो कि “हमने ऐसा जाना है” तो आप ही सर्वज्ञ हुए—ऐसा पहले ही कहा गया है । इसप्रकार हेतुमें दूषण है—ऐसा जानना ।

सर्वज्ञके अभावकी सिद्धिमें जो “गधेके सीग” का दृष्टान्त दिया था वह भी अनुचित है । गधेके सीग नहीं होते परन्तु गाय आदिके सीग है, सीगका अत्यन्त अभाव नहीं है उसीप्रकार सर्वज्ञका अमुक देश और कालमें अभाव होनेपर भी सर्वथा अभाव नहीं है । इसप्रकार दृष्टान्तमे दोष कहा है ।

प्रश्नः—आपने सर्वज्ञके संबंधमे बाधक प्रमाणका तो खडन किया परन्तु सर्वज्ञके सद्भावको सिद्ध करनेवाला प्रमाण क्या है ?

१. ‘न जानाति’ इति पाठान्तर ।

२. ‘किं भवतामनुपलब्धेः जगत्त्रय’ इति पाठान्तर ।

प्रमाणं किम् ? इति पृष्टे प्रत्युत्तरमाह—कश्चित् पुरुषो धर्मो, सर्वज्ञो भवतीति साध्यते धर्मः, एवं धर्मिधर्मसमुदायेन पक्षवचनम् । कस्मादिति चेत्, पूर्वोक्त-प्रकारेण बाधकप्रमाणाभावादिति हेतुवचनम् । किंवा, स्वयमनुभूयमानसुखदुःखादि-वदिति दृष्टान्तवचनम् । एवं सर्वज्ञसद्भावे पक्षहेतुदृष्टान्तरूपेण त्र्यङ्गमनुमानं विज्ञेयम् । अथवा द्वितीयमनुमानं कथ्यते—रामरावणादयः कालान्तरिता, मेर्वादयो देशान्तरिता भूतादयो भवान्तरिताः परचेतोवृत्तयः परमाण्वादयश्च सूक्ष्मपदार्था धर्मिणः कस्यापि पुरुषविशेषस्य प्रत्यक्षा भवन्तीति साध्यो धर्म इति धर्मिधर्मसमुदायेन पक्षवचनम् । कस्मादिति चेत्, अनुमानविषयत्वादिति हेतुवचनम् । किंवा, यद्यदनुमानविषयं तत्तत्कस्यापि प्रत्यक्षं भवति, यथाग्न्यादि, इत्यन्वयदृष्टान्तवचनं । अनुमानेन विषयाश्चेति, इत्युपनयवचनम् । तस्मात् कस्यापि प्रत्यक्षा भवन्तीति निगमन-

उत्तरः—‘कोई पुरुष सर्वज्ञ है’ इस वाक्यमे ‘पुरुष’ धर्मी है और ‘सर्वज्ञ है’ वह साध्य (जिसकी सिद्धि करनी है ऐसा) धर्म है । इसप्रकार ‘कोई पुरुष सर्वज्ञ है’ यह वाक्य धर्मी और धर्मके समुदायरूपसे पक्षवचन है । ‘किस कारणसे ? (अर्थात् किसी पुरुषके सर्वज्ञ होनेमे हेतु क्या है ?)’ ऐसा पूछा जाये तो, ‘पूर्वोक्त प्रकारसे बाधकप्रमाणका अभाव होनेसे;—यह हेतुवचन है । किसकी भाति ? ‘अपने अनुभवमे आते हुए सुख और दुःख आदिकी भाति;’ यह दृष्टान्त वचन है । इसप्रकार सर्वज्ञके सद्भावमे पक्ष, हेतु और दृष्टान्त रूपसे तीन अगोयुक्त अनुमान जानना ।

अथवा सर्वज्ञके सद्भावका साधक दूसरा अनुमान कहते हैं—‘राम, रावण आदि कालसे अतरित (आच्छादित) पदार्थ, मेरु आदि क्षेत्रसे अतरित पदार्थ, भूत आदि भवसे अंतरित पदार्थ तथा दूसरोके चित्तके विकल्प और परमाणु आदि सूक्ष्म पदार्थ किसी भी पुरुष विशेषके प्रत्यक्ष होते हैं (देखनेमे आते हैं)’ यह धर्मी और धर्मके समुदायरूप पक्षवचन है । उनमे ‘राम, रावण आदि कालसे अतरित पदार्थ, मेरु आदि क्षेत्रसे अतरित पदार्थ, भूत आदि भवसे अतरित पदार्थ तथा दूसरोके चित्तके विकल्प और परमाणु आदि पदार्थ’ धर्मी है और ‘किसी भी पुरुष विशेषके प्रत्यक्ष है’ वह साध्यधर्म है । ‘अतरित और सूक्ष्म पदार्थ किसीको प्रत्यक्ष किस प्रकार है ?’ इसप्रकार पूछा जाये तो ‘अनुमानका विषय होनेसे;—यह हेतुवचन है । किसकी भाति ? ‘जो जो अनुमानका विषय होते हैं वे वे किसीको प्रत्यक्ष होते हैं, जैसे अग्नि आदि;’—यह अन्वय-दृष्टान्तका वचन है । ‘अन्तरित और सूक्ष्म पदार्थ अनुमानके विषय है’ यह उपनयका वचन है । अतः ‘अतरित

वचनं । इदानीं व्यतिरेकदृष्टान्तः कथ्यते—यन्न कस्यापि प्रत्यक्षं तदनुमानविषयमपि न भवति, यथा खपुष्पादि, इति व्यतिरेकदृष्टान्तवचनम् । अनुमानविषयाश्चेति पुनरप्युपनयवचनम् । तस्मात् प्रत्यक्षा भवन्तीति पुनरपि निगमनवचनमिति । किन्त्वनुमानविषयत्वादित्ययं हेतुः, सर्वज्ञस्वरूपे साध्ये सर्वप्रकारेण सम्भवति यतस्ततः कारणात्स्वरूपासिद्धभावासिद्धविशेषणादसिद्धो^१ न भवति । तथैव सर्वज्ञस्वरूपं स्वपक्षं विहाय सर्वज्ञाऽभावं विपक्षं न साधयति तेन कारणेन विरुद्धो न भवति । तथैव च यथा सर्वज्ञसद्भावे स्वपक्षे वर्तते तथा सर्वज्ञाभावेऽपि विपक्षेऽपि न वर्तते तेन कारणेनाऽनैकान्तिको न भवति । अनैकान्तिकः कोऽर्थो ? व्यभिचारीति । तथैव प्रत्यक्षादिप्रमाणबाधितो न भवति, तथैव च प्रतिवादिनां प्रत्यसिद्धं सर्वज्ञसद्भावं साधयति, तेन कारणेनाकिञ्चित्करोऽपि न भवति । एवमसिद्धविरुद्धानैकान्तिका-किञ्चित्करहेतुदोषरहितत्वात्सर्वज्ञसद्भावं साधयत्येव । इत्युक्तप्रकारेण सर्वज्ञसद्भावे

और सूक्ष्म पदार्थ किसीको प्रत्यक्ष होते है' यह निगमन-वचन है । अब व्यतिरेकका दृष्टांत कहते है.—'जो किसीको भी प्रत्यक्ष नहीं होता है वह अनुमानका विषय भी नहीं होता है, जैसेकि 'आकाशके पुष्प आदि',—यह व्यतिरेक दृष्टान्तका वचन है । 'अतरित और सूक्ष्म पदार्थ अनुमानके विषय है' यह पुन उपनयका वचन है । अतः 'अतरित और सूक्ष्म पदार्थ किसीको प्रत्यक्ष है,' यह पुन निगमन-वचन है ।

'अतरित और सूक्ष्म पदार्थ किसीको प्रत्यक्ष है, अनुमानका विषय होनेसे'—यहा 'अनुमानका विषय होनेसे' यह हेतु है । सर्वज्ञरूप साध्यमे यह हेतु सब प्रकारसे सभव है, इस कारण यह हेतु 'स्वरूपसे असिद्ध' अथवा 'भावसे असिद्ध'—ऐसे विशेषण द्वारा असिद्ध नहीं है । तथा उक्त हेतु, सर्वज्ञरूप अपना पक्ष छोडकर सर्वज्ञके अभावरूप विपक्षको सिद्ध नहीं करता है इस कारण विरुद्ध भी नहीं है । तथा वह (हेतु) जिस प्रकार सर्वज्ञके सद्भावरूप स्वपक्षमें वर्तता है उसी प्रकार सर्वज्ञके अभावरूप विपक्षमें भी नहीं वर्तता है, इस कारण उक्त हेतु अनैकान्तिक भी नहीं है । अनैकान्तिकका क्या अर्थ है ? व्यभिचारी, ऐसा अर्थ है तथा उक्त हेतु प्रत्यक्ष आदि प्रमाणसे बाधित भी नहीं है तथा वह हेतु (सर्वज्ञको नहीं माननेवाले) प्रतिवादियोंको असिद्ध ऐसे सर्वज्ञका सद्भाव सिद्ध करता है, इस कारण अकिञ्चित्कर भी नहीं है । इसप्रकार 'अनुमानका विषय होनेसे'—यह हेतु असिद्ध, विरुद्ध, अनैकान्तिक (बाधित) और अकिञ्चित्कररूप जो हेतुके दोष है, उनसे रहित है अतः वह सर्वज्ञके सद्भावको सिद्ध करता ही है । उपरोक्त प्रकारसे

१. 'विशेषणाद्यसिद्धो' इति पाठान्तर ।

पक्षहेतुदृष्टान्तोपनयनिगमनरूपेण पञ्चाङ्गमनुमानम् ज्ञातव्यमिति ।

किं च यथा लोचनहीनपुरुषस्यादर्शं विद्यमानेऽपि प्रतिबिम्बानां परिज्ञानं न भवति, तथा लोचनस्थानीयसर्वज्ञतागुणरहितपुरुषस्यादर्शस्थानीयवेदशास्त्रे कथितानां प्रतिबिम्बस्थानीयपरमाणुप्राधान्यन्तसूक्ष्मपदार्थानां कापिकाले परिज्ञानं न भवति । तथा चोक्तं “यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्रं तस्य करोति किम् । लोचनाभ्यां विहीनस्य दर्पणः किं करिष्यति ॥१॥” इति संक्षेपेण सर्वज्ञसिद्धिरत्र बोद्धव्या । एवं पदस्थ-पिण्डस्थरूपस्थध्याने ध्येयभूतस्य सकलात्मनो जिनभट्टारकस्य व्याख्यानरूपेण गाथा गता ॥५०॥

अथ सिद्धसदृशनिजपरमात्मतत्त्वपरमसमरसीभावलक्षणस्य रूपातीतनिश्चयध्यानस्य पारम्पर्येण कारणभूतं मुक्तिगतसिद्धभक्तिरूपं “णमो सिद्धाणं” इति पदोच्चारणलक्षणं

सर्वज्ञके सद्भावमे पक्ष, हेतु, दृष्टात, उपनय और निगमनरूप पांच अगोसे युक्त अनुमान जानना ।

विशेषः—जिसप्रकार नेत्र रहित पुरुषको दर्पण विद्यमान हो तो भी प्रतिबिम्बोंका परिज्ञान नहीं होता है, उसीप्रकार नेत्र स्थानीय (नेत्र समान) सर्वज्ञतारूपी गुणसे रहित पुरुषको दर्पणस्थानीय वेदशास्त्रोंमें कथित प्रतिबिम्ब-स्थानीय परमाणु आदि अनन्त सूक्ष्म पदार्थोंका किसीभी कालमें परिज्ञान नहीं होता है । इसप्रकार कहा भी है कि—‘जिस पुरुषको स्वय बुद्धि नहीं है उसको शास्त्र क्या (उपकार^१) कर सकता है ? क्योंकि नेत्ररहित पुरुषको दर्पण क्या उपकार करे ?

इसप्रकार यहा संक्षेपमें सर्वज्ञकी सिद्धि जानना ।

इसप्रकार पदस्थ, पिण्डस्थ, रूपस्थ—इन ध्यानोके ध्येयभूत सकल परमात्मा श्रीजिन-भट्टारकके व्याख्यानसे यह गाथा समाप्त हुई ॥५०॥

अब, सिद्ध समान निज परमात्मतत्त्वमे परम समरसीभाव जिसका लक्षण है ऐसे रूपातीत नामक निश्चयध्यानका पारम्परासे कारणभूत, मुक्तिप्राप्त सिद्ध परमेष्ठियोंकी भक्तिरूप, ‘णमो सिद्धाणं’ इस पदके उच्चारणरूप लक्षणयुक्त जो

१. यहा निमित्त अकिञ्चित्कर है ऐसा सिद्ध किया है ।

यत्पदस्थं ध्यानं तस्य ध्येयभूत सिद्धपरमेष्ठीस्वरूपं कथयतिः—

णट्टुकम्मदेहो लोयालोयस्स जाणओ दट्टा ।
पुरिसायारो अप्पा सिद्धो भाएह लोयसिहरत्थो ॥५१॥

नष्टाष्टकर्मदेहः लोकालोकस्य ज्ञायकः द्रष्टा ।

पुरुषाकारः आत्मा सिद्धः ध्यायेत लोकशिखरस्थः ॥५१॥

व्याख्या—“णट्टुकम्मदेहो” शुभाशुभमनोवचनकायक्रियारूपस्य द्वैतशब्दाभिधेय-
कर्मकाण्डस्य निर्मूलनसमर्थेन स्वशुद्धात्मतत्त्वभावनोत्पन्नरागादिविकल्पोपाधिरहितपरमा-
ह्लादैकलक्षणसुन्दरमनोहरानन्दस्यंदिनिःक्रियाद्वैतशब्दवाच्येन परमज्ञानकाण्डेन विनाशित-
ज्ञानावरणाद्यष्टकर्मौदारिकादिपञ्चदेहत्वात् नष्टाष्टकर्मदेहः । “लोयालोयस्य जाणओ दट्टा”
पूर्वोक्तज्ञानकाण्डभावनाफलभूतेन सकलविमलकेवलज्ञानदर्शनद्वयेन लोकालोकगतत्रिकाल-

पदस्थ ध्यान, उसके ध्येयभूत सिद्ध परमेष्ठीका स्वरूप कहते हैंः—

गाथा-५१

गाथार्थः—जिसने आठकर्मका और देहका नाश किया है, जो लोकालोकका
ज्ञाता और दृष्टा है तथा जो पुरुषाकार है,—ऐसा आत्मा सिद्ध है; लोकके शिखर
पर विराजमान उस सिद्ध परमेष्ठीका तुम ध्यान करो ।

टीकाः—“णट्टुकम्मदेहो” शुभाशुभ मन, वचन और कायाकी क्रियारूप
ऐसा जो ‘द्वैत’ शब्दके अभिधेयरूप कर्मकाण्ड उसका नाश करनेमें समर्थ ऐसे परम
ज्ञानकाण्ड द्वारा—जिस ज्ञानकाण्डमेंसे, निज शुद्धात्मतत्त्वकी भावनासे उत्पन्न,
रागादिविकल्पोपाधिरहित परम आह्लाद जिसका एकमात्र लक्षण है ऐसा सुन्दर,
मनोहर आनन्द भरता है, जो निष्क्रिय है और जो अद्वैत शब्दसे वाच्य है उसके
द्वारा—ज्ञानावरणादि आठ कर्मों और औदारिक आदि पांच शरीरोको नष्ट किया
होनेसे जो ‘नष्ट-अष्ट-कर्म-देह’ है अर्थात् ‘जिसने आठ कर्म और देह नष्ट किये हैं
ऐसा’ है, “लोयालोयस्स जाणओ दट्टा” जिस पूर्वोक्त ज्ञानकाण्डकी भावनाके फलरूप
संपूर्ण निर्मल केवलज्ञान और केवलदर्शन—इन दोनों द्वारा लोकालोकके तीनकालके

आठ कर्म अर देह नशाय, लोकालोक देखि जो ज्ञाय ।

पुरुषाकार आत्मा सिद्ध, ध्यावो लोक-शिखर-स्थित इद्ध ॥५१॥

वर्तिसमस्तवस्तुसम्बन्धविशेषसामान्यस्वभावानामेकसमयज्ञायकदर्शकत्वात् लोकालोकस्य ज्ञाता द्रष्टा भवति । “पुरिसायारो” निश्चयनयेनातीन्द्रियामूर्त्तपरमचिदुच्छलननिर्भर-शुद्धस्वभावेन निराकारोऽपि व्यवहारेण भूतपूर्वनयेन किञ्चिद्नचरमशरीराकारेण गत-सिक्थमूपागर्भाकारवच्छायाप्रतिमावद्वा पुरुषाकारः । “अप्पा” इत्युक्तलक्षण आत्मा । किं भण्यते ? “सिद्धो” अज्जनसिद्धपादुकासिद्धगुटिकासिद्धखड्गसिद्धमायासिद्धादिलौकिक-सिद्धविलक्षणः केवलज्ञानाद्यनन्तगुणव्यक्तिलक्षणः सिद्धो भण्यते । “झाएह लोय-सिहरत्थो” तमित्थंभूतं सिद्धपरमेष्ठिनं लोकशिखरस्थं दृष्टश्रुतानुभूतपञ्चेन्द्रियभोगप्रभृति-समस्तमनोरथरूपनानाविकल्पजालत्यागेन त्रिगुप्तिलक्षणरूपातीतध्याने स्थित्वा ध्यायत हे भव्या यूयम् इति । एवं निष्कलसिद्धपरमेष्ठिव्याख्यानेन गाथा गता ॥५१॥

अथ निरुपाधिद्विधात्मभावानुभूत्यविनाभूतनिश्चयपञ्चाचारलक्षणस्य निश्चय-समस्त पदार्थोंके विशेष और सामान्य भावोंको एक ही समयमें जानने और देखनेके कारण लोकालोकका ज्ञाता और दृष्टा है, “पुरिसायारो” जो निश्चयनयसे अतीन्द्रिय, अमूर्त्त, परम चैतन्यसे भरे हुए शुद्ध स्वभावकी अपेक्षासे निराकार है तो भी व्यवहारसे भूतपूर्वनयकी अपेक्षासे अतिम शरीरसे कुछ न्यून आकारवाला होनेके कारण, मोमरहित मूसके बीचके आकारकी भाँति अथवा छायाके प्रतिबिम्बकी भाँति, पुरुषाकार है, “अप्पा” ऐसे लक्षणोयुक्त आत्मा; वह कैसा कहलाता है ? “सिद्धो” अजनसिद्ध, पादुकासिद्ध, गुटिकासिद्ध, खड्गसिद्ध और मायासिद्ध आदि लौकिक सिद्धोंसे विलक्षण, केवलज्ञानादि अनन्त गुणोंकी प्रगटता जिसका लक्षण है ऐसा सिद्ध कहलाता है । “झाएह लोयसिहरत्थो” हे भव्यो ! तुम देखे हुए, सुने हुए और अनुभव किये हुए पञ्चेन्द्रियभोगादिके समस्त मनोरथरूप अनेक विकल्प-समूहके त्याग द्वारा, मन-वचन-कायाकी गुप्ति जिसका लक्षण है ऐसे रूपातीत ध्यानमें स्थिर होकर, लोकके शिखर पर विराजमान, पूर्वोक्त लक्षणोंसे युक्त सिद्ध परमेष्ठीका ध्यान करो ।

इसप्रकार अशरीरी सिद्धपरमेष्ठीके व्याख्यानरूप यह गाथा पूर्ण हुई ॥५१॥

अब, उपाधिरहित शुद्धात्मभावनाकी अनुभूतिके अविनाभूत निश्चयपञ्चाचार-लक्षण निश्चयध्यानका परपरासे^१ कारणभूत, निश्चय और व्यवहार इन दोनों

१ छट्टे गुणस्थानमें शुद्ध परिणति तीन कषायोंके अभावरूप है वह निश्चय पञ्चाचार और उसके साथ उमी समयमें व्यवहार पञ्चाचार होता है उसका (व्यवहार पञ्चाचार) का अभाव (व्यय) होने पर सातवें गुणस्थानमें निश्चय पञ्चाचाररूप निश्चयध्यान प्रगट होता है इस प्रकार यहा समझाया है ।

ध्यानस्य परम्परया कारणभूतं निश्चयव्यवहारपञ्चाचारपरिणताचार्यभक्तिरूपं “णमो आइरियाणं” इति पदोच्चारणलक्षणं यत्पदस्थध्यानं तस्य ध्येयभूतमाचार्यपरमेष्ठिनं कथयति:—

दंसणणाणपहाणे वीरियचारित्तवरतवायारे ।

अप्पं परं च जुंजइ सो आइरिओ मुणी भेओ ॥५२॥

दर्शनज्ञानप्रधाने वीर्यचारित्रवरतपआचारे ।

✓ आत्मानं परं च युनक्ति सः आचार्यः मुनिः ध्येयः ॥५२॥

व्याख्या—“दंसणणाणपहाणे वीरियचारित्तवरतवायारे” सम्यग्दर्शनज्ञानप्रधाने वीर्यचारित्रवरतपश्चरणाचारेऽधिकरणभूते “अप्पं परं च जुंजइ” आत्मानं परं शिष्यजनं च योऽसौ योजयति सम्बन्धं करोति “सो आइरिओ मुणी भेओ” स उक्त-लक्षण आचार्यो मुनिस्तपोधनो ध्येयो भवति । तथाहि—भूतार्थनयविषयभूतः शुद्धसमयसारशब्दवाच्यो भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्मादिसमस्तपरद्रव्येभ्यो भिन्नः परम-

प्रकारके पचाचारोमें परिणत आचार्य परमेष्ठीकी भक्तिरूप और “णमो आइरियाणं” इस पदके उच्चारणरूप जो पदस्थ ध्यान, उसके ध्येयभूत आचार्य परमेष्ठीका कथन करते हैं.—

गाथा-५२

गाथार्थः—दर्शनाचार, ज्ञानाचारकी मुख्यता सहित वीर्याचार, चारित्राचार और तपाचार—इन पाच आचारोमें जो अपनेको तथा परको जोडता है वह आचार्य मुनि ध्यान करने योग्य है ।

टीकाः—“दंसणणाणपहाणे वीरियचारित्तवरतवायारे” सम्यग्दर्शन और ज्ञानकी प्रधानता सहित वीर्याचार, चारित्राचार और तपाचारमे “अप्पं परं च जुंजइ” स्वयको और परको अर्थात् शिष्योको जो जोडता है “सो आइरिओ मुणी भेओ” वह पूर्वोक्त लक्षणयुक्त आचार्य, मुनि, तपोधन ध्यान करने योग्य है ।

विशेषः—भूतार्थनयके विषयभूत, शुद्ध समयसार शब्दसे वाच्य, भावकर्म-

दर्शन ज्ञान समग्र उदार, चारित तप वीरज आचार ।

आप आचरै पर अचराय, ऐसै आचारिज मुनि ध्याय ॥५२॥

चैतन्यविलासलक्षणः स्वशुद्धात्मैवोपादेय इति रुचिरूपं सम्यग्दर्शनं, तत्राचरणं परिणमनं निश्चयदर्शनाचारः ॥१॥ तस्यैव शुद्धात्मनो निरुपाधिस्वसंवेदनलक्षणभेद-ज्ञानेन मिथ्यात्वरगादिपरभावेभ्यः पृथक्परिच्छेदनं सम्यग्ज्ञानं, तत्राचरणं परिणमनं निश्चयज्ञानाचारः ॥२॥ तत्रैव रागादिविकल्पोपाधिरहितस्वाभाविकसुखास्वादेन निश्चलचित्तं वीतरागचारित्रं, तत्राचरणं परिणमनं निश्चयचारित्राचारः ॥ ३ ॥ समस्त-परद्रव्येच्छानिरोधेन तथैवानशनादिद्वादशतपश्चरणबहिरङ्गसहकारिकारणेन च स्वस्वरूपे प्रतपनं विजयनं निश्चयतपश्चरणं, तत्राचरणं परिणमनं निश्चयतपश्चरणाचारः ॥४॥ तस्यैव निश्चयचतुर्विधाचारस्य रक्षणार्थं स्वशक्त्यनवगूहनं निश्चयवीर्याचारः ॥५॥ इत्युक्तलक्षणनिश्चयपञ्चाचारे तथैव “छत्तीसगुणसमग्ने पंचविहाचारकरणसन्दरिसे । सिस्साणुग्गहकुसले धम्मायरिए सदा वंदे ॥१॥” इति गाथाकथितक्रमेणाचारा-राधानादिचरणशास्त्रविस्तीर्णबहिरङ्गसहकारिकारणभूते व्यवहारपञ्चाचारे च स्वं परं च

द्रव्यकर्म-नोकर्म आदि समस्त परद्रव्योसे भिन्न, परमचैतन्यविलासलक्षण, स्व-शुद्धात्मा ही उपादेय है ऐसी रुचि वह सम्यग्दर्शन है; उसमे जो आचरण-परिणमन वह निश्चयदर्शनाचार है । उसी शुद्धात्माको उपाधिरहित, स्वसंवेदनलक्षण भेद-ज्ञानसे मिथ्यात्वरगादि परभावोसे भिन्न जानना वह सम्यग्ज्ञान है; उस सम्यग्ज्ञानमे आचरण-परिणमन वह निश्चय-ज्ञानाचार है । उसी शुद्ध आत्मामे रागादिविकल्परूप उपाधिसे रहित स्वाभाविक सुखास्वादसे निश्चलचित्त होना वह वीतरागचारित्र है; उसमें जो आचरण अर्थात् परिणमन वह निश्चय-चारित्रा-चार है । समस्त परद्रव्योकी इच्छा रोकनेसे तथा अनशन आदि बारह तपरूप बहिरंग सहकारी^१ कारणोसे निज स्वरूपमे प्रतपन-विजयन वह निश्चय-तपश्चरण है, उसमे जो आचरण-परिणमन वह निश्चय-तपश्चरणाचार है । इस चार प्रकारके निश्चय-आचारकी रक्षाके लिये अपनी शक्ति न छुपाना वह निश्चयवीर्याचार है । इन उक्त लक्षणोसेयुक्त निश्चय-पञ्चाचारमे और इसीप्रकार “छत्तीसगुणसमग्ने पंचविहाचारकरणसन्दरिसे । सिस्साणुग्गहकुसले धम्मायरिए सदा वंदे ॥ [अर्थः—छत्तीस गुणोसे^२ सहित, पांच प्रकारके आचार पालनेका उपदेश देनेवाले, शिष्योपर अनुग्रह करनेमे कुशल जो धर्माचार्य है मै उन्हे सदा वदना करता हू ।]”—इस गाथामे कहे अनुसार आचार, आराधना आदि चरणानुयोगके शास्त्रोमे विस्तारसे कथित बहिरंग सहकारी कारणरूप पांच प्रकारके व्यवहार-

१ निमित्त कारणास । निमित्तकारण वे उपचाररूप है और उपादान कारण वह यथार्थ कारण है ऐसा समझना ।

२ श्री भावसग्रह गाथा-३७७ ।

योजयत्यनुष्ठानेन सम्बन्धं करोति स आचार्यो भवति । स च पदस्थध्याने ध्यातव्यः ।
इत्याचार्यपरमेष्ठिव्याख्यानेन सूत्रं गतम् ॥५२॥

अथ स्वशुद्धात्मनि शोभनमध्यायोऽभ्यासो निश्चयस्वाध्यायस्तल्लक्षणनिश्चय-
ध्यानस्य पारम्पर्येण कारणभूतं भेदाभेदरत्नत्रयादितत्त्वोपदेशकं परमोपाध्यायभक्तिरूपं
“णमो उवज्ज्ञायाणं” इति पदोच्चारणलक्षणं यत् पदस्थध्यानं, तस्य ध्येयभूत-
मुपाध्यायमुनीश्वरं कथयति:—

जो रयणत्तयजुत्तो णिच्चं धम्मोवदेसणे णिरदो ।

सो उवज्झाओ अप्पा जदिवरवसहो णमो तस्स ॥५३॥

यः रत्नत्रययुक्तः नित्यं धर्मोपदेशने निरतः ।

सः उपाध्यायः आत्मा यतिवरवृषभः नमः तस्मै ॥५३॥

व्याख्या—“जो रयणत्तयजुत्तो” योऽसौ बाह्याभ्यन्तररत्नत्रयानुष्ठानेन युक्तः
परिणतः । “णिच्चं धम्मोवदेसणे णिरदो” षट्द्रव्यपञ्चास्तिकायसप्ततत्त्वनवपदार्थेषु

आचारमे जो स्वयको और परको जोड़ता है वह आचार्य कहलाता है । वह आचार्य
परमेष्ठी पदस्थ ध्यानमे ध्यान करने योग्य है । इसप्रकार आचार्य परमेष्ठीके
व्याख्यानसे गाथा पूर्ण हुई ॥५२॥

अब, स्वशुद्धात्मामें जो उत्तम अध्याय-अभ्यास वह निश्चय-स्वाध्याय है ।
वह निश्चयस्वाध्याय जिसका लक्षण है ऐसे निश्चयध्यानका परम्परासे कारणभूत,
भेदाभेदरत्नत्रयादि तत्त्वोके उपदेशक परम उपाध्यायकी भक्तिरूप और ‘णमो
उवज्झायाण’ इस पदके उच्चारणरूप जो पदस्थ ध्यान, उसके ध्येयभूत उपाध्याय
परमेष्ठीका स्वरूप कहते हैं —

गाथा-५३

गाथार्थः—जो रत्नत्रयसहित, निरतर धर्मका उपदेश देनेमे तत्पर है, वह
आत्मा उपाध्याय है, मुनिवरोमें प्रधान है; उसे नमस्कार हो ।

टीकाः—“जो रयणत्तयजुत्तो” जो बाह्य और अभ्यतर रत्नत्रयके आचरण
सहित है, “णिच्चं धम्मोवदेसणेणिरदो” छहद्रव्य, पाच अस्तिकाय, सात तत्त्व और

रत्नत्रय जो धारै सार, सदा धर्म-उपदेश करार ।

यतिवरमें परधान मुनीश, उपाध्यायकूँ नावौं शीश ॥५३॥

मध्ये स्वशुद्धात्मद्रव्यं स्वशुद्धजीवास्तिकायं स्वशुद्धात्मतत्त्वं स्वशुद्धात्मपदार्थमेवो-
पादेयं शेषं च हेयं, तथैवोत्तमतामादिधर्मं च नित्यमुपदिशति योऽसौ स नित्यं
धर्मोपदेशने निरतो भव्यते । “सो उवज्ज्ञाओ अप्पा” स चैत्थंभूत आत्मा उपाध्याय
इति । पुनरपि किं विगिट्ठः ? “जदिवस्वगहो” पञ्चेन्द्रियविषयजयेन निजशुद्धात्मनि
यत्नपराणां यतिपराणां मध्ये वृषभः प्रधानो यतिवरवृषभः । “णमो तस्स”
तस्मै द्रव्यभावरूपो नमो नमस्कारोऽस्तु । अन्युपाध्यायपरमेष्ठिव्याख्यानरूपेण गाथा
गता ॥५३॥

अथ निश्चयन्नत्रयात्मकनिश्चयध्यानस्य परम्परया कारणभूतं बाह्याभ्यन्तरमोक्ष-
मार्गसाधकं परमसाधुकी भक्तिरूपं “णमो लोए सव्वसाहूणं” इति पदोच्चारणजपध्यान-
लक्षणं यत् पदस्थध्यानं तस्य ध्येयभूतं नापुपरमेष्ठिस्वरूपं कथयति—

दंसणणाणसमग्गं मग्गं मोक्खस्स जो ह्वु चारित्तं ।

साधयदि णिच्चमुद्धं साह्वु स सुणी णमो तस्स ॥५४॥

नव पदार्थोमे निज शुद्धात्मद्रव्य, निज शुद्ध जीवास्तिकाय, निज शुद्धात्मतत्त्व और
निज शुद्धात्मपदार्थ ही उपादेय है और अन्य सर्व ह्य है ऐसा और उत्तम क्षमा
आदि दश धर्मोका जो निरन्तर उपदेश देता है वह नित्य धर्मोपदेश देनेमे तत्पर
कहलाता है, “सो उवज्ज्ञाओ अप्पा” ऐसा वह आत्मा उपाध्याय है । तथा वह
कैसा है ? “जदिवस्वगहो” पाओ इन्द्रियोंके विषयोको जीतनेसे निज-शुद्ध-आत्मामे
प्रयत्न करनेमे तत्पर ऐसे मुनीश्वरोमे वृषभ अर्थात् प्रधान होनेसे यतिवरवृषभ है ।
“णमो तस्स” उस उपाध्याय परमेष्ठीको द्रव्य और भावरूप नमस्कार हो ।

इसप्रकार उपाध्याय परमेष्ठीके व्याख्यानरूप गाथा पूर्ण हुई ॥५३॥

अब, निश्चय-रत्नत्रयात्मक निश्चयध्यानका परंपरासे कारणभूत, बाह्य-
अभ्यन्तर मोक्षमार्गके साधक परमसाधुकी भक्तिरूप और ‘णमो लोए सव्वसाहूण’
इस पदके उच्चारण, जपन तथा ध्यानरूप जो पदस्थ ध्यान, उसके ध्येयभूत ऐसे
साधु परमेष्ठीका स्वरूप कहते हैं—

जो साथै शिव-मार्ग सदा, दर्शन-ज्ञान-चरन संपदा ।

शुद्ध साधु मुनि सो जग दिपै, तास ध्यानतै पाप न लिपै ॥५४॥

दर्शनज्ञानसमग्रं मार्गं मोक्षस्य यः हि चारित्रम् ।

साधयति नित्यशुद्धं साधुः सः मुनिः नमः तस्मै ॥५४॥

व्याख्या—“साहू स मुणी” स मुनिः साधुर्भवति । यः किं करोति ? “जो हु साधयदि” यः कर्त्ता हु स्फुटं साधयति । किं ? “चारित्तं” चारित्रं । कथंभूतं ? “दंसणणाणसमग्गं” वीतरागसम्यग्दर्शनज्ञानाभ्यां समग्रम् परिपूर्णम् । पुनरपि कथंभूतं ? “मग्गं मोक्खस्स” मार्गभूतं; कस्य ? मोक्षस्य । पुनश्च किम् रूपं ? “णिच्चसुद्धं” नित्यं सर्वकालं शुद्धं रागादिरहितम् । “णमो तस्स” एवं गुणविशिष्टो यस्तस्मै साधवे नमो नमस्कारोस्त्विति । तथाहि—“उद्योतनमुद्योगो निर्वहणं साधनं च निस्तरणम् । दृगवगमचरणतपसामाख्याताराधना सद्भिः ॥१॥” इत्यार्याकथितबहिरङ्गचतुर्विधाराधनावलेन, तथैव “समत्तं सण्णाणं सच्चारित्तं हि सत्त्वो चेव । चउरो चिद्धहि आदे तद्धा आदा हु मे सरणं ॥१॥” इति गाथा-

गाथा-५४

गाथार्थः—दर्शन और ज्ञानसे पूर्ण, मोक्षमार्गस्वरूप, सदा शुद्ध ऐसे चारित्रको जो साधता है, वह मुनि-‘साधु परमेष्ठी’ है, उसको मेरा नमस्कार हो ।

टीकाः—“साहू स मुणी” वह मुनि-साधु है; जो क्या करता है ? “जो हु साधयदि” जो प्रगटरूपसे साधता है; क्या साधता है ? “दंसणणाणसमग्गं” वीतराग सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानसे परिपूर्ण चारित्रको साधता है; तथा वह चारित्र कैसा है ? “मग्गं मोक्खस्स” जो चारित्र मार्गरूप है, किसके मार्गरूप है ? मोक्षके मार्गरूप है; तथा वह चारित्र कैसा है ? “णिच्चसुद्धं” नित्य सर्वकालमे शुद्ध अर्थात् रागादि रहित है । “णमो तस्स” जो ऐसे गुणयुक्त है उस साधु परमेष्ठीको नमस्कार हो ।

विशेषः—“उद्योतनमुद्योगो निर्वहणं साधनं च निस्तरणम् । दृगवगमचरणतपसामाख्याताराधना सद्भिः ॥” [अर्थः—दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तपका जो उद्योतन, उद्योग, निर्वहण, साधन और निस्तरण जो है उसे सत्पुरुषोने आराधना कही है ।]—इस आर्या छंदमे कथित बहिरंग चतुर्विध (दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप) आराधनाके बलसे और “समत्तं सण्णाणं सच्चारित्तं हि सत्त्वो चेव । चउरो चिद्धहि आदे तद्धा आदा हु मे सरणं ॥ [अर्थः—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्-

१. श्री भगवती आराधना गाथा-२ छाया

२. बहिरंग=बाह्यकी

३. स्वात्माके आश्रयसे निश्चयबल प्रगट हुआ तब उचित व्यवहार था ऐसा बतानेके लिये व्यवहार आराधनाका बल कहा जाता है ।

कथिताभ्यन्तरनिश्चयचतुर्विधाराधनावलेन च बाह्याभ्यन्तरमोक्षमार्गद्वितीयनामामिश्रयेन कृत्वा यः कर्त्ता वीतरागचारित्राविनाभूतं स्वशुद्धात्मानं साधयति भावयति साधु- भवति । तस्यैव सहजशुद्धसदानन्दैकानुभूतिलक्षणो भावनमस्कारस्तथा “णमो लोए सव्वसाहणं” द्रव्यनमस्कारश्च भवत्विति ॥५४॥

एतमुक्तप्रकारेण गाथापञ्चकेन मध्यमप्रतिपत्त्या पञ्चपरमेष्ठिस्वरूपं ज्ञातव्यम् । अथवा निश्चयेन “अरुहा सिद्धाइरिया उवज्झाया साहु पंचपरमेठी । ते वि हु चिट्ठहि आदे तद्धा आदा हु मे सरणं ॥१॥” इति गाथाकथितक्रमेण सक्षेपेण, तथैव विस्तरेण पञ्चपरमेष्ठिकथितग्रन्थक्रमेण, अतिविस्तारेण तु सिद्ध- चक्रादिदेवार्चनाविधिरूपमन्त्रवादसम्बन्धिपञ्चनमस्कारग्रन्थे चेति । एवं गाथापञ्चकेन द्वितीयस्थलं गतम् ।

चारित्र और सम्यक्तप—ये चारो आत्मामे निवास करते है इस कारण आत्मा ही मुझे शरणभूत है ।]”—इस गाथामे कथित अभ्यतर ऐसी निश्चय चतुर्विध आराधनाके बलसे—बाह्य-अभ्यतर मोक्षमार्ग जिसका (जिस बाह्य-अभ्यतर आराधनाका) दूसरा नाम है उसके द्वारा—जो वीतरागचारित्रके अविनाभूत निज शुद्धात्माको साधता है अर्थात् भाता है वह साधु परमेष्ठी है । उसे ही मात्र सहज-शुद्ध सदानन्द (नित्य आनन्द) की अनुभूति जिसका लक्षण है ऐसा भावनमस्कार और ‘णमो लोए सव्वसाहण’ ऐसा द्रव्य नमस्कार हो ॥५४॥

इस भाति उपरोक्त प्रकारसे पाच गाथाओ द्वारा मध्यम प्रतिपादनसे पच परमेष्ठीका स्वरूप जानना । “अरुहा सिद्धाइरिया उवज्झाया साहु पचपरमेठी । ते वि हु चिट्ठहि आदे तद्धा आदा हु मे सरणं ॥ [अर्थः—अथवा निश्चयसे जो अर्हत्, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु—ये पाच परमेष्ठी है वे भी आत्मामे स्थित है; इसकारण आत्मा ही मुझे शरण है ।]”—इस गाथामे कहे अनुसार सक्षेपमे पचपरमेष्ठीका स्वरूप जानना और विस्तारसे, पचपरमेष्ठीके स्वरूपका कथन करनेवाले ग्रन्थोमेसे जानना । सिद्धचक्र आदि देवोकी पूजनविधिरूप मन्त्रवाद सबधी ‘पंचनमस्कारमाहात्म्य’ नामक ग्रन्थमेसे उसका स्वरूप अति विस्तारसे जानना ।

इसप्रकार पाच गाथाओ द्वारा दूसरा स्थल समाप्त हुआ ।

अथ तदेव ध्यानं विकल्पितनिश्चयेनाविकल्पितनिश्चयेन प्रकारान्तरेणोपसंहार-
रूपेण पुनरप्याह । तत्र प्रथमपादे ध्येयलक्षणं, द्वितीयपादे ध्यातृलक्षणं, तृतीयपादे
ध्यानलक्षणं, चतुर्थपादे नयविभागं कथयामीत्यभिप्रायं मनसि धृत्वा भगवान् सूत्रमिदं
प्रतिपादयति:—

जं किंचिवि चिंतंतो णिरीहवित्ती हवे जदा साहू ।

लद्धूण य एयत्तं तदाहु तं तस्स णिच्छयं उभाणं ॥५५॥

यत् किंचित् अपि चिन्तयन् निरीहवृत्तिः भवति यदा साधुः ।

लब्ध्वा च एकत्वं तदा आहुः तत् तस्य निश्चयं ध्यानम् ॥५५॥

व्याख्या—“तदा” तस्मिन् काले । “आहु” आहुर्ब्रुवन्ति । “तं तस्स णिच्छयं
ज्ज्ञाणं” तत्तस्य निश्चयध्यानमिति । यदा किम् ? “णिरीहवित्ती हवे जदा साहू”
निरीहवृत्तिनिस्पृहवृत्तिर्यदा साधुर्भवति । किं कुर्वन् ? “जं किंचिवि चिंतंतो” यत्
किमपि ध्येयं वस्तुरूपेण विचिन्तयन्निति । किं कृत्वा पूर्वं ? “लद्धूण य एयत्तं”

अब, उसी ध्यानका विकल्पित निश्चयसे और अविकल्पित निश्चयसे
प्रकारान्तरसे उपसंहाररूपसे कथन करते हैं । ‘उसमे वहा गाथाके प्रथम पादमे
ध्येयका लक्षण, दूसरे पादमें ध्याताका लक्षण, तीसरे पादमें ध्यानका लक्षण और
चौथे पादमें नयोका विभाग मै कहूंगा’ ऐसा अभिप्राय मनमे रखकर श्रीनेमिचन्द्र-
आचार्यदेव इस सूत्रका प्रतिपादन करते हैं —

गाथा-५५

गाथार्थः—ध्येयमे एकत्व प्राप्त करके किसी भी पदार्थका ध्यान करता हुआ
साधु जब निस्पृह वृत्तिवाला होता है तब उसका वह ध्यान निश्चयध्यान
कहलाता है ।

टीकाः—“तदा” उस समयमे, “आहु” कहते हैं, “तं तस्स णिच्छयं ज्ज्ञाणं”
उसे उसका निश्चयध्यान (कहते हैं) । कब ? “णिरीहवित्ती हवे जदा साहू” जब
साधु निस्पृह वृत्तिवाला होता है । क्या करता हुआ ? “जं किंचिवि चिंतंतो” जिस
किसी भी ध्येयका वस्तुरूपसे विशेष चितवन करता हुआ । पहले क्या करके ?
“लद्धूण य एयत्तं” उस ध्येयमे प्राप्त करके । क्या प्राप्त करके ? एकत्वको अर्थात्

यतकिञ्चित् चितवन जा माहि, इच्छा रहित होय जव ताहि ।

एक चित्त है मुनि ऐकलो, निश्चय ध्यान कहैं जिन भलो ॥५५॥

तस्मिन् ध्येये लब्ध्वा । किं ? एकत्वं एकाग्रचिन्तानिरोधनमिति । अथ विस्तरः—
यत् किञ्चिद् ध्येयमित्यनेन किमुक्तं भवति ? प्राथमिकापेक्षया सविकल्पावस्थायां
विषयकषायवञ्चनार्थं चित्तस्थिरीकरणार्थं पञ्चपरमेष्ठिचादिपरद्रव्यमपि ध्येयं भवति ।
पश्चादभ्यासवशेन स्थिरीभूते चित्ते सति शुद्धबुद्धैकस्वभावनिजशुद्धात्मस्वरूपमेव ध्येय-
मित्युक्तं भवति । निस्पृहवचनेन पुनर्मिथ्यात्वं वेदत्रयं हास्यादिपट्कक्रोधादिचतुष्टय-
रूपचतुर्दशाऽभ्यन्तरपरिग्रहेण तथैव क्षेत्रवास्तुहिरण्यसुवर्णधनधान्यदासीदासकुप्य-
भाण्डाऽभिधानदशविधबहिरङ्गपरिग्रहेण च रहितं ध्यातृस्वरूपमुक्तं भवति । एकाग्रचिन्ता-
निरोधेन च 'पूर्वोक्तविविधध्येयवस्तुनि स्थिरत्वं निश्चलत्वं ध्यानलक्षण भणितमिति ।
निश्चयशब्देन तु प्राथमिकापेक्षया व्यवहाररत्नत्रयानुकूलनिश्चयो ग्राह्यः, निष्पन्नयोग-
पुरुषापेक्षया तु शुद्धोपयोगलक्षणविवक्षितैकदेशशुद्धनिश्चयो ग्राह्यः । विशेषनिश्चयः पुनरग्रे
वक्ष्यमाणस्तिष्ठतीति सूत्रार्थः ॥५५॥

एकाग्र-चिन्ता-निरोधको प्राप्त करके । विस्तार कथन — 'जो कोई भी ध्येय
(अर्थात् कोई भी ध्यान करनेयोग्य पदार्थ)' कहा है उसका क्या अर्थ है ?
प्राथमिक (पुरुष) की अपेक्षासे सविकल्प अवस्थामे विषय और कषाय दूर करनेके
लिये और चित्तको स्थिर करनेके लिये पञ्चपरमेष्ठी आदि परद्रव्य भी ध्येय होते
हैं, तत्पश्चात् जब अभ्यासके वशसे चित्त स्थिर हो जाता है तब शुद्ध-बुद्ध-एक-
स्वभावी निज शुद्धात्माका स्वरूप ही ध्येय होता है । तथा, 'निस्पृह' शब्दसे
मिथ्यात्व, तीन वेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, (ये छह) और
क्रोध, मान, माया, लोभ (ये चार)—इन चौदह अभ्यन्तर परिग्रहोसे रहित और
क्षेत्र, वास्तु, चादी, सोना, धन, धान्य, दासी, दास, कुप्य और भाण्ड—इन दश
बहिरंग परिग्रहोसे रहित ऐसा ध्याताका स्वरूप कहा है । 'एकाग्रचिन्तानिरोध'
पदसे, पूर्वोक्त भिन्न-भिन्न प्रकारके ध्येयभूत (ध्यान करने योग्य) पदार्थोमे
स्थिरताको—निश्चलताको ध्यानका लक्षण कहा है । 'निश्चय' शब्दसे, प्राथमिक
(पुरुष) की अपेक्षासे व्यवहार-रत्नत्रयको अनुकूल ऐसा निश्चय समझना और
जिसको योग निष्पन्न हुआ है ऐसे पुरुषकी अपेक्षासे शुद्धोपयोगरूप विवक्षित-एकदेश-
शुद्धनिश्चय समझना । विशेष निश्चयका कथन आगे करेंगे ।

इसप्रकार सूत्रार्थ है ॥५५॥

अथ शुभाशुभमनोवचनकायनिरोधे कृते सत्यात्मनि स्थिरो भवति तदेव परमध्यानमित्युपदिशतिः—

मा चिद्बुह मा जंपह मा चिन्तह किंवि जेण होइ थिरो ।
अप्पा अप्पम्मि रओ इणमेव परं हवे उभाणं ॥५६॥

मा चेष्टत मा जल्पत मा चिन्तयत किम् अपि येन भवति स्थिरः ।
आत्मा आत्मनि रतः इदं एव परं ध्यानं भवति ॥५६॥

व्याख्या—“मा चिद्बुह मा जंपह मा चिन्तह किंवि” नित्यनिरञ्जननिष्क्रिय-निजशुद्धात्मानुभूतिप्रतिबन्धकं शुभाशुभचेष्टारूपं कायव्यापारं, तथैव शुभाशुभान्त-र्बहिर्जल्परूपं वचनव्यापारं, तथैव शुभाशुभविकल्पजालरूपं चित्तव्यापारं च किमपि मा कुरुत हे विवेकीजनाः ! “जेण होइ थिरो” येन योगत्रयनिरोधेन स्थिरो भवति । स कः ? “अप्पा” आत्मा । कथम्भूतः स्थिरो भवति ? “अप्पम्मि रओ”

अब, शुभाशुभ मन-वचन-कायाका निरोध करने पर आत्मामे स्थिर होता है वही परमध्यान है इसप्रकार उपदेश करते हैं —

गाथा—५६

गाथार्थः—(हे भव्यो !) कुछ भी चेष्टा मत करो, कुछ भी मत बोलो, कुछ भी चितवन मत करो, जिससे आत्मा निजात्मामे तल्लीनरूपसे स्थिर हो जाय । यही (आत्मामें लीनता ही) परमध्यान है ।

टीकाः—“मा चिद्बुह मा जंपह मा चिन्तह किंवि” हे विवेकी पुरुषो ! नित्य निरंजन और निष्क्रिय ऐसे निज शुद्धात्माकी अनुभूतिको रोकनेवाले शुभाशुभ चेष्टारूप कायव्यापार, शुभाशुभ अतर्बहिर्जल्परूप वचन-व्यापार और शुभाशुभ विकल्पजालरूप चित्त-व्यापार किंचित् भी मत करो; “जेण होइ थिरो” जिससे अर्थात् तीन योगोके निरोधसे स्थिर होता है । कौन ? “अप्पा” आत्मा । कैसा स्थिर होता है ? “अप्पम्मि रओ” सहजशुद्ध-ज्ञानदर्शनस्वभावी परमात्मतत्त्वके

मन-वच-काय चेष्टा तजो, जिम थिर चित्त होय निज भजो ।

आपा माहि आप रत सोय, परमध्यान इम करतै होय ॥५६॥

सहजशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावपरमात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणरूपाभेदरत्नत्रयात्मकपरम-
समाधिसमुद्भूतसर्वप्रदेशाल्लादजनकसुखास्वादपरिणतिसहिते निजात्मनि रतः परिणत-
स्तल्लीयमानस्तच्चित्तस्तन्मयो भवति । “इणमेव परं हवे ज्ञाणं” इदमेवात्मसुख-
स्वरूपे तन्मयत्वं निश्चयेन परमुत्कृष्टं ध्यानं भवति ।

तस्मिन् ध्याने स्थितानां यद्वीतरागपरमानन्दसुखं प्रतिभाति, तदेव निश्चय-
मोक्षमार्गस्वरूपम् । तच्च पर्यायनामान्तरेण किं किं भण्यते तदभिधीयते । तदेव
शुद्धात्मस्वरूपं, तदेव परमात्मस्वरूपं, तदेवैकदेशव्यक्तिरूपविवक्षितैकदेशशुद्धनिश्चयनयेन
स्वशुद्धात्मसम्बित्तिसमुत्पन्नसुखामृतजलसरोवरे रागादिमलरहितत्वेन परमहंसस्वरूपम् ।
इदमेकदेशव्यक्तिरूपं शुद्धनयव्याख्यानमत्र परमात्मध्यानभावनानाममालायां यथासम्भवं
सर्वत्र योजनीयमिति ।

तदेव परब्रह्मस्वरूपं, तदेव परमविष्णुस्वरूपं, तदेव परमशिवस्वरूपं, तदेव
परमबुद्धस्वरूपं, तदेव परमजिनस्वरूपं, तदेव परमस्वात्मोपलब्धिलक्षण सिद्धस्वरूपं,
तदेव निरञ्जनस्वरूपं, तदेव निर्मलस्वरूपं, तदेव स्वसम्वेदनज्ञानम्, तदेव परमतत्त्व-

सम्यक् श्रद्धान-ज्ञान-आचरणरूप अभेदरत्नत्रयात्मक परमसमाधिसे उत्पन्न, सर्व
प्रदेशोमे आनन्द उत्पन्न करनेवाले सुखके आस्वाद्रूप परिणतिसहित निजात्मामें
रत-परिणत-तल्लीन-तच्चित्ततन्मय होता है । “इणमेव परं हवे ज्ञाणं” यह जो
आत्माके सुखस्वरूपमे तन्मयपना वही निश्चयसे परम अर्थात् उत्कृष्ट ध्यान है ।

उस परमध्यानमे स्थित जीवोंको जिस वीतराग परमानन्दरूप सुखका
प्रतिभास होता है वही निश्चयमोक्षमार्गस्वरूप है । वह अन्य किस-किस पर्यायवाची
नामोसे कहा जाता है, वही कहते हैं:—वही शुद्धात्मस्वरूप है, वही परमात्मस्वरूप
है, वही एकदेश-प्रगटारूप विवक्षित-एकदेश-शुद्धनिश्चयनयसे स्वशुद्धात्माके सवेदनसे
उत्पन्न सुखामृतरूपी जलके सरोवरमे रागादिमल रहित होनेके कारण परमहंस-
स्वरूप है । इस एकदेश व्यक्तिरूप शुद्धनयके व्याख्यानको परमात्मध्यान-भावनाकी
नाममालामे यथासभव सर्वत्र योजन करना ।

वही परब्रह्मस्वरूप है, वही परम विष्णुस्वरूप है, वही परमशिवस्वरूप है,
वही परम बुद्धस्वरूप है, वही परम जिनस्वरूप है, वही परम स्वात्मोपलब्धिलक्षण
सिद्धस्वरूप है, वही निरञ्जनस्वरूप है, वही निर्मलस्वरूप है, वही स्वसवेदनज्ञान

ज्ञानं, तदेव शुद्धात्मदर्शनं, तदेव परमावस्थास्वरूपम्, तदेव परमात्मनः दर्शनं, तदेव परमात्मज्ञानं, तदेव परमावस्थारूप-परमात्मस्पर्शनं, तदेव ध्येयभूतशुद्धपारिणामिकभावरूपं, तदेव ध्यानभावनास्वरूपं, तदेव शुद्धचारित्रं, तदेव परमपवित्रं, तदेवान्तस्तत्त्वं, तदेव परमतत्त्वं, तदेव शुद्धात्मद्रव्यं, तदेव परमज्योतिः, सैव शुद्धात्मानुभूतिः, सैवात्म-प्रतीतिः, सैवात्मसवित्तिः, सैव स्वरूपोपलब्धिः, स एव नित्योपलब्धिः, स एव परमसमाधिः, स एव परमानन्दः, स एव नित्यानन्दः, स एव सहजानन्दः, स एव सदानन्दः, स एव शुद्धात्मपदार्थाध्ययनरूपः, स एव परमस्वाध्यायः, स एव निश्चय-मोक्षोपायः, स एव चैकाग्रचिन्तानिरोधः, स एव परमबोधः, स एव शुद्धोपयोगः, स एव परमयोगः, स एव भूतार्थः, स एव परमार्थः, स एव निश्चयपञ्चाचारः, स एव समयसारः, स एवाध्यात्मसारः, तदेव समतादिनिश्चयषडावश्यकस्वरूपं, तदेवा-भेदरत्नत्रयस्वरूपं; तदेव वीतरागसामायिकं, तदेव परमशरणोत्तममङ्गलं, तदेव केवल-ज्ञानोत्पत्तिकारणं, तदेव सकलकर्मक्षयकारणं, सैव निश्चयचतुर्विधाराधना, सैव परमात्म-भावना, सैव शुद्धात्मभावनोत्पन्नसुखानुभूतिरूपपरमकला, सैव दिव्यकला, तदेव

है, वही परम तत्त्वज्ञान है, वही शुद्धात्मदर्शन है, वही परमावस्थास्वरूप है, वही परमात्माका दर्शन है, वही परमात्माका ज्ञान है, वही परमावस्थारूप परमात्माका स्पर्शन है, वही ध्येयभूत-शुद्धपारिणामिक भावरूप है, वही ध्यानभावनास्वरूप है, वही शुद्धचारित्र है, वही परम पवित्र है, वही अत तत्त्व है, वही परमतत्त्व है, वही शुद्धात्मद्रव्य है, वही परमज्योति है, वही शुद्ध आत्माकी अनुभूति है, वही आत्माकी प्रतीति है, वही आत्माकी सवित्ति है, वही स्वरूपकी उपलब्धि है, वही नित्यपदार्थकी प्राप्ति है, वही परमसमाधि है, वही परमानन्द है, वही नित्यानन्द है, वही सहजानन्द है, वही सदानन्द है, वही शुद्धात्मपदार्थके अध्ययनरूप है, वही परमस्वाध्याय है, वही निश्चय मोक्षका उपाय है, वही एकाग्रचित्तानिरोध है, वही परमबोध है, वही शुद्धोपयोग है, वही परमयोग है, वही भूतार्थ है, वही परमार्थ है, वही निश्चय पञ्चाचार है, वही समयसार है, वही अध्यात्मसार है, वही समता आदि निश्चय-षड्-आवश्यक स्वरूप है, वही अभेदरत्नत्रय स्वरूप है, वही वीतराग सामायिक है, वही परम शरण-उत्तम-मंगल है, वही केवलज्ञानकी उत्पत्तिका कारण है, वही समस्त कर्मके क्षयका कारण है, वही निश्चय-चतुर्विध-आराधना है, वही परमात्माकी भावना है, वही शुद्धात्माकी भावनासे उत्पन्न सुखकी अनुभूति परमकला है, वही दिव्यकला है, वही परम अद्वैत है, वही परम अमृतरूप

परमाद्वैतं, तदेव परमामृतपरमधर्मध्यानं, तदेव शुक्लध्यानं, तदेव रागादिविकल्प-
शून्यध्यानं, तदेव निष्कलध्यानं, तदेव परमस्वास्थ्यं, तदेव परमवीतरागत्वं,
तदेव परमसाम्यं, तदेव परमैकत्वं, तदेव परमभेदज्ञानं, स एव परमसमरसीभावः
इत्यादि समस्तरागादिविकल्पोपाधिरहितपरमाह्लादैकसुखलक्षणध्यानरूपस्य निश्चय-
मोक्षमार्गस्य वाचकान्यन्यान्यपि पर्यायनामानि विज्ञेयानि भवन्ति परमात्मतत्त्व-
विद्धिरिति ॥ ५६ ॥

अतः परं यद्यपि पूर्वं बहुधा भणितं ध्यातृपुरुषलक्षणं ध्यानसामग्री च तथापि
चूलिकोपसंहाररूपेण पुनरप्याख्यातिः—

तवसुद्वदवं चेदा उभाणरहधुरंधरो हवे जम्हा ।

तम्हा तत्तियणिरदा तल्लद्धीए सदा होह ॥५७॥

तपःश्रुतव्रतवान् चेता ध्यानरथधुरन्धरः भवति यस्मात् ।

तस्मात् तत्त्रिकनिरताः तल्लब्ध्यै सदा भवत ॥५७॥

परम-धर्मध्यान है, वही शुक्लध्यान है, वही रागादिविकल्परहित ध्यान है, वही
निष्कल ध्यान है, वही परम स्वास्थ्य है, वही परम वीतरागपना है, वही परम
साम्य है, वही परम एकत्व है, वही परम भेदज्ञान है, वही परम समरसीभाव है;
इत्यादि, समस्त रागादि विकल्प-उपाधिसे रहित परम-आह्लादारूप एक सुख जिसका
लक्षण है ऐसे ध्यानरूप निश्चय-मोक्षमार्गके वाचक अन्य भी पर्यायवाची नाम
परमात्मतत्त्वके ज्ञानियो द्वारा जानने योग्य है ॥५६॥

अब, यद्यपि पहले ध्याता पुरुषके लक्षण और ध्यानकी सामग्रीका अनेक
प्रकारसे वर्णन किया है तो भी चूलिका तथा उपसंहाररूपसे फिर भी कथन
करते हैं:—

गाथा-५७

गाथार्थः—क्योंकि तप, श्रुत और व्रतका धारक आत्मा ध्यानरूपी रथकी
धुरा धारण करने वाला होता है, इसलिये हे भव्य पुरुषों ! तुम उस ध्यानकी
प्राप्तिके लिये निरंतर तप, श्रुत और व्रतमे तत्पर होओ ।

तप धारै अर आगम पढ़ै, व्रत पालै आत्म इम बढ़ै ।

ध्यान-धुरंधर ह्वै सिधि करे, तीनू धरि शिव-रमणी वरै ॥५७॥

व्याख्या—“तवसुदवदवं चेदा ज्ञाणरहधुरन्धरो हवे जम्हा” तपश्रुतव्रत-
वानात्मा चेतयिता ध्यानरथस्य धुरन्धरो समर्थो भवति, “जम्हा” यस्मात् “तम्हा
तत्तियणिरदा तल्लद्वीए सदा होह” तस्मात् कारणात् तपश्रुतव्रतानां सम्बन्धेन यत्
त्रितयं तत् त्रितये रताः सर्वकाले भवत हे भव्याः । किमर्थं ? तस्य ध्यानस्य
लब्धिस्तल्लब्धिस्तदर्थमिति । तथाहि—अनशनावमौदर्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्याग-
विविक्तशय्यासनकायक्लेशभेदेन बाह्यं षड्विधं, तथैव प्रायश्चित्तविनयवैय्यावृत्यस्वाध्याय-
व्युत्सर्गध्यानभेदेनाऽभ्यन्तरमपि षड्विधं चेति द्वादशविधं तपः । तेनैव साध्यं
शुद्धात्मस्वरूपे प्रतपनं विजयनं निश्चयतपश्च । तथैवाचाराराधनादिद्रव्यश्रुतं, तदा-
धारेणोत्पन्नं निर्विकारस्वसंवेदनज्ञानरूपं भावश्रुतं च । तथैव च हिंसानृतस्तेयाब्रह्म-
परिग्रहाणां द्रव्यभावरूपाणां परिहरणं व्रतपञ्चकं चेति । एवमुक्तलक्षणतपःश्रुतव्रत-
सहितो ध्याता पुरुषो भवति । इयमेव ध्यानसामग्री चेति । तथाचोक्तम्—“वैराग्यं

टीकाः—“तवसुदवदवं चेदा ज्ञाणरहधुरन्धरो हवे जम्हा” क्योकि तप, श्रुत और
व्रतधारी आत्मा ध्यानरूपी रथकी धुरा धारण करनेमे समर्थ होता है, “तम्हा
तत्तियणिरदा तल्लद्वीए सदा होह” इसलिये हे भव्यों ! तप, श्रुत और व्रत—इन
तीनोंमे सदा लीन होओ । किसलिये ? उस ध्यानकी प्राप्तिके लिये । विशेष
वर्णन —अनशन, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्त शय्यासन और
कायक्लेश—ये छह प्रकारके बाह्यतप और प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय,
व्युत्सर्ग और ध्यान—ये छह प्रकारके अतरंग तप—इसप्रकार दोनों मिलकर बारह
प्रकारके तप है । उसी तपसे ‘साध्य शुद्धात्मस्वरूपमें प्रतपन अर्थात् विजय करनेरूप
निश्चय तप है । उसी प्रकार आचार-आराधना आदि द्रव्यश्रुत और उसके आधारसे
उत्पन्न निर्विकार स्वसंवेदनज्ञानरूप भावश्रुत है । तथा हिंसा, भूठ, चोरी, अब्रह्म
और परिग्रहका द्रव्य और भावरूपसे त्याग करना वे पांच व्रत है । इसप्रकार
पूर्वोक्त लक्षणोयुक्त तप, श्रुत और व्रत सहित पुरुष ध्याता होता है । वही (तप,
श्रुत और व्रत ही) ध्यानकी सामग्री है । कहा भी है कि “वैराग्य तत्त्वविज्ञानं

१ प्रथम मुनिको छट्टे गुणस्थानमे शुद्धता सहित ऐसे विकल्प होते है । उन विकल्पोका
अभाव होनेपर शुद्धात्मतत्त्वमे प्रतपन होता है इस कारण व्यवहारनयसे उनके द्वारा
साध्य कहा जाता है । निश्चयनयसे शुद्धि बढ़ते-बढ़ते निश्चयतप होता है ।

तत्त्वविज्ञानं नैर्ग्रन्थ्यं *समचित्ता । परीपहजयश्चेति पञ्चैते ध्यानहेतवः ॥१॥”

भगवन् ! ध्यानं तावन्मोक्षमार्गभूतम् । मोक्षार्थिना पुरुषेण पुण्यबन्धकारण-
त्वाद्ब्रतानि त्याज्यानि भवन्ति, भवद्भिः पुनर्ध्यानसामग्रीकारणानि तपःश्रुतव्रतानि
व्याख्यातानि, तत् कथं घटत इति ? तत्रोत्तरं दीयते—व्रतान्येव केवलानि
त्याज्यान्येव न, किन्तु पापबन्धकारणानि हिंसादिविकल्परूपाणि यान्यव्रतानि तान्यपि
त्याज्यानि । तथाचोक्तम् पूज्यपादस्वामिभिः—“अपुण्यमव्रतैः पुण्यं व्रतैर्मोक्षस्त-
योर्व्ययः । अव्रतानीव मोक्षार्थी व्रतान्यपि ततस्त्यजेत् ॥ १ ॥ किंत्वव्रतानि पूर्वं
परित्यज्य ततश्च व्रतेषु तन्निष्ठो भूत्वा निर्विकल्पसमाधिरूपं परमात्मपदं प्राप्य पश्चादेक-
देशव्रतान्यपि त्यजति । तदप्युक्तम् तैरेव—“अव्रतानि परित्यज्य व्रतेषु परिनिष्ठितः ।
त्यजेत्तान्यपि संप्राप्य परमं पदमात्मनः ॥ १ ॥”

नैर्ग्रन्थ्यं समचित्ता । परीपहजयश्चेति पञ्चैते ध्यानहेतवः ॥ [अर्थः—वैराग्य, तत्त्वोंका
ज्ञान, परिग्रहोंका त्याग, साम्यभाव और परीषहोका जीतना; ये पांच ध्यानके
कारण हैं ।]”

शंकाः—भगवान् । ध्यान तो मोक्षके मार्गरूप है । मोक्षार्थी पुरुषको पुण्य-
बंधका कारण होनेसे व्रत त्याग करने योग्य है । परन्तु आपने तो तप, श्रुत और
व्रतोंको ध्यानकी सामग्री कहा है; वह (कथन) किसप्रकार घटित होता है ?
उसका उत्तरः—केवल व्रत ही त्याग करने योग्य नहीं है परन्तु पापबन्धके कारण
हिंसा आदि अव्रत भी त्याग करने योग्य है । इसीप्रकार पूज्यपाद स्वामीने कहा
है—“अपुण्यमव्रतैः पुण्यं व्रतैर्मोक्षस्तयोर्व्ययः । अव्रतानीव मोक्षार्थी व्रतान्यपि
ततस्त्यजेत् ॥ [अर्थः—अव्रतोसे पापका बन्ध और व्रतोसे पुण्यका बन्ध होता है,
उन दोनोंका नाश वह मोक्ष है; अतः मोक्षार्थी पुरुषके अव्रतोकी भाँति व्रतोका
भी त्याग करो ।]” परन्तु अव्रतोका भी पहले त्यागकर पश्चात् व्रतोमे स्थिर
होकर, निर्विकल्प समाधिरूप परमात्मपदको प्राप्त कर, पश्चात् एकदेश व्रतोका
भी त्याग करता है । वह भी श्रीपूज्यपादस्वामीने ही कहा है —“अव्रतानि परित्यज्य
व्रतेषु परिनिष्ठितः । त्यजेत्तान्यपि संप्राप्य परमं पदमात्मनः ॥ [अर्थः—मोक्षार्थी पुरुष
अव्रतोको छोड़कर व्रतोमे स्थिर होकर परमात्मपद प्राप्त करे और परमात्मपद
प्राप्त कर उन व्रतोंका भी त्याग करे ।]” परन्तु यह विशेष है—व्यवहाररूप

* ‘वशचित्ता’ इत्यपि पाठ ।

१. श्री परमात्मप्रकाश अ० २ गाथा-१६२

अयं तु विशेषः—व्यवहाररूपाणि यानि प्रसिद्धान्येकदेशव्रतानि तानि त्यक्तानि । यानि पुनः सर्वशुभाशुभनिवृत्तिरूपाणि निश्चयव्रतानि तानि त्रिगुप्तिलक्षणस्वशुद्धात्मसम्बित्तिरूपनिर्विकल्पध्याने स्वीकृतान्येव, न च त्यक्तानि । प्रसिद्धमहाव्रतानि कथमेकदेशरूपाणि जातानि ? इति चेत्तदुच्यते—जीवघातनिवृत्तौ सत्यामपि जीवरक्षणे प्रवृत्तिरस्ति । तथैवासत्यवचनपरिहारेऽपि सत्यवचनप्रवृत्तिरस्ति । तथैव चादत्तादानपरिहारेऽपि दत्तादाने प्रवृत्तिरस्तीत्याद्येकदेशप्रवृत्त्यपेक्षया देशव्रतानि तेषामेकदेशव्रतानां त्रिगुप्तिलक्षणनिर्विकल्पसमाधिकाले त्यागः; न च समस्तशुभाशुभनिवृत्तिलक्षणस्य निश्चयव्रतस्येति । त्यागः कोऽर्थः ? यथैव हिंसादिरूपाव्रतेषु निवृत्तिस्तथैकदेशव्रतेष्वपि । कस्मादिति चेत् ? त्रिगुप्तावस्थायां प्रवृत्तिनिवृत्तिरूपविकल्पस्य स्वयमेवावकाशो नास्ति । अथवा वस्तुतस्तदेव निश्चयव्रतम् । कस्मात्—सर्वनिवृत्तित्वादिति । योऽपि घटिकाद्वयेन मोक्षं गतो भरतश्चक्री सोऽपि जिनदीक्षां

जो प्रसिद्ध एकदेश व्रत है उनका त्याग किया है परन्तु जो सर्व शुभाशुभकी निवृत्तिरूप निश्चय व्रत है उनका त्रिगुप्तिलक्षण स्वशुद्धात्मसवेदनरूप निर्विकल्प ध्यानमे स्वीकार किया है, उनका त्याग नहीं किया है ।

प्रश्नः—प्रसिद्ध (अहिंसादि) महाव्रत एकदेशरूप किस प्रकार हुए ?

उत्तरः—अहिंसा महाव्रतमे यद्यपि जीवोके घातकी निवृत्ति है तो भी जीवोकी रक्षा करनेमे प्रवृत्ति है । उसीप्रकार सत्य महाव्रतमें असत्य वचनका यद्यपि त्याग है तो भी सत्य वचनमे प्रवृत्ति है । अचौर्य महाव्रतमे यद्यपि दिये बिना कोई भी वस्तु लेनेका त्याग है परन्तु दी गई वस्तु लेनेमे प्रवृत्ति है । इसप्रकार एकदेश प्रवृत्तिकी अपेक्षासे ये पाचो महाव्रत देशव्रत है । उन एकदेश व्रतोंका त्रिगुप्तिलक्षण निर्विकल्प समाधिके कालमे 'त्याग' है परन्तु समस्त शुभाशुभकी निवृत्तिरूप निश्चयव्रतका नहीं । 'त्याग' का क्या अर्थ है ? जिसप्रकार हिंसा आदिरूप पाच अव्रतोंकी निवृत्ति है उसीप्रकार एकदेश व्रतोंकी भी निवृत्ति है । किसलिये ? त्रिगुप्त अवस्थामे प्रवृत्ति और निवृत्तिरूप विकल्पका स्वयमेव अवकाश नहीं है । अथवा वास्तवमे वही निश्चयव्रत है । किसलिये ? क्योंकि उसमे पूर्ण निवृत्ति है । दीक्षाके पश्चात् दो घडी मे ही भरत चक्रवतीने जो मोक्ष प्राप्त किया उसने भी जिनदीक्षा

१. अकेले अशुभभावका त्याग उसे कुछ लोग त्याग मानते है उस मान्यताका निषेध कर अशुभ और शुभ-दोनो भावोको त्याग, उसे यहा त्याग कहा है ।

गृहीत्वा विषयकषायनिवृत्तिरूपं क्षणमात्रं व्रतपरिणामं कृत्वा पश्चाच्छुद्धोपयोगत्वरूपरत्न-
त्रयात्मके निश्चयव्रताभिधाने वीतरागसामायिकसंज्ञे निर्विकल्पसमाधौ स्थित्वा केवल-
ज्ञानं लब्धवानिति । परं किन्तु तस्य स्तोककालत्वान्नोका व्रतपरिणामं न जानन्तीति ।
तदेव भरतस्य दीक्षाविधानं कथ्यते । हे भगवन् ! जिनदीक्षादानानन्तरं भरतचक्रिणः
क्रियति काले केवलज्ञानं जातमिति श्रीवीरवर्द्धमानस्वामितीर्थकरपरमदेवसमवसरणमध्ये
श्रेणिकमहाराजेन पृष्टे सति गौतमस्वामी आह—“पञ्चमुष्टिभिरुत्पाट्य त्रोटचन्
बन्धस्थितीन् कचान् । लोचान्तरमेवापद्राजन् श्रेणिक केवलम् ॥१॥”

अत्राह शिष्यः । अद्य काले ध्यानं नास्ति । कस्मादिति चेत्—उत्तमसंह-
ननाभावदशचतुर्दशपूर्वगतश्रुतज्ञानाभावाच्च । अत्र परिहारः—शुक्लध्यानं नास्ति धर्म-
ध्यानमस्तीति । तथाचोक्तं मोक्षप्राभृते श्रीकुन्दकुन्दाचार्यदेवैः “भरहे दुस्समकाले
धम्मज्झाणं हवेइ णाणिस्स । तं अप्पसहावठिए ण हु मण्णइ सो दु अण्णाणी ॥ १ ॥

लेकर विषयकषायकी निवृत्तिरूप व्रतके परिणाम क्षणमात्र (थोड़े समय) कर,
पश्चात् शुद्धोपयोगरूप रत्नत्रयमय निश्चयव्रत नामक वीतराग सामायिक नामक
निर्विकल्प ध्यानमे स्थिर होकर केवलज्ञान प्राप्त किया है । परन्तु उन्हे व्रतका
परिणाम थोड़े समय रहनेसे लोग उनके व्रतके परिणामको नहीं जानते है । उसी
भरत चक्रवर्तीके दीक्षा-विधानका कथन किया जाता है—श्री वर्द्धमान तीर्थकर
परमदेवके समवसरणमे श्रेणिक महाराजने प्रश्न किया कि ‘हे भगवान् ! भरत
चक्रवर्तीको जिनदीक्षा लेनेके पश्चात् कितने समयमे केवलज्ञान हुआ ? श्री गौतम-
स्वामीने उत्तर दिया—“पंचमुष्टिभिरुत्पाट्य त्रोटचन् बन्धस्थितीन् कचान् ।
लोचान्तरमेवापद्राजन् श्रेणिक केवलम् ॥ [अर्थः—हे श्रेणिक ! पच मुष्टिसे
केशलोच करके, कर्मबन्धकी स्थिति तोडते हुए, केशलोचके पश्चात् तुरत ही भरत
चक्रवर्तीने केवलज्ञान प्राप्त कर लिया ।]”

यहा शिष्य कहता है—इस पचमकालमे ध्यान नहीं है, क्योकि इसकालमे
उत्तम सहननका अभाव है और दश तथा चौदहपूर्वका श्रुतज्ञान भी नहीं है ।

समाधानः—इसकालमे शुक्लध्यान नहीं है, परन्तु धर्मध्यान है । श्रीकुन्द-
कुन्दाचार्यदेवने मोक्षप्राभृतमे (गाथा ७६-७७ मे) कहा है कि “भरतक्षेत्रमें दु षम
नामक पचमकालमें ज्ञानी जीवको धर्मध्यान होता है, वह धर्मध्यान आत्मस्वभावमें
स्थित होनेवालेको होता है, जो ऐसा नहीं मानता वह अज्ञानी है । अब भी
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप तीनरत्नोंसे शुद्ध जीव आत्माका ध्यान करके इन्द्रपद

अज्जवि तिरयणसुद्धा अप्पा ज्झाऊण लहइ इदत्तं । लोयंतियदेवत्तं तत्थ चुदा णिव्वुदिं जंति ॥२॥” तथैव तत्त्वानुशासनग्रन्थे चोक्तं “अत्रेदानीं निषेधन्ति शुक्लध्यानं जिनोत्तमाः । धर्मध्यानं पुनः प्राहुः श्रेणीभ्यां प्राग्विवर्तिनाम् ॥१॥” यथोक्तमुत्तमसहननाभावात्तदुत्सर्गवचनम् । अपवादव्याख्यानानेन, पुनरुपशमक्षपकश्रेण्योः शुक्लध्यानं भवति, तच्चोत्तमसहननेनैव, अपूर्वगुणस्थानादधस्तनेषु गुणस्थानेषु धर्मध्यानं, तच्चादिमत्रिकोत्तमसहननाभावेऽप्यन्तिमत्रिकसहननेनापि भवति । तदप्युक्तं तत्रैव तत्त्वानुशासने “यत्पुनर्वज्रकायस्य ध्यानमित्यागमे वचः । श्रेण्योर्ध्यानं प्रतीत्योक्तं तन्नाधस्तान्निषेधकम् ॥ १ ॥”

यथोक्तं दशचतुर्दशपूर्वगतश्रुतज्ञानेन ध्यानं भवति तदप्युत्सर्गवचनम् । अपवादव्याख्यानानेन पुनः पञ्चसमितित्रिगुप्तिप्रतिपादकसारभूतश्रुतेनापि ध्यानं भवति केवलज्ञानश्च । यद्येवमपवादव्याख्यानं नास्ति तर्हि “तुसमासं घोसन्तो सिवभूदी केवली जादो” इत्यादिगन्धर्वाराधनादिभणितं व्याख्यानम् कथम् घटते ? अथ

अथवा लौकातिक देवपद प्राप्त करते है और वहासे चयकर (मनुष्य होकर) मोक्षको प्राप्त करते है ।

उसीप्रकार तत्त्वानुशासन नामक ग्रन्थमें (गाथा ८३ में) कहा है कि “इस समय (पचमकालमे) जिनेन्द्रदेव शुक्लध्यानका निषेध करते है परन्तु श्रेणी-आरोहणसे पूर्ववर्ती धर्मध्यानका अस्तित्व बताया है ।” तथा जो ऐसा कहा है कि ‘उत्तम सहननका अभाव होनेसे ध्यान नहीं होता है’ वह उत्सर्गवचन है । अपवाद-रूप व्याख्यानसे तो, उपशमश्रेणी और क्षपकश्रेणीमे शुक्लध्यान होता है और वह उत्तम सहननसे ही होता है, परन्तु अपूर्वकरण (८ वे) गुणस्थानसे नीचेके गुणस्थानोमे जो धर्मध्यान होता है, वह पहले तीन उत्तम सहननोका अभाव हो तो भी अतिम तीन सहननोमें भी होता है । यह भी उसी तत्त्वानुशासन ग्रन्थमें (गाथा ८४ में) कहा है—“वज्रकायवालेको ध्यान होता है ऐसा आगमका वचन उपशम और क्षपकश्रेणीके ध्यानकी अपेक्षासे कहा है । यह वचन नीचेके गुणस्थानोमे धर्मध्यानका निषेधक नहीं है ॥१॥”

जो इसप्रकार कहा है कि ‘दश तथा चौदह पूर्वके श्रुतज्ञानसे ध्यान होता है’ वह भी उत्सर्गवचन है । अपवाद-व्याख्यानसे तो पाच समिति और तीन गुप्तिके प्रतिपादक सारभूत श्रुतज्ञानसे भी ध्यान होता है और केवलज्ञान भी होता है । यदि ऐसा अपवाद व्याख्यान न हो तो “तुष-माषका उच्चारण करते हुए श्रीशिवभूति मुनि केवलज्ञानी हो गये” इत्यादि गन्धर्वाराधनादि ग्रन्थोंमें कहा गया व्याख्यान किस प्रकार घटित होता है ?

मतम्—पञ्चसमितित्रिगुप्तिप्रतिपादकं द्रव्यश्रुतमिति जानाति । इदं भावश्रुतं पुनः सर्वमस्ति । नैवं वक्तव्यम् । यदि पञ्चसमितित्रिगुप्तिप्रतिपादकं द्रव्यश्रुतं जानाति तर्हि “मा रूसह मा तूसह” इत्येकं पदं किं न जानाति । तत एव ज्ञायतेऽष्टप्रवचन-मातृप्रमाणमेव भावश्रुतं, द्रव्यश्रुतं पुनः किमपि नास्ति । इदन्तु व्याख्यान-मस्माभिर्न कल्पितमेव । तच्चारित्रिसारादिग्रन्थेष्वपि भणितमास्ते । तथाहि—अन्त-र्मुहूर्ताद्ूर्ध्वं ये केवलज्ञानमुत्पादयन्ति ते क्षीणकषायगुणस्थानवर्त्तिनो निर्ग्रथसज्ञा ऋषयो भण्यन्ते । तेषां चोत्कर्षेण चतुर्दशपूर्वादिश्रुतं भवति, जघन्येन पुनः पञ्च-समितित्रिगुप्तिमात्रमेवेति ।

अथ मतं—मोक्षार्थं ध्यानं क्रियते न चाद्य काले मोक्षोऽस्ति; ध्यानेन किं प्रयोजनम् ? नैवं, अद्य कालेऽपि परम्परया मोक्षोऽस्ति । कथमिति चेत् ? स्वशुद्धात्मभावनावलेन संसारस्थितिं स्तोकां कृत्वा देवलोकं गच्छति, तस्मादागत्य मनुष्यभवे रत्नत्रयभावनां लब्ध्वा शीघ्र मोक्षं गच्छतीति । येऽपि भरतसगरराम-

प्रश्नः—श्री शिवभूति मुनि पाच समिति और तीन गुप्तियोंका प्रतिपादन करनेवाले द्रव्यश्रुतको जानते थे और भावश्रुत उन्हें पूर्णरूपसे था ?

उत्तरः—ऐसा नहीं कहना चाहिये; क्योंकि यदि वे पाच समिति और तीन गुप्तियोंके प्रतिपादक द्रव्यश्रुतको जानते होते तो ‘द्वेष न कर, राग न कर,’ इस एक पदको क्यों नहीं जानते ? अतः ज्ञात होता है कि उनको पाच समिति और तीन गुप्तिरूप आठ प्रवचनमाताप्रमाण ही भावश्रुत ज्ञान था और द्रव्यश्रुत कुछ भी नहीं था । यह व्याख्यान हमने कल्पित नहीं किया है, वह चारित्रिसार आदि शास्त्रोंमें भी कहा गया है । वह इसप्रकार है —अतर्मुहूर्तमे जो केवलज्ञान प्राप्त करते हैं वे क्षीणकषाय गुणस्थानवर्त्ति ‘निर्ग्रथ’ नामक ऋषि कहलाते हैं । उन्हें उत्कृष्टरूपसे चौदह पूर्व श्रुतज्ञान होता है और जघन्यरूपसे पाच समिति और तीन गुप्ति जितना ही श्रुतज्ञान होता है ।

प्रश्नः—मोक्षके लिये ध्यान किया जाता है और इस कालमे मोक्ष तो नहीं है; तो ध्यान करनेका क्या प्रयोजन है ?

उत्तरः—ऐसा नहीं है, क्योंकि इसकालमें भी परंपरासे मोक्ष है ।

प्रश्नः—परंपरासे मोक्ष किस प्रकार है ?

उत्तरः—ध्यान करनेवाला (ध्याता) स्वशुद्धात्माकी भावनाके बलसे संसारकी स्थिति अल्प कर स्वर्गमे जाता है, वहासे आकर मनुष्यभवमे रत्नत्रयकी भावना प्राप्त कर शीघ्र मोक्ष जाता है, जो भरत, सगर, रामचंद्र, पांडव आदि मोक्ष गये

पाण्डवादयो मोक्षं गतास्तेपि पूर्वभवे भेदाभेदरत्नत्रयभावनया संसारस्थितिं स्तोकां कृत्वा पश्चान्मोक्षं गताः । तद्भवे सर्वेषां मोक्षो भवतीति नियमो नास्ति । एवमुक्त-प्रकारेण अल्पश्रुतेनापि ध्यानं भवतीति ज्ञात्वा किं कर्तव्यम्—“वधवन्धच्छेदादे-द्वेषाद्रागाच्च परकलत्रादेः । आध्यानमपध्यानं शासति जिनशासने विशदाः ॥१॥ संकल्पकल्पतरुसंश्रयणात्त्वदीयं चेतो निमज्जति मनोरथसागरेऽस्मिन् । तत्रार्थतः तव चकास्ति न किंचनापि पक्षेऽपरं भवति कल्मषसंश्रयस्य ॥२॥ दौर्विध्य-दग्धमनसोऽन्तरुपात्तमुक्तेश्चित्तं यथोल्लसति ते स्फुरितोत्तरङ्गम् । धाम्नि स्फुरेद्यदि तथा परमात्मसंज्ञे कौतस्कुती तव भवेद्विफला प्रसूतिः ॥३॥ कंखिद कलुसिदभूतो कामभोगेहिं मुच्छिदो जीवो । ण य भुंजंतो भोगे बंधदि भावेण कम्माणि ॥४॥” इत्याद्यपध्यानंत्यक्त्वा—“ममत्तिं परिवज्जामि णिम्ममत्तिमुवट्ठिदो । आलंघणं च मे

है वे भी पूर्वभवमें भेदाभेदरत्नत्रयकी भावनासे संसारकी स्थिति घटाकर फिर (पश्चात्) मोक्ष गये हैं । उसी भवमें सबको मोक्ष होता है ऐसा नियम नहीं है ।

उपरोक्त कथन अनुसार अल्प श्रुतज्ञानसे भी ध्यान होता है यह जानकर क्या करना ? [दुर्ध्यान छोड़कर ध्यान करना ऐसा समझाया जाता है ।] “द्वेषसे” किसीको मारने, बाधने या अंग काटने और रागसे परस्त्री आदिका जो चित्तवन है उसे निर्मलबुद्धिके धारक आचार्य जिनमतमें अपध्यान कहते हैं ॥१॥ ^२हे जीव, संकल्परूपी कल्पवृक्षका आश्रय करनेसे तेरा चित्त इस मनोरथरूपी सागरमें डूब जाता है; वास्तवमें उन विकल्पोंमें तेरा कोई भी प्रयोजन सिद्ध नहीं होता है, बल्कि कलुषताका आश्रय करने वालोका अकल्याण होता है ॥२॥ जिस^३ प्रकार दुर्भाग्यसे दुःखी मनवाले तेरे अंतरमें भोग भोगनेकी इच्छासे व्यर्थ तरंगे उठा करती है उसी प्रकार यदि वह मन परमात्मरूप स्थानमें स्फुरायमान हो तो तेरा जन्म कैसे निष्फल हो ? ॥३॥ आकांक्षासे^४ कलुषित हुआ और कामभोगोंमें मूर्च्छित ऐसा यह जीव भोग न भोगता हुआ भी भावसे कर्म बांधता है ॥४॥ इत्यादिरूप (उक्त गाथाओमें कथित) दुर्ध्यानको छोड़कर (ऐसा करना—) ^५निर्ममत्वमें स्थिर होकर, मैं अन्य पदार्थोंमें ममत्व बुद्धिका त्याग करता हूं; मुझे आत्माका ही

१. श्रीरत्नकरंड श्रावकाचार गाथा—७८

२. श्रीयशस्तिलक चम्पू अ० २ गाथा—१३२

३. श्रीयशस्तिलक चम्पू अ० २ गाथा—१३४

४. श्रीमूलाचार अ० २ गाथा—८१

५. श्रीनियमसार गाथा—६६

आदा अवसेसाइं वोसरे ॥१॥ आदा खु मज्झ णाणे आदा मे दंसणे चरित्ते य ।
आदा पच्चक्खाणे आदा मे संवरे जोगे ॥२॥ एगो मे सस्सदो अप्पा णाणदंसण-
लक्खणो । सेसा मे वाहिरा भावा सव्वे संजोगलक्खणा ॥३॥” इत्यादिसार-
पदानि गृहीत्वा च ध्यानं कर्त्तव्यमिति ।

अथ मोक्षविषये पुनरपि नयविचारः कथ्यते । तथा हि—मोक्षस्तावत् बंध-
पूर्वकः । तथाचोक्तं—“मुक्तश्चेत् प्राक्भवेद्बन्धो नो बन्धो मोचनं कथम् । अबन्धे
मोचनं नैव मुञ्चेरर्थो निरर्थकः ॥१॥” बंधश्च शुद्धनिश्चयनयेन नास्ति, तथा बंध-
पूर्वको मोक्षोऽपि । यदि पुनः शुद्धनिश्चयेन बंधो भवति तदा सर्वदैव बंध
एव, मोक्षो नास्ति । किंच—यथा शृङ्खलावद्धपुरुषस्य बंधच्छेदकारणभूतभावमोक्ष-
स्थानीयं बंधच्छेदकारणभूतं पौरुषं पुरुषस्वरूपं न भवति, तथैव शृङ्खलापुरुषयो-
र्यद्द्रव्यमोक्षस्थानीयं पृथक्करणं तदपि पुरुषस्वरूपं न भवति । किंतु ताभ्यां भिन्नं

अवलंबन है, अन्य सर्वका मैं त्याग करता हू ॥१॥ मेरा^१ आत्मा ही दर्शन है,
आत्मा ही ज्ञान है, आत्मा ही चारित्र है, आत्मा ही प्रत्याख्यान है, आत्मा ही
सवर है और आत्मा ही योग है ॥२॥ ज्ञानदर्शनलक्षणयुक्त^२ एक मेरा आत्मा
ही शाश्वत है और अन्य सर्व सयोगलक्षणयुक्त भाव मेरेसे बाह्य है ॥३॥ इत्यादि
सारभूत पदोका ग्रहण कर ध्यान करना ।

अब, मोक्षके विषयमे पुन नय-विचार कहा जाता है—प्रथम तो मोक्ष
बधपूर्वक है । वही कहा है—“^३यदि जीव मुक्त है तो इस जीवको पहले बध
अवश्य होना चाहिये । क्योंकि यदि बध नहीं हो तो मोक्ष किसप्रकार हो सकता
है ? अबधकी (जो बधा नहीं हो उसकी) मुक्ति नहीं होती तो मुञ्च् धातुका
प्रयोग ही निरर्थक है ।” शुद्ध निश्चयनयसे बंध नहीं है तथा बंधपूर्वक मोक्ष भी
नहीं है । यदि शुद्ध निश्चयनयसे बध हो तो सदा बध ही रहे, मोक्ष होगा ही
नहीं । विशेष —जिस प्रकार साकलसे बधे पुरुषको, बधनाशके कारणभूत भाव-
मोक्षस्थानीय (बधको छेदनेका कारणभूत जो भावमोक्ष उसके समान) सांकलके
बधनको छेदनेका कारणभूत जो उद्यम है वह पुरुषका स्वरूप नहीं है और
द्रव्यमोक्षस्थानीय जो साकल और पुरुषका पृथक्करण (अलग होना) वह भी

१ श्री नियमसार गाथा-१००

२ श्री नियमसार गाथा-१०२

३ श्री परमात्म प्रकाश अ० १ गाथा-५६ टीका

यद्दृष्टं हस्तपादादिरूपं तदेव पुरुषस्वरूपम् । तथैव शुद्धोपयोगलक्षणं भावमोक्ष-
स्वरूपं शुद्धनिश्चयेन जीवस्वरूपं न भवति. तथैव तेन साध्यं यज्जीवकर्मप्रदेशयोः
पृथक्करणं द्रव्यमोक्षरूपं तदपि जीवस्वभावो न भवति; किंतु ताभ्यां भिन्नं
यदनन्तज्ञानादिगुणस्वभावं मूलभूतं तदेव शुद्धजीवस्वरूपमिति । अयमत्रार्थः—
यथा विवक्षितैकदेशशुद्धनिश्चयेन पूर्वं मोक्षमार्गो व्याख्यातस्तथा पर्यायमोक्षरूपो
मोक्षोऽपि, न च शुद्धनिश्चयनयेनेति । यस्तु शुद्धद्रव्यशक्तिरूपः शुद्धपारिणामिक-
परमभावलक्षणपरमनिश्चयमोक्षः, स च पूर्वमेव जीवे तिष्ठतीदानीं भविष्यतीत्येवं न ।
स एव रागादिविकल्परहिते मोक्षकारणभूते ध्यानभावनापर्याये ध्येयो भवति, न
च ध्यानभावनापर्यायरूपः । यदि पुनरेकान्तेन द्रव्यार्थिकनयेनापि स एव मोक्ष-
कारणभूतो ध्यानभावना पर्यायो भण्यते तर्हि द्रव्यपर्यायरूपधर्मद्वयाधारभूतस्य जीव-
धर्मिणो मोक्षपर्याये जाते सति यथा ध्यानभावनापर्यायरूपेण विनाशो भवति,
तथा ध्येयभूतस्य जीवस्य शुद्धपारिणामिकभावलक्षणद्रव्यरूपेणापि विनाशः प्राप्नोति,

पुरुषका स्वरूप नहीं है, परन्तु उन दोनोसे (उद्यमसे और सांकलसे पुरुषके
पृथक्करणसे) भिन्न जो हस्त-पादादिरूप देखा जाता है वही पुरुषका स्वरूप है,
उसीप्रकार शुद्धोपयोग-लक्षणयुक्त भावमोक्षका स्वरूप वह शुद्धनिश्चयसे जीवका
स्वरूप नहीं है और उसके द्वारा साध्य जीव और कर्मके प्रदेशोके पृथक्करणरूप
(भिन्न होनेरूप) द्रव्यमोक्ष भी जीवका स्वभाव नहीं है, परन्तु उन दोनोसे
(भावमोक्षसे और द्रव्यमोक्षसे) भिन्न जो अनन्त ज्ञानादिगुणरूप स्वभाव है, मूलभूत
है, वही शुद्ध जीवका स्वरूप है । यहा तात्पर्य यह है कि जिसप्रकार विवक्षित-
एकदेश-शुद्धनिश्चयनयसे पहले मोक्षमार्गका व्याख्यान है उसीप्रकार पर्याय-मोक्षरूप
जो मोक्ष है वह भी एकदेश-शुद्ध-निश्चयनयसे है परन्तु शुद्ध निश्चयनयसे नहीं है ।
जो शुद्ध द्रव्यशक्तिरूप शुद्ध पारिणामिक-परमभाव लक्षणयुक्त परम निश्चयमोक्ष है
वह तो जीवमे पहिलेसे ही विद्यमान है, वह (परमनिश्चयमोक्ष) जीवमे अब होगा,
ऐसा नहीं है । वही परम निश्चयमोक्ष रागादि विकल्प रहित, मोक्षकी कारणभूत,
ध्यानभावना-पर्यायमे ध्येय होता है, परन्तु वह निश्चयमोक्ष ध्यानभावना पर्यायरूप
नहीं है । यदि एकातसे द्रव्यार्थिकनयसे भी उसे ही (परम निश्चय-मोक्षको ही)
मोक्षकी कारणभूत ध्यानभावना पर्याय कहा जाय तो द्रव्य और पर्यायरूप दो
धर्मोके आधारभूत जीव-धर्मोको मोक्षकी पर्याय प्रगट होनेपर जिसप्रकार
ध्यानभावनापर्यायरूपसे विनाश होता है उसीप्रकार ध्येयभूत जीवका शुद्धपारिणामिक-

न च द्रव्यरूपेण विनाशोऽस्ति । ततः स्थितं शुद्धपारिणामिकमेव बन्धमोक्षौ न भवत इति ।

अथात्मशब्दाद्यैः कथ्यते । “अत्” धातुः सातन्यगमनेऽर्थे वर्तते । गमन-
शब्देनात्र ज्ञानं भण्यते, “सर्वे गन्थर्था ज्ञानार्था” इति वचनात् । तेन कारणेन यथा-
सम्भवं ज्ञानमुद्यादिगुणेषु आगमन्तान् अतति वर्तते यः स आत्मा भण्यते । अथवा
शुभाशुभमनोवचनकायव्यापारैर्यथासम्भवं तीव्रमन्दादिरूपेण आगमन्तादतति वर्तते
यः स आत्मा । अथवा उत्पादव्ययव्ययैर्गमनमन्तादतति वर्तते यः स आत्मा ।

किञ्च—यथैकोऽपि चन्द्रमा नानाजलगटेषु दृश्यते तथैकोऽपि जीवो
नानाशरीरेषु निवृत्तानि यदस्ति तत् न वदते । कस्मादिति चेत्—चन्द्रकिरणोपाधि-
यजेन घटस्थजलगद्गला एव नानाचन्द्राकारेण परिणता, न चैकश्चन्द्रः । तत्र
दृष्टान्तमाह—यथा देवदत्तमुगोपाधियजेन नानादर्पणस्थपद्गला एव नानामुखा-
कारेण परिणता, न चैकं देवदत्तमुगं नानारूपेण परिणतम् । परिणमतीति चेत्—

भाष्येनवशयुक्तं द्रव्यरूपमेव भी विनाशो भोगा; परन्तु द्रव्यरूपसे तो जीवका विनाश
नहीं है । अतः सिद्ध हुआ कि 'शुद्ध पारिणामिकभावसे (जीवको) बंध और मोक्ष
नहीं है ।'

अथ, “आत्मा” शब्दका अर्थ कहते हैं —“अत्” धातुका अर्थ “सतत गमन”
है । ‘गमन’ शब्दका यहाँ “ज्ञान” अर्थ होता है क्योंकि “सर्व गतिरूप अर्थवाले
धातु ज्ञानरूप अर्थवाने होते हैं” ऐसा वचन है । इसकारण, यथासम्भव ज्ञान-
सुखादि गुणोंमें “आ” अर्थात् सर्वप्रकारसे “अतति” अर्थात् वर्तता है वह आत्मा है
अथवा शुभ-अशुभ मन-वचन-कायकी क्रिया द्वारा यथासम्भव तीव्र-मदादिरूपसे जो
“आ” अर्थात् पूर्णरूपसे “अतति” वर्तता है वह आत्मा है । अथवा उत्पाद, व्यय
और प्राणव्य इन तीनों धर्मों द्वारा जो “आ” अर्थात् पूर्णरूपसे “अतति” अर्थात्
वर्तता है वह आत्मा है ।

जिसप्रकार एक ही चन्द्रमा अनेक जलसे भरे घड़ोमें दिखाई पडता है उसी
प्रकार एक ही जीव अनेक शरीरोमें रहता है, ऐसा कुछ लोग कहते हैं परन्तु वह
घटित नहीं होता है । कैसे घटित नहीं होता है ? चन्द्रकी किरणरूप उपाधिके वश
घड़ेके जलके पुद्गल ही अनेक चन्द्रके आकाररूपसे परिणमित हुए हैं, एक चन्द्रमा
अनेकरूपसे परिणमित नहीं हुआ है । इस संबंधमें दृष्टांत कहते हैं:—जिसप्रकार
देवदत्तके मुखरूप उपाधिके वश अनेक दर्पणोंके पुद्गल ही अनेक मुखोंके आकाररूप
परिणमित हुए हैं, एक देवदत्तका मुख अनेकरूप परिणमित नहीं हुआ है । यदि

तर्हि दर्पणम्यप्रतिबिम्बं चैनन्यं प्राप्नोतीति, न च तथा । किन्तु यत्रैक एव जीवो भवति, तदैकजीवस्य सुखदुःखजीवितमरणादिके प्राप्ते तस्मिन्नेव क्षणे सर्वेषां जीवितमरणादिकं प्राप्नोति, न च तथा दृश्यते । अथवा ये वदन्ति यथैकोपि समुद्रः क्वापि क्षारजलः क्वापि मिष्टजलस्तथैकोऽपि जीवः सर्वदेहेषु तिष्ठतीति । तदपि न घटते । कथमिति चेत्—जलराशयपेक्षया तत्रैकत्वं, न च जलपुद्गलापेक्षया तत्रैकत्वम् । यदि जलपुद्गलापेक्षया भवत्येकत्वं तर्हि स्तोकजले गृहीते शेषजलं सहैव किन्नायाति । ततः स्थितं षोडशवर्णिकासुवर्णराशिवदनन्तज्ञानादिलक्षणं प्रत्येकं जीवराशिं प्रति, न चैकजीवापेक्षयैति ।

अध्यात्मशब्दस्यार्थः कथ्यते । मिथ्यात्वरगादिसमस्तविकल्पजालरूपपरिहारेण स्वशुद्धात्मन्यधि यदनुष्ठानं तदध्यात्ममिति । एवं ध्यानसामग्रीव्याख्यानोपसंहाररूपेण गाथा गता ॥ ५७ ॥

देवदत्तका मुख ही अनेक मुखरूपसे परिणमित होता हो तो दर्पणमे स्थित देवदत्तके मुखका प्रतिबिम्ब भी चेतन बन जाये, परन्तु ऐसा तो नहीं होता है । तथा, यदि एक ही जीव हो तो एक जीवको सुख-दुःख, जीवन-मरण आदि प्राप्त होनेपर उसी क्षण सब जीवोको जीवन-मरण प्राप्त होनेना चाहिये, परन्तु वैसा दिखाई नहीं पडता है । अथवा जो ऐसा कहते है कि 'एक ही समुद्र है वह कही खारे पानीवाला है, और कही मीठे पानीवाला है । उसीप्रकार एक ही जीव सब शरीरोमें विद्यमान है,' उनका यह कथन भी घटित नहीं होता है । कैसे घटित नहीं होता है ? समुद्रमे जलराशिकी अपेक्षासे एकता है, जलके कणोकी अपेक्षासे एकता नहीं है । यदि जलकणोकी अपेक्षासे एकता हो तो समुद्रमेंसे थोडासा जल ग्रहण करनेपर शेष सभी जल उसके साथ क्यों नहीं आ जाता है ? इसकारणसे सिद्ध होता है कि सोलह वर्ण वाले सोनेकी राशिकी भाति अनन्त ज्ञानादि लक्षणकी अपेक्षासे जीवराशिमे एकता है परन्तु एक जीवकी अपेक्षासे (समस्त जीवराशिमें एक ही जीव होनेकी अपेक्षासे) जीव राशिमे एकता नहीं है ।

अब, 'अध्यात्म' शब्दका अर्थ कहा जाता है . मिथ्यात्व, राग आदि समस्त विकल्पजालके त्यागसे स्वशुद्धात्मामे जो अनुष्ठान उसे 'अध्यात्म' कहते है ।

इसप्रकार ध्यानकी सामग्रीके व्याख्यानके उपसंहाररूपसे यह गाथा पूर्ण हुई ॥५७॥

अथौद्धत्यपरिहारं कथयति :—

द्ववसंगहमिणं मुणिणाहा दोससंचयचुदा सुदपुण्णा ।
सोधयंतु तणुसुत्तधरेण नेमिचन्द्रमुणिणा भणियंजं ॥५८॥

द्रव्यसंग्रहं इमं मुनिनाथाः दोषसंचयच्युताः श्रुतपूर्णाः ।

शोधयन्तु तनुश्रुतधरेण नेमिचन्द्रमुनिना भणितं यत् ॥५८॥

व्याख्या—“सोधयंतु” शुद्धं कुर्वन्तु । के कर्तारः ? “मुणिणाहा” मुनिनाथा मुनिप्रधानाः । किं विशिष्टाः ? “दोससंचयचुदा” निर्दोषपरमात्मनो विलक्षणा ये रागादिदोषास्तथैव च निर्दोषपरमात्मादितत्त्वपरिज्ञानविषये संशयविमोहविभ्रमास्तैश्च्युता रहिता दोषसंचयच्युताः । पुनरपि कथम्भूताः ? “सुदपुण्णा” वर्तमानपरमागमाभिधानद्रव्यश्रुतेन तथैव तदाधारोत्पन्ननिर्विकारस्वसम्बेदनज्ञानरूपभावश्रुतेन च पूर्णाः समग्राः श्रुतपूर्णाः । कं शोधयन्तु ? “द्ववसंगहमिणं” शुद्धबुद्धैकस्वभावपरमात्मादिद्रव्याणां संग्रहो द्रव्यसंग्रहस्तं द्रव्यसंग्रहाभिधानम्

अब, ग्रन्थकार अपने अभिमानके परिहारका कथन करते हैं —

गाथा-५८

गाथार्थः—अल्पश्रुतके धारक नेमिचन्द्र मुनिने जो यह द्रव्यसंग्रह रचा है उसका, दोषोंसे रहित और श्रुतज्ञानसे पूर्ण ऐसे आचार्य शोधन करे ।

टीकाः—“सोधयंतु” शुद्ध करे । कौन शुद्ध करे ? “मुणिणाहा” मुनिनाथ, मुनियोमे प्रधान, कैसे मुनिनाथ ? “दोससंचयचुदा” निर्दोष परमात्मासे विलक्षण जो रागादि दोष और निर्दोष परमात्मादि तत्त्वोंको जाननेमे जो संशय-विमोह-विभ्रमरूप दोष-उनसे रहित होनेसे जो ‘दोषसंचयच्युत’ है । तथा कैसे मुनिनाथ ? “सुदपुण्णा” वर्तमान परमागम नामक द्रव्यश्रुतसे और उस परमागमके आधारसे उत्पन्न निर्विकार-स्वसम्बेदनज्ञानरूप भावश्रुतसे परिपूर्ण होनेसे श्रुतपूर्ण है । (वे) किसको शुद्ध करे ? “द्ववसंगहमिणं” शुद्ध-बुद्ध-एकस्वभाव परमात्मा आदि द्रव्योंका

नेमिचन्द्र मुनि तनु श्रुत लियो, ग्रंथ द्रव्यसंग्रह मै कियो ।

जे महान मुनि बहु-श्रुत-धार, दोष-रहित ते सोधहु तार ॥५८॥

ग्रन्थमिमं प्रत्यक्षीभूतम् । किं विशिष्टं ? “भणियं जं” भणितः प्रतिपादितो यो ग्रन्थः । केन कर्तृभूतेन ? “णेमिचन्द्रमुणिणा” श्री नेमिचन्द्रमुनिना श्री नेमिचन्द्रसिद्धान्तिदेवाभिधानेन मुनिना सम्यग्दर्शनादिनिश्चयव्यवहाररूपपञ्चाचारोपेताचार्येण । कथम्भूतेन ? “तणुसुत्तधरेण” तनुश्रुतधरेण तनुश्रुतं स्तोकं श्रुतं तद्धरतीति तनुश्रुतधरस्तेन । इति क्रियाकारकसम्बन्धः । एवं ध्यानोपसंहारगाथात्रयेण, औद्धत्यपरिहारार्थं प्राकृतवृत्तेन च द्वितीयान्तराधिकारे तृतीयं स्थलं गतम् ॥५८॥ इत्यन्तराधिकारद्वयेन विंशतिगाथाभिर्भोक्षमार्गप्रतिपादकनामा तृतीयोऽधिकारः समाप्तः ।

अत्र ग्रन्थे “विवक्षितस्य सन्धिर्भवति” इति वचनात्पदानां सन्धिनियमो नास्ति । वाक्यानि च स्तोकस्तोकानि कृतानि सुखबोधनार्थम् । तथैव लिङ्गवचनक्रियाकारकसम्बन्धसमासविशेषणवाक्यसमाप्त्यादिदूषणं तथा च शुद्धात्मादिप्रतिपादनविषये विस्मृतिदूषणं च विद्वद्भिर्न ग्राह्यमिति ।

सग्रह वह द्रव्यसग्रह, ऐसे ‘द्रव्यसग्रह’ नामक इस—प्रत्यक्ष ग्रन्थको । कैसे द्रव्यसग्रह ग्रन्थको ? “भणियं जं” जिस ग्रन्थका प्रतिपादन किया गया है उसे । किसने प्रतिपादन किया है ? “णेमिचन्द्रमुणिणा” सम्यग्दर्शन आदि निश्चय-व्यवहाररूप पञ्चाचार सहित आचार्य श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव नामक मुनिने ।

कैसे नेमिचन्द्र मुनिने ? “तणुसुत्तधरेण” अल्पश्रुतधारीने । जो अल्पश्रुतको धारण करता है वह अल्पश्रुतधारी है । (उसने इस ग्रन्थका प्रतिपादन किया है ।) इसप्रकार क्रिया और कारकोका सबध है ।

इसप्रकार ध्यानके उपसहाररूप तीन गाथाओं द्वारा और उद्धतपनेके त्यागके लिये एक प्राकृत छदसे द्वितीय अन्तराधिकारमें तीसरा स्थल समाप्त हुआ ॥५८॥

इसप्रकार दो अन्तराधिकारों द्वारा बीस गाथाओं द्वारा मोक्षमार्गका प्रतिपादन तीसरा अधिकार समाप्त हुआ ।

इस ग्रन्थमें ‘विवक्षित विषयकी सधि होती है’ इस वचन अनुसार पदोंकी संधिका नियम नहीं है । (कही सधि की गई है, कही पर नहीं ।) सरलतासे बोध करानेके लिये वाक्य छोटे-छोटे बनाये हैं । लिग, वचन, क्रियाकारक संबध, समास, विशेषण और वाक्य समाप्ति आदि दोष और शुद्धात्मा आदि तत्त्वोंके कथनमें विस्मरणका दोष विद्वानों द्वारा ग्राह्य नहीं है ।

१. निश्चय-व्यवहार पञ्चाचार एक साथ भावलिगी मुनियोंको ही होते हैं, इसप्रकार यहा स्पष्ट किया है ।

एवं पूर्वोक्तप्रकारेण “जीवमजीवं द्रव्यं” इत्यादिसप्तविंशतिगाथाभिः षट्-
द्रव्यपञ्चास्तिकायप्रतिपादकनामा प्रथमोधिकारः । तदनन्तरं “आसव वन्धन”
इत्येकादशगाथाभिः सप्ततत्त्वनवपदार्थप्रतिपादकनामा द्वितीयोऽधिकारः । ततः परं
“सम्मद्दसण” इत्यादिविंशतिगाथाभिर्मोक्षमार्गप्रतिपादकनामा तृतीयोऽधिकारः ॥

इत्यधिकारत्रयेनाष्टाधिकपञ्चाशत्सूत्रैः श्रीनेमिचन्द्रसिद्धान्तिदेवैर्विरचितस्य
द्रव्यसंग्रहाभिधानग्रन्थस्य सम्बन्धिनी श्रीब्रह्मदेवकृतवृत्तिः समाप्ता ।

इस भाति पूर्वोक्त प्रकारसे “जीवमजीवं द्रव्यं” इत्यादि सत्ताईस गाथाओ
द्वारा षट्द्रव्य-पञ्चास्तिकायप्रतिपादक नामक प्रथम अधिकार है । तत्पश्चात्
“आसववन्धन” इत्यादि ग्यारह गाथाओ द्वारा साततत्त्व-नवपदार्थ प्रतिपादक
नामक दूसरा अधिकार है । तत्पश्चात् “सम्मद्दसण” इत्यादि बीस गाथाओ द्वारा
मोक्षमार्ग प्रतिपादक नामक तीसरा अधिकार है ।

इसप्रकार श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव विरचित तीन अधिकारोकी अठारन
गाथाओं युक्त द्रव्यसंग्रह नामक ग्रन्थकी श्री ब्रह्मदेवकृत सस्कृत टीकाका
गुजरातीमेंसे हिन्दी अनुवाद समाप्त हुआ ।



-: लघुद्रव्यसंग्रह :-

—५—

छद्म्व पंच अत्थी सत्त वि तच्चाणि णव पयत्था य ।
भंगुप्पाय-धुवत्ता णिदिट्ठा जेण सो जिणो जयउ ॥१॥

अर्थः—जिन्होने छ द्रव्य, पाच अस्तिकाय, सात तत्त्व, नव पदार्थ और उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यका निर्देश किया है वे श्री जिनेन्द्रदेव जयवंत रहो ॥१॥

जीवो पुग्गल धम्माऽधम्मागासो तहेव कालो य ।
दब्बाणि कालरहिया पदेश बाहुल्लदो अत्थिकाया य ॥२॥

अर्थ—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल (ये छह) द्रव्य है, कालके अतिरिक्त शेष पाच द्रव्य, बहुप्रदेशी होनेके कारण अस्तिकाय है ॥२॥

जीवाजीवासवबंध संवरो णिज्जरा तहा मोक्खो ।
तच्चाणि सत्त एदे सपुण्ण-पावा पयत्था य ॥३॥

अर्थः—जीव, अजीव, आस्रव, बध, सवर, निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्त्व है; ये सात तत्त्व पुण्य और पाप सहित नव पदार्थ है ॥३॥

जीवो होइ अमुत्तो सदेहमित्तो सचेयणा कत्ता ।
भोत्ता सो पुण दुविहो सिद्धो संसारिओ णाणा ॥४॥

अर्थः—जीव (द्रव्य) अमूर्तिक, स्वदेह-प्रमाण, सचेतन, कर्ता और भोक्ता है । जीव दो प्रकारके है, सिद्ध और संसारी; संसारी जीव अनेक प्रकारके है ॥४॥

अरसमरूवमगंधं अव्वत्तं चेयणागुणमसहं ।
जाण अलिंगगहणं जीवमणिदिट्ठ-संट्ठाणं ॥५॥

अर्थः—जीवको रसरहित, रूपरहित, गंधरहित, अव्यक्त, शब्दरहित, लिङ्ग द्वारा जिसका ग्रहण न हो सके ऐसा, जिसका सस्थान निर्दिष्ट नहीं है ऐसा और चेतना गुणयुक्त जानना ॥५॥

वर्ण-रस गंध-फासा विज्जंते जस्स जिणवरुद्धिडा ।
मुत्तो पुग्गलकाओ पुढवी पहुदी हु सो सोढा ॥६॥

अर्थः—जिसमें वर्ण, रस, गंध और स्पर्श विद्यमान है वह भूर्तिक पुद्गलकाय पृथ्वी आदि छ प्रकारकी श्री जिनेद्रदेवने कही है ॥६॥

पुढवी जलं च छाया चउरिंदियविसय कम्म परमाणू ।
छव्विहभेयं भणियं पुग्गलद्वं जिणिंदेहिं ॥७॥

अर्थः—पृथ्वी, जल, छाया, (नेत्रेन्द्रियके अतिरिक्त) चार इन्द्रियोके विषय, कर्म वर्गणा और परमाणु, श्री जिनेद्रदेवने पुद्गल द्रव्य (उपरोक्त) छह प्रकारका कहा है ॥७॥

गईपरिणयाण धम्मो पुग्गलजीवाण गमण-सहयारी ।
तोयं जह मच्छाणं अच्छंता शेव सो शेई ॥८॥

अर्थः—गतिरूप परिणमित पुद्गल और जीवोंको गमनमे सहकारी धर्मद्रव्य है, जिसप्रकार मछलीको (गमन करनेमें) जल सहकारी है । गमन नहीं करनेवाले (पुद्गल और जीवों) को वह (-धर्मद्रव्य) गति नहीं कराता है ॥८॥

ठाणजुयाण अधम्मो पुग्गलजीवाण ठाण-सहयारी ।
छाया जह पहियाणं गच्छंता शेव सो धरई ॥९॥

अर्थः—स्थित होते हुए पुद्गल और जीवोंको स्थिर होनेमे सहकारी अधर्म-द्रव्य है; जिसप्रकार छाया यात्रियोंको स्थिर होनेमें सहकारी है । गमन करते हुए जीव और पुद्गलको वह (अधर्म द्रव्य) स्थिर नहीं करता है ॥९॥

अवगासदाणजोग्गं जीवादीणं वियाण आयासं ।
जेण्हं लोगागासं अल्लोगागासमिदि दुविहं ॥१०॥

अर्थः—जो जीव आदि द्रव्योंको अवकाश देनेके योग्य है उसे (श्री त्रिनेद्रदेव द्वारा कथित) आकाशद्रव्य जानो । जिसके लोकाकाश और अलोकाकाश ऐसे दो भेद है ॥१०॥

द्रव्यपरियट्टजादो जो सो कालो हवेइ ववहारो ।
लोगागासपएसो एक्केक्काणु य परमट्ठो ॥११॥

अर्थः—जो द्रव्योके परिवर्तनसे उत्पन्न होता है वह व्यवहारकाल है; लोकाकाशमें प्रत्येक प्रदेश पर एक-एक कालाणु स्थित है वह परमार्थ (निश्चय) काल है ॥११॥

लोयायासपदेसे एककेकके जे द्विया हु एककेकका ।
रयणाणं रासीमिव ते कालाणु असंखदव्वाणि ॥१२॥

अर्थः—जो लोकाकाशके एक-एक प्रदेश पर रत्नोकी राशिकी भाति एक-एक (कालाणु) स्थित है, वे कालाणु असख्यात द्रव्य है ॥१२॥

संखातीदा जीवे धम्माऽधम्मे अणत आयासे ।
संखादासंखादा मुत्ति पदेसाउ सति णो काले ॥१३॥

अर्थः—एक जीवद्रव्यमे, धर्मद्रव्यमे और अधर्मद्रव्यमे असंख्यात प्रदेश है, आकाशद्रव्यमे अनंत प्रदेश है, पुद्गलमें संख्यात, असख्यात और अनंत प्रदेश है, कालमें प्रदेश नहीं है । (कालाणु एक प्रदेशी है, उसमे शक्ति अथवा व्यक्तिकी अपेक्षासे बहुप्रदेशीपना नहीं है ।) ॥१३॥

जावदियं आघासं अविभागीपुग्गलणुवट्टद्धं ।
तं खु पदेसं जाणे सव्वाणुट्ठाणदाणरिहं ॥१४॥

अर्थः—अविभागी पुद्गल अणु द्वारा जितना आकाश रोका जाये उसे प्रदेश जानो । वह प्रदेश सब (पुद्गल) परमाणुओको स्थान देनेमें समर्थ है ॥१४॥

जीवो णाणी पुग्गल-धम्माऽधम्मायासा तहेव कालो य ।
अजीवा जिणभणिओ ण हु मण्णइ जो हु सो मिच्चो ॥१५॥

अर्थः—जीव ज्ञानी है, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल अजीव है, इसप्रकार श्री जिनेन्द्रदेवने कहा है, जो ऐसा नहीं मानता है वह मिथ्यादृष्टि है ॥१५॥

मिच्चत्तं हिंसाई कसाय-जोगा य आसवो बंधो ।
सकसाई जं जीवो परिगिण्हइ पोग्गलं विविहं ॥१६॥

अर्थः—मिथ्यात्व, हिंसा आदि (अव्रत), कषाय और योगोसे आस्रव होता है; कषाय सहित जीव विविध प्रकारके जिन पुद्गलोको ग्रहण करता है वह बध है ॥१६॥

मिच्छताईचाओ संवर जिण भणइ णिज्जरादेसे ।
कम्माण खओ सो पुण अहिलसिओ अणहिलसिओ य ॥१७॥

अर्थः—श्री जिनेन्द्रदेवने मिथ्यात्व आदिके त्यागको संवर कहा है, कर्मोंका एकदेश क्षय वह निर्जरा है और वह (निर्जरा) अभिलाषा सहित और अभिलाषा रहित (-सकाम, अकाम) इस भांति दो प्रकारकी है ॥१७॥

कम्म बंधण-बद्धस्य सब्भूदस्संतरप्पणो ।
सव्वकम्म-विणिम्मुको मोक्खो होइ जिणेडिदो ॥१८॥

अर्थः—कर्मोंके बंधनसे बद्ध सद्भूत (प्रशस्त) अतरात्माका जो सर्वकर्मोंसे (पूर्णरूपसे) मुक्त होना वह मोक्ष है—इसप्रकार श्री जिनेन्द्रदेवने वर्णन किया है ॥१८॥

सादाऽऽउ-णामगोदाणं पयडीओ सुहा हवे ।
पुण्ण तित्थयरादी अण्णं पावं तु आगमे ॥१९॥

अर्थः—शांता वेदनीय, शुभ आयु, शुभ नाम, शुभ गोत्र और तीर्थंकर आदि प्रकृतियां पुण्य प्रकृतियां हैं; शेष अन्य पाप-प्रकृतियां हैं इसप्रकार परमागममे कहा है ॥१९॥

णासइ णर-पज्जाओ उप्पज्जइ देवपज्जओ तत्थ ।
जीवो स एव सव्वस्सभंगुप्पाया धुवा एव ॥२०॥

अर्थः—मनुष्य पर्याय नष्ट होती है, देव पर्याय उत्पन्न होती है और जीव वहका वही रहता है, इसप्रकार सर्वद्रव्योको उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य होता है ॥२०॥

उप्पादप्पद्धंसा वत्थूणं होंति पज्जय-णाएण (णयण) ।
दव्वट्टिएण णिच्चा बोधव्वा सव्वजिणवुत्ता ॥२१॥

अर्थः—वस्तुमे उत्पाद और व्यय पर्यायनयसे होता है, द्रव्यदृष्टिमे वस्तु नित्य है ऐसा जानना; श्री सर्वज्ञ जिनेन्द्रदेवने ऐसा कहा है ॥२१॥

एवं अहिगयसुत्तो सट्टाणजुदो मणो णिरुंभिता ।
छंडउ रायं रोसं जइ इज्जइ कम्मणो णास (णासं) ॥२२॥

अर्थः—यदि कर्मोंका नाश करना चाहते हो तो उसके अनुसार सूत्रका ज्ञान होकर, स्वयमे स्थित रहकर और मनको रोककर राग और द्वेषको छोड़ो ॥२२॥

विसणसु पवडुंतं चित्तं धारेत्तु अप्पणो अप्पा ।
झायइ अप्पाणेणं जो सो पावेइ खलु सेयं ॥२३॥

अर्थः—जो आत्मा, विषयोमें प्रवर्तते हुए मनको रोककर, अपने आत्माका आत्मा द्वारा ध्यान करता है, वह वास्तवमें सुख प्राप्त करता है ॥२३॥

सम्मं जीवादीया णच्चा सम्मं सुफित्तिदा जेहिं ।
मोहगयकेसरीणं णमो णमो ठाण साहूणं ॥२४॥

अर्थः—जीवादिको सम्यक् प्रकारसे जानकर, जिन्होंने उन जीवादिका यथार्थ वर्णन किया है, जो मोहरूपी गजके हाथीके लिए केसरी (सिंह) के समान हैं उन साधुओंको हमारा नमस्कार हो, नमस्कार हो ॥२४॥

सोमच्छलेण रइया पयत्थ-लक्खणकराउ गाहाओ ।
भव्वुवयारणिमित्तं गणिणा सिरिणेमिचदेण ॥२५॥

अर्थः—श्री सोमश्रेष्ठीके निमित्तसे, भव्य जीवोके उपकारके लिए श्री नेमिचन्द्र आचार्यदेवने पदार्थोके लक्षण बतलानेवाली गाथाये रची है ॥२५॥



अकारादिक्रमेण बृहद्द्रव्यसंग्रहस्य गाथासूची

गाथा-आदिपद	गा.सं	पृ सं	गाथा-आदिपद	गा सं.	पृ सं.
अज्जीवो पुण गेओ	१५	५८	द्वसगहमिण मुणिराहा	५८	२६९
अट्टु चट्टु णाण दसण	६	२१	दुविह पि मोक्खहेउ	४७	२२५
अणुगुरुदेहपमाणो	१०	२९	दसणराणपहाणे	५२	२४७
अवगासदारणजोग	१९	६६	दसणराणसमग्ग	५४	२४९
असुहादो विणिवित्ती	४५	२१९	दसणपुव्व णाण	४४	२१३
आसवदि जेण कम्म	२६	९९	धम्माधम्मा कालो	२०	६७
आसववधणसवर	२८	९७	पणतीससोलच्छप्पण	४९	२३३
उवओगो दुवियप्पो	४	१५	पयडिट्ठिदिअणुभाग	३३	१०५
एयपदेसो वि अणू	३६	८३	पुग्गलकम्मादीण	८	२५
एव छब्भेयमिद	२३	९८	पुढविजलतेयवाउ	११	३४
गइपरिणयाण धम्मो	१७	६३	वज्झदि कम्म जेण दु	३२	१०४
चेदणपरिणामो जो	३४	१०८	बहिरब्भतरकिरिया	४६	२२३
जह कालेण तवेण य	३६	१०१	मग्गणगुणठाणेहि य	१३	३८
जावदिय आयास	२७	८५	मा चिट्ठह मा जपह	५६	२५४
जीवमजीव द्व्व	१	४	मा मुज्झह मा रज्जह	४८	२२६
जीवादीसद्दहण	४१	१८७	मिच्छत्ताविरदिपमाद	३०	१००
जीवो उवओगमओ	२	८	रयणत्तम ण वट्ठइ	४०	१८५
जो रयणत्तयजुत्तो	५३	२४८	लोयायासपदेसे	२२	७३
ज किंचिवि चिततो	५५	२५२	वण्ण रस पच गधा	७	२३
ज सामण्ण गहण	४३	२११	वदसमिदीगुत्तीओ	३५	११४
ठाणजुदारण अधम्मो	१८	६५	ववहारा सुहदुक्ख	९	२७
णट्टुचट्टुघाइकम्मो	५०	२३७	सद्दो बधो सुहमो	१६	६०
णट्टुट्टुकम्मदेहो	५१	२४४	समणा अमणा णेया	१२	३५
णाणावरणादीण	३१	१०३	सव्वस्स कम्मणो जो	३७	१७४
णाण अट्टुवियप्प	५	१७	सुहअसुहभावजुत्ता	३८	१७८
णिककाम्मा अट्टुगुणा	१४	४९	सति जदो तेणेदे	२४	७८
तवसुदवदव चेदा	५७	२५७	सम्मदसणराण	३९	१८३
तिक्काले चट्टुपाणा	३	१२	ससयविमोहविट्ठम	४२	२०५
द्व्वपरिवट्टुरूवो	२१	६९	होति असखा जीवे	२५	८१

संस्कृतटीकायामुक्तानां पद्यादीनां वर्णानुक्रमसूची



पृष्ठ	उक्त पद्य	अन्य ग्रन्थ
१३७	अच्छि गिमीलणमेत्त	त्रि सा. २०७
२६२	अज्जवित्तिरयण	मो प. ७७
१२४	अत्थि अणता जीवा	प. ख. १/२७१ " ४/४७७ गो जी १९६ मूला १२/१६२
२६२	अत्रेदानी निषेधन्ति	त अ. ८३
२५९	अपुण्यमव्रतै पुण्य	समा. ८३
२५९	अव्रतानि परित्यज्य	समा. ८४
२३४	अरिहता असरीरा	भा प. ६२७टी
२५१	अरूहासिद्धा इरया	वा अ. १२ मो.पा. १०४
१६४	अशुभपरिणाम बहुलता	
१७०	असिदिसद किरियाण	गो.क ८७६
१२८	आत्मा नदी सयमतोय	हि उ पृ. १२८
१७५	आत्मोपदान सिद्ध	सि भ ७
२६५	आदा खु मज्झ	भा.पा. ५८ नि.सा १०० स. सा १५ क्षेपक
३७	आहार सरीरिदिय	गो जी. ११८ प.ख २/४१७
१६०	इगत्तीस सत्त चत्तारि	प.ख ७/१३१ ति प ८/१५९
१६४	इत्यादि दुर्लभरूपा	प प्र ९ टी.
३७	इदियकाया ऊणिय	गो जी १३१
१५५-५६	इदुरवीदो रिक्खा	त्रि.सा ४०४
२५०	उद्योतनमुद्योगो	भ आ. २ छाया
१७९	उद्धम मिथ्यात्वविप	
३९	उवसत खीणमोहो	गो जी १०
८६	एगवणिगोद नरोरे	प.ख १/२७०, ३०४ " ४/४७८ गो जी १६५ मूला. १२/१६३

पृष्ठ	उक्त पद्य	अन्य ग्रन्थ
२६५	एगो मे सस्वो	भा.पा. ५९ नि सा. १०२ मूला २/४८ ष.ख. ६/९ प ख ६/९८
१०२	एयतबुद्ध दरसी	गो जी. १६
८६	ओगाढगाढ गिच्चिदो	पचा १६४
७३-२०४	ओजस्तेजो विद्या	र.आ. ३६
२६४	कखिद कलुसिद मूला.	२/८१
७७	किं पल्लविण्ण	वा.अ ९०
१७७	खयउवसमियविसोही	गो.जी. ६५० ष ख. ६/१३९, २०५ ल.सा. ३ भ आ २०७६
४४	इदियेसु काये	गो जी १४१
४८	गुणजीवापज्जत्ती	गो जी. २
२३६	गुप्तेन्द्रियमनाध्याता	त अ. ३८
१७४	चक्खुस्सदसणस्स	भ आ. १२
२४७	छत्तीसगुण समग्गे	भा स. ३७७
१२८	जन्मना जायते शूद्र	१३८
१५१	ज अण्णाणी कम्म	प्र.सा. २२८
१७३		प ख १३/२८१ म अ. ११०
१२८	जीवो वह्हा जीवहि	भ आ. ८७७
१७०	जोगा पयडिपदेसा	गो क २५७
२०४	ज्योतिभविन भौमेपु	सु र. ८२९ कप स. १/२९८
१५३	णउदुत्तरसत्तयसा	त्रि सा ३३२
९६	ण वि उप्पज्जई	प प्र. १/६८
१६५	णिच्चदग्घाउमत्त य	गो जी ८९
१३६	णिरयादो गिस्मपिदो	त्रि मा २०३
६२	तत वीणादिक	पचा ता. ७६ टी
१६८	तोस वामो जम्मे	गो.जी. ४७२

पृष्ठ	उक्त पद्य	अन्य ग्रन्थ
४१	दसरा वय सामाह्य	प ख १/१७३ ष ख. ९/२०९ गो जी ४७६
३७	दस सण्णीण पाणा	गो जी १३२ प ख ४१८
८७	दुष्णिण य एय एय	वसु २/२४
२६४	दौविध्यदग्धमनसो	य च २/१३४
१६६	धन्या ये प्रतिबुद्धा धर्मो	
१३१	धम्मे य धम्म फलह्मि	
६	नास्तिकत्व परिहार	पचा ता १ टी
१७९	पञ्चमहाव्रत रक्षा	
२६१	पञ्चमुष्टिभिस्तपाट्य	
१०६	पडपडिहारसिमजा	गो क २१
१०४	परा एव दु अट्टवीसा	सि भ. ८
२३२	पदस्थ मत्र वाक्यस्थ	प प्र. १ टी. ष प्रा. पृ २३६
८७	परिणामि जीवमुत्त	वसु २३ मूला ७/४४
१४९	पुव्वस्स हु परिमाण	प ख १३/३०० ज प १३/१२
२४	बध पडि एयत	स सि २/७टी
२६१	भरहे दुस्समकाले	मो पा ७७
५	भवणालय चालीसा	आ सा १ टी
७	मङ्गलणिमित हेउ	प ख १/७ पचा ता १ टी. त्ति प. १/७
२६४	ममत्ति परिवज्जामि	भा पा ५७ नि सा ९९ मूला २/४५
३९	मिच्छोसासण मिस्सो	गो जी ९
२६५	मुक्तश्चेत् प्राक् भवेद्	प प्र ५९ टी.
१८०	मूढत्रय मदाश्रष्टौ	य च पृ ३२४ ज्ञान पृ. ९३ प प्रा.पृ. ३२ प पृ.प्र. १४३

पृष्ठ	उक्त पद्य	अन्य ग्रन्थ
३१	मूलसरीरमच्छिद्य	गो.जी ६६७
२६२	यत्पुनर्वज्रकायस्य	त अ. ८४
२४३	यस्यनास्ति स्वयप्रज्ञा	हि.उ पृ. १०५ मूला १०/४२
१७७	रयणादीवदिणयर	यो स. ५७
१३	वच्छरक्ख भव	पचा ता. २७ टी
२६४	वधबन्धच्छेदादे	र आ. ७८
१०२	विकहा तथा कसाया	ष ख १/१७८ गो जी ३४
२३८	विस्मयो जनन निद्रा	आ स्व. १६-१७ पु.उ ५.६ य च पृ १३४
२३२	विसयकसा ओगाढो	प्र सा १५८
३०-३१	वेयण कषाय वेउव्विया	गो जी ६६६ प ख ४/२९
२५८	वैराग्य तत्त्वविज्ञान	प प्र २/१९२ टी.
५५	शिव परमकल्याण	प प्र १/२० टी आ स्व २४
२०५	शेषेषु देवतिर्यक्षु	प स १/३०१
६	श्रेयो मार्गस्य ससिद्धि	आ परि २
१२२	सवको सहगम्	मूला १२/१४२
१२६	सग्ग तवेण सव्वो	मो पा २३
१६२	सण्णाओ य तिलेस्सा	पचा १४०
१५५	सदभिस भरणी अहा	त्रि मा ३९०
२६४	सकल्प कल्पतरु	य च २/१३२
२५०	समत्त सण्णाण	वा अ १३
५०	सम्मत्तणाण दसण	भा स ६४ वसु ५३७
१७६	सम्यग्दर्शनशुद्धा	र आ ३५
६५	सिद्धोऽह सुद्धोह	त सा २८
२२९	सूक्ष्म जिनोदित वाक्य	आ प. ५
१११	सोलस परा वीस	गो क ९४
२०४	सौधर्मादिष्वसख्या	अप स. १/३००
२०४	हेठिमद्वपुडवीण	गो जी. १२७
२३८	क्षुधातृपाभय	आ स्व. १५ पु उ. ४

* इन पद्योका रूपान्तर होने पर भी भावार्थ वही है ।

पारिभाषिक-शब्दसूची



शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ
(अ)		अनुप्रेक्षा	१२०
अकम्पनाचार्य	२०१	अनुभाग-बध	१०६, १०७, १०८, १७०
अकिञ्चित्कर हेतु	२४२	अनुमान	२४१, २४२
अगुरुलघु गुण	८९	अनुयोग	२०९
अगुरुलघुत्व	५०	अनैकान्तिक हेतु	२४३
अग्निभूत	१८९	अन्तःकृद्शाग	२०७
अका (देश)	१४७	अन्तरात्मा	५६, ५७
अगवाह्य (१४)	२०७	अन्तरित पदार्थ	२४१
अचरम	१२६, १०९	अन्यत्व अनुप्रेक्षा	१२६
अचक्षुदर्शन	१५, १६	अन्वय दृष्टात	२४१
अच्युत	१५८, १६२, १९६	अपध्यान	७६, २६७
अजीव	५८, ८८, ९३, ९८	अपराजीतानगरी	१४७, १४९
अजनचोर	१९४	अपवाद व्याख्यान	२०, २६२, २६७
अतिमुक्त	१९५	अपहृत समय	२२२
अधर्मद्रव्य ५८, ५९, ६५, ६६, ८७, ८८, ८९, ९०		अपायविचय	२२९
अधिकृत देव	६	अपूर्वकरण गुणस्थान	३९, १६९, २३०
अध्यात्म	२६८	अप्रमत्तसयत	३९, ११०, १६९
अध्यात्म भाषा ६, १७७, १८०, १८९, २३१		अप्रत्याख्यानानावरण	२२०
अध्रुव अनुप्रेक्षा	११९	अव्वहुल भाग	१३४
अनन्त सुख	५७	अभव्य	४६, ४७, ५६, १७७, १७८
अनन्तमति (स्त्री)	१९६	अभव्यसेन	१९०
अनन्त वीर्य	५१, ५९	अभाषात्मक शब्द	६१
अनक्षरात्मक	६०, ६१	अभिधान	७
अनायतन	१८०, १९३	अभिधेय	८
अनिवृत्तिकरण गुणस्था ३९, १६९, २३०, २३१		अभिमत देव	६
अनुतरोपपादिक दशाग	२०७	अभूतार्थ नय	९
अनुदिश (नव) १५८, १५९, १६०, १६२		अभेदनय	९३, २१८, २१९
अनुपचरितमद्भूत	१४, २२	अभ्युदय सुख	१६५
अनुपचरितासद्भूत १४, २२, २६, २८, ३२, ६१, १६, १२०		अमूटदृष्टि	१९८
		अमूर्तिक	८, २३, २४, ५८, ८८

शब्द	पृष्ठ
अयोगिगुणस्थान	४३, ५७, १६९
अयोध्या	१४९
अरजापूरि	१४८
अरिहत	२३७, २३८
अलोकाकाश	७४, २४४, २४५
अवगाहन	५०
अवध्या (नगरी)	१४९
अवधिदर्शन	१७, २१४
अवधिज्ञान	१७, २०७, २१४
अविकल्पित निश्चय	२५२
अविपाक निर्जरा	१७२
अविरत सम्यग्दृष्टि	५, ३९, ५७, ११०, १६८, २२०
अविरति	१००, ११०
अव्रत	१२४, २५९
अशरण अनुप्रेक्षा	१२०
अशुचि अनुप्रेक्षा	१२८
अशुद्ध नय	९, १३, १४, २६, २८, ३९, ५६, ६२, ८९, ११०, १११, १२०, २२२, २३३
अशुद्ध पारिणामिक भाव	४६, ४७
अशुभ तैजस समुद्घात	३२
अशुभोपयोग	११०, १७९
अशोकपूरि	१४८
अश्वपूरि	१४८
अश्वनी (नक्षत्र)	१५३
अष्ट प्रवचन मातृ	२६३
असद्भूत व्यवहारनय	४, १४, ८८, ९६, २२२
असयत सम्यग्दृष्टि	५, ३९, ५७, ११०, २६८
असञ्जी	३६, ४७, १३६
असिद्ध हेतु	२४१, २४२
असुरकुमार	१३४, १३७, १६१
अस्ति	७९
अहकारका लक्षणा	१९३
अक्षरात्मक	६०
अक्षौहिणि (सेना)	१९५
अज्ञान	१८

शब्द	पृष्ठ
(आ)	
आकार (साकार)	१९, २०६
आकाश	५८, ५९, ६६, ६८, ८५, ८७, ८८
आकिंचन	११९
आगमभाषा	१७७, १८०, १८९, २२७, २३१
आचार्य	२४६, २४७
आचाराग	२०७
आराधना (ग्रन्थ)	२०८, २२२, २४७, २५८,
आतप	६०, ६१
आत्मा	५६, २६७
आदिपद	२३४, २३५
आनत (स्वर्ग)	१५८, १५९, १६०, १६२
आयतन	१९३
आरणा (स्वर्ग)	१५८, १५९, १६०, १६२
आराधना	७३, १४५, २५१, २५७
आर्जव	११६
आर्त्तध्यान (४)	२२८
आर्द्रा (नक्षत्र)	१५५
आर्य खड	१४१, १४९
आर्य मनुष्य	६०
आवर्ता (देश)	१४६
आवास	१३४, १३९
आश्लेषा (नक्षत्र)	१५५
आश्रम नगर	१
आस्रव	९२, ९३, ९५, ९७, ९९, १०० १०३, १०८, १०९, १२९
आहारक मार्गणा	४८
आहारक समुद्घात	३२
आज्ञाविचय	१२९
(इ)	
इन्द्र	१५९
इन्द्रक विमान	१६०
इन्द्रक विल	१३८
इन्द्रिय मार्गणा	४८
इष्टदेव	६

शब्द	पृष्ठ
(ई)	
ईश्वर	५५
ईशान स्वर्ग	१५८, १५९, १६०
ईर्यापथशुद्धि	११७
(उ)	
उजयिनी (नगरी)	२०१
उत्तकुरु (क्षेत्र)	१४५
उत्तराफाल्गुनी (नक्षत्र)	१५५
उत्तराभाद्र (नक्षत्र)	१५५
उत्तरायण	१५५
उत्तराषाढ (नक्षत्र)	१५५
उत्पाद	५४, ७४, ७९, ८०
उत्सर्ग वचन	२०, २६२
उदुरुलि भट्टारक	१९८
उदायन राजा	१९७
उद्धार सागर	१३८
उद्योत	६०, ६२
उपकार	८९
उपगूहन (गुण)	१९९
उपचरितसद्भूत (नय)	१२, २२
उपचरितासद्भूत	२२, २६, २८, ६७, १२०
उपनय	२४२, २२२
उपयोग	८, १४, १५, २१, २२, ५९
उपशम सम्यक्त्व	४०, २२०
उपशातमोह	४३, १६९, १७०, २३०
उपादान कारण	७०, ७२, ११२
उपाध्याय (साधु)	२४८, २४९
उपासकाध्यनाग	२०७
उर्विला रानी	२०२
(ऊ)	
ऊर्ध्वगमन	९, ४९, ५३
(ऋ)	
ऋजुविमान	१५८, १६०

शब्द	पृष्ठ
(ए)	
एकत्वअनुप्रेक्षा	१२५, १२७
एकत्ववितर्कविचार ध्यान	४३, २२९
एकदेशचारित्र	४५, ४६
एकदेशजिन	५
एकदेशत्रत	२६०
एकदेश शुद्धनिश्चय	४, २६, ४८, ५७, ९६, ११२, २३३, २५३, २५५, २६६
एकेन्द्रिय	३४
(ऐ)	
ऐरावत क्षेत्र	१४३, १४४
(ओ)	
ओम् (शब्द)	२३५
(क)	
कच्छा (देश)	१४६
कच्छावति (देश)	१४६
कमल	१४३
करणानुयोग	२०८
कर्कट सक्कान्ति (मकरसक्कान्ति)	१५५, १५६
कर्त्ता	८, २५, २६, ८९, ९०, ९४
कर्म	२१९, २२३, २३७, २३८, २४४
कर्मचेतना	५९
कर्मफलचेतना	५८
कर्मभूमि	१४३
कल्पवृक्ष	१४५
कषाय १००, १०१, १०२, १०५, १०६, १२९, १६३	
कषाय मार्गणा	४४
काकतालिय न्याय	१६३
कात्यायनी (विद्या)	१९१
कापिष्ठ स्वर्ग	१५८, १६०
कायमार्गणा	४५
कायशुद्धि	११७
कारण	८९, १९४

शब्द	पृष्ठ
कारण-समयसार	४८, ७४
कार्य समयसार	७४
काल	५८, ५९, ६८, ६९, ७०, ७१, ७३, ७७, ७८, ८९
काल अन्तरित	२४१
काल लब्धि	७३, १७२, १८९
कालद्रव्य हेय है	७३, ७७
कालोदक (समुद्र)	१५०
कालोदधि	१५०, १५१
किञ्चिद्गून	५२, २४५
कुण्डला नगरी	१४७
कुन्दकुन्दस्वामी	२६१
कुमति	१७
कुमुदा (देश)	१४८
कुश्रुत	१७
कुलाचल	१३९, १४६, १५१
केवलदर्शन	१५, ४८, ५१, २१३, २१४
केवलज्ञान	१७, ४३, ५० १०३, ११४ १६२, २०७, २१३, २१४, २४४ २३१, २६१, २६२
केवलज्ञानावरण	५६
केवलि समुद्रघात	३१
केवलि	२१३, २१४
केसरी (ह्रद)	१४०
कौरव	१९१
कस (राजा)	१९१, १९५
कृतान्तवक्र (राजा)	१९६
कृष्ण (नारायण)	१९१
क्रियासहित	८७, ८८
क्रोध	१०१, १२९
(ख)	
खड्गपुरी (नगरी)	१४६
खड्गा (नगरी)	१४६
खरभाग	१३३, १३४
(ग)	
गगा	१४०, १४२, १४३, १४९, १५०

शब्द	पृष्ठ
गजदत्त	१४४, १५१
गतिमार्गणा	४४
गन्धमालिनी (देश)	१४९
गन्धर्वाराधना ग्रन्थ	२६२
गन्धा (देश)	१४९
गन्धिला (देश)	१४९
गुण	५८, ५९, ६०
गुणस्थान	३९, ४३
गुप्ति ११५, ११६, १६९, २२०, २२२	२६२
गौतम गणधर	१८९, १९०
गृहागकल्पवृक्ष	१४५
तारा	१५३
ग्रैवेयिक (नव)	१६८, १५९, १६०
(घ)	
घन (शब्द)	६१
घनवात	१३१, १५९
घनोदधि	१३१, १५९
(च)	
चक्रपुरी (नगरी)	१४९
चक्रवर्ति (राजा)	१२४, १३६
चतुरिन्द्रिय	३६
चण्डिका देवी	१९१
चन्द्रप्रभ विद्याधर	१९८
चरणानुयोग	२०८, २२२
चरमशरीर	१२६
चक्षुदर्शन	१५, १६
चारित्र १६७, २१९, २२०, २२१, २२२, २२३	
चारित्रमोह	२३२
चारित्रसार	२६३
चित्रापृथ्वि	१३३
चलिका	८७, ९१, २०७, २०८
चेतना (३)	५९
चेलनाराणी	१२९

शब्द	पृष्ठ
(छ)	
छद्मस्थ	२१५
छाया	६०, ६२
छेदोपस्थापना	१६७

(ज)	
जघन्य गुण	६०
जड (जीव)	३३
जनपद	१३९
जम्बूद्वीप	१३८, १३९, १४४, १४९, १५१, १५२
जम्बूवृक्ष	१३८, १४५
जयधवल	४८
जरासिन्धु (प्रतिनारायण)	१९५
जिन	५, ४३, ५६
जिनदत्त	१९९
जिनवरवृषभ	६
जीव	८, ९, १०, ११, २१, २२, २४ २५, ३६
जीवसमास	३७
ज्येष्ठा (नक्षत्र)	१५५
ज्येष्ठामाता	१९९
ज्योतिरग कल्पवृक्ष	१४५
ज्योतिष्क देव	१५३, १५४, १५७
ज्योतिष लोक	१५३

(त)	
तत (शब्द)	६१
तत्त्वानुशासन	२६२
तनुवात वलय	१३१, १३३ १५९
तप	११९, १७२, २४६, २४७, २४७, २५७
तपाचार	२४६
तम	६०, ६२
तमप्रभा (नरक-पृथिवी)	१३२
तारा	१५३
तिगिच्छ (ह्रद)	१४०, १४२

शब्द	पृष्ठ
तिर्यग्लोक	१३९
तीन-इन्द्रिय	३५
तीर्थकर	१३६, १६५, १६८, १९६, १९७
तूर्यात्रि कल्पवृक्ष	१४५
तैजस समुद्घात	३१, ३२
त्याग	११८, ११९ २५९, २६०

(द)	
दर्शन	१५, १६, २११, २१२, २१३, २१५, २१७ २१८, २३७
दर्शन मार्गणा	४६
दर्शनमोह	२३२
दर्शनाचार	२४६
दशपुर (नगर)	२०१
दक्षिणायन	१५५, १५६
दार्शनिक श्रावक	२२०
दीपाग कल्पवृक्ष	१४५
द्वोपायन (मुनि)	३२
दुर्ध्यान (अपध्यान)	७७, २६४
दु पमाकाल	२६१
देवकी (रानी)	१४५
देवकुरु (क्षेत्र)	१४२, १४५, १५८
देवमूढता	१९२
देवारण्य	१४६, १४७
देश अन्तरित (क्षेत्र से अतरित)	२४१
देशघाति स्पर्द्धक	११३
देशचारित्र	२२०, २२१
देश प्रत्यक्ष	१८
देहप्रमाण	३०
दो-इन्द्रिय	३५
दोष	५५
दोष (१८)	२३८
दृष्टात	२३९, २४०, २४१, २४२
दृष्टिवाद	२०७
द्रव्य नमस्कार	२५१
द्रव्य निर्जरा	१७१, १७२
द्रव्य निर्विचिकित्सा	१९७
द्रव्य बन्ध	६१, १०४, १९५

शब्द	पृष्ठ
द्रव्य मोक्ष	१७५, १७६, २६६, २६७
द्रव्य स्तवन	४
द्रव्य सग्रह	२६९, २७०
द्रव्य सवर	१०९, ११०
द्रव्यश्रुत	२५८, २६३
द्रव्याधिकनय	९, ८८, ८९, ११९, २६६
द्रव्यानुयोग	२०८
द्रव्यास्रव	१०३
द्वीप	१३८, १३९
द्वीपकुमार (देव)	१६१
द्वीपायन (मुनि)	३२
द्वेष	२३२, २३३

(ध)

धर्म	११५, ११६, ११९, १६९, १९२
धर्म (अनुमान)	२४१
धर्म अनुप्रेक्षा	१६४
धर्मद्रव्य	५८, ५९, ६३, ६४, ८०, ८१ ८२ ८७, ८८
धर्मध्यान	२२८, २३१, २५८, २६१, २६२
धवल	४८
धातकी खड	१३९, १५१, १५४, १९७
धातु (७)	२०८
धारा नगरी	१
धूम प्रभा (नरक)	१३२
ध्रौव्य	१४, ७४, ८०, ८१
ध्याता	२२६, २३३, २५२, २५३, २५७
ध्यान	२२५, २२६, २३३, २३७, २३८ २४४, २४५, २४६, २४९
ध्येय	२३६, २३७, २५२, २५३, २६६

(न)

नमस्कार	२४९
नमस्कार मन्त्र	२३३, २३४

शब्द	पृष्ठ
नरक	१३४, १३५, १३६, १३७
नरक बिल	१३३
नरकाता नदी	१४३
नलिना (देश)	१४८
नक्षत्र	१५५, १५६
नागकुमार	१६१
नागेन्द्र पर्वत	१५२
नाभिगिरि	१४१
नामपद	२३४, २३५
नारायण वासुदेव	१२८, १३६, १९१, १९५
नारी (नदी)	१४३
निगमन (अनुमान)	२४२
निगोद	१२४
नित्य	५३, ८९, ७७
नित्यनिगोद	१२४
निदानशल्य	२०९
निमित्त	१५४
निर्गतित्व	५१
निर्गोत्रत्व	५१, ७१, ७२
निर्जरा	९२, ९४, ९५, ९६, १३०, १६६ १७२, १७३
निर्नामत्व	५१
निर्योगत्व	५१
निर्विचिकित्सा	१९७
निर्वेदत्व	५१
निरायुपत्व	५१
निरिन्द्रयत्व	५१
निष्काक्षित	१९६
निष्कायत्व	५१, ४२
निपथ	१३९, १४१, १४२, १४७, १४८, १५१
निश्चय आराधना	७३, २५१, २५३
निश्चय चारित्र	२२३, २२४
निश्चय ध्यान	२३१, २४३, २५२, २५३, २५५, २५६

शब्द	पृष्ठ
निश्चयनय	४, ७, ८, ९, ११, १२, १३, १८, २२, २५, २६, २८, ३०, ३२, ४२, ६२, ६५, ६७, ६८, ६९, ८७, ९१, ९३, ९६, १०८, १०९, ११५, ११९, १९५, १९७, १९८, १९९, २००, २१०, २१९, २२९, २३३, २३८, २४५, २५१
निश्चय पचाचार	२४७, २५६
निश्चय मोक्ष	२५६, २६६
निश्चय मोक्षमार्ग	१८५, १८६, १८७ २२५, २५५
निश्चय रत्नत्रय	९५, १२०, १२५, १४५, १६९, १८५, १८६, १९९, २०३
निश्चय व्रत	२६१
निश्चय सम्यक्त्व	७६, ७७, २०३, २०४, २४७
निश्चय स्वाध्याय	२४८
निश्चय ज्ञान	२१०
निशकित	१९५
नील (पर्वत)	१३९, १४१, १४२, १४८
नेमचन्द्र सिद्धातदेव	२, ५, २६९, २७०
नैगम नय	५६
नैयायिक	२१४, २१५

(प)

पक-प्रभा नरक	१३२
पक-भाग	१३३
पच-नमस्कार महात्म्य	२०४, २१७
पच परावर्तन	१२३
पचाचार	२४६, २५६
पचानुत्तर	१५८, १५९, १६०, १६१, १९७
पचास्तिकाय	४८, ५७
पचेन्द्रिय	३४
पटल	१३४, १३५, १५८, १६०, १६१
पद्महृद	१४०, १४१, १४२, १४३, १५०
पद्मराज	२०१
पद्मा (देश)	१४७, १४८

शब्द	पृष्ठ
पद्मावति (देश)	१४८
पदस्थध्यान	२३३, २३४, २३५, २३६, २४३, २४६, २४८
परमध्यान	२५४, २५५
परमात्मा	५५, ५६, ५७, ५८, १०८ ११४, १७५
परमशुद्धनिश्चयनय	५, ७, ९१, ९६, २३३
परम क्षायिक सम्यक्त्व	५०
परमाणु	६०, ८३, ८४, २४३
परमोदारिक शरीर	२३८
पर्याप्ति	३८
पर्यायार्थिकनय	९४
पर्वत	१३९, १४५, १४७, १४८
पक्ष (अनुमान)	२४१, २४२, २४३
परावर्तन	१२३, २०८
परिक्रम (५)	२०७
परिणामी	८७, ९४
परिवार नदी	१४२
परिषह जय	१६६
परिहार-विशुद्धि (सयम)	१६८
परोक्ष	१७, १८, १९
पाखडीयोका	१७०
पाण्डुपुत्र	१२८, १९१, २६४
पाप	९२, ९३, ९४, ९५, ९६, १७०, १७८, १७९, २५९
पारिणामिक भाव	४६, ४७, ८९, ९६, ९७, २६६
पात्र	१४५
पिंडस्थ (ध्यान)	२३२, २३७, २३९, २४३
पुण्य	९२, ९३, ९४, ९५, १७०, १७३, १७९, १८०, १८१, १९१, २५९
पुद्गल	५८, ५९, ८०, ८७, ८९, ९०
पुद्गलवध	६१
पुनर्वसु (नक्षत्र)	१५५
पुर (भवन)	१३९
पुष्करवर द्वाप	१३८, १५१

शब्द	पृष्ठ
पुष्करार्ध द्वीप	१५१, १५४
पुष्कला (देश)	१४६
पुष्कलावति (देश)	१४६
पुष्पडाल (मुनि)	२००
पूर्व (वर्ष)	१४९
पूर्व (१४)	२०७, २६१, २६२, २६३
पैशाची भाषा	६०
पु डरीक (ह्रद)	१४०
पु डरीकणी (नगरी)	१४६
पृथक्त्व	२२९
पृथक्त्व-वितर्कवोचार	२२९
प्रकृति बध	१०६, १०७, १७०
प्रकीर्णक विला	१३५
प्रकीर्णक विमान	१६०
प्रतिनारायण (वासुदेव)	१३६, १९५
प्रतिमा (११)	२२०, २२१
प्रतिष्ठापन शुद्धि	११७
प्रत्यक्ष	१७, १८, १९, २०, १४१
प्रत्याख्यानावरण	२२२
प्रथमानुयोग	२०७
प्रदेश	७३, ७४, ७६
प्रदेश बध	१०५, १०६, १७०
प्रभाकरी (नगरी)	१४७
प्रमत्तसयत	३९, ४२, ११०, १६८
प्रमाद	१००, १०१
प्रयोजन	७
प्रवचनसार	४८
प्रश्रव्याकरणाग	२०७
प्राकृत (भाषा)	६१
प्राण	१२, ३७, ३८
प्राणत (स्वर्ग)	१५८, १५९, १६२
प्रायोगिक (शब्द)	६१

(ब)

वन्ध ६०, ८३, ८४, १०४, १०५, २५९

शब्द	पृष्ठ
बलदेव	१३६, १९५
बली (मन्त्री)	२०१
बहिरात्मा	५६, ५७
बहुरूपिणी	१९१
बाधित हेतु	२४२
बालुकाप्रभा (नरक)	१३२
बिले	१३५
बुध (ग्रह)	१५३
बेलापत्तन (नगर)	१२९
बोधि	१६३, १६४
बोधिदुर्लभ	१६३
बौद्धमत	२१०

(म)

भद्रशाल	१४६, १४७, १४८
भय (७)	१९५
भरणी (नक्षत्र)	१५५
भरतचक्री	१२४, १५५, २६१, १३९, १४२, १४२, १४३, १४४, १४९, १५१
भव-अन्तरित	२४१
भवन	१३९
भवनवासी	१३४, १३९, १६१
भव्य	४६, ९६, १९५
भव्य मार्गणा	४६
भाजनाग कल्पवृक्ष	१४५
भाव असिद्ध हेतु	२४२
भाव आस्रव	१००
भाव नमस्कार	२४९
भाव निर्जरा	१७१, १७२
भाव निर्विचिकित्सा	१९७
भाव वन्ध	६१, १०४, १०५
भावमोक्ष	१७५, २३५, २६६
भावश्रुत	२५८, २६३
भावशुद्धि	११०

शब्द	पृष्ठ
भावसवर	१०९, ११०
भावस्तवन	४
भावासिद्धहेतु	२४२
भिक्ष शुद्धि	११७
भूतार्थनय	९
भूषणाग कल्पवृक्ष	१४५
भेद	६०, ६२
भेद नय	२१८, २१९
भेदाभेद रत्नत्रय	१४५, १८१, १९६, १९७ १९९, २००, २२९, २३५, २४८, २६४
भोक्ता	९, २७, २८, ८९
भोगभूमि	१४१, १४२, १४३, १४४, १४५, १५८
भोजनाग कल्पवृक्ष	१४५
भोजराजा	१

(म)

मकर सक्रांति	१५६
मगल (ग्रह)	१५३
मगलावति (देश)	१४७
मजूपा (नगरी)	१४६
मतिज्ञान	१७, १८, २१४
मधुरा	१९८
मद (ङ)	१८०, १९३
मन पर्ययज्ञान	१७, २०७, २१४
ममकार	१९३
मलेक्ष खड	१४४, १४९
मलेक्ष भापा	६१
महाकच्छा (देश)	१४६
महात्मप्रभा (नरक)	१३२
महाधवल	४८
महापद्म	१४०, १४१
महापद्मा (देश)	१४८
महापु डरीक	१४०

शब्द	पृष्ठ
महापुरी (नगरी)	१४८
महावच्छा (देश)	१४७
महावप्रा देश	१४९
महाव्रत	२२२, २६०
महाशुक्र	१५८, १५९, १६१
महास्कध	६२, ९०
महाहिमवत	१४१, १४३, १५१
मानुषोत्तर	१५१, १५२, १५७, २०१
मायाशल्य	२०९
मार्गणा	४४, ४५
मारणान्तिक समुद्रघात	३१
मार्दव	११६
माल्यागकल्पवृक्ष	१४५
मालवदेश	१
माहेन्द्र (स्वर्ग)	१५८, १५९, १६०, १६१
मिथ्यात्व	१००
मिथ्यादृष्टि	३९, ५७, १६८
मिथ्याशल्य	२०९
मिश्रगुणस्थान	३९, ५७, १६९
मुक्तात्मा	८०
मुनि	२४९, २५०, २१७
मूर्त्त	९, १९, २०, ५९, ८८, ८९
मूढता	१८०, १९१, १९२
मूलगुण (ङ)	२२०
मेघ	१३२, १३३, १३८, १४२, १४६ १४७, १४८, १४९, १५०, २५२
मेरुचूलिका	१५८
मोह	२३२
मोक्ष	९२, ९४, ९५, ९६, ९७, १७३ १७४, १७५, २५९, २६३, २६५
मोक्षप्राभृत (ग्र य)	२६१
मोक्षमार्ग	१८३, १८४, १८५, १८७, २२५
मोक्षशिला	१५९

शब्द	पृष्ठ
(य)	
योग ९४, १००, १०१, १०६, १०७, १०८, १०९	
योग मार्गणा	४४
यथाख्यात (चारित्र)	१६८, १६९
यमकगिरी (२)	१४५
(र)	
रक्ता (नदी)	१४३
रक्तोदा (नदी)	१४३
रज्जु	७६, १३२, १५८
रत्नत्रय	९४, १२०, १४५, १८५, १६९, १८६, १८७, १९७, १९९, २२४, २६४
रत्नप्रभा (नरक)	१३२, १३३
रत्नसचया (नगरी)	१४७
रमणीया (देश)	१४७
रम्यक क्षेत्र	१३९, १४३
रम्यका (देश)	१४७
रम्या (देश)	१४७
रसाग-कल्पवृक्ष	१४५
राग	२३२, २३३
रामचन्द्र	१९१, १९४, १९६, २०१, २४१, २६४
रामायण	२०१, २०२
रावण	१८२, १९१, १९४, १९५, २४१
राक्षस	१३४
रिष्टा (नगरी)	१४६
रिष्टपुरी (नगरी)	१४६
रुक्मि (पर्वत)	१३९, १४३
रुक्मिणी (राणी)	१९७
रूप्यकुला (नदी)	१४३
रूपस्थ-ध्यान	२३२, २३७, २३८, २४३
रूपातीत ध्यान	२३२, २४३
रेवती (श्राविका)	१९८
रोहिणी (नक्षत्र)	१५५
रोहित (नदी)	१४१, १४२, १४३
रोहितास्या (नदी)	१४१, १४२, १४३
रौद्रध्यान (४)	२२८

शब्द	पृष्ठ
(ल)	
लघुसिद्धचक्र	२३५
लवण समुद्र	१३८, १५०, १५६
लब्धि (५)	१७७
लक्षमण	१९१, १९४, १९७
लागलवर्ता (देश)	१४६
लातव (स्वर्ग)	१५८, १५९, १६०, १६१
लेश्या-मार्गणा	४४, ४६
लोक-अनुश्रुति	१३१
लोक आकाश	६८, ६९, १३१, २४४
लोकमूढता	१९२
लोकपाल	१२२
लोकविभाग (ग्रन्थ)	१५७
लोकान्तिक देव	१२२, १८१
लोकालोक व्यापक	३३
(व)	
वच्छा (देश)	१४७
वच्छावति (देश)	१४७
वज्रकरण राजा	२०१
वज्रकुमार (विद्याधर)	२०२
वप्रकावति (देश)	१४९
वप्रा (देश)	१४९
वप्राराणी	२०२
वर्द्धनकुमार	१२४
वर्द्धमान (तीर्थकर)	२६१
वर्ष (क्षेत्र)	१३९
वर्षधर	१३९
वस्त्राग कल्पवृक्ष	१४५
वसुदेव (राजा)	१९५
वक्षार पर्वत	१४७, १४८, १४९, १५२
वाक्यशुद्धि	११७
वायुभूत (मुनि)	१८९
वार्तिक	१५८, १७५

शब्द	पृष्ठ
वारीसेन (मुनि)	२००
विकल्प (सकल्प)	४२, १९९
विकल्पित निश्चयनय	२५२
विक्रिया-समुद्घात	३१
विजयानगरी	१४९
विजयापुरी	१४८
विजयार्ध	१४०, १४१, १४४, १४९
वितत (शब्द)	६१
वितर्क (शुल्कध्यान)	२२९
विदेह क्षेत्र	१३९, १४२, १४४, १४७
विनयशुद्धि	११७
विपाक विचय (ध्यान)	२२९
विपाक सूत्र	२०७
विभगा नदी	१४८, १४९, १५०
विभ्रम	१८८, २०५, २०६, २१६
विभाव व्यजन पर्याय	६३, ८७
विभीषण (राजा)	१९४
विमोह	६३, ८७
विरजापुरी	१४८
विरुद्ध हेतु	१४१
विशाखा (नक्षत्र)	१५५
विशोकपुरी	१४८
विष्णु	५५
विष्णुकुमार (मुनि)	२००
विचार (शुल्कध्यान)	२२९
वीतराग चारित्र	७६, २०३, २१९, २२४
वीतराग सम्यक्त्व	७६, १७३, २०२, २०३
वीर्याचार	२४६
वेदक-सम्यक्त्व	२०४
वेदना-समुद्घात	३१
वेद-मार्गणा	४४
वैजयन्त नगर	१४९
वैश्वसिक (शब्द)	६१

शब्द	पृष्ठ
वश (अर्थात् क्षेत्र)	१३९
वृहतसिद्धचक्र	२३५
वृहस्पति	१५३
व्यतिरेक दृष्टात	१४१
व्यय	४९, ५४, ७४, ७५, ८०
व्यवहार आराधना	२५०
व्यवहार चारित्र	२१९
व्यवहार ध्यान	२३५
व्यवहार नय	४, ८, ९, ११, १३, २१, २२, २३, २४, २५, २८, २९, ४१, ६१, ६६, ६७, ६९, ८३, ८४, ८७, ८८, १०८, ११५, १२०, १९७, १९८, २००, २०१, २०२, २१५, २२३, २३३, २३८, २४६, २५३
व्यवहार पञ्चाचार	२४८
व्यवहार मोक्षमार्ग	१८५, १८७, २२५
व्यवहार रत्नत्रय	९४, १४५, १६९, १८४, १८६, २४५, २५३
व्यवहार सम्यक्त्व	२०२, २०३
व्यवहार ज्ञान	२०९
व्याख्यानम्	७
व्याख्येय	७
व्याख्याप्रज्ञाप्यत्यग	२०७
व्युपरतक्रियानिवृत्ति ध्यान	२२९
व्यजन पर्याय	६२, ७९
व्यतर	१३४, १३९, १६१
व्रत	११५, २१९, २५७, २५८, २५९, २६०

(श)

शतभिष (नक्षत्र)	१५५
शतार (स्वर्ग)	१५८, १५९, १६१
शनैश्चर (ग्रह)	१५३
शब्द	६०
शब्दात्मक श्रुतज्ञान	१९, २१४
शयनासन शुद्धि	११७

शब्द	पृष्ठ
शर्कराप्रभा (नरक)	१३२
शल्य (३)	२०९
शशिप्रभा आर्यिका	१९६
शिखरी पर्वत	१३९, १४३
शिवभूति	२६३
शीतानदी	१४२, १४५, १४७, १४८
शीतोदा नदी	१४२, १४८
शुक्र (नक्षत्र)	१५३
शुक्र (स्वर्ग)	१५९, १६०, १६१
शुक्लध्यान (४)	२३०, २३१, २३२ २५७, २६१
शुचि	१२८
शुद्ध-द्रव्यार्थिकनय	९, १०, ३८, ८९, ९३
शुद्ध निश्चयनय	४, ९, १०, १३, २२, २४ २८, ५६, ८३, ८७, ८८, ९६, २३३, २६६
शुद्ध पारिणामिकभाव	४६, ८९, ९६, २५६, २६६
शुद्ध व्यजनपर्याय	७९
शुद्धि (८)	११७
शुद्धोपयोग	१११, ११२, १२३, १६९, २१९, २५३, २६१
शुभ तैजस समुद्घात	३२
शुभा (नगरी)	१४७
शुभोपयोग	११०, १६९, १७९, २२२, २३६
शूद्र	१२८
शून्य (ज्ञान)	३३
शौच (धर्म)	११७
शकादि (८ दोष)	१९४
शाखा (देश)	१४८
श्रावक	४२, ११०, १३६, २२०, २२१
श्रीपाल (राजा)	१
श्रुतज्ञान	२०, २०७, २१४, २६१, २६२, २६३
श्रेणिक (राजा)	२६१
श्रेणीवद्ध	१३४, १६०
(ष)	
पोडश भावना	१८०

शब्द	पृष्ठ
(स)	
सकल चारित्र	२२१
सकल प्रत्यक्ष	१७
सकल-भूषण केवली	१९६
सक्रिय	८८
सगर (चक्रवर्ति)	२६३
सत्यधर्म	११६
सद्भूत-व्यवहारनय	१४, २२
सन्निकर्ष	२१४
सन्निपात	२१४
समयमूढता	१९२
समयसार	४८, २५६
समवायाग	२०७
समाधि	१६३, १६४, २५६, २६१
समिति (५)	११५, ११६, २१९, २२१, २२२
समुद्घात	३१
सम्यक्त्व क्रिया	१२९
सम्यक्त्व मार्गणा	४७
सम्यक् श्रद्धान	४८, ७३, १८५
सम्यग्दर्शन	५०, १८४, १८५, १८७, १८८ १८९, १९०, १९२, १९३, १९४, २१९
सम्यग्ज्ञान	१८, १८६, १८७, १८८, २०५, २०६, २०७, २०९, २१८, २१९
सयोगिगुणस्थान	३९, ४३, ४४, ५७, १७०
सराग चारित्र	२१९, २२२
सराग सम्यक्त्व	१७३, १९३
सरोवर	१४०
सर्वघाति स्पर्द्धक	११३
सर्वपद	२३५, २३६
सर्वज्ञ	२३७, २३८
सलिला (देश)	१४८
सविपाक निर्जरा	१७२
सहकारी कारण	६४, ६५, ६६, ७५, १९५ १९६, १९७, १९९
सहस्रार (स्वर्ग)	१५८, १५९, १६०, १६२
साकार (उपयोग)	२०६, २०७
साधु	२५०, २५१

शब्द	पृष्ठ
साध्य-साधक	४१, १३०, १६८, २०३, २२२, २२३, २२५
सानतकुमार (स्वर्ग)	१५८, १५९, १६०, १६२
सामान्य	२१, २२, २१२, २१७, २१८
सामायिक	१६७, १६८, १६९, २६१
सासादन	३९, ५७, १६९
सिद्ध	८, ४३, ५७, ६४, ६५, ६६, ६७, १५९, १६६, २३४
सिद्ध शिला	१५९
सिद्ध स्वरूप	५०, ५१, २५५
सिन्धु	१४१, १४२, १४३, १४९
सिवभूति (मुनि)	२६३
सीता (रानी)	१९४, १९६
सीमन्त-बिला	१३४
सुकच्छा (देश)	१४६
सुख	४१, ५८, ५९, ९४, १२५, १३०, १३७, १७५, १७६, १९७, २५५, २३०, २३७, २३८
सुगत	५५
सुगधा (देश)	१४९
सुपद्मा (देश)	१४८
सुवर्णाकुमार (देव)	१६१
सुमेरु	१३२, १३३, १३८, १४२, १४४, १४६, १४७, १४९
सुवच्छा (देश)	१४७
सुवप्रा (देश)	१४९
सुवर्ण कुला (नदी)	१४३
सुवर्ण पर्वत	१४५
सुपमसुपमा	१४३
सृषिर (शब्द)	६१
सुसिमा (नगरी)	१४७
सूर्य	१५३, १५४, १५५, १५६, १५७, १६१
सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति	२२९
सूक्ष्मता	६०
सूक्ष्मसापराय-गुणस्थान	३९, १६९, २३०

शब्द	पृष्ठ
सूक्ष्मसापराय-चारित्र	१६८
सूत्र	२०७
सूत्रकृताग	२०७
सोम-श्रेष्ठी	२, १७०
सौधर्म	१५८, १५९, १६०, १६१, १६२
सकल्प	४२, १९९, २६४
सकोच-विस्तार	९, ३०, ५२
सयम	११६
सयम-मार्गणा	४४
सयमासयम	४२, १६९
सवर	९२, ९३, ९४, ९५, १०८, १०९, ११०, १११, ११२, ११९, १६९
सव्यवहार प्रत्यक्ष	१६, १८, १९, २०
सवेग	१३१
सशयज्ञान	१८८, २०६, २१६
ससारी	९
सस्कृत	६१
सस्थान	६०, ६२
सस्थान विचय	२२९
सहनन	२६१
सज्ञी	३८
सज्ञी-मार्गणा	४८
सिन्धु	१४०, १४१, १४२, १४३, १४९
सिंहपुरी	१४८
सिंहोदर (राजा)	२०१
स्तवन (द्रव्यभाव)	४
स्थानाग	२०७
स्थावर	३४, ३५
स्थिति-वध	१०६, १०७, १७०
स्थूलता	६०
स्वभाव व्यजनपर्याय	६३
स्वयभूरमण	१३८, १५२, १५७
स्वरूप-असिद्ध हेतु	२४२
स्वर्ग	१५८
स्वाति (नक्षत्र)	१५५

शब्द	पृष्ठ
(ह)	
हरि-क्षेत्र	१३९, १४१, १४३
हरिकाता (नदी)	१३९, १४१, १४३
हरित (नदी)	१३९, १४१, १४३
हरिषेण (चक्रवर्ति)	२०२
हस्तिनागपुर	२०१
हिमवत (पर्वत)	१३९
हेतु	२४०, २४१, २४२, २४३
हैरण्यवत क्षेत्र	१३९-१४१
हेमवत क्षेत्र	१३९-१४०
हृद	२३९

(क्ष)	
क्षमा	११६
क्षयोपशम	११३
क्षयोपशमिक ज्ञान	११३
क्षयोपशम सम्यक्त्व	२०४-२०५
क्षायिक सम्यक्त्व	५०-२०५
क्षीण-कपाय गुणस्थान	३२, ५७, १३०, २३१

शब्द	पृष्ठ
क्षेमपुरी	१४६
क्षेमा नगरी	१४६
क्षेत्र ८७, ८८, १३९, १४३, ४४, ४५, ४६, ४७, ४८	
क्षेत्र-अन्तरित	१४१
क्षेत्र-पाल	१९१
(त्र)	
त्रस जीव	३४
त्रस-नाडी	१३२
त्रिलोकसार	१६२, २०८
(ज्ञ)	
ज्ञातृकथाड	२०७
ज्ञान	१४, १५, १७, २१, ६०, २०८, २०९, २१०, २११, २१२, २१३, २१४, २१५, २१६, २३७, २४६, २४७
ज्ञान (मिथ्या)	१७, १८७, १८८, १८९
ज्ञान-मार्गणा	४५
ज्ञानाचार	२४६
ज्ञानावरण	१०३, २३७, २४४

संस्कृतटीकायामुक्तानां वाक्यानाम् सूची

	पृ. स.
उद्धृत वाक्य	
अस्त्यात्मानादि बद्ध	११
आर्तानरा धर्मपरा भवन्ति	१३१
आविद्धकुलालचक्रवद् व्यपगतलेपालाबुवदेरण्ड- बीजवदग्निशिखावत् चेति । [मोक्षशास्त्र १०/७]	५३
उपादानकारणसदृशकार्यमिति ।	७२
जीवभव्याभव्यत्वानि च । [मोक्षशास्त्र २/७]	
तुसमास घोसन्तो सिवभूदि केवली जादो	१६२
दर्शनविशुद्धिर्विनयसपन्नता शीलव्रतेष्वनति- चारोऽभीक्षणज्ञानोपयोगसवेगौ शक्तितस्त्याग तपसी साधुसमाधिर्वैयावृत्यकरणमर्हदाचार्य- बहुश्रुतप्रवचनभक्तिरावश्यकपरिहाणिमार्गि-	

	पृ. सं
प्रभावना प्रवचनवत्सलत्वमिति तीर्थकरत्वस्य [मोक्षशास्त्र ६/२४]	१८०
धर्मास्तिकायाभावदिति । [मोक्षशास्त्र १०/८]	५३
पुगलकरणा जीवा खधा खलु काल कारणादु । [पचा ९८]	८२
पूर्वप्रयोगादसङ्गत्वाद्बन्धच्छेदात्तथा गति- परिणामाच्च [मोक्षशास्त्र १०/६]	५३
ब्रह्मचारी सदा शुचि ।	१२८
भूवामन्ते स्पृशन्तीना लोकान्त सर्वदिशु च ।	१३३
मा रूसह मा तूमह ।	२६२
समग्रो उप्पण्ण पद्ध सो ।	७१
स्थिति कालसन्नका ।	७०
वसानृग्मासभेदोऽस्विमज्जागुक्ताणि ध्यानव ।	१०७

